

भारत में अंगरेज़ी राज !



तीसरी जिल्द

सुन्दरलाल

भारत में अंगरेज़ी राज
तीसरी जिल्द

भारत में अंगरेज़ी राज तीसरी जिल्द

सुन्दरलाल

प्रकाशक

त्रिवेणी नाथ वाजपेयी
ओंकार प्रेस, इलाहाबाद ।

१९३८

दूसरा संस्करण १०,०००]

[पूरी पुस्तक का मूल्य ७) रु०

पहला संस्करण सन् १९२६—२,०००

दूसरा संस्करण सन् १९३८—१०,०००

मुद्रक

विश्वम्भर नाथ वाजपेयी

ओंकार प्रेस, इलाहाबाद ।

विषय सूची

छत्तीसवाँ अध्याय

भारतीय शिक्षा का सर्वनाश

अंगरेजों से पहले भारत में शिक्षा की अवस्था—प्राचीन भारत में शिक्षा का प्रचार—भारतीय शिक्षा प्रणाली—प्राचीन पाठशालाओं में खर्च की व्यवस्था—भारतीय शिक्षा के सर्वनाश के कारण—सन् १८१३ की मंजूरी—अंगरेजी राज के लिये शिक्षा की आवश्यकता—शिक्षित भारत-वासियों से डर—कुछ विपरीत विचार—पूर्वी और पश्चिमी शिक्षा पर बहस—बेसिंटन का फ़ैसला—देशी भाषाओं का दबाना—लार्ड मैकाले की रिपोर्ट—वर्तमान अंगरेजी शिक्षा का उद्देश—सौ वर्ष का अनुभव—सरकारी विश्व विद्यालय—शिक्षित भारतवासियों का चरित्र । पृष्ठ १११६-११२८

सैंतीसवाँ अध्याय

पहला अफ़ग़ान युद्ध

लार्ड आकलैण्ड—सिन्धु नदी की सरवे का परिणाम—बर्न्स की मध्य एशिया की यात्रा—दोस्त मोहम्मद की माँग—अफ़ग़ानिस्तान के साथ युद्ध

की तय्यारी—पार्लिमेण्ट के काराजों में जालसाज़ी—अपहरण नीति—
अफ़ग़ानिस्तान पर चढ़ाई—सिन्ध के अमीरों के साथ नई सन्धि—सिन्धी
प्रजा पर लूट और अत्याचार—काबुल पर क़ब्ज़ा—अफ़ग़ानिस्तान की
परिस्थिति—ग़ुप्त हत्याओं का प्रबन्ध—अंगरेज़ों की घृणित पाशविक
वृत्तियाँ—अफ़ग़ान चरित्र—शाहशुजा का बध—बर्न्स की हत्या—मैकनाटन
की हत्या—सोलह हज़ार की सेना का अवशेष—लार्ड एलेनब्रु—एलेनब्रु
के विचार—भूटे एलान—मुसलमानों का शत्रु—सोमनाथ का फाटक और
युद्ध का अन्त—अफ़ग़ान युद्ध का ख़मियाज़ा—दोबारा चढ़ाई—युद्ध का
अन्त ।

पृष्ठ ११५६-११८६

अड़तीसवाँ अध्याय सिन्ध पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा

सिन्ध की राजनैतिक स्थिति—कम्पनी की कोठी और ठठे का पतन—
कम्पनी को व्यापारिक सुविधाएं—सिन्ध में कम्पनी का एलची—सन् १८०६
की सन्धि—सन् १८२० की सन्धि—बर्न्स की सिन्धु यात्रा—अमीरों से
ख़िराज़ की माँग—मीर रुस्तम ख़ाँ—रुस्तम ख़ाँ के साथ नई सन्धि—मीर
अली मुराद—सिन्ध पर क़ब्ज़ा करने के मुख्य कारण—साज़िश पक़ी
करना—रुस्तमख़ाँ पर भूटे इलज़ाम—हैदराबाद के अमीर—मियानी का
संभ्राम—बलूचियों की वीरता—अंगरेज़ों की विजय का रहस्य—जनान
ख़ानों पर हमला—सिन्ध पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा—अमीरों का शोक जनक

अन्त—अमीरों का चरित्र—अमीरों का शासन प्रबन्ध—खेती और आब-पाशी—धार्मिक सद्भावना—सिन्ध विजय पर जनरल नेपियर के उद्गार ।

पृष्ठ ११६०-१२३७

उन्तालीसवाँ अध्याय

अन्य भारतीय नरेशों के साथ एलेनब्रु का व्यवहार

सींधिया—ग्वालियर दरबार का सुशासन—अनुचित हस्तक्षेप—दादा खासजीवाला—अंगरेज़ दूत मामा साहब—रेज़ीडेण्ट स्लीमैन—खासजीवाला पर झूठा इलज़ाम और उसकी गिरफ्तारी—एलेनब्रु का वास्तविक इरादा—ग्वालियर पर हमला—नई सन्धि—कैथल पर कब्ज़ा—रणजीत सिंह की मृत्यु और पंजाब में अराजकता—एलेनब्रु की योजनाएं—असफल प्रयत्न—निज़ाम पर दाँत—जेतपुर की रियासत—अवध से कर्ज़—दिल्ली सम्राट की नज़रें बन्द—एलेनब्रु की वापसी ।

पृष्ठ १२३८-१२५७

चालीसवाँ अध्याय

पहला सिख युद्ध

सिख युद्ध की तय्यारी—तीन देशद्रोही—बहाने की तलाश—राई का पहाड़—सन्धि का लगातार उल्लंघन—अहसान फ़रामोशी—सिख सेना को भड़काने के प्रयत्न—युद्ध का एलान—मुदकी का संग्राम—क़ीरोज़ शहर का संग्राम—अलीवाल की लड़ाई—शुबराँव की लड़ाई—सिख सैनिकों की असीम वीरता—शामसिंह अटारी वाला—लाहौर दरबार के साथ

सन्धि—हार्डिञ्ज को इनाम—हार्डिञ्ज के शासन काल की अन्य घटनाएँ—
हार्डिञ्ज की धर्मनिष्ठा ।

पृष्ठ १२५८-१२८४

इकतालीसवाँ अध्याय

दूसरा सिख युद्ध

लार्ड डलहौज़ी की निश्चित नीति—पंजाब में असन्तोष—मुलतान की घटना—दीवान मूलराज—मूलराज के शासन में हस्तक्षेप—मूलराज की बर्ज़ास्तगी—क्रीतदास काहनसिंह—मुलतान का संग्राम—महारानी फ़िन्दा कौर की गिरफ़्तारी—मुसलमानों को भड़काने के प्रयत्न—मूलराज के साथ संग्राम—मुलतान का मोहासरा—दूसरे सिख युद्ध का प्रारम्भ—शेरसिंह की वीरता—चिलियानवाला का संग्राम—गुजरात के संग्राम—पंजाब की स्वाधीनता का अन्त—राष्ट्रीयता का अभाव—मेजर ईवन्सबेल के विचार ।

पृष्ठ १२८५-१३०८

बयालीसवाँ अध्याय

दूसरा बरमा युद्ध

कप्तान शैपर्ड का मुक़दमा—कप्तान लुई का मुक़दमा—डलहौज़ी का हस्तक्षेप—युद्ध के लिये अंगरेज़ी जहाज़ों की रवानगी—बरमा दरबार की शान्ति प्रियता—बरमी जहाज़ की गिरफ़्तारी—गोलाबारी—नई माँगे—बरमा महाराजा का नम्र पत्र—विध्वंस और क्रूरता आम—पगू पर कम्पनी का कब्ज़ा ।

पृष्ठ १३०९-१३२२

तेँतालीसवाँ अध्याय डलहौज़ी की भू-पिपासा

लैप्स की नीति—सतारा के राजा से वादा—सतारा का अपहरण—
नागपुर का अपहरण—भाँसी का अपहरण—सम्बलपुर का अपहरण—
जेतपुर का अपहरण—तञ्जोर का अपहरण—करनाटक का अपहरण—
मुसलिम रियासतें—बरार का अपहरण—अवध का अपहरण—वाजिद अली
शाह पर झूठे कलंक—वाजिद अली का चरित्र—ताल्लुक़ेदारों के साथ
ज़ुल्म—इनाम कमीशन ।

पृष्ठ १३२३-१३५१

चवालीसवाँ अध्याय सन् १८५७ की क्रान्ति से पहले

लार्ड कैनिङ्ग—प्लासी से वेलोर के ग़दर तक—राजघरानों के प्रति
डलहौज़ी का बरताव—साधारण प्रजा के साथ अंगरेज़ों का बरताव—
सहारनपुर का अंगरेज़ी अस्पताल—अंगरेज़ों के अनुचित व्यवहार की कुछ
मिसालें—दिल्ली सम्राट और अंगरेज़—शाह आलम और माधोजी सींधिया
—सम्राट अकबर शाह—राजा राममोहनराय—सम्राट बहादुर शाह और
अंगरेज़—अवध के साथ अत्याचार—डलहौज़ी की अपहरण नीति—नाना
साहब के साथ अन्याय—ईसाई मत प्रचार की आकांक्षा—धार्मिक भावों
पर आघात—पंजाब को ईसाई बनाने की कोशिश—फ़ौज में ईसाई मत
प्रचार—भारतीय धर्मों की श्रेष्ठता—सैनिकों के प्रति सामान्य व्यवहार—

क्रान्ति की योजना का सूत्रपात—अज़ी मुल्ला और रंगो बापूजी—गैरि-
बाल्डी और भारतीय क्रान्ति—बिटूर में क्रान्ति केन्द्र—गुप्त संगठन और
तैयारी—अवध और क्रान्ति—क्रान्ति में धन की सहायता—क्रान्ति के अन्य
केन्द्र—आश्चर्य जनक गुप्त संगठन—मौलवी अहमदशाह—क्रान्ति के चिन्ह
कमल और चपाती—रविवार ३१ मई, सन् १८५७—पलटनों के बीच
पत्र व्यवहार ।

पृष्ठ १३५२-१३६४

पैंतालीसवाँ अध्याय

चरबी के कारतूस और क्रान्ति का प्रारम्भ

दमदम की घटना—चरबी के कारतूस—सिपाहियों के साथ ज़बरदस्ती
—बैरकपुर से क्रान्ति का श्री गणेश—मंगल पाँडे—मेरठ की घटना—मेरठ
में क्रान्ति का पहला दिन—क्रान्तिकारियों का दिल्ली में प्रवेश—दिल्ली
की स्वाधीनता—अलीगढ़ की स्वाधीनता—मैनपुरी की स्वाधीनता—इटावे
की स्वाधीनता—नसीराबाद में क्रान्ति—बरेली, शाहजहाँपुर, मुरादाबाद
और बदायूँ की स्वाधीनता—खान बहादुर खाँ का प्लान—आज़मगढ़ और
गोरखपुर की स्वाधीनता—जनरल नील—बनारस में क्रान्तिकारियों की
असफलता—जौनपुर की स्वाधीनता—इलाहाबाद शहर पर क्रान्तिकारियों
का कब्ज़ा—मौलवी लियाक़त अली ।

पृष्ठ १३६५-१४२७

छयालीसवाँ अध्याय

प्रतिकार का प्रारम्भ

जनरल नील की दमन योजना—कई तरह की फाँसी—नर संहार और

अग्निकाण्ड—इलाहाबाद निवासियों से बदला—छोटे छोटे बालकों को
 फाँसी—किश्तियों पर गोलाबारी—फाँसी के तरीके—अंगरेजों के साथ
 असहयोग—कानपुर और नाना साहब—कानपुर की स्वाधीनता—नाना
 का शासन प्रबन्ध—सतीचौरा घाट का हत्या काण्ड—पेशवा नाना साहब
 का दरबार—फाँसी और रानी लक्ष्मीबाई—लक्ष्मीबाई का चरित्र—फाँसी
 की स्वाधीनता—अवध में क्रान्ति की तैयारी—लारेन्स की किलेबन्दी—नेपाल
 से मदद की प्रार्थना—क्रान्ति का प्रारम्भ—सीतापुर की स्वाधीनता—
 फर्रुखाबाद की स्वाधीनता—अवध की स्वाधीनता—मौलवी अहमदशाह
 की गिरफ्तारी—फ़ैजाबाद की स्वाधीनता—सुलतान पुर की स्वाधीनता—
 लखनऊ की स्थिति—बेगम हज़रत महल का शासन । पृष्ठ १४२८-१४६६

सैंतालीसवाँ अध्याय

दिल्ली पञ्जाब और बीच की घटनाएँ

दिल्ली का महत्व—यदि पञ्जाब क्रान्ति का साथ देता—सिखों को
 भड़काना—सिख राजाओं का विश्वासघात—कम्पनी ही के राज में पञ्जाबी
 साहूकारों का हित—सरहद में कम्पनी के धनक्रीत मुल्ला—फ़ीरोज़पुर में
 क्रान्ति—पेशावर की देशी पलटनें—फाँसी और तोप के मुँह से उड़ाया
 जाना—होती मरदान की सेना का नाश—वीभत्स दृश्य—दस नम्बर
 पल्टन की सिन्धु जल में समाधि—क्रूर यातनाएँ—जालन्धर, फ़िलौर और
 लुधियाना में क्रान्ति—सिख राजाओं का देशद्रोह—अंगरेज़ी सेना के
 अनसुने अत्याचार—बुन्देले की सराय का भीषण संग्राम—दिल्ली के भीतर

अदम्य उत्साह—गोहत्या पर कड़ा दण्ड—सम्राट बहादुरशाह के एतान—
 प्लासी की शताब्दी—अंगरेजों की सहायता के लिये नई सेना—सेनापति
 बख्त ख़ाँ—उसका शासन प्रबन्ध—अंगरेजी सेना की पराजय—अंगरेजी
 सेना में नैराश्य—भारतीय नरेशों की अनिश्चितता—इन्दौर और मध्यभारत
 की स्थिति—आगरे की स्वाधीनता—इलाहाबाद अंगरेजी सेना का केन्द्र—
 अंगरेजी सेना की कानपुर यात्रा—फ़तहपुर की अग्नि समाधि—बीबी गढ़
 का हत्या काण्ड—नाना की ज़िम्मेदारी—कानपुर में अंगरेजी सेना के
 अत्याचार—पञ्जाब का ब्लैकहोल—अजनाले की घटना—रावी तट का हत्या
 काण्ड—अजनाले की काल कोठरी—अजनाले का कुंआ—बाबा जगतसिंह
 का बयान—दिल्ली में अंगरेजी सेना—क्रान्ति कारियों में अनुशासन की
 कमी—देशी नरेशों के नाम बहादुरशाह का पत्र—कम्पनी को नई मदद—
 नीमच की क्रान्तिकारी सेना—१४ सितम्बर का संग्राम—दिल्ली के अन्दर
 कम्पनी की सेना का प्रवेश—अमरगली—जामे मसजिद की लड़ाई—
 सम्राट बहादुरशाह की गिरफ्तारी—शहज़ादों की हत्या—दिल्ली के बाशिन्दों
 का क़त्ले आम—वीरान और सुनसान दिल्ली—प्राइज़ एजेन्सी—मन्दिरों
 और मसजिदों की बेइज्जती—दिल्ली नए सिरे से आबाद—दिल्ली के राजकुल
 का अन्त—सम्राट का निर्वासन और अन्त ।

पृष्ठ १४६७-१५४३

अड़तालीसवां अध्याय

अवध और बिहार

बेगम हज़रत महल—रेज़िडेन्सी के अंगरेज—हैवलाक की लखनऊ
 यात्रा—नाना के मनसूने—अवध निवासियों के हौसले—हैवलाक की

घबराहट—नई अंगरेज़ी सेना—आलम बाग़ का संग्राम—हैवलाक रेज़िडेन्सी में कैद—ग्रेटहेड की कानपुर यात्रा—आलम बाग़ के लिये नई अंगरेज़ी सेना—सिकन्दर बाग़ का संग्राम—नौ दिन का लगातार संग्राम—लखनऊ रक्त का समुद्र—तात्या टोपे—कानपुर पर तात्या का क्रब्ज़ा—कानपुर पर अंगरेज़ी सेना का फिर से क्रब्ज़ा—अवध और रुहेलखण्ड में दमन—इटावे के २५ शहीद—फ़र्रुखाबाद का पतन—लखनऊ विजय के लिये विशाल अंगरेज़ी सैन्यदल—देश द्रोही नेपाली सेना—लखनऊ शहर की परिस्थिति—मौलवी अहमदशाह—क्रान्तिकारियों में अनुशासन की कमी—शहर की मोरचे बन्दी—तीसरी बार लखनऊ में रक्त की नदियाँ—शहादत गंज का संग्राम—क्रल्ले आम—लखनऊ की बेगम—बिहार में क्रान्ति का आयोजन—राजा कुंवरसिंह—आरा का मोहासरा—आमबाग़ का संग्राम—बीबी गंज का संग्राम—किलमैन की पराजय—डेम्स की पराजय—लार्ड मार्क की पराजय—कुंवरसिंह का युद्ध कौशल—लगर्ड की पराजय—डगलस की पराजय—कुंवरसिंह गोली से घायल—कुंवरसिंह का जगदीशपुर में प्रवेश—लीग्रैण्ड की पराजय—कुंवरसिंह की मृत्यु—कुंवरसिंह का चरित्र—राजा अमरसिंह—जगदीशपुर पर सात ओर से हमला—नौनदी का संग्राम—अमर सिंह का अन्त—जगदीशपुर की वीर स्त्रियाँ—अवध की स्थिति—बारी की लड़ाई—जनरल होप की मृत्यु—शाहजहाँपुर का संग्राम—अहमदशाह के साथ दगा—अहमद शाह का चरित्र । पृष्ठ १५४४-१५६६

उनचासवाँ अध्याय लक्ष्मीबाई और तात्या टोपे

लक्ष्मीबाई का सेनापतित्व—भाँसी में आठ दिन का लगातार संग्राम—लक्ष्मीबाई के प्रयत्न—रानी का भाँसी त्याग—बाँदा का नवाब—करवी का राव—क्रान्तिकारियों में अव्यवस्था—काली का संग्राम—ग्वालियर पर क्रान्तिकारियों का कब्ज़ा—तात्या और लक्ष्मीबाई की योग्यता—लक्ष्मीबाई की व्यूह रचना—ग्वालियर का संग्राम—लक्ष्मीबाई की वीरता—लक्ष्मीबाई का बलिदान—लक्ष्मीबाई का चरित्र—दक्षिण में क्रान्ति—कोल्हापुर—बेलगाम—सतारा—बम्बई—नागपुर—जबलपुर—हैदराबाद—ज़ोरापुर का बालक राजा—भास्कर राव बाबासाहब—अवध में नए सिरे से क्रान्ति की आग—राजा बेनीमाधव—कम्पनी के शासन का अन्त—मलका विक्टोरिया का एलान—बेगम हज़रत महल का एलान—निर्वासित क्रान्तिकारी—अवध का पतन—तात्या टोपे के अन्तिम प्रयत्न—कोटरा का संग्राम—तात्या का नर्मदा पार करना—तात्या नागपुर में—तात्या का अलौकिक कूच—नवाब बाँदा का आत्म समर्पण—मेजर राक की पराजय—तात्या देवास में—मानसिंह का विश्वासघात—तात्या का बलिदान—राव साहब और फ़ीरोज़शाह का अन्त । पृष्ठ १६००-१६४६

पचासवाँ अध्याय सन् ५७ के स्वाधीनता संग्राम पर एक दृष्टि

क्रान्ति की असफलता के मुख्य कारण—समय से पूर्व क्रान्ति का

प्रारम्भ—सिखों और गोरखों का अंगरेजों से मिल जाना—योग्य और प्रभावशाली नेताओं का अभाव—देशी नरेशों की उदासीनता—दक्खिन में उदासीनता—दोनों ओर के अत्याचारों की तुलना—क्रान्तिकारियों पर मिथ्या इलज़ाम—क्रान्ति के नेताओं की उदारता—यदि क्रान्ति सफल हो गई होती—उस समय की राष्ट्रीय नुटियाँ—यदि क्रान्ति न हुई होती—सन् ५७ की क्रान्ति का अन्य देशों पर असर—हमारे भावी आदर्श ।

पृष्ठ १६५०-१६६६

इक्यावनवाँ अध्याय सन् १८५७ के बाद

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अन्त—मलका विक्टोरिया का एलान—देशी रियासतों को क्रायम रखना—भारत में अंगरेज़ी उपनिवेश—राष्ट्रीय भावों का नाश—हिन्दोस्तान की उपजाऊ शक्ति को उन्नति देना—भारतीय सेना का संगठन—भेदनीति—भारत से इंगलिस्तान को खिराज—अन्तिम शब्द ।

पृष्ठ १६६७-१७०८



पं० सुन्दर लाल

पंडित सुन्दर लाल भारत के पत्रकार, इतिहासकार तथा स्वतंत्रता-संग्राम सेनानी थे। वे 'कर्मयोगी' नामक हिन्दी साप्ताहिक पत्र के सम्पादक थे। प्रयाग इनका कर्मक्षेत्र रहा। उनकी महान कृति "भारत में अंग्रेजी राज" १८ मार्च, १९२८ को प्रकाशित होते ही २२ मार्च को अंग्रेज सरकार द्वारा प्रतिबंधित कर दी गयी। गणेशशंकर 'विद्यार्थी' को पंडित जी से बहुत प्रेरणा मिली थी। अपने अध्ययन एवं लेखन के दौरान गणेश शंकर की भेंट पंडित सुन्दरलाल जी से हुई और उन्होंने उनको हिन्दी में लिखने के लिये प्रोत्साहित किया। पंडित सुन्दर लाल ने ही गणेश शंकर को 'विद्यार्थी' उपनाम दिया जो आगे चलकर उनके नाम में हमेशा-हमेशा के लिये जुड़ गया।

चित्र सूची

तीसरी जिल्द

नाम	पृष्ठ
१. दोस्त मोहम्मद खाँ (चार रङ्गों में) ...	११६२
२. कप्तान जान कोनोली (अफ़ग़ान वेश में) ...	११७४
३. कप्तान एण्डरसन ...	११७६
४. मोहम्मद अकबर खाँ ...	११८०
५. डाक्टर ब्राइडन ...	११८२
६. सर अलेक्ज़ेंडर बर्न्स-बोख़ारा की पोशाक में ...	११८५
७. अमीर नसीर खाँ और उसके दो बेटे ...	१२१४
८. मीर रुस्तम खाँ (चार रङ्गों में) ...	१२३०
९. शामसिंह अटारीवाला ...	१२७६
१०. राजा प्रतापसिंह, सतारा ...	१२८३
११. दीवान मूलराज ...	१२८६
१२. दिल्ली का अन्तिम सम्राट बहादुर शाह } ...	१४०८
१३. बेगम ज़ीनत महल }	

१४. चौक इलाहाबाद के सात नीम के वृक्षों में से चार ;
जिन पर सन् ५७ में लगभग ८०० निर्दोष नगर
निवासियों को फाँसी पर लटका दिया गया ... १४३५
१५. किश्तियों में बैठ कर इलाहाबाद से भागते हुए
हिन्दोस्तानियों पर अंगरेज़ी सेना का गोले बरसाना १४३६
१६. नाना साहब ... १४५०
१७. सम्राट बहादुरशाह [सन् १८४४ के एक चित्र से] ... १४६७
१८. जून १८५७ में बगावत के सन्देह पर हिन्दोस्तानी
सिपाहियों का तोप के मुंह से उड़ाया जाना ... १४७५
१९. १० जून सन् १८५७ को पेशावर में हिन्दोस्तानी
सिपाहियों का तोप के मुंह से उड़ाया जाना ... १४७६
२०. सम्राट बहादुर शाह [सन् १७ की क्रान्ति के समय का
चित्र] ... १४८७
२१. कानपुर ज़िले में अंगरेज़ी सेना के सिपाही गाँव में
आग लगा रहे हैं, ग्राम के स्त्री पुरुष निकल कर
भाग रहे हैं ... १४९९
२२. पुलिस स्टेशन, अजनाला ... १५११
२३. काल्यां-दा-बुर्ज, अजनाला ... १५१२
२४. काल्यां-दा-खूह, अजनाला ... १५१४
२५. बाबा जगतसिंह, अजनाला ... १५१६
२६. सम्राट बहादुर शाह की गिरफ्तारी ... १५३०

२७. बेगम जीनत महल (कैदी हालत का लिया गया असली फोटो)	१५३२
२८. कप्तान हडसन द्वारा मुगल शहजादों की हत्या [चित्रकार जी० एफ० एटकिनसन]	१५३४
२९. अंगरेज प्राइज एजेंट्स द्वारा दिल्ली की लूट [एटकिनसन का व्यङ्ग्य चित्र]	१५३८
३०. सम्राट बहादुर शाह मृत्यु शय्या पर [रंगून में लिए गए असली फोटो से]	१५४३
३१. महल की स्त्रियाँ जिन्होंने मरदाना वेष पहन कर लखनऊ के स्वाधीनता संग्राम में भाग लिया	१५७६
३२. कुंवरसिंह	१५८६
३३. रानी लक्ष्मीबाई, भाँसी का संग्राम (तिरङ्गा)	१६०५
३४. रानी लक्ष्मीबाई, मृत्यु से थोड़ी देर पूर्व (तिरङ्गा)	१६१७
३५. रानी लक्ष्मीबाई की समाधि, लश्कर, ग्वालियर	१६१८
३६. तात्या टोपे	१६४८
३७. हिन्दोस्तान का नक्शा, सन् वार अंगरेजी सत्ता का विस्तार	जिल्द के लिफाफे में

भारत में अंगरेज़ी राज

छत्तीसवाँ अध्याय

भारतीय शिक्षा का सर्वनाश

अंगरेज़ों के आगमन से पहले सार्वजनिक शिक्षा और विद्या प्रचार की दृष्टि से भारत संसार के अग्रतम देशों की श्रेणी में गिना जाता था। आज से केवल सवा सौ वर्ष पहले यूरोप के किसी भी देश में शिक्षा का प्रचार इतना अधिक न था जितना भारतवर्ष में, और न कहीं भी प्रतिशत आबादी के हिसाब से पढ़े लिखों की संख्या इतनी अधिक थी। उन दिनों यहां जन सामान्य को शिक्षा देने के लिए मुख्यकर चार प्रकार की संस्थाएँ थीं।

(१)—असंख्य ब्राह्मण आचार्य अपने अपने घरों पर अपने शिष्यों को शिक्षा देते थे । (२)—अनेक मुख्य मुख्य नगरों में उच्च संस्कृत साहित्य की शिक्षा के लिए 'टोल' या विद्यापीठ कायम थीं । (३)—उर्दू और फ़ारसी की शिक्षा के लिए जगह जगह मकतब और मदरस थे, जिनमें लाखों हिन्दू और मुसलमान बालक शिक्षा पाते थे । (४)—इन सब के अतिरिक्त देश के प्रत्येक छोटे से छोटे ग्राम में ग्राम के समस्त बालकों की शिक्षा के लिए कम से कम एक पाठशाला होती थी । जिस समय तक कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने आकर भारत की सहस्रों वर्षों की पुरानी ग्राम पञ्चायतों को नष्ट नहीं कर डाला उस समय तक ग्राम के समस्त बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध करना प्रत्येक ग्राम पञ्चायत अपना आवश्यक कर्तव्य समझती थी और सदैव उसका पालन करती थी ।

इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के प्रसिद्ध सदस्य केर हार्डी ने अपनी पुस्तक 'इण्डिया' में लिखा है—

“मैक्समूलर ने, सरकारी उल्लेखों के आधार पर और एक मिशनरी रिपोर्ट के आधार पर जो बङ्गाल पर अंगरेज़ों का कब्ज़ा होने से पहले वहाँ की शिक्षा की अवस्था के सम्बन्ध में लिखी गई थी, लिखा है कि उस समय बङ्गाल में ८०,००० देशी पाठशालाएँ थीं, अर्थात् सूबे की आबादी के हर चार सौ मनुष्यों पीछे एक पाठशाला मौजूद थी । इतिहास लेखक लडलो अपने 'ब्रिटिश भारत के इतिहास' में लिखता है कि—‘प्रत्येक ऐसे हिन्दू गाँव में, जिसका कि पुराना संगठन अभी तक कायम है, मुझे विश्वास है कि ग्राम तौर पर सब बच्चे लिखना पढ़ना और हिसाब करना जानते हैं;

किन्तु जहाँ कहीं कि हमने ग्राम पञ्चायत का नाश कर दिया है, जैसे बङ्गाल में, वहाँ ग्राम पञ्चायत के साथ साथ गाँव की पाठशाला भी लोप हो गई है ।' '*

प्राचीन भारतीय इतिहास के यूरोपियन विद्वानों में मैक्समूलर प्रामाणिक माना जाता है और लडलो एक प्रसिद्ध इतिहास लेखक था । जो बात जर्मन मैक्समूलर ने बङ्गाल के विषय में कही है उसी का समर्थन अंगरेज़ लडलो ने समस्त भारत के लिए किया है ।

प्राचीन भारत के ग्रामवासियों की शिक्षा के सम्बन्ध में सन् १८२३ की कम्पनी की एक सरकारी रिपोर्ट में प्राचीन भारत में शिक्षा का प्रचार लिखा है—

“शिक्षा की दृष्टि से संसार के किसी भी अन्य देश में किसानों की अवस्था इतनी ऊँची नहीं है जितनी ब्रिटिश भारत के अनेक भागों में ।”†

* “Max Muller, on the strength of official documents and a missionary report concerning education in Bengal prior to the British occupation, asserts that there were then 80,000 native schools in Bengal, or one for every 400 of the population. Ludlow, in his ‘History of British India,’ says that ‘in every Hindoo village which has retained its old form I am assured that the children generally are able to read, write, and cipher, but where we have swept away the village system as in Bengal there the village school has also disappeared.’”—Keir Hardie in his work on India, p. 5.

† “ . . . the peasantry of few other countries would bear a comparison as to their state of education with those of many parts of British India.”—Report of the Select Committee on the Affairs of the East India Company, vol. i, p. 409, published 1832.

यह दशा तो उस समय शिक्षा के विस्तार की थी, अब रही
 शिक्षा देने की प्रणाली। इतिहास से पता चलता
 भारतीय शिक्षा प्रणाली है कि उन्नीसवीं सदी के शुरू में डॉक्टर एण्ड्रूबेल
 नामक एक प्रसिद्ध अंगरेज़ शिक्षा प्रेमी ने इस

देश से इङ्गलिस्तान जाकर वहाँ पर अपने देश के बालकों को
 भारतीय प्रणाली के अनुसार शिक्षा देना शुरू किया। ३ जून सन्
 १८१४ को कम्पनी के डाइरेक्टरों ने बङ्गाल के गवर्नर जनरल के
 नाम एक पत्र भेजा, जिसमें लिखा है—

“शिक्षा का जो तरीका बहुत पुराने समय से भारत में वहाँ के आचार्यों
 के अधीन जारी है उसकी सबसे बड़ी प्रशंसा यही है कि रेवरेण्ड डॉक्टर बेल
 के अधीन, जो मद्रास में पादरी रह चुका है, वही तरीका इस देश (इङ्ग-
 लिस्तान) में भी प्रचलित किया गया है; अब हमारी राष्ट्रीय संस्थाओं में इसी
 तरीके के अनुसार शिक्षा दी जाती है, क्योंकि हमें विश्वास है कि इससे
 भाषा का सिखाना बहुत सरल और सीखना बहुत सुगम हो जाता है।

“कहा जाता है कि हिन्दुओं की इस अत्यन्त प्राचीन और लाभदायक
 संस्था को सत्तनतों के उलट फेर भी कोई हानि नहीं पहुँचा सके X X X।”❀

* “The mode of instruction that from time immemorial has been
 practised under these masters has received the highest tribute of praise by its
 adoption in this country, under the direction of the Reverend Dr. Bell,
 formerly chaplain in Madras; and it is now become the mode by which
 education is conducted in our national establishments, from a conviction of
 the facility it affords in the acquisition of language by simplifying the process
 of instruction.

“ This venerable and benevolent institution of the Hindoos is represen-

आज कल की पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली में जिस चीज़ को “म्यूचुअल ट्यूशन” कहा जाता है वह पश्चिम के देशों ने भारत ही से सीखी थी ।

भारत के जिस जिस प्रान्त में कम्पनी का शासन जमता गया उस उस प्रान्त से ही यह सहस्रों वर्ष की पुरानी कम्पनी के शासन में भारतीय शिक्षा का हास शिक्षा प्रणाली सदा के लिए मिटती चली गई । कम्पनी के शासन से पहले भारत में शिक्षा की अवस्था और कम्पनी का पदार्पण होते ही एक सिरे से उस शिक्षा के सर्वनाश, दोनों का कुछ अनुमान बेलारी ज़िले के अंगरेज़ कलेक्टर ए० डी० कैम्पबेल की सन् १८२३ की एक रिपोर्ट से किया जा सकता है । कैम्पबेल लिखता है—

“जिस व्यवस्था के अनुसार भारत की पाठशालाओं में बच्चों को लिखना सिखाया जाता है और जिस ढङ्ग से कि ऊँचे दर्जे के विद्यार्थी नीचे दर्जे के विद्यार्थियों को शिक्षा देते हैं, और साथ साथ अपना ज्ञान भी पक्का करते रहते हैं, वह समस्त प्रणाली निस्सन्देह प्रशंसनीय है, और इङ्गलिस्तान में उसका जो अनुसरण किया गया है उसके सर्वथा योग्य है ।”

आगे चल कर कम्पनी के शासन में भारतीय शिक्षा की अव-
नति और उसके कारणों को बयान करते हुए कैम्पबेल लिखता है—

“इस समय असंख्य मनुष्य ऐसे हैं जो अपने बच्चों को इस शिक्षा का लाभ नहीं पहुँचा सकते, x x x मुझे कहते हुए दुख होता है कि इसका

ted to have withstood the shock of revolutions”—Letter from the Court of Directors to the Governor-General in council of Bengal ; dated 3rd June, 1814.

कारण यह है कि समस्त देश धीरे धीरे निर्धन होता जा रहा है। हाल में जब से हिन्दोस्तान के बने हुए सूती कपड़ों की जगह इङ्गलिस्तान के बने हुए कपड़ों को इस देश में प्रचलित किया गया है तब से यहाँ के कारीगरों के लिए जीविका निर्वाह के साधन बहुत कम होगए हैं। हमने अपनी बहुत सी पलटनें अपने इलाकों से हटा कर उन देशी राजाओं के दूर दूर के इलाकों में भेज दी हैं, जिनके साथ हमने सन्धियों की हैं, हाल ही में इससे भी नाज की माँग पर बहुत बड़ा असर पड़ा है। देश का धन पुराने समय के देशी दरबारों और देशी कर्मचारियों के हाथों से निकल कर यूरोपियनों के हाथों में चला गया है। देशी दरबार और उनके कर्मचारी उस धन को भारत ही में उदारता के साथ व्यय किया करते थे; इसके विपरीत नए यूरोपियन कर्मचारियों को हमने क़ानून आज़ा दे दी है कि वे अस्थायी तौर पर भी इस धन को भारत में व्यय न करें। ये यूरोपियन कर्मचारी देश के धन को प्रति दिन ढांढो कर बाहर ले जा रहे हैं, इसके कारण भी यह देश दरिद्र होता जा रहा है। सरकारी लगान जिस कड़ाई के साथ वसूल किया जाता है उसमें भी किसी तरह की ढिलाई नहीं की गई, जिससे प्रजा के इस कष्ट में कोई कमी हो सकती। मध्यम श्रेणी और निम्न श्रेणी के अधिकांश लोग अब इस योग्य नहीं रहे कि अपने बच्चों की शिक्षा का खर्च बरदाश्त कर सकें, इसके विपरीत ज्योंही उनके बच्चों के कोमल अङ्ग थोड़ी बहुत मेहनत कर सकने के भी योग्य होते हैं, माता पिता को अपनी ज़िन्दगी की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए उन बच्चों से अब मेहनत मज़दूरी करानी पड़ती है।”

अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी के शुरू में भारत की प्राचीन

सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली के नाश का एक मुख्य कारण यह था कि प्राचीन भारतीय उद्योग धन्धों के सर्वनाश और कम्पनी की लूट और अत्याचारों के कारण देश उस समय तेज़ी के साथ निर्धन होता जा रहा था, और देश के उन करोड़ों नन्हें नन्हें बालकों को जो पहले पाठशालाओं में शिक्षा पाते थे, अब अपना और अपने माँ बाप का पेट भरने के लिए मेहनत मजदूरी में माँ बाप का हाथ बटाना पड़ता था।

और आगे चल कर अपने से पहले की हालत और अपने समय की शिक्षा की हालत की तुलना करते हुए कैम्पबेल लिखता है—

“इस ज़िले की करीब दस लाख आबादी में से इस समय सात हजार बच्चे भी शिक्षा नहीं पा रहे हैं, जिससे पूरी तरह जाहिर है कि शिक्षा में निर्धनता के कारण कितनी अवनति हुई है। बहुत से ग्रामों में, जहाँ पहले पाठशालाएँ मौजूद थीं, वहाँ अब कोई पाठशाला नहीं है, और बहुत से अन्य ग्रामों में जहाँ पहले बड़ी बड़ी पाठशालाएँ थीं वहाँ अब केवल अत्यन्त धनाढ्य लोगों के थोड़े से बालक शिक्षा पाते हैं, दूसरे लोगों के बालक निर्धनता के कारण पाठशाला नहीं जा सकते।

“इस ज़िले की अनेक पाठशालाओं की जिनमें देशी भाषाओं में लिखना, पढ़ना और हिसाब सिखाया जाता है, जैसा कि भारत में सदा से होता रहा है, इस समय यह दशा है। × × × विद्या × × × कभी किसी भी देश में राज दरबार की सहायता के बिना नहीं बढ़ी, और

भारत के इस भाग में विज्ञान का देशी दरबारों की ओर से पहले जो सहायता और उत्तेजना दी जाती थी वह अंगरेज़ी राज के आने के समय से, बहुत दिन हुए, बन्द कर दी गई है।

“इस ज़िले में अब घटते घटते शिक्षा सम्बन्धी ५३३ संस्थाएँ रह गई हैं और मुझे यह कहते लज्जा आती है कि इनमें से किसी एक को भी अब सरकार की ओर से किसी तरह की सहायता नहीं दी जाती।”

इसके बाद प्राचीन भारत में इन असंख्य पाठशालाओं के खर्च की व्यवस्था को बयान करते हुए कैम्पबेल लिखता है—

प्राचीन
पाठशालाओं की
खर्च की
व्यवस्था

“इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुराने समय में, विशेष कर हिन्दुओं के शासन काल में, विद्या प्रचार की सहायता के लिए बहुत बड़ी रकमों और बड़ी बड़ी जागीरों राज की ओर से बँधी हुई थीं × × ×।

“× × × पहले समय में राज की आमदनी का एक बहुत बड़ा हिस्सा विद्या प्रचार को उत्तेजना और उन्नति देने में खर्च किया जाता था, जिससे राज का भी मान बढ़ता था, किन्तु हमारे शासन में यहाँ तक अवनति हुई है कि राज की इस आमदनी से अब उलटा अज्ञान को उन्नति दी जाती है। पहले जो ज़बरदस्त सहायता राज की ओर से विज्ञान को दी जाती थी उसके बन्द हो जाने के कारण अब विज्ञान केवल थोड़े से दानशील व्यक्तियों की अकस्मात उदारता के सहारे उर्यो र्यो कर जीवित है। भारत के इतिहास में विद्या के इस तरह के पतन का दूसरा समय दिखा सकना कठिन है × × ×।”*

* “The economy with which children are taught to write in the native

यह सारी कहानी मद्रास प्रान्त की है। ठीक इसी तरह की कहानी, महाराष्ट्र और बम्बई प्रान्त के विषय में एल्फिन्स्टन ने सन् १८२४ की एक सरकारी रिपोर्ट में बयान किया है, किन्तु उसे दोहराना व्यर्थ है।

schools and the system by which the more advanced scholars are caused to teach the less advanced, and at the same time to confirm their own knowledge, is certainly admirable, and well deserved the imitation it has received in England. . . .

" . . . there are multitudes who can not even avail themselves of the advantages of the system, . . .

"I am sorry to state, that this is ascribable to the gradual but general impoverishment of the country. The means of the manufacturing classes have been of late years greatly diminished by the introduction of our own English manufactures in lieu of the Indian cotton fabrics. The removal of many of our troops from our own territories to the distant frontiers of our newly subsidized allies has also, of late years affected the demand for grain; the transfer of the capital of the country from the native government and their officers, who liberally expended it in India, to Europeans, restricted by law from employing it even temporarily in India, and daily draining it from the land, has likewise tended to this effect, which has not been alleviated by a less rigid enforcement of the revenue due to the state. The greater part of the middling and lower classes of the people are now unable to defray the expenses incident upon the education of their offspring, while their necessities require the assistance of their children as soon as their tender limbs are capable of the smallest labour.

" . . . of nearly a million of souls in this District, not 7,000 are now at school, a proportion which exhibits but too strongly the result above stated. In many villages where formerly there were large schools, there are now none, and in many others where there were large schools, now only a few children of the most opulent are taught, others being unable from poverty to attend, . . .

"Such is the state in this District of the various schools in which

एक और अंगरेज विद्वान वॉल्टर हैमिल्टन ने सन् १८२८ में
सरकारी रिपोर्टों के आधार पर लिखा था—

साहित्यिक
अवनति

“भारतवासियों के अन्दर साहित्य और विज्ञान की
दिन प्रति दिन अवनति होती जा रही है। विद्वानों की
संख्या घटती जा रही है और जो लोग अभी तक विद्याध्ययन करते हैं उनमें
भी अध्ययन के विषय बेहद कम होते जा रहे हैं। दर्शन विज्ञान का पढ़ना
लोगों ने छोड़ ही दिया है ; और सिवाय उन विद्याओं के, जिनका सम्बन्ध
विशेष धार्मिक कर्मकाण्डों या फलित के साथ है, और किसी भी विद्या का
अब लोग अध्ययन नहीं करते। साहित्य की इस अवनति का मुख्य कारण
यह मालूम होता है कि इससे पहले देशी राज में राजा लोग, सरदार लोग

reading, writing and arithmetic are taught in the vernacular dialects of the country, as has been always usual in India, learning, has never flourished in any country except under the encouragement of the ruling power, and the countenance and support once given to science in this part of India has long been withheld.

“Of the 533 institutions for education now existing in this District, I am ashamed to say, not one now derives any support from the State,

“There is no doubt, that in former times, especially under the Hindoo Governments, very large grants, both in money and in land, were issued for the support of learning. . . .

“ considerable alienations of revenue, which formerly did honour to the state by upholding and encouraging learning, have deteriorated under our rule into the means of supporting ignorance ; whilst science, deserted by the powerful aid she formerly received from Government, has often been reduced to beg her scanty and uncertain meal from the chance benevolence of charitable individuals ; and it would be difficult to point out any period in the history of India when she stood more in need ”—
The Report of A. D. Campbell Collector of Bellary, dated 17th August, 1823, from the Report of the Select Committee etc., vol. i, published 1832.

और धनवान लोग सब विद्या प्रचार को उत्तेजना और सहायता दिया करते थे । वे देशो दरबार अब सदा के लिए मिट चुके और अब वह उत्तेजना और सहायता साहित्य को नहीं दी जाती ।”*

सारांश यह कि जो कहानी कैम्पबेल ने मद्रास प्रान्त की बयान की है वही कहानी वास्तव में समस्त ब्रिटिश भारत की थी ।

प्राचीन शिक्षा प्रणाली और शिक्षा संस्थाओं के सर्वनाश के

चार मुख्य कारण गिनाए जा सकते हैं—

भारतीय शिक्षा
के सर्वनाश के
कारण

(१) भारतीय उद्योग धन्धों के नाश और
कम्पनी की लूट से देश की बढ़ती हुई दरिद्रता ।

(२) प्राचीन ग्राम पञ्चायतों का नाश और
उस नाश के कारण लाखों ग्राम पाठशालाओं का अन्त ।

(३) प्राचीन हिन्दू और मुसलमान नरेशों की ओर से शिक्षा
सम्बन्धी संस्थाओं को जो आर्थिक सहायता और जागीरें बँधी
हुई थीं, कम्पनी के राज में उनका छिन जाना । और

(४) नए अंगरेज शासकों की ओर से भारतवासियों की
शिक्षा का विधिवत् विरोध ।

इस चौथे कारण को अधिक विस्तार के साथ बयान करना
अंगरेज शासकों ज़रूरी है । सन् १७५७ से लेकर पूरे सौ वर्ष
की ओर से तक लगातार बहस होती रही कि भारतवासियों
को शिक्षा देना अंगरेजों की सत्ता के लिए
शिक्षा का विरोध हितकर है या अहितकर । शुरू के दिनों में

* Walter Hamilton in 1828, Ibid, vol. i, p. 203.

क़रीब क़रीब सभी अंगरेज़ शासक भारतवासियों को शिक्षा देने के कट्टर विरोधी थे ।

जे० सी० मार्शमैन ने १५ जून सन् १८५३ को पार्लिमेण्ट की सिलेक्ट कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा था —

“भारत में अंगरेज़ी राज के कायम होने के बहुत दिनों बाद तक भारतवासियों को किसी प्रकार की भी शिक्षा देने का प्रबल विरोध किया जाता रहा ।”*

मार्शमैन बयान करता है कि सन् १७६२ में जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लिए नया चार्टर एक्ट पास होने का समय आया तो पार्लिमेण्ट के एक सदस्य विलबरफ़ोर्स ने नए क़ानून में एक धारा इस तरह की जोड़नी चाही जिसका ज़ाहिरा अभिप्राय थोड़े से भारतवासियों की शिक्षा का प्रबन्ध करना था । इस पर पार्लिमेण्ट के सदस्यों और कम्पनी के हिस्सेदारों ने विरोध किया और विलबरफ़ोर्स को अपनी तज़वीज़ वापस ले लेनी पड़ी ।

मार्शमैन लिखता है—

“उस अवसर पर कम्पनी के एक डाइरेक्टर ने कहा कि—‘हम लोग अपनी इसी मूर्खता से अमरीका हाथ से खो बैठे हैं, क्योंकि हमने उस देश में स्कूल और कॉलेज कायम हो जाने दिए, अब फिर भारत के विषय में

* “For a considerable time after the British Government had been established in India, there was great opposition to any system of instruction for the natives”—J. C. Marshman, in his evidence before the Select Committee of the House of Lords appointed to enquire into the affairs of the East India Company, 15th June, 1833.

हमारा उसी मूर्खता को दोहराना ठीक नहीं है।' X X X इसके बीस वर्ष बाद तक यानी सन् १८१३ तक भारतवासियों को शिक्षा देने के विरुद्ध ये ही भाव इंगलिस्तान के शासकों के दिलों में कायम रहे।”*

सन् १८१३ में विलायत के अन्दर सर जॉन मैलकम ने, जा
जाति पॉति से
अंगरेजों को लाभ
उन विशेष अनुभवी नीतिज्ञों में सं था, जिन्होंने
१६ वीं सदी के शुरू में भारत के अन्दर अंगरेज़ी
साम्राज्य को विस्तार दिया, पार्लिमेण्ट की जाँच
कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा—

“ X X X इस समय हमारा साम्राज्य इतनी दूर तक फैला हुआ है कि जो असाधारण ढङ्ग की हुकूमत हमने उस देश में कायम की है उसके धने रहने के लिए केवल एक बात का हमें सहारा है, वह यह कि जो बड़ी बड़ी जातियाँ इस समय अंगरेज़ सरकार के अधीन हैं वे सब एक दूसरे से अलग अलग हैं, और जातियों में भी फिर अनेक जातियाँ और उप जातियाँ हैं; जब तक ये लोग इस तरह एक दूसरे से बटे रहेंगे, तब तक कोई भी बलवा हमारी सत्ता को नहीं हिला सकता। X X X जितना जितना लोगों में एकता पैदा होती जायगी और उनमें वह बल आता जायगा जिससे वे

* “ On that occasion, one of the Directors stated that we had just lost America from our folly, in having allowed the establishment of schools and colleges, and that it would not do for us to repeat the same act of folly in regard to India; . . . For twenty years after that period, down to the year 1813, the same feeling of opposition to the education of the natives continued to prevail among the ruling authorities in this country.”—J. C. Marshman, 15th June, 1853, Ibid.

वर्तमान अंगरेज़ी सरकार की अधीनता को अपने ऊपर से हटा कर फेंक सकें, उतना उतना ही हमारे लिए शासन करना कठिन होता जायगा ।”

इसलिए—

“मेरी राय है कि कोई इस तरह की शिक्षा, जिससे हमारी भारतीय प्रजा के इस समय के जाति पाँति के भेद धीरे धीरे टूटने की सम्भावना हो, या जिसके जरिये उनके दिलों से यूरोपियनों का आदर कम हो, अंगरेज़ी राज के राजनैतिक बल को नहीं बढ़ा सकती × × × ।” ❀

ज़ाहिर है कि सर जॉन मैलकम भारतवासियों को सदा के लिए जाति पाँति और मत मतान्तरों के भेदों में फँसाए रखना, आपस में एक दूसरे से लड़ाए रखना और उन्हें अशिक्षित रखना अंगरेज़ी राज की सलामती के लिए आवश्यक समझता था ।

* “ . . . In the present extended state of our Empire, our security for preserving a power of so extraordinary a nature as that we have established, rests upon the general division of the great communities under the Government, and their sub-division into various castes and tribes; while they continue divided in this manner, no insurrection is likely to shake the stability of our power. . . .

*

*

*

“ . . . we shall always find it difficult to rule in proportion as it (the Indian community) obtains union and possesses the power of throwing off that subjection in which it is now placed to the British Government. ”

“ . . . I do not think that the communication of any knowledge, which tended gradually to do away the subsisting distinctions among our native subjects or to diminish that respect which they entertain for Europeans, could be said to add to the political strength of the English Government. . . . ” —Sir John Malcolm, before the Parliamentary Committee of 1813.

सन् १८१३ में इंगलिस्तान की पार्लिमेण्ट ने जो चार्टर एक्ट

पास किया, उसमें एक धारा यह भी थी कि—

सन् १८१३ की
मंजूरी

“ब्रिटिश भारत की आमदनी की बचत में से
गवर्नर जनरल को इस बात का अधिकार

होगा कि हर साल एक लाख रुपए तक साहित्य की उन्नति और पुनरुज्जीवन के लिए और विद्वान भारतवासियों के प्रोत्साहन के लिए काम में लाए।” किन्तु यह समझना भूल होगी कि यह एक लाख रुपए सालाना की रकम वास्तव में भारतवासियों की शिक्षा के लिए मंजूर की गई थी। इस मंजूरी के साथ साथ जो पत्र डाइरेक्टरों ने ३ जून सन् १८१४ को गवर्नर जनरल के नाम भेजा उसमें साफ लिखा है कि यह रकम “राजनैतिक दृष्टि से भारत के साथ अपने सम्बन्ध को मजबूत रखने के लिए”, “बनारस” और एक दो अन्य स्थानों के “परिडों को देने” के लिए, “अपनी और विचारवान भारतवासियों के हृदय के भावों का पता लगाने” के लिए, “प्राचीन संस्कृत साहित्य का अंगरेज़ी में अनुवाद कराने के लिए,” “संस्कृत पढ़ने की इच्छा रखने वाले अंगरेज़ों को सहायता देने के लिए,” “उस समय की रही सही भारतीय शिक्षा संस्थाओं का पता लगाने के लिए,” और “अपने साम्राज्य के स्थायित्व की दृष्टि से अंगरेज़ों और भारतीय नेताओं में अधिक मेल जोल पैदा करने के उद्देश से” मंजूर की गई है। इसी पत्र में यह भी लिखा है कि इस रकम की मदद से कोई “सार्वजनिक कॉलेज न खोले जावे।”*

* *Affairs of the East India Company*, published 1832, vol. i. pp. 446, 447.

भारतवासियों की शिक्षा की ओर अंगरेज शासकों का विरोध
 इसके बहुत दिनों बाद तक बराबर जारी रहा ।
 लिओनेल स्मिथ सन् १८३१ की जाँच के समय सर जॉन मैलकम
 का डर के बीस वर्ष पहले के विचारों को दोहराते हुए
 मेजर जनरल सर लिओनेल स्मिथ ने कहा—

“शिक्षा का परिणाम यह होगा कि वे सब साम्प्रदायिक और धार्मिक
 पक्षपात, जिनके द्वारा हमने अभी तक मुल्क को वश में रक्खा है—और
 हिन्दू मुसलमानों को एक दूसरे से लड़ाए रक्खा है, इत्यादि—दूर हो जायँगे;
 शिक्षा का परिणाम यह होगा कि इन लोगों के दिमाग खुल जायँगे और
 उन्हें अपनी विशाल शक्ति का पता लग जायगा ।”*

किन्तु १८ वीं शताब्दी के अन्त से ही इस विषय में अंगरेज
 शासकों के विचारों में अन्तर पैदा होना शुरू हो
 अंगरेजी राज के गया । कारण यह था कि धीरे धीरे इंगलिस्तान
 लिए शिक्षा के नीतिज्ञों को भारत के अन्दर दो विशेष
 की आवश्यकता कठिनाइयाँ अनुभव होने लगीं । १—चूँकि शिक्षित
 भारतवासियों की संख्या दिन प्रति दिन घटती जा रही थी, इसलिए
 अंगरेजों को अपने सरकारी महकमों और विशेष कर नई अदालतों
 के लिए योग्य हिन्दू और मुसलमान कर्मचारियों की कमी महसूस

* “The effect of education will be to do away with all the prejudices of sects and religions by which we have hitherto kept the country—the Mussalmans against Hindoos, and so on; the effect of education will be to expand their minds, and show them their vast power.”—Major-General Sir Lionel Smith, K. C. B., the enquiry of 1831.

होने लगी, जिनके बिना कि उन महकमों और अदालतों का चल सकना सर्वथा असम्भव था। और २—उन्हें थोड़े से इस तरह के भारतवासियों की भी आवश्यकता अनुभव होने लगी जिनके ज़रिए शेष भारतीय जनता के हृदय के भावों का पता लगता रहे और जिनके ज़रिए से वे जनता के भावों को अपनी ओर मोड़कर रख सकें।

सन् १८३० की पार्लिमेण्टरी कमेटी की रिपोर्ट में इन दोनों आवश्यकताओं का बार बार जिक्र आता है और साफ़ लिखा है कि कलकत्ते का 'मुसलमानों का मदरसा' और बनारस का 'हिन्दू संस्कृत कॉलेज' दोनों अठारवीं सदी के अन्त में ठीक इसी उद्देश से कायम किए गए थे। इसी उद्देश से सन् १८२१ में पूना का डेकन कॉलेज, सन् १८३५ में कलकत्ते का मेडिकल कॉलेज और सन् १८४७ में रुड़की का इंजीनियरिंग कॉलेज कायम हुए।

डाइरेक्टरों ने ५ सितम्बर सन् १८२७ के पत्र में गवरनर जनरल को लिखा कि इस शिक्षा का धन—"उच्च और मध्यम श्रेणी के उन भारतवासियों के ऊपर व्यय किया जाय, जिनमें से कि आपको अपने शासन के कार्यों के लिए सब से अधिक योग्य देशी एजेंट मिल सकते हैं, और जिनका अपने शेष देशवासियों के ऊपर सबसे अधिक प्रभाव है।"*

* " . . . with the superior and middle classes of the natives, from whom the native agents whom you have occasion to employ, in the functions of Government are most fitly drawn, and whose influence on the rest of their countrymen is the most extensive."—Letter from the Court of Directors to the Governor-General in Council, dated 5th September, 1827, Ibid, p. 490.

इसका मतलब यह है कि बिना योग्य भारतवासियों की सहायता के केवल अंगरेज़ों के बल ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य का चल सकना सर्वथा असम्भव था, और इसीलिए थोड़े बहुत भारतवासियों को किसी न किसी प्रकार की शिक्षा देना भारत के विदेशी शासकों के लिए अनिवार्य हो गया। इस काम के लिए सन् १८१३ वाली एक लाख रुपए सालाना की मंजूरी को सन् १८३३ में बढ़ा कर दस लाख सालाना कर दिया गया, क्योंकि इन बीस वर्ष के अन्दर भारत का बहुत अधिक भाग विदेशी शासन के रङ्ग में रँगा जा चुका था।

सन् १७५७ से लेकर १८५७ तक भारतवासियों की शिक्षा के विषय में अंगरेज़ शासकों के सामने मुख्य प्रश्न केवल यह था कि भारतवासियों को शिक्षा देना साम्राज्य के स्थायित्व की दृष्टि से हितकर है या अहितकर, और यदि हितकर या आवश्यक है तो उन्हें किस प्रकार की शिक्षा देना उचित है।

उस समय अनेक अंगरेज़ नीतिज्ञ भारतवासियों में ईसाई धर्म प्रचार के पक्षपाती थे। इन लोगों को ईसाई धर्म ईसाई धर्म प्रचार ग्रन्थों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराने, इंगलिस्तान से आने वाले पादरियों को सहायता देने और सरकार की ओर से मिशन स्कूलों को आर्थिक मदद करने की आवश्यकता अनुभव हो रही थी। यह भी एक कारण था कि जिससे अनेक

अंगरेज़ भारतवासियों को शिक्षा देने के पक्ष में होगए । सन् १८१३ के बाद की बहसों में इस विषय का बार बार ज़िक्र आता है ।

सन् १८५३ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लिए अन्तिम चार्टर एक्ट पास होने के समय भारतवासियों की शिक्षित भारतवासियों से डर शिक्षा के प्रश्न पर अनेक योग्य और अनुभवी अंगरेज़ नोतिशों और विद्वानों की गवाहियाँ जमा की गईं । इन गवाहियों में से नमूने के तौर पर दोनों पक्षों की एक एक या दो दो गवाहियाँ उद्धृत करना काफी है ।

४ अगस्त सन् १८५३ को मेजर रॉलिंगडसन ने, जो १७ वर्ष तक मद्रास प्रान्त के कमाण्डर-इन-चीफ़ के साथ फ़ारसी अनुवादक रह चुका था और वहाँ की शिक्षा कमेटी का मन्त्री रह चुका था, पार्लिमेण्ट की कमेटी के सामने इस प्रकार गवाही दी—

प्रश्न—आपने यह राय प्रकट की है कि भारतवासियों को शिक्षा देने का नतीजा यह होता है कि वे अंगरेज़ सरकार के विरुद्ध हो जाते हैं, क्या आप यह समझाएँगे कि इसका कारण क्या है, और सरकार की ओर उनकी शत्रुता किस ढङ्ग की और कैसी होती है ?

उत्तर—मेरा अनुभव यह है कि भारतवासियों को ज्यों ज्यों ब्रिटिश भारतीय इतिहास के भीतरी हाल का पता लगता है और आम तौर पर यूरोप के इतिहास का ज्ञान होता है, स्थों स्थों उनके चित्त में यह विचार उत्पन्न होता है कि भारत जैसे एक देश का मुट्ठी भर विदेशियों के क़ब्ज़े में होना एक बहुत बड़ा अन्याय है; इससे स्वभावतः उनके चित्त में प्रायः यह

इच्छा उत्पन्न हो जाती है कि वे अपने देश को इस विदेशी शासन से स्वतन्त्र करने में सहायक हों ; और चूँकि इस विचार को दूर करने वाली कोई बात नहीं होती और न उनमें आज्ञा पालन का भाव ही पक्का होता है, इसलिए ब्रिटिश सरकार की ओर द्रोह का भाव इन लोगों में पैदा हो जाता है ।

× × × मैंने देखा है कि हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों में यह भाव मौजूद है और मुसलमानों में अधिक है । × × × विशेषकर जब ये लोग ब्रिटिश साम्राज्य के रहस्य का जान जाते हैं तो उनके दिलों में असन्तोष का भाव पैदा हो जाता है और आशा जाग उठती है, × × × ।

इसी प्रश्नोत्तर में यह भी साफ सुभाया गया कि यदि शिक्षा के साथ भारतवासियों के दिलों में यह भय उत्पन्न करने का भी प्रयत्न किया जाय कि यदि अंगरेज भारत से चले गए तो उत्तर की अन्य जातियाँ आकर भारत पर शासन करने लगेंगी, या भारत में अराजकता फैल जायगी, तो इसका परिणाम कहाँ तक हितकर होगा ।

अनेक अंगरेजों के विचार मेजर रॉलेण्डसन के विचारों से मिलते हुए थे । किन्तु दूसरों के विचार इसके कुछ विपरीत विचार थे । उनका खयाल था कि अशिक्षित भारतवासी शिक्षित भारतवासियों की अपेक्षा विदेशीय शासन के लिए अधिक खतरनाक होते हैं, और भारतवासियों को केवल पश्चिमी शिक्षा देकर ही उन्हें राष्ट्रीयता

* Sixth Report from the Select Committee on Indian Territories, 1853, pp. 155-57.

के भावों से दूर रक्खा जा सकता है और विदेशी शासन के लिए उपयोगी यन्त्र बनाया जा सकता है। प्रसिद्ध नीतिज्ञों में सर फ्रेडरिक हैलिडे की गवाही, जो बङ्गाल का पहला लेफ्टिनेण्ट गवर्नर हुआ, और मार्शमैन की गवाही इसी अभिप्राय की थी।

एक और महत्वपूर्ण प्रश्न जो १९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ से भारत के उन अंगरेज़ शासकों के सामने उपस्थित था, जो भारतवासियों को शिक्षा देने के पक्ष में थे, वह यह था कि किस प्रकार की शिक्षा देना अधिक उपयोगी होगा। दो भिन्न भिन्न विचारों के लोग उस समय के अंगरेज़ों में मिलते हैं। एक वे जो भारतवासियों को प्राचीन भारतीय साहित्य, भारतीय विज्ञान और संस्कृत, फ़ारसी, अरबी और देशी भाषाएँ पढ़ाने के पक्ष में थे, और दूसरे वे जो उन्हें अंगरेज़ी भाषा, पश्चिमी साहित्य और पश्चिमी विज्ञान की शिक्षा देना अपने लिए अधिक हितकर समझते थे। पहले विचार के लोगों को 'ओरियण्टलिस्ट' और दूसरे विचार के लोगों को 'ऑक्सिडेण्टलिस्ट' कहा जाता है, अनेक वर्षों तक इन दोनों विचार के अंगरेज़ों में खूब वाद विवाद होता रहा। इसी बहस के दिनों में सन् १८३४ में भारत के अन्दर लॉर्ड मैकाले का आगमन हुआ, जिसके चरित्र का थोड़ा सा वर्णन हम पिछले अध्याय में कर आए हैं। मैकाले से पहले करीब १२ वर्ष तक इस प्रश्न के ऊपर अत्यन्त तीव्र वाद विवाद जारी रह चुका था। मैकाले के विचारों का प्रभाव इस प्रश्न पर निर्णायक साबित हुआ। मैकाले

भारतवासियों को प्राचीन भारतीय साहित्य की शिक्षा देने के विरुद्ध और उन्हें अंगरेज़ी भाषा, अंगरेज़ी साहित्य और अंगरेज़ी विज्ञान सिखाने के पक्ष में था। मैकॉले का निर्णय भारतवासियों के लिए हितकर रहा हो या अहितकर, किन्तु मैकॉले का उद्देश केवल यह था कि उच्च श्रेणी के भारतवासियों में राष्ट्रीयता के भावों को उत्पन्न होने से रोका जाय और उन्हें अंगरेज़ी सत्ता के चलाने के लिए उपयोगी यन्त्र बनाया जाय। अपने पक्ष का समर्थन करते हुए मैकॉले ने एक स्थान पर लिखा है—

“हमें भारत में इस तरह की एक श्रेणी पैदा कर देने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए जां कि हमारे और उन करोड़ों भारतवासियों के बीच, जिन पर हम शासन करते हैं, समझाने बुझाने का काम करे। ये लोग ऐसे हाने चाहिए जां कि केवल रक्त और रङ्ग की दृष्टि से हिन्दोस्तानी हों, किन्तु जो अपनी रुचि; भाषा, भावों और विचारों की दृष्टि से अंगरेज़ हों।”*

गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बेरिट्ज़ मैकॉले का बड़ा दोस्त और उसके समान विचारों का था। मैकॉले की इस रिपोर्ट के ऊपर ७ मार्च सन् १८३५ को बेरिट्ज़ ने आज्ञा दे दी कि—

बेरिट्ज़ का
फ़ैसला

“जितना धन शिक्षा के लिए मंजूर किया जाय उसका सबसे अच्छा

* “We must do our best to form a class who may be interpreters between us and the millions whom we govern; a class of persons Indian in blood and color, but English in taste, in opinions, words and intellect,”—Macaulay's Minute of 1835.

उपयोग यही है कि उसे केवल अंगरेज़ी शिक्षा के ऊपर खर्च किया जाय ।”*

मैकॉले के विचारों और उन पर लॉर्ड बेरिंटॉक के फैसले के नतीजे को बयान करते हुए ५ जुलाई सन् १८५३ को प्रसिद्ध इतिहास लेखक प्रोफ़ेसर एच० एच० विलसन ने पार्लिमेण्ट की सिलेक्ट कमेटी के सामने कहा—

“वास्तव में हमने अंगरेज़ी पढ़े लिखों की एक पृथक जाति बना दी है, जिन्हें कि अपने देशवासियों के साथ या तो ज़रा भी सहानुभूति नहीं है और यदि है तो बहुत ही कम ।”†

अंगरेज़ी भाषा और अंगरेज़ी साहित्य की शिक्षा के साथ साथ जहाँ तक हो सके देशी भाषाओं को दबाना भी देशी भाषाओं का दबाना मैकॉले और बेरिंटॉक दोनों का उद्देश था । इतिहास लेखक डॉक्टर डफ़ ने, इस विषय में बेरिंटॉक और मैकॉले की नीति की सराहना करते हुए, तुलना के तौर यह दिखलाते हुए कि जब कभी प्राचीन रोम निवासी किसी देश को विजय करते थे तो उस देश की भाषा और साहित्य को यथा शक्ति दबा कर वहाँ के उच्च श्रेणी के लोगों में रोमन भाषा,

* “ . . . all the funds appropriated for the purposes of education would be best employed on English education alone. ”—Lord Bentinck's Resolution, dated 7th March, 1835.

† “ . . . we created a separate caste of English scholars, who had no longer any sympathy, or very little sympathy with their countrymen ; ”—Prof. H. H. Wilson before the Select Committee of the House of Lords, 5th July, 1863.

रोमन साहित्य और रोमन आचार विचार के प्रचार का प्रयत्न करते थे, साथ ही यह दर्शाते हुए कि यह नीति रोमन साम्राज्य के लिये कितनी हितकर साबित हुई, अन्त में लिखा है—

“X X X मैं यह विचार प्रकट करने का साहस करता हूँ कि भारत के अन्दर अंगरेजी भाषा और अंगरेजी साहित्य को फैलाने और उसे उन्नति देने का लॉर्ड विलियम बेण्टिन्क का कानून X X X भारत के अन्दर अंगरेजी राज के अब तक के इतिहास में कुशल राजनीति की सब से ज़बरदस्त और अपूर्व चाल स्वीकार की जायगी।”^{४४}

डॉक्टर डफ़ ने अपने से पूर्व के एक दूसरे अंगरेज़ विद्वान के विचारों का समर्थन करते हुए लिखा है कि भाषा का प्रभाव इतना ज़बरदस्त होता है कि जिस समय तक भारत के अन्दर देशी नरेशों के साथ अंगरेज़ों का पत्र व्यवहार फ़ारसी भाषा में होता रहेगा, उस समय तक भारतवासियों की भक्ति और उनका प्रेम दिल्ली के सम्राट की ओर बराबर बना रहेगा। लॉर्ड बेण्टिन्क के समय तक देशी नरेशों के साथ कम्पनी का समस्त पत्र व्यवहार फ़ारसी भाषा में हुआ करता था। बेण्टिन्क पहला गवर्नर जनरल था, जिसने यह आज्ञा दे दी और नियम कर दिया कि भविष्य में

* “ I venture to hazard the opinion, that Lord William Bentinck's double act for the encouragement and diffusion of the English language and English literature in the East, the grandest master-stroke of sound policy that has yet characterized the administration of the British Government in India. ”—Dr. Duff, in the Lords' Committee's Second Report on Indian Territories, 1853, p. 409.

समस्त पत्र व्यवहार फ़ारसी के स्थान पर अंगरेज़ी भाषा में हुआ करे ।

इतिहास से पता चलता है कि आयरलैण्ड के अन्दर भी आइरिश भाषा को दबाने और यदि “सम्भव हो तो आइरिश लोगों को अंगरेज़ बना डालने के लिए” * वहाँ की अंगरेज़ सरकार ने समय समय पर अनेक अनोखे क़ानून पास किए ।

यद्यपि सन् १८३५ के बाद से अंगरेज़ शासकों का मुख्य लक्ष्य भारत में अंगरेज़ी शिक्षा के प्रचार की ओर ही लॉर्ड मैकॉले की रिपोर्ट रहा, फिर भी ‘ओरियण्टलिस्ट’ और ‘ऑक्सिडेंटलिस्ट’ दोनों दलों का थोड़ा बहुत विरोध इसके बीस वर्ष बाद तक भी जारी रहा । अंगरेज़ शासक भारत-वासियों को किसी प्रकार की भी शिक्षा देने में बराबर सङ्कोच करते रहे । यहाँ तक कि लॉर्ड मैकॉले की सन् १८३५ की रिपोर्ट २६ वर्ष बाद सन् १८६४ में पहली बार प्रकाशित की गई । किन्तु अन्त में पल्ला अंगरेज़ी शिक्षा के पक्ष वालों का ही भारी रहा ।

भारत के अंगरेज़ शासकों की शिक्षा नीति और वर्तमान अंगरेज़ी शिक्षा के उद्देश को स्पष्ट कर देने के लिए, हम अंगरेज़ी शिक्षा के एक प्रबल और मुख्य पक्षपाती लॉर्ड मैकॉले के बहनोई सर चार्ल्स ट्रेवेलियन के उन विचारों को नीचे उद्धृत करते हैं, जो ट्रेवेलियन ने सन् १८५३ की पार्लिमेण्टरी कमेटी के सामने पेश किए ।

* “for the purpose of changing Irishmen into Englishmen, if that were possible.”—Professor H. Holman in his *English National Education*. p. 50.

सर चार्ल्स ट्रेवेलियन ने सन् १८५३ की पार्लिमेण्टरी कमेटी के सामने “भारत की भिन्न भिन्न शिक्षा प्रणालियों के राजनैतिक परिणाम” शीर्षक एक पत्र लिख कर पेश किया। यह पत्र इतने महत्व का है और ब्रिटिश सरकार की शिक्षानीति का इतना स्पष्ट द्योतक है कि उसके कुछ अंशों का इस स्थान पर उद्धृत करना आवश्यक है। भारत-वासियों को अरबी और संस्कृत पढ़ाने या उनके प्राचीन विचारों और प्राचीन राष्ट्रीय साहित्य के जीवित रखने के विषय में सर चार्ल्स ट्रेवेलियन लिखता है कि इसका परिणाम यह होगा—

“मुसलमानों को सदा यह बात याद आती रहेगी कि हम विधर्मी ईसाइयों ने मुसलमानों के अनेक सुन्दर से सुन्दर प्रदेश उनसे छीन कर अपने अधीन कर लिए हैं, और हिन्दुओं को सदा यह याद रहेगा कि अंगरेज़ लोग इस प्रकार के अपवित्र राक्षस हैं, जिनके साथ किसी तरह का मेल जोल रखना लज्जाजनक और पाप है। हमारे बड़े से बड़े शत्रु भी इससे अधिक और कुछ इच्छा नहीं कर सकते कि हम इस तरह की विद्याओं का प्रचार करें जिनसे मानव स्वभाव के उग्र से उग्र भाव हमारे विरुद्ध भड़क उठें।

“इसके विपरीत अंगरेज़ी साहित्य का प्रभाव अंगरेज़ी राज के लिए हितकर हुए बिना नहीं रह सकता। जो भारतीय युवक हमारे साहित्य द्वारा हमसे भली भाँति परिचित हो जाते हैं, वे हमें विदेशी समझना प्रायः बन्द कर देते हैं। वे हमारे महापुरुषों का जिक्र उसी उत्साह के साथ करते हैं जिस उत्साह के साथ कि हम करते हैं। हमारी ही सी शिक्षा, हमारी ही सी रुचि और हमारे ही से रहन सहन के कारण इन लोगों में हिन्दोस्तानियत

कम हो जाती है और अंगरेज़ियत अधिक आ जाती है। X X X फिर बजाय इसके कि वे हमारे तीव्र विरोधी हों, या यदि हमारे अनुयायी भी हों तो उनके हृदय में हमारी ओर क्रोध भरा रहे, वे हमारे होशियार और उत्साही मददगार बन जाते हैं। X X X फिर वे हमें अपने देश से बाहर निकालने के प्रचण्ड उपाय सांचना बन्द कर देते हैं, X X X।

“X X X जब तक हिन्दोस्तानियों को अपनी पहली स्वाधीनता के विषय में सांचने का मौक़ा मिलता रहेगा, तब तक उनके सामने अपनी दशा सुधारने का एक मात्र उपाय यह रहेगा कि वे अंगरेज़ों को तुरन्त देश से निकाल कर बाहर कर दें। पुराने तर्ज़ के भारतीय देशभक्तों के सामने इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है; X X X उनके राष्ट्रीय विचारों को दूसरी ओर मोड़ने का केवल एक ही उपाय है। वह यह कि उनके अन्दर पाश्चात्य विचार पैदा कर दिए जायँ। जो युवक हमारे स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ते हैं वे उस असभ्य स्वेच्छाशासन को, जिसके अधीन उनके पूर्वज रहा करते थे, घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं, और फिर अपनी राष्ट्रीय संस्थाओं को अंगरेज़ी ढङ्ग पर ढालने की आशा करने लगते हैं। X X X बजाय इसके कि उनके दिलों में यही विचार सब से ऊपर हो कि हम अंगरेज़ों को निकाल कर समुद्र में फेंक दें, वे इसके विपरीत अब उन्नति का कोई ऐसा विचार तक नहीं कर सकते जो उनके ऊपर अंगरेज़ी राज को रिबट लगा कर और भी अधिक पक्का न कर दे, और जिसके द्वारा वे अंगरेज़ों की शिक्षा और अंगरेज़ों की रक्षा पर सर्वथा निर्भर न हो जायँ। X X X

X

X

X

“X X X हमारे पास उपाय केवल यह है कि हम भारतवासियों को

यूरोपियन ढंग की उन्नति में लगा दें, X X X फिर पुराने ढंग पर भारत को स्वाधीन करने की इच्छा ही उनमें से जाती रहेगी और उनका लक्ष्य ही यह न रह जायगा। देश में अचानक राजक्रान्ति फिर असम्भव हो जायगी और हमारे लिए भारत पर अपना साम्राज्य क्रायम रखना बहुत काल के लिए असन्दिग्ध हो जायगा। X X X भारतवासी फिर हमारे विरुद्ध विद्रोह न करेंगे X X X फिर उनके राष्ट्रीय प्रयत्न यूरोपियन शिक्षा प्राप्त करने और उसे फैलाने और अपने यहाँ यूरोपियन संस्थाएँ क्रायम करने में ही पूरी तरह लगे रहेंगे, जिससे हमें कोई हानि न हो पाएगी। शिक्षित भारतवासी X X X स्वभावतः हमसे चिपटे रहेंगे। X X X हमारी समस्त प्रजा में किसी भी श्रेणी के लोगों के लिए हमारा अस्तित्व इतना सर्वथा आवश्यक नहीं है जितना उन लोगों के लिए, जिनके विचार अंगरेजी सौंचे में ढाले गए हैं। ये लोग शुद्ध भारतीय राज के काम के ही नहीं रह जाते; यदि जल्दी से देश में स्वदेशी राज क्रायम हो जाय तो उन्हें उससे हर प्रकार का भय रहता है; X X X।

“X X X मुझे आशा है कि थोड़े ही दिनों में भारतवासियों का सम्बन्ध हमारे साथ वैसा ही हो जायगा जैसा किसी समय हमारा रोमन लोगों के साथ था। रोमन विद्वान टैसीटस लिखता है कि जूलियस ऐग्रीकोला की (जो ईसा से ७८ वर्ष बाद इज़लिस्तान का रोमन गवर्नर नियुक्त हुआ था और जिसने उस देश में रोमन साम्राज्य की नीवों को पक्का किया) यह नीति थी कि बड़े बड़े अंगरेजों के लड़कों को रोमन साहित्य और रोमन विज्ञान की शिक्षा दी जाय और उनमें रोमन सभ्यता के ऐश आराम की रुचि पैदा कर दी जाय। हम सब जानते हैं कि जूलियस

ऐग्रीकोला की यह नीति कितनी सफल साबित हुई। यहाँ तक कि जो अंगरेज़ पहले रोमन लोगों के कट्टर शत्रु थे वे शीघ्र ही उनके विश्वासपात्र और उनके वफ़ादार मित्र बन गये; और उन अंगरेज़ों के पूर्वजों ने जितने प्रयत्न अपने देश पर रोमन लोगों के हमले को रोकने के लिए किए थे उससे कहीं अधिक ज़ोरदार प्रयत्न अब उनके वंशज रोमन लोगों को अपने यहाँ क़ायम रखने के लिए करने लगे। हमारे पास रोमन लोगों से कहीं अधिक बढ़ कर उपाय मौजूद हैं, इसलिए हमारे लिए यह शर्म की बात होगी यदि हम भी रोमन लोगों की तरह भारतवासियों के चित्तों में यह भय उत्पन्न न कर दें कि यदि हम जल्दी से देश से निकल गए तो तुम लोगों पर भयङ्कर आपत्ति आ जायगी। X X X

X

X

X

“ये विचार मैंने केवल अपने दिमाग़ से सोच कर ही नहीं निकाले, वरन् स्वयं अनुभव करके और देख भाल कर मुझे इन नतीजों पर पहुँचना पड़ा। मैंने कई वर्ष हिन्दोस्तान के ऐसे हिस्सों में बिताए जहाँ हमारा राज अभी नया नया जमा था, जहाँ पर कि हमने लोगों के भावों को दूसरी ओर मोड़ने की अभी कोई कोशिश भी नहीं की थी, और जहाँ पर कि उनके राष्ट्रीय विचारों में अभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। उन प्रान्तों में छोटे और बड़े, धनी और दरिद्र, सब लोगों के सामने केवल अपनी राजनैतिक दशा सुधारने की ही एक मात्र चिन्ता थी। उच्च श्रेणी के लोगों के दिलों में यह आशा बनी हुई थी कि हम फिर से अपने प्राचीन प्रभुत्व को प्राप्त कर लें; और निम्न श्रेणी के लोगों में यह आशा बनी हुई थी कि यदि देशी राज फिर से स्थापित हो गया तो धन और वैभव प्राप्त करने के

मार्ग हमारे लिए फिर से खुल जायेंगे। जिन समझदार भारतवासियों को औरों की अपेक्षा हमसे अधिक प्रेम था उन्हें भी अपनी क़ौम की पतित अवस्था को सुधारने का इसके सिवा और कोई उपाय न सूझता था कि अंगरेज़ों को तुरन्त देश से निकाल कर बाहर कर दिया जाय। इसके बाद मैं कुछ वर्ष बङ्गाल में रहा। वहाँ मैंने शिक्षित भारतवासियों में बिल्कुल दूसरी ही तरह के विचार देखे। अंगरेज़ों के गले काटने का विचार करने के स्थान पर, वे लोग अंगरेज़ों के साथ जूरी बन कर अदालतों में बैठने या बेञ्च मैजिस्ट्रेट बनने की आकांक्षाएँ कर रहे थे। × × × ”

* “ . . . would be perpetually reminding the Mohammadans that we are infidel usurpers of some of the fairest realms of the faithful, and the Hindoos, that we are unclean beasts, with whom it is a sin and a shame to have any friendly intercourse. Our bitterest enemies could not desire more than that we should propagate systems of learning which excite the strongest feelings of human nature against ourselves.

“ The spirit of English literature, on the other hand, can not but be favourable to the English connection. Familiarly acquainted with us by means of our literature, the Indian youth almost cease to regard us as foreigners. They speak of our great men with the same enthusiasm as we do. Educated in the same way, interested in the same objects, engaged in the same pursuits with ourselves, they become more English than Hindoos, . . . they cease to think of violent opponents, or sullen conformists, they are converted into zealous and intelligent co-operators with us, . . . they cease to think of violent remedies, . . .

“ . . . As long as the natives are left to brood over their former independence, their sole specific for improving their condition is, the immediate and total expulsion of the English. A native patriot of the old school has no notion of anything beyond this; . . . It is only by the infusion of European ideas, that a new direction can be given to the national views. The youngmen, brought up at our seminaries, turn with contempt from the barbarous despotism under which their ancestors groaned, to the prospect

सर चार्ल्स ट्रेवेलियन के पूर्वोक्त पत्र के विषय में पार्लिमेण्ट की कमेटी के सदस्यों और ट्रेवेलियन में कई दिनों तक प्रश्नोत्तर होता रहा, जिसमें ट्रेवेलियन ने और अधिक स्पष्टता के साथ अपने विचारों को दोहराया और उनका समर्थन किया। इस प्रश्नोत्तर हो में २३ जून सन् १८५३ को ट्रेवेलियन ने कमेटी के सामने बयान किया—

of improving their national institution on the English model. . . . So far from having the idea of driving the English into the sea uppermost in their minds, they have no notion of any improvement but such as rivets their connection with the English, and makes them dependent on English protection and instruction. . . .

* * *

“The only means at our disposal . . . is, to set the natives on a process of European improvement, to which they are already sufficiently inclined. They will then cease to desire and aim at independence on the old Indian footing. A sudden change will then be impossible; and a long continuance of our present connection with India will even be assured to us. . . . The natives will not rise against us, The national activity will be fully and harmlessly employed in acquiring and diffusing European knowledge, and naturalising European institutions. The educated classes, . . . will naturally cling to us. . . . There is no class of our subjects to whom we are so thoroughly necessary as those whose opinions have been cast in the English mold; they are spoiled for a purely native regime; they have everything to fear from the premature establishment of a native Government; . . .

“ The Indians will, I hope, soon stand in the same position towards us in which we once stood towards the Romans. Tacitus informs us, that it was the policy of Julius Agricola to instruct the sons of the leading men among the Britons in the literature and science of Rome and to give them a taste for the refinements of Roman civilization. We all know

“अपने यहाँ की शुद्ध स्वदेशी पद्धति के अनुसार मुसलमान लोग हमें ‘काफ़िर’ समझते हैं, जिन्होंने कि इसलाम की कई सर्वोत्तम बादशाहतें मुसलमानों से छीन ली हैं, × × × उसी प्राचीन स्वदेशी विचार के अनुसार हिन्दू हमें ‘ग्लेच्छ’ समझते हैं, अर्थात् इस तरह के अपवित्र विधर्मी जिनके साथ किसी तरह का भी सामाजिक सम्बन्ध नहीं रखा जा सकता; और वे सब के सब मिल कर अर्थात् हिन्दू और मुसलमान दोनों, हमें इस तरह के

how well this plan answered. From being obstinate enemies, the Britons soon became attached and confiding friends; and they made more strenuous efforts to retain the Romans, than their ancestors had done to resist their invasion. It will be a shame to us if, with our greatly superior advantages, we also do not make our premature departure be dreaded as a calamity. . .

*

*

*

“These views were not worked out by reflection, but were forced on me by actual observation and experience. I passed some years in parts of India, where owing to the comparative novelty of our rule and to the absence of any attempt to alter the current of native feeling, the national habits of thinking remained unchanged. There high and low, rich and poor, had only one idea of improving their political condition. The upper classes lived upon the prospect of regaining their former pre-eminence; and the lower, upon that of having the avenues to wealth and distinction reopened to them by the reestablishment of a native government. Even sensible and comparatively well-affected natives had no notion that there was any remedy for the existing depressed state of their nation except the sudden and absolute expulsion of the English. After that, I resided for some years in Bengal, and there I found quite another set of ideas prevalent among the educated natives. Instead of thinking of cutting the throats of the English, they were aspiring to sit with them on the grand jury or on the bench of magistrates. . . .”—A paper on The political tendency of the different systems of education in use in India, by Sir Charles, E. Trevelyan, submitted to the Parliamentary Committee of 1853.

आक्रामक विदेशी समझते हैं जिन्होंने उनका देश उनसे छीन लिया है और उनके लिए धन और मान प्राप्त करने के समस्त मार्ग बन्द कर दिए हैं। यूरोपियन शिक्षा देने का नतीजा यह होता है कि भारतवासियों के विचार एक बिलकुल दूसरी ही ओर मुड़ जाते हैं। पाश्चात्य शिक्षा पाए हुए युवक स्वाधीनता के लिए प्रयत्न करना बन्द कर देते हैं X X X वे फिर हमें अपने शत्रु और राज्यापहारी नहीं समझते, बल्कि हमें अपने मित्र, अपने मददगार और बलवान और उपकारशील मनुष्य समझने लगते हैं, X X X वे यह भी समझने लगते हैं कि भारतवासी अपने देश के पुनरुज्जीवन के लिए जो कुछ इच्छा भी कर सकते हैं वह धीरे धीरे अंगरेजों ही के संरक्षण में सम्भव हो सकती है। यदि राजक्रान्ति के पुराने देशी विचार कायम रहे तो सम्भव है, कभी न कभी एक दिन के अन्दर हमारा अस्तित्व भारत से मिट जाय। वास्तव में जो लोग इस ढंग से भारत की उन्नति की आशा कर रहे हैं वे इस लक्ष्य को सामने रख कर हमारे विरुद्ध लगातार षड्यन्त्र और योजनाएँ रचते रहते हैं। इसके विपरीत नई और उन्नत पद्धति के अनुसार विचार करने वाले भारतवासी यह समझते हैं कि उनका उद्देश बहुत धीरे धीरे पूरा होगा और उन्हें अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचते पहुँचते सम्भव है युग बीत जायँ।”

जाँच कमेटी के अध्यक्ष ने ट्रेवेलियन से और अधिक स्पष्ट शब्दों

में पूछा कि आप की तजवीज़ का अन्तिम लक्ष्य

भारत की
पराधीनता को
विरथायी करना

भारत और इङ्गलिस्तान के राजनैतिक सम्बन्ध को तोड़ना है या उसे सदा के लिए कायम रखना है? इस पर ट्रेवेलियन ने फिर उत्तर दिया—

“ × × × मुझे विश्वास है कि भारतवासियों को शिक्षा देने × × × का अन्तिम परिणाम यह होगा कि भारत और इंगलिस्तान का पृथक् हो सकना दीर्घ और अनन्त काल के लिए टल जायगा, × × × यदि इसके विरुद्ध नीति का अनुसरण किया गया × × × तो नतीजा यह होगा कि किसी भी समय हम भारत से निकाले जा सकते हैं, और निस्सन्देह बहुत जल्दी और बड़ी ज़िदत के साथ निकाल दिए जायेंगे । × × ×

×

×

×

“मैं एक ऐसा रास्ता बता रहा हूँ जो हमारे राज के स्थायित्व के लिए सबसे अधिक हितकर होगा । अनेक वर्षों तक खूब अच्छी तरह सोच समझ कर मैंने ये विचार क्रायम किए हैं । मुझे विश्वास है कि मैं इस विषय को पूरी तरह समझता हूँ । × × × मैं एक परिचित उदाहरण आपके सामने पेश करता हूँ । मैं बारह वर्ष भारत में रहा । इनमें से पहले ६ वर्ष मैंने उत्तर भारत में गुज़ारे । मेरा मुख्य स्थान दिल्ली था । शेष छै वर्ष मैंने कलकत्ते में बिताए । जहाँ पर मैंने पहले छै वर्ष गुज़ारे वहाँ पर पुराने शुद्ध देशी विचारों का राज था, वहाँ पर लगातार युद्ध और युद्धों की ही अफ़वाहें सुनने में आती थीं । उत्तर भारत में भारतवासियों की देशभक्ति केवल एक ही रूप धारण करती थी, वे हमारे विरुद्ध साज़िशें कर रहे थे, हमारे विरुद्ध विविध शक्तियों को मिलाने की तजवीज़ें सोच रहे थे, इत्यादि । इसके बाद मैं कलकत्ते आया । वहाँ मैंने बिलकुल दूसरी हालत देखी । वहाँ पर लोगों का लक्ष्य था—स्वतन्त्र अख़बार निकालना, ग्युनिसिपैलिटीयों क्रायम करना, अंगरेजी शिक्षा फैलाना, अधिकाधिक हिन्दोस्तानियों को सरकारी नौकरियाँ दिलवाना; और इसी तरह की और अनेक बातें ।”

इस पर फिर लॉर्ड मॉण्टीगल ने ट्रेवेलियन से पूछा—

“अब अनुमान कीजिए कि इन दोनों में से एक मार्ग का अनुसरण किया जाय; पहला यह कि भारतवासियों को शिक्षा देने और नौकरियाँ देने का विचार छोड़ दिया जाय, और दूसरा यह कि उन्हें अधिक शिक्षा दी जाय और उचित अहतियात के साथ उन्हें अधिकाधिक नौकरियाँ दी जायँ । आपकी राय में इन दोनों मार्गों में से किस मार्ग पर चलने से हिन्दोस्तान और इङ्गलिस्तान का सम्बन्ध अधिक से अधिक काल तक क्रायम रह सकता है ?”

ट्रेवेलियन ने उत्तर दिया—

“निस्सन्देह शिक्षा को बढ़ाने और भारतवासियों को अधिकाधिक नौकरियाँ देने से; मुझे इस बात में किसी प्रकार का ज़रा सा भी सन्देह नहीं है ।”❀

* “According to the unmitigated native system the Mohammadans regard us as *Kafirs*, as infidel usurpers of some of the finest realms of Islam, . . . According to the same original native views, the Hindoos regard us as *Mlechhas*, that is, impure outcasts with whom no communion ought to be held; and they all of them, both Hindoo and Mohammadan, regard us as usurping foreigners, who have taken their country from them, and exclude them from the avenues to wealth and distinction. The effect of a training in European learning is to give an entirely new turn to the native mind. The young men educated in this way cease to strive after independence. . . They cease to regard us as enemies and usurpers, and they look upon us as friends and patrons, and powerful beneficent persons, under whose protection all they have most at heart for the regeneration of their country will gradually be worked out. According to the original native view of political change, we might be swept off the face of India in a day, and, as a matter of fact, those who look for the improvement of India according to

सर चार्ल्स ट्रेवेलियन या उस विचार के अन्य अंगरेज शासकों के बयानों से अधिक वाक्य उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं है। निस्सन्देह ठीक यही विचार बेण्टिन्क और मैकाले जैसों के थे। भारत के अन्दर वर्तमान अंगरेजी शिक्षा के प्रचार का एक मात्र उद्देश राजनैतिक था और वह उद्देश यह था कि भारत के ऊपर इङ्गलिस्तान के राजनैतिक प्रभुत्व को अनन्त काल तक के लिए कायम रखा जाय।

this model are continually meditating on plots and conspiracies with that object; whereas, according to new and improved system, the object must be worked out by very gradual steps, and ages may elapse before the ultimate end will be attained, . . .

*

*

*

“ Now my belief is, that *the ultimate result of the policy of improving and educating India will be, to postpone the separation for a long indefinite period*, Whereas I conceive that the result of the opposite policy may lead to a separation at any time, and must lead to it at a much earlier period and under much more disadvantageous circumstances . .

*

*

*

“I am recommending the course which, according to my most deliberate view which I have held for a great many years, founded, I believe, on a full knowledge of the subject, will be most conducive to the continuance of our dominion, I may mention, as a familiar illustration, that I was 12 years in India, and that the first six years were spent up the country, with Delhi for my headquarters, and the other six at Calcutta. The first six years represent the old regime of pure native ideas, and there were continual wars and rumours of wars. The only form which native patriotism assumed up the country was plotting against us, and meditating combinations against us and so forth. Then I came to Calcutta: and there I found quite a new state of things. The object there was to have a free press, to have municipal

सन् १८५३ की तहकीकात के बाद कम्पनी के डाइरेक्टरों ने १६ जुलाई सन् १८५४ को गवरनर जनरल लॉर्ड एजूकेशन डिसपैच डलहौज़ी के नाम वह प्रसिद्ध खरीता भेजा जो सन् १८५४ के 'एजूकेशन डिसपैच' के नाम से प्रसिद्ध है, और जिसे 'बुड्स डिसपैच' भी कहते हैं, क्योंकि सर चार्ल्स बुड उस समय कम्पनी के 'बोर्ड ऑफ़ कण्ट्रोल' का प्रेसीडेण्ट था। बोर्ड ऑफ़ कण्ट्रोल के प्रेसीडेण्ट का पद आज कल के भारत मन्त्री के पद के समान था।

इस पत्र में डाइरेक्टरों ने अपनी भारत हितैषिता की काफी डोंग हाँकी है, किन्तु पत्र में यह भी लिखा है कि शिक्षा की इस नई योजना का उद्देश "शासन के हर महकमे के लिए आपको विश्वसनीय और होशियार नौकर दिलवाना है" और इसका एक उद्देश इस बात को "पक्का कर लेना है कि इङ्गलिस्तान के उद्योग धन्धों के लिए जिन अनेक पदार्थों की आवश्यकता होती है और

institutions, to promote English education and the employments of the Natives, and various things of that sort "

"6724, Lord Monteagle of Brandon. Then, supposing one of two courses to be taken, either the abandonment of the education and employment of the Natives, or an extension, of education, or an extension, with due precaution, of the employment of the Natives, which of those two courses, in your judgment, will lead to the longest possible continuance of the connexion of India with England ?"

"Decidedly the extension of education and the employment of the Natives ; I entertain no doubt whatever upon the question. "—Sir Charles E. Trevelyan, before the Parliamentary Committee of 1853.

जिनकी इङ्गलिस्तान की हर श्रेणी के लोगों में खूब खपत होती है वे सब पदार्थ अधिक परिमाण में और अधिक निश्चिन्तता के साथ सदा इङ्गलिस्तान पहुँचते रहें, और इसके साथ ही इङ्गलिस्तान के बने हुए माल के लिए भारत में अनन्त माँग बनी रहे।”*

सन् १७५७ से लेकर १८५४ तक करीब १०० वर्ष के अनुभव और परामर्श के बाद इङ्गलिस्तान के नीतिज्ञों को इस बात का विश्वास हुआ कि थोड़े से भारत-वासियों को अंगरेजी शिक्षा देना इस देश में अंगरेजी साम्राज्य को कायम रखने के लिए आवश्यक है। किन्तु इस पर भी ये लोग इतने बड़े प्रयोग के लिए एकाएक साहस न कर सके। ट्रेवेलियन ने अपने पत्र और बयान दोनों में उन्हें साफ आगाह कर दिया था कि अशिक्षित या अंगरेजी शिक्षा से वञ्चित भारतवासियों के दिलों में अपनी पराधीनता के विरुद्ध गहरा असन्तोष भीतर ही भीतर भड़कता रहता था, जिसका विदेशी शासकों को पता तक नहीं चल सकता था। यह स्थिति अंगरेजों के लिए बेहद खतरनाक थी। ट्रेवेलियन के बयान में दिल्ली और उत्तर भारत के अन्दर सन् १८५७ से दस वर्ष पूर्व से क्रान्ति की गुप्त तैयारियों और सम्भावनाओं की ओर साफ सङ्केत मिलता

* “ . . . enabling you to obtain the services of intelligent and trustworthy persons in every department of Government ; ”— Para 72 and

“ . . . secure to us a larger and more certain supply of many articles necessary for our manufactures and extensively consumed by all classes of our population as well as an almost in-exhaustible demand for the produce of British labour. ”—Para 4, *The Education Despatch of 1854*.

है। ट्रेवेलियन की आशङ्काएँ बहुत शीघ्र सच्ची साबित हुईं। सन् १८५७ की क्रान्ति ने एक बार इस देश के अन्दर ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ों को बुरी तरह हिला दिया।

अंगरेज शासकों को अब ट्रेवेलियन, मैकॉले जैसों की नीतिज्ञता और दूरदर्शिता में कोई सन्देह न रहा। उनका
सरकारी
विश्वविद्यालय बताया हुआ उपाय ही इस देश में अंगरेजी राज को चिरस्थायी करने का एक मात्र उपाय

था। लॉर्ड कैनिङ्ग उस समय भारत का गवर्नर जनरल था। ठीक सन् १८५७ में कलकत्ते, बम्बई और मद्रास के अन्दर सरकारी विश्वविद्यालय कायम करने के लिए क़ानून पास किया गया। सन् १८५६ में इङ्गलिस्तान के प्रधान मन्त्री ने सन् १८५४ के पत्र को फिर से दोहरा कर पका किया।

सन् १८५४ का यह मशहूर ख़रीता ही भारत की आजकल की अङ्गरेजी शिक्षा प्रणाली और अंगरेज शासकों की शिक्षा नीति दोनों का उद्गम स्थान है। ब्रिटिश सरकार का वर्तमान शिक्षा विभाग इसी पत्र का नतीजा है।

दिल्ली कॉलेज के शुरू के विद्यार्थी, सर चार्ल्स ट्रेवेलियन के
पटु शिष्य और प्रथम अफ़ग़ान युद्ध में अंगरेजों
के परम सहायक, परिडत मोहनलाल से लेकर
आज तक के अधिकांश अंगरेजी शिक्षा पाए हुए
भारतवासियों के जीवन, उनके रहन सहन और
उनके चरित्र से स्पष्ट है कि लॉर्ड मैकॉले और सर चार्ल्स ट्रेवेलियन

जैसों की नीति कितनी दूरदर्शिता की थी । नतीजा यह कि करीब डेढ़ सौ वर्ष पूर्व तक जो देश संसार के शिक्षित देशों की अग्रतम श्रेणी में गिना जाता था, वह डेढ़ सौ वर्ष के विदेशी शासन के बाद अब संसार के सभ्य कहलाने वाले देशों में, शिक्षा की दृष्टि से, सबसे अधिक पिछड़ा हुआ है । जिस देश में प्रायः प्रत्येक मनुष्य लिखना पढ़ना और हिसाब करना जानता था, वहाँ अब करीब ६४ प्रतिशत अशिक्षित हैं और थोड़े से अंगरेज़ी शिक्षा पाए हुए लोग अपने शेष देशवासियों के सुख दुख की ओर से उदासीन, सच्ची राष्ट्रीयता के भावों से कोसों दूर, विदेशी सत्ता के निर्लज्ज पृष्ठपोषक बने हुए हैं ।



सैंतीसवाँ अध्याय

पहला अफ़ग़ान युद्ध

लॉर्ड बेरिङ्ग के बाद मार्च सन् १८३५ से मार्च सन् १८३६ तक सर चार्ल्स मेटकॉफ़ ने गवरनर जनरल का लॉर्ड ऑकलैंड काम किया ।

इस बीच इङ्गलिस्तान के शासकों ने प्रसिद्ध अंगरेज़ नीतिज्ञ एलफ़िन्सटन को, जिसके कृत्यों का ज़िक्र नागपुर और पूना दरबारों के सम्बन्ध में ऊपर किया जा चुका है, पेशवा राज का अन्त कर देने के इनाम में भारत की गवरनर जनरली के पद पर नियुक्त करना चाहा । एलफ़िन्सटन कुछ समय तक बम्बई का गवरनर रह चुका था । किन्तु कहा जाता है, स्वास्थ्य ख़राब होने के कारण वह इस समय अपने मालिकों की इच्छा को पूरा न कर सका ।

अन्त में सन् १८३६ में लॉर्ड बेरिङ्क की राय से लॉर्ड आँकलैण्ड को गवर्नर जनरल नियुक्त करके भारत भेजा गया ।

लॉर्ड बेरिङ्क के समय में सिन्धु नदी की जो सरवे महाराजा रणजीतसिंह को उपहार भेजने के बहाने की गई थी उसके गुल अब अफ़ग़ान युद्ध के रूप में आकर खिले । इस दृष्टि से लॉर्ड आँकलैण्ड का शासन काल ब्रिटिश भारतीय इतिहास में एक विशेष सीमा चिन्ह है । इस शासन काल में ही ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य की 'वैज्ञानिक सरहद' (साइण्टिफ़िक फ़ण्टीयर) खोजने का प्रयत्न शुरू हुआ; जिसके फल रूप धीरे धीरे सिन्ध, पञ्जाब, बलूचिस्तान, चित्तूराल और उस समय के अफ़ग़ानिस्तान के कुछ भाग को अपनी स्वाधीनता खोनी पड़ी ।

लॉर्ड आँकलैण्ड के समय में दोस्तमोहम्मद खाँ अफ़ग़ानिस्तान का बादशाह था । उससे पहले का बादशाह शाहशुजा उन दिनों लुधियाने में अंगरेज़ों का मेहमान था ।

सिन्धु नदी की सरवे करने और महाराजा रणजीतसिंह को बादशाह विलियम की ओर से घोड़े और गाड़ी बर्न्स की मध्य एशिया की यात्रा भेंट करने का कार्य एक चतुर अंगरेज़ लेफ़्टिनेण्ट बर्न्स के सुपुर्द था । इन उपहारों को रणजीत सिंह की नज़र करने के बाद बर्न्स को सन् १८३२ में मध्य एशिया की ओर भेजा गया । कारण यह बताया गया कि चूँकि अंगरेज़ों को रूस के हमले का डर है, इसलिए भारत और मध्य एशिया के

बीच की ताक़तों को कम्पनी की ओर करने के लिए बर्न्स को भेजा जा रहा है। बर्न्स के साथ एक और अंगरेज़ डाक्टर गैरार्ड, एक काशमीरी परिडत मुन्शी मोहनलाल और एक मुसलमान सरवेयर मोहम्मदअली भी थे। यह परिडत मोहनलाल अत्यन्त चालाक और दिल्ली कॉलेज के शुरू के विद्यार्थियों में से था। ये लोग सब से पहले अफ़ग़ानिस्तान पहुँचे, अमीर दोस्तमोहम्मद खाँ ने इनकी ख़ूब खातिर की। उसके बाद एक साल तक मध्य एशिया में घूमने के बाद सन् १८३३ में ये लोग अनेक पत्रों, मान चित्रों आदि सहित भारत लौट आए। भारत और इज़लिस्तान दोनों में बर्न्स की बहुत बड़ी इज़्ज़त हुई। बर्न्स की इस यात्रा ने ही पहले अफ़ग़ान युद्ध की बुनियाद डाली। बर्न्स के भारत लौटने के कुछ दिनों बाद लॉर्ड आँकलैण्ड ने गवरनर जनरली का पद सँभाला।

अंगरेज़ बहुत दिनों से अफ़ग़ानिस्तान तक अपने पैर फैलाने के लिए लालायित थे। रूस का डर अधिकतर केवल बर्न्स का व्यापारी मिशन एक बहाना था। सन् १८३६ के अन्त में बर्न्स को दूसरी बार 'व्यापारी मिशन' (कॉमर्शियल मिशन) पर काबुल भेजा गया। इतिहास लेखक सर जॉन के इस मिशन के सम्बन्ध में लिखता है—

“पूर्व की परिभाषा में 'व्यापार' केवल 'देशविजय' का दूसरा नाम है। X X X और यह व्यापारी मिशन गम्भीर राजनैतिक कुचक्रों को अपने भीतर छिपाए रखने का एक कपट वेश था।”*

* “Commerce, in the vocabulary of the East, is only another name for

निस्सन्देह 'पूर्व' का अर्थ यहाँ पर 'पूर्वी देशों के साथ 'पश्चिमी कौमों के सम्बन्ध' का है।

अंगरेज़ों के इस व्यापारी मिशन ने २० सितम्बर सन् १८३७ को काबुल में प्रवेश किया। भोले अफ़ग़ान बादशाह ने बड़े उत्साह के साथ उसका स्वागत किया। मिशन का एक उद्देश्य यह था कि दोस्तमोहम्मद खाँ को रूस के विरुद्ध अंगरेज़ों के पक्ष में कर लिया जाय। किन्तु यह उद्देश्य पूरा न हो सका और वर्न्स और उसके साथियों का असफल भारत लौट आना पड़ा।

इस असफलता का कारण यह था कि अफ़ग़ानिस्तान का कुछ पूर्वी इलाक़ा, खास कर पेशावर का ज़रखेज़ ज़िला महाराजा रणजीतसिंह ने अफ़ग़ानिस्तान से छीन कर अपने अधीन कर रक्खा था। दोस्तमोहम्मद की माँग मोहम्मद खाँ ने कहा कि यदि अंगरेज़ रूस के विरुद्ध अफ़ग़ानिस्तान की मदद चाहते हैं तो इसके बदले में वे अफ़ग़ानिस्तान का पूर्वी इलाक़ा रणजीतसिंह से वापस लेने में मुझे मदद दें। दोस्तमोहम्मद खाँ की माँग बेजा न थी। किन्तु अंगरेज़ों की नीति उस समय अफ़ग़ानिस्तान को अधिक मज़बूत करने की न थी। दोस्तमोहम्मद खाँ एक योग्य और बलवान शासक था। अंगरेज़ बहुत दिनों पहले से अफ़ग़ानिस्तान के स्वाधीन अस्तित्व को नष्ट कर देने की फ़िक्र में थे। शाहशुजा उनके हाथों में एक खासा

conquest . . . and this commercial mission became the cloak of grave political designs "—Kaye's *Lives of Indian Officers*, vol. ii. p. 33.



JOHN LUTHER KING JR.

By the courtesy of the curator, Victoria Memorial, Calcutta

अच्छा साधन मौजूद था। वे केवल युद्ध का बहाना ढूँढ़ रहे थे। उस समय के अनेक उल्लेखों से यह भी साफ़ ज़ाहिर है कि अंगरेज़ों को इस बात का पूरा विश्वास था कि रणजीतसिंह के मरने के बाद रणजीतसिंह का राज आसानी से कम्पनी के कब्ज़े में आ जायगा। बर्न्स ने दोस्तमोहम्मद खाँ की बात न मानी। इसी लिए उसे असफल भारत लौट आना पड़ा।

बर्न्स के भारत पहुँचते ही अफ़ग़ानिस्तान के साथ युद्ध की तैयारियाँ शुरू हो गईं। इतिहास-लेखक के लिखता है कि ठीक उस समय जब कि बर्न्स काबुल में दोस्तमोहम्मद खाँ से दोस्ती करने की दिखावटी कोशिशें कर रहा था—

“हिमालय पहाड़ के ऊपर साज़िशों के उस बड़े अड्डे शिमले में दूसरी तरह की सलाहें हो रही थीं—X X X उन लोगों ने शाहशुजा के पुराने पदच्युत कुल को फिर से काबुल की गद्दी पर बैठाने का इरादा कर लिया और शाहशुजा को लुधियाने की खाक में से उठा कर उसे अपना एक साधन और अपने हाथ की एक कठपुतली बना लिया X X X।”*

निस्सन्देह इन कुचक्रों के सूत्राधार शिमले में रहने वाले कम्पनी के अंगरेज़ प्रतिनिधि थे। पहले अफ़ग़ान युद्ध से अंगरेज़ों की राजनीति और उनके राष्ट्रीय चरित्र पर एक आश्चर्य जनक रोशनी पड़ती है। एक खास बात इस युद्ध के समय यह खुली कि

पार्लिमेण्ट के
कागज़ों में
जालसाज़ी

* “Other counsels were prevailing at Simla—that great hotbed of

इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सरकारी पत्रादिक भी सत्य असत्य की दृष्टि से विश्वसनीय नहीं कहे जा सकते । बर्न्स ने दोस्तमोहम्मद खाँ के विषय में काबुल से कुछ पत्र लिखे थे । इन पत्रों में उसने दोस्तमोहम्मद खाँ के चरित्र की प्रशंसा की थी ; किन्तु अब अंगरेज़ दोस्तमोहम्मद खाँ से युद्ध करना चाहते थे । इसलिए दोस्तमोहम्मद खाँ को जन सामान्य की दृष्टि में गिराना आवश्यक था । बर्न्स के भेजे हुए उन पत्रों में, जो पार्लिमेण्ट की सरकारी रिपोर्टों में दर्ज थे, काट छाँट की गई; यहाँ तक कि जिस दोस्तमोहम्मद खाँ के चरित्र की बर्न्स ने खूब प्रशंसा की थी उसकी बर्न्स ही के कलम से उन्हीं पत्रों में खूब बुराई दिखला दी गई । इस काट छाँट का भेद कुछ समय बाद अचानक बर्न्स के मर जाने पर उसके पिता ने प्रकट किया और इङ्गलिस्तान के बादशाह के सन्मुख बाज़ाब्ता शिकायत की कि आपके मन्त्रियों ने इस प्रकार जाल बना कर मेरे पुत्र के यश को कलङ्कित करने का प्रयत्न किया है ; इसी काट छाँट के विषय में इतिहास लेखक के लिखता है—

“सार्वजनिक लोगों के सरकारी पत्र व्यवहार में काट छाँट करने की इस प्रथा के प्रति, निस्सन्देह, मैं अपनी घृणा प्रकट किए बिना नहीं रह सकता । × × × जिस बेईमानी के साथ झूठ पर झूठ संसार के सामने पेश कर दिया जाता है उसमें कोई भी भलाई नहीं है । × × × इस मामले

intrigue on the Himalayan hills— They conceived the idea of reinstating the old deposed dynasty of Shah Shuja, and they picked him out of the dust of Ludhiyana to make him a tool and a puppet.”—Kaye's *Lives of Indian Officers*, vol. ii, p. 36.

में X X X दोस्तमोहम्मद के चरित्र पर झूठे कलङ्क लगाए गए हैं; बर्न्स के चरित्र पर झूठे कलङ्क लगाए गए हैं; बर्न्स के पत्र व्यवहार में काट छूट करके बर्न्स और दोस्तमोहम्मद दोनों के बयानों में भयङ्कर झूठ मिला दिया गया है—दोनों ने जो जो बातें नहीं कीं वे, कहा गया है, उन्होंने कीं, और जो बातें उन्होंने कीं, वे कहा गया है, उन्होंने नहीं कीं। X X X ”❁

मई सन् १८३८ में बर्न्स काबुल से शिमले वापस आ गया। कहते हैं कि बर्न्स की अनुपस्थिति में रूसी राजदूत का प्रभाव काबुल के दरबार में बढ़ने लगा।

निरपराध अफ़ग़ानियों के साथ युद्ध छेड़ने के लिए केवल
अपहरण नीति भारत के अंगरेज़ ही ज़िम्मेवार न थे। इतिहास-
लेखक कीन साफ़ लिखता है कि इङ्गलिस्तान के मन्त्री पहले से अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करने का निश्चय कर चुके थे और उनसे ही इस युद्ध का सूत्रपात हुआ। प्रधान मन्त्री लॉर्ड पामर्सटन के कई गुप्त पत्र इस विषय में गवरनर जनरल के नाम आ चुके थे कम्पनी के डाइरेक्टरों के चेयरमैन ने गवरनर जनरल को एक पत्र लिखा जिसमें उसने गवरनर जनरल को पहले

* “I can not indeed suppress the utterance of my abhorrence of this system of garbling the official correspondence of public men— The dishonesty by which lie upon lie is palmed upon the world has not one redeeming feature In the case before us . . . the character of Dost Mohammed has been lied away; the character of Burnes has been lied away; both, by the mutilation of the correspondence of the latter, has been fearfully misrepresented—both have been set forth as doing what they did not, and omitting to do what they did”—Kaye's *Lives of Indian Officers*, vol. ii.

पञ्जाब विजय करने और फिर पञ्जाब द्वारा काबुल पर हमला करने की सलाह दी। जनरल जॉन ब्रिग्ज ने ८ मई सन् १८७२ को मेजर ईवन्स बेल के नाम एक पत्र लिखा। इसमें लिखा है कि लॉर्ड आँकलैण्ड के समय में लॉर्ड लैन्सडाउन के मकान पर इङ्गलिस्तान के मन्त्रियों और प्रधान नीतिज्ञों की एक गुप्त सभा हुई थी जिसमें यह निर्णय किया गया था कि जिस तरह हो सके भारत की शेष देशी रियासतों को, जो कम्पनी की सामन्त हैं, अन्त करके उनके इलाकों को कम्पनी के राज में मिला लिया जाय। लिखा है कि इसी निर्णय के अनुसार बम्बई की सरकार ने कोलाबा की रियासत को, जो ख़ासी बड़ी थी, केवल यह बहाना लेकर कम्पनी के राज में मिला लिया कि दत्तक पुत्र को गद्दी का कोई अधिकार नहीं है। इसी के अनुसार कुछ समय बाद लॉर्ड डलहौज़ी ने भाँसी, नागपुर इत्यादि रियासतों को हज़म किया। वास्तव में यह अपहरण नीति इङ्गलिस्तान के मन्त्रियों की निश्चित नीति थी।*

युद्ध शुरू करने से पहले कम्पनी, महाराजा रणजीतसिंह और शाहशुजा तीनों के बीच एक सन्धि हो गई।
 रणजीतसिंह की मृत्यु इस सन्धि ने सिन्ध के स्वाधीन अस्तित्व को भविष्य के लिए सङ्कट में डाल दिया। अंगरेज़ों ने शाहशुजा को ले जाकर काबुल के तख़्त पर बैठाने का वादा किया। शाहशुजा ने अंगरेज़ों को सिन्ध में आज़ाद छोड़ने का वचन दिया।

* Memoir of General John Briggs, p. 277.

रणजीतसिंह को इस सन्धि से कोई विशेष लाभ न था। यह भी कहा जाता है कि रणजीतसिंह इस सन्धि के साथ सर्वथा सहमत न था, फिर भी ज्यूँ त्यूँ कर उससे हस्ताक्षर करा लिए गए। इस सन्धि के थोड़े दिनों बाद ही महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु हो गई।

इसके बाद आगामी अफ़ग़ान युद्ध के विषय में कम्पनी की ओर से एक एलान प्रकाशित किया गया जो इस तरह के अन्य अनेक एलानों के समान आद्योपान्त भूठ से भरा हुआ है।

अफ़ग़ानिस्तान पर चढ़ाई कर दी गई। बम्बई की सेना सिन्ध और बलूचिस्तान से होती हुई और उत्तरी भारत की सेना पञ्जाब और खैबर के रास्ते अफ़ग़ानिस्तान पहुँची। इन सेनाओं की यात्रा को विस्तार से वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। केवल मार्ग में सिन्ध के अमीरों के साथ अंगरेजों ने जो अत्याचार किए उन्हें थोड़ा बहुत बयान करना आवश्यक है।

हैदराबाद सिन्ध के अमीर अपने देश के स्वाधीन नरेश थे। फिर भी बिना उनकी अनुमति लिए अंगरेजों की यह कार्रवाई उस सन्धि के विरुद्ध थी, जो हाल ही में अंगरेजों और सिन्ध के अमीरों के बीच हो चुकी थी। जिस समय सिन्ध के अमीरों ने अंगरेजों को सिन्धु नदी से होकर महाराजा रणजीत

सिन्ध के अमीरों
के साथ ज़बरदस्ती

सेना ज़बरदस्ती सिन्धु नदी से होती हुई अफ़ग़ानिस्तान की ओर बढ़ चली। कम्पनी सरकार

सिंह के पास उपहार ले जाने की इजाजत दी थी, तो इस साफ़ शर्त पर दी थी कि कभी किसी तरह का फौजी सामान उस नदी के रास्ते न ले जाया जायगा। अब लॉर्ड आर्कलैण्ड ने उस समय की इस सन्धि को रद्दी कागज़ की तरह फाड़ फेंका। केवल इतना ही नहीं, वरन् के लिखता है —

“यह मालूम था कि अमीर निर्बल हैं; यह भी माना जाता था कि उनके पास खूब धन है; तब हुआ कि उनका धन ले लिया जाय और उनके देश पर कब्ज़ा कर लिया जाय। उनकी सन्धियों को सङ्गीनों के जोर तोड़ देने का निश्चय किया गया, किन्तु साथ ही मित्रता और परस्पर प्रेम के अनेक कपट वाक्यों की बौछार जारी रखी गई।”

सिन्ध के अमीरों से यह कहा गया कि आइन्दा से आप शाह शुजा को अपना अधिराज स्वीकार करें और उसको अफ़ग़ानिस्तान की गद्दी पर बैठाने के लिए अंगरेज़ों को धन की सहायता दें। अमीरों से तीन लाख रुपए सालाना भविष्य के लिए बतौर खिराज के, और इक्कीस लाख रुपया नक़द युद्ध के खर्च के लिए तलब किए गए। इस सब के लिए एक नई सन्धि उनके सामने पेश की गई। उस समय की इस समस्त घटना को बयान करते हुए एक इतिहास लेखक, जो अंगरेज़ों के साथ था लिखता है —

• “The Amirs were known to be weak; and they were believed to be wealthy. Their money was to be taken; their country to be occupied: their treaties to be set aside at the point of the bayonet but amidst a shower of hypocritical expressions of friendship and good will.”—Kaye's *History of the War in Afghanistan*, vol. i, p. 401.

“कप्तान ईस्टविक ने अवसर पाकर अपने मिशन का काला घूँट अपने मेज़बानों के गले से उतार दिया X X X अमीरों ने शान्ति के साथ सुना X X X जब नई सन्धि पढ़ी जा चुकी तब बलूचियों में बड़ी व्याकुलता दिखाई दी। उस समय यदि अमीर थोड़ा सा भी इशारा कर देते तो जो अनेक असभ्य और निर्दय बलूची नज़्मी तलवारें लिए हमारे पीछे खड़े हुए थे, उनकी तलवारें हम सब की ज़िन्दगियों को समाप्त कर देने के लिए काफ़ी थीं। पहले अमीर नूर मोहम्मद ख़ाँ ने अपने दोनों साथियों से बलूची ज़बान में कहा कि—“लानत है उस शरूस् के ऊपर, जो इन फ़िरङ्गियों के वादों का एतबार करे।” इसके बाद गम्भीरता के साथ अंगरेज़ प्रतिनिधि की ओर मुखातिब होकर उसने फ़ारसी में यह कहा—‘मैं समझता हूँ, आप अपनी सन्धियों को जब चाहे अपनी इच्छा और सुविधा के अनुसार बदल सकते हैं; क्या अपने दोस्तों और मेहरबानों के साथ सलूक करने का आपका यही तरीक़ा है ? आपने हमसे इस बात की इजाज़त माँगी कि हम आपकी फ़ौज को अपने इलाक़े से होकर जाने दें। हमने आपकी मित्रता और आपके X X X वादों पर विश्वास करके बिना सङ्कोच मंज़ूर कर लिया। यदि हमें यह मालूम होता कि अपनी सेना को हमारे मुल्क में ले आने के बाद आप हमें ही धमकी देंगे और ज़बरदस्ती दूसरी सन्धि हमारे सिर मढ़ेंगे और हमसे तीन लाख रुपए सालाना ख़िराज और इक्कीस लाख रुपए नक़्द फ़ौज के खर्च के लिए तलब करेंगे, तो हम उस सूरत में अपनी जान और अपने मुल्क की रक्षा के लिए उपाय कर रखते। आप जानते हैं हम लोग बलूची हैं, बनिए नहीं हैं, जिन्हें आप आसानी से डरा लें। X X X’

“कप्तान ईस्टविक ने ये सब बातें शान्ति से सुनीं और फ़ारसी और

अरबी कहावतों में संक्षिप्त उत्तर दिए और कहा—‘दोस्तों को ज़रूरत के समय अपने दोस्तों की मदद करनी चाहिए ।’ मीर नूरमोहम्मद ने मुस्करा कर अपने भाइयों से बलूची ज़बान में कुछ कहा X X X फिर आह भर कर कप्तान ईस्टविक से कहा—आप ‘दोस्त’ शब्द का जिन माइनों में उपयोग करते हैं उसे मैं चाहता हूँ कि मैं समझ सकता । हम आपकी इस समय की माँगों का फ़ौरन फ़ैसला नहीं कर सकते ।’’*

इसके बाद सिन्ध के अमीरों को वश में करने के लिए अंगरेजी सेना ने सिन्धी प्रजा को लूटना मारना और उन सिन्धी प्रजा पर लूट और अत्याचार पर तरह तरह के अत्याचार करना शुरू किया । इस लूट मार का उद्देश शायद अमीरों को यह दर्शाना था कि यदि मित्रता के तौर पर आपने कम्पनी को सहायता न दी तो मजबूर कम्पनी की सेना प्रजा से अपनी आवश्यकताओं को पूरा करेगी ।

देश भर में अब स्थान स्थान पर अंगरेज़ अफ़सरों ने बलूची प्रजा के साथ जिस तरह के अत्याचार किये, जिस प्रकार निर्दोष बलूची लड़कों के लम्बे बाल एक दूसरे में बाँध कर निर्दयता के साथ अपनी बन्दूकों की गोलियों से उनके सिरों के भेजों को निकाल बाहर किया, उस सब की रोमाञ्चकारी कहानी सेना के अंगरेज़ अफ़सरों के लिखे हुए बयानों में मौजूद है ।†

* *Autobiography of Lutfullah*, pp. 277-279, 294-296.

† *Narrative of the Campaign of the Army of Indus in Sindh and Cabul, in 1838-39*, by P. H. Kennedy, 2 vols.

अन्त में अपने और विशेष कर अपनी प्रजा के इन असह्य कष्टों से विवश होकर और सुलह की इच्छा से जुलाई सन् १८३६ में सिन्ध के अमीरों ने नए सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। अनन्त लूट का माल और २१ लाख नक़द युद्ध के खर्च के लिए लेकर अंगरेज़ी सेना आगे बढ़ी।

इसके बाद अंगरेज़ी सेना अफ़ग़ानिस्तान पहुँची। थोड़े ही दिनों में केवल अपनी साज़िशों के प्रताप अफ़ग़ान-काबुल पर क़ब्ज़ा निस्तान के अनेक सरदारों को अपनी ओर फोड़ कर, शाहशुजा के नाम पर अंगरेज़ों ने एक बार काबुल पर क़ब्ज़ा कर लिया। शाहशुजा काबुल के तख़्त पर बैठा दिया गया और दोस्त मोहम्मद खाँ को कैद करके भारत की ओर खाना कर दिया गया।

जिस उद्देश को सामने रख कर अंगरेज़ों ने अफ़ग़ानिस्तान में प्रवेश किया था वह जाहिरा पूरा होगया :
 अफ़ग़ानिस्तान की परिस्थिति किन्तु अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर युद्ध समाप्त नहीं हुआ। अंगरेज़ों की प्रारम्भिक सफलता का कारण केवल यह था कि उन्होंने वहाँ के अनेक सरदारों और बहुत सी प्रजा को, भूठे वादे करके और शाहशुजा को सामने रख कर, अपने पक्ष में कर लिया था। जो पक्ष अंगरेज़ों और शाहशुजा दोनों के विरुद्ध था, उसने दोस्त मोहम्मद खाँ के वीर पुत्र अकबर खाँ के अधीन बराबर दो वर्ष तक युद्ध जारी रखा। इस अरसे में अंगरेज़ अधिकारियों की दुरङ्गी चालों, उनके अत्याचारों और दुराचारों

को देख कर धीरे धीरे उस पक्ष का हृदय भी अंगरेज़ों से फिर गया, जो आरम्भ में अंगरेज़ों और शाहशुजा के पक्ष में हो गया था ।

अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर अंगरेज़ों के अत्याचारों के विषय में स्वयं परिचित मोहनलाल ने, जो उस समय अंगरेज़ों के साथ था और उनका एक खास आदमी था, अपनी पुस्तक 'लाइफ़ ऑफ़ दोस्त मोहम्मद खाँ' में साफ़ साफ़ लिखा है कि अंगरेज़ों ने राज-शासन न खुले अपने हाथों में लिया और न शाहशुजा के सुपुर्द किया । ऊपर से दिखाने के लिए उन्होंने तख़्त शाहशुजा को दे दिया, किन्तु भीतर ही भीतर वे सल्तनत की छोटी सी छोटी बातों में भी सन्धिपत्र के विरुद्ध हस्तक्षेप करते रहे । परिणाम यह हुआ कि शाहशुजा और उसके आदमी भी अंगरेज़ों से असन्तुष्ट हो गए । इसके अतिरिक्त मोहनलाल लिखता है कि अंगरेज़ों ने वहाँ के विविध सरदारों के साथ जो गम्भीर वादे किए थे उनमें से एक को भी पूरा न किया । अंगरेज़ अफ़सरों की दस्तख़ती चिट्ठियाँ इन सब सरदारों के पास मौजूद थीं, किन्तु उनकी ज़रा भी परवा न की गई । परिचित मोहनलाल के शब्द हैं कि—“वास्तव में हमारे अपने वादों को तोड़ने और अपने राजनैतिक व्यवहार में लोगों को धोखा देने की मिसालें, जिनका मुझे पता है, वे इतनी अधिक हैं कि उन्हें एक सिलसिले में जमा कर सकना कठिन है ।”*

* “There are, in fact, such numerous instances of violating our engagements and deceiving the people in our political proceedings, within what I am acquainted with, that it would be hard to assemble them in one series.”

—*Life of Dost Mohammad Khan*, pp. 208, 209.

वास्तव में अंगरेज उस समय अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर ठीक वही खेल खेलना चाहते थे जो प्लासी के संग्राम के समय वे बङ्गाल में सफलता के साथ खेल चुके थे। दोस्त मोहम्मद खाँ काबुल का सिराजुद्दौला था और शाहशुजा उस देश का मीर जाफ़र था। क्लाइव के मुकाबले में इस समय अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर कम्पनी सरकार का प्रतिनिधि विलियम मैकनॉटन था, जो अपनी रीति नीति में ठीक क्लाइव का अनुकरण करने का प्रयत्न कर रहा था।

मैकनॉटन और उसके साथियों ने अपनी साज़िशों से अफ़ग़ानिस्तान के लोगों में सदा के लिए फूट डालने का भरसक प्रयत्न किया। इस काम के लिए काशमीरी पण्डित मोहनलाल उनके हाथों में एक अत्यन्त उपयोगी यन्त्र साबित हुआ। इतिहास लेखक के लिखता है—

“मालूम होता है कि मुन्शी मोहनलाल में देशद्रोही पैदा करने की असाधारण योग्यता थी, उसकी इस योग्यता की दमक युद्ध के अन्त तक फीकी नहीं पड़ी” ❀

मोहनलाल का मुख्य कार्य था रिशवतें देकर अफ़ग़ान सरदारों को अपने देश के विरुद्ध फोड़ना, अफ़ग़ानियों में फूट डालना, शिया और सुन्नियों को एक दूसरे से लड़ाना और जो सरदार अंगरेजों के हाथों

* “The Munshi (Mohanlal) seems to have been endowed with a genius for traitor-making, the lustre of which remained undimmed to the very end of the war.”—*History of the Afghan War*, by Kaye, vol. i, p. 459.

मैं न आर्वें, धन खर्च करके उन सब की गुप्त हत्याओं का प्रबन्ध करना। अंगरेज़ अफ़सर लेफ़्टेनेण्ट जॉन कोनोली ने ५ नवम्बर सन् १८४१ को बालाहिसार के क़िले से मोहनलाल के नाम निम्न-लिखित पत्र लिखा—

“क़ाज़िलबाश सरदारों, शीरीनख़ाँ, नायबशरीफ़, और शिया मज़हब के तमाम सरदारों से कहो कि विद्रोहियों के विरुद्ध हमसे मिल जायँ। ख़ान शीरीन को आप एक लाख रुपए देने का वादा कर सकते हैं, इस शर्त पर कि वह विद्रोहियों को मार डाले या गिरफ़्तार कर ले; और सब शियाओं को हथियार देकर उन्हें लेकर फ़ौरन् तमाम विद्रोहियों पर हमला करे। शियाओं के लिए ख़ैरखाही दिखाने का यही वक्त है। जो सरदार हमारी तरफ़ मुके हुए हैं उनसे कहिए कि वे (अंगरेज़) एलची के पास अपनी ओर से बाइज़त एजण्ट भेज दें। कोशिश कीजिए और विद्रोहियों के अन्दर ‘निफ़ाक़’ (फूट) फैला दीजिए। आप जो कुछ करें, मुझसे सलाह कर लें और मुझे अक्सर लिखते रहें।

“मुख्य मुख्य विद्रोही सरदारों में से हर एक के सिर के लिए मैं दस दस हजार रुपए देने का वादा करता हूँ।”*

* “Tell the Kuzzil Bash chiefs, Sherreen Khan, Nayab Sheriff, in fact, all the chiefs of Shiyah persuasion, to join against the rebels. You can promise one lakh of rupees to Khan Shereen on the condition of his killing and seizing the rebels and arming all the Shiyas, and immediately attacking all rebels. This is the time for the Shiyas to do good service. Tell the chiefs who are well disposed, to send respectable agents to the Envoy. Try and spread “Nifak” among the rebels. In everything that you do consult me, and write very often.



कमान जॉन कोनोली, अफ़गान वेश में
[मोहन लाल की 'लाइफ़ आफ़ अमीर दोस्त मोहम्मद ख़ाँ' से]

मालूम होता है, मुन्शी मोहनलाल काफी चालाक था। वह यह चाहता था कि अंगरेज़ एलची मैकनॉटन के कलम से भी यह बात स्पष्ट करा लो जाय। अंगरेज़ एलची के नाम उसने एक पत्र में लिखा —

“लेफ़्टेनेण्ट कोनोली के पत्र से मैं यह नहीं समझ सका कि विद्रोहियों को किस तरह क्रतु किया जाय, किन्तु जिन लोगों को मैंने अब इस काम के लिए नियुक्त किया है वे वादा करते हैं कि वे इन लोगों के घरों में जाकर ऐसे मौकों पर, जब वे अकेले हों, उनके सिर काट डालेंगे।”

लिखा है कि सब से पहले सरदार अब्दुल्ला खाँ और मीर मसजिद जो कि इन गुप्त हत्यारों की कटारों का शिकार बनाया गया।

केवल इतना ही नहीं, वरन् इन दो वर्ष में अंगरेज़ राजदूतों और अंगरेज़ अफ़सरों की घृणित पाशविक अंगरेज़ों की घृणित वृत्तियों ने अफ़ग़ान भले घरों के अन्दर त्राहि पाशविक वृत्तियाँ त्राहि मचा दी। अंगरेज़ इतिहास लेखक सर जॉन के लिखता है —

“हमारे अंगरेज़ अफ़सर उन प्रलोभनों को भी न जीत सकें, जिनका जीतना कि सबसे अधिक कठिन है। काबुल की स्त्रियों के आकर्षणों का वे मुक़ाबला न कर सकें। अफ़ग़ानों को अपनी औरतों की इज़्ज़त का बड़ा ज़बरदस्त ख़याल रहता है; और काबुल के अन्दर इस तरह की काररवाइयाँ

“I promise ten thousand rupees for the head of each of the principal rebel chiefs.”—Kaye's *History of the Afghan War*, vol. i, p. 202.

की गईं, जिनके कारण वे लांग शरम से पानी पानी हो गए और बदले के लिए उतारू हो गए। × × × पूरे दो साल तक यह शरम काबुलियों के दिलों में आग की तरह धधकती रही; कुछ प्रभावशाली और प्रसिद्ध आदमियों के घरों की भी इस प्रकार इज्जत ली गई। उन्होंने शिकायतें कीं, किन्तु व्यर्थ। यह कलुषित कार्य खुले किया जा रहा था, सब पर प्रकट था और प्रसिद्ध था। इसका कोई चारा न था। पाप कम होता दिखाई न दिया। बल्कि उस समय तक जारी रहा जब तक कि वह असह्य न हो गया। तब अत्याचार पीड़ितों ने देखा कि हमारे दुख का एक मात्र इलाज हमारे अपने हाथों में है। इस दुखकर घटना को केवल इन मोटे शब्दों में बयान कर देना ही काफ़ी है।”❀

अफ़ग़ान भोले थे। वे इन विदेशियों के चरित्र को न समझते थे। शुरु में वे उनकी साज़िशों के चक्कर में फँस गए। किन्तु वे वीर थे, उनमें आत्माभिमान था।

* “The temptations which are most difficult to withstand, were not withstood by our English officers. The attractions of the women of Cabul they did not know how to resist. The Afghans are very jealous of the honour of their women; and there were things done in Cabul which covered them with shame and roused them to revenge. . . . For two long years, now had this shame been burning itself into the hearts of the Cabulies; and there were some men of note and influence among them who knew themselves to be thus wronged, complaints were made; but they were made in vain. The scandal was open, undisguised, notorious. Redress was not to be obtained. The evil was not in course of suppression. It went on till it became intolerable and the injured then began to see that the only remedy was in their own hands. It is enough to state broadly this painful fact.”—Kaye's *History of the Afghan War*, vol. i, pp. 143, 144.



कप्तान एण्डरसन

[अंगरेजी सेना का एक सेनापति, अफ़ग़ान वेश में]

From "The Military Operations at Cabul," London, 1843

वे एक सुसङ्गठित क़ौम थे । उनके राष्ट्रीय चरित्र में अभी तक वे घातक दोष उत्पन्न होने न पाए थे जिनके कारण उनसे कहीं अधिक प्राचीन और कहीं अधिक सभ्य भारतवासी अपने प्यारे देश की आज़ादी से हाथ धो चुके थे । अफ़ग़ानों ने अब अच्छी तरह देख लिया कि इन विदेशियों के हाथों हमें सिवाय दगा, बेईमानी, लूट, हत्या और अपनी स्त्रियों के सतीत्वनाश के और कुछ न मिल सका, उनकी आँखें खुल गईं । विदेशियों के चरित्र को अब वे पूरी तरह समझ गए । अपनी क़ौमी आज़ादी के साथ साथ क़ौमी इज़्ज़त तक का उन्हें निकटवर्ती भविष्य में ख़ात्मा दिखाई देने लगा । उनका खून खौलने लगा, वे बदले के लिए कटिबद्ध हो गए ।

अफ़ग़ानियों ने अब एक दिल होकर अंगरेज़ों को अपने देश से बाहर निकाल देने का सङ्कल्प कर लिया ।
 शाहशुजा का बंध वे समझ गए कि शाहशुजा हमारी समस्त आपत्तियों का मूल कारण है । शाहशुजा को पता लग गया । वह डर गया, उसने फिर एक बार काबुल से भाग कर भारत में आश्रय लेने का इरादा किया । किन्तु इसी बीच ५ अप्रैल सन् १८४२ को एक जोशीले अफ़ग़ान ने अपनी बन्दूक से उस अफ़ग़ानी मीर जाफ़र के पापमय जीवन का अन्त कर दिया ।

दूसरा मनुष्य, जिससे अफ़ग़ानी इस समय हद दरजे की घृणा करने लगे थे, अंगरेज़ राजदूत बर्न्स था ।
 बर्न्स की हत्या अफ़ग़ानों ने देख लिया कि जिस बर्न्स की अफ़ग़ान बादशाह और वहाँ की जनता ने इतनी ज़बरदस्त खातिर

की थी वह वास्तव में एक जासूस था। उसने अफ़ग़ान कौम के साथ विश्वासघात किया। एक दिन दिन दहाड़े कुछ अफ़ग़ानियों ने बन्स के टुकड़े टुकड़े कर डाले।

तीसरा मनुष्य, जो कि अफ़ग़ानिस्तान का क्लाइव बनना चाहता था, अंगरेज़ एलची मैकनॉटन था। मैकनॉटन को शुरू में यह पता न था कि अफ़ग़ानिस्तान बङ्गाल न था। अब हवा बिगड़ी हुई देख कर मैकनॉटन ने नए गवर्नर जनरल लॉर्ड एलेनब्रु की इजाज़त से दोस्त मोहम्मद खाँ के बेटे अकबर खाँ से यह वादा कर लिया कि हम दोस्त मोहम्मद खाँ को फिर वापस अफ़ग़ानिस्तान लाकर यहाँ के तख़्त पर बैठा देंगे। इस अहदनामे पर मैकनॉटन के दस्तख़त तक होगए। इस पर भी मैकनॉटन के दिल से दगा न गई। उसने अकबर खाँ को एक पत्र लिखा, जिसमें अपनी मित्रता का विश्वास दिलाते हुए लिखा कि मैं आप से मिलना चाहता हूँ। इसी पत्र के अन्त में उसने अकबर खाँ को सलाह दी कि आपके अमुक अमुक सरदार आपके साथ दगा करने वाले हैं, आप उनका खात्मा कर डालिए। ठीक उसी समय मैकनॉटन ने उन सरदारों को अलग अलग पत्र लिखे, जिनमें उन्हें अकबर खाँ के विरुद्ध भड़काने की कोशिश की। अकबर खाँ ने पत्र पाते ही अपने समस्त सरदारों को जमा किया। इनमें वे लोग भी शामिल थे, जिनके विरुद्ध मैकनॉटन ने अकबर खाँ को आगाह किया था। इन सरदारों के सामने अकबर खाँ ने मैकनॉटन का पत्र रख दिया। उन सरदारों के हाथों

में भी वे पत्र मौजूद थे जो मैकनॉटन ने उनके नाम भेजे थे। इन लोगों ने ये पत्र भी अपने देश भाइयों के सामने पेश कर दिए। अन्त में सब लोग मैकनॉटन के इस छल को देख कर आश्चर्य और क्रोध से भर गए।

अकबर खाँ उस समय चुप रहा। बाद में शीघ्र ही उसने मैकनॉटन की प्रार्थना के अनुसार मैकनॉटन को मुलाकात के लिए बुलाया। किन्तु मालूम होता है कि मैकनॉटन इस समय अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर अंगरेज़ों के सबसे बड़े शत्रु मोहम्मद अकबर खाँ की हत्या की गुप्त योजना कर रहा था।

लॉर्ड एलेनब्रु ने ५ अक्तूबर सन् १८४२ को मलका विक्टोरिया के नाम एक पत्र लिखा, जिसमें स्पष्ट लिखा है कि उन दिनों गवर्नर जनरल ने यह एलान कर दिया था कि जो मनुष्य अकबर खाँ का सिर काट कर लाएगा उसे एक बहुत बड़ी रकम नक़द बतौर इनाम के दी जायगी। इस एलान की सूचना मैकनॉटन को मिल चुकी थी। मैकनॉटन जब अकबर खाँ से मिलने गया तो अपने कुछ सिपाही छिपा कर साथ ले गया। इन सिपाहियों को उसने अकबर खाँ के ख़ेमे के बाहर घात में छिपे रहने की आज्ञा दी और यह हुक्म दे दिया कि एक खास इशारा पाते ही तुम लोग फ़ौरन् अपने गुप्त स्थानों से निकल कर अकबर खाँ पर दूट पड़ना। जिस समय कि मैकनॉटन और अकबर खाँ में बातचीत हो रही थी और अकबर खाँ मैकनॉटन से उसके दुरङ्गी पत्रों का उद्देश पूछ रहा था,

मैकनॉटन की
हत्या

अकस्मात् एक अफ़ग़ान दौड़ता हुआ अकबर खाँ के सामने आया। आते ही उसने अकबर खाँ को घात में छिपे हुए अंगरेजी सिपाहियों का समाचार दिया। इस पर अकबर खाँ और मैकनॉटन दोनों खड़े हो गए फिर कुछ बात चीत हुई। पहली गोली मैकनॉटन ने चलाई और वार खाली गया। दूसरा वार अकबर खाँ का हुआ और मैकनॉटन अपने घृणित पापों के प्रायश्चित रूप उसी खेमे के अन्दर गिर कर ढेर हो गया।*

इन घटनाओं के होते हुए भी अनेक अंगरेज इतिहास लेखक लिखते हैं कि अकबर खाँ ने दगा करके मैकनॉटन को मार डाला।

इस प्रकार अफ़ग़ानियों की राष्ट्रीय आपत्तियों के तीन मुख्य कर्ता शाहशुजा, बर्न्स और मैकनॉटन तीनों का अन्त हुआ। इसके बाद और असंख्य अंगरेजों को शीघ्र ही अफ़ग़ानी तलवारों के घाट उतरना पड़ा। बाकी की अंगरेजी सेना ने अकबर खाँ से प्रार्थना की कि हमें भारत लौटने की इजाज़त दी जाय और वादा किया कि हम यहाँ से जाते ही तुरन्त दोस्त मोहम्मद खाँ को अफ़ग़ानिस्तान लौटा देंगे। अकबर खाँ ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। कुछ अंगरेज अफ़सर अपनी स्त्रियों सहित बतौर बन्धकों के काबुल में रख लिए गए। शेष बची खुची अंगरेजी सेना ऐन कड़ी सरदी के अन्दर भारत की ओर लौटी। यह यात्रा इन लोगों के लिए युद्ध के मैदान

* *Nairang-i-Afghanistan* by Syed Fida Husain, Reviewed in the Modern Review for February 1907, p. 224.



मोहम्मद अकबर खाँ

[From the " Life of Amir Dost Mohammad Khan," by Mohan Lal,
vol. I, London 1846.]

को निस्वत भी कहीं अधिक नाशकर साबित हुई। मार्ग भर में असंख्य अफ़ग़ानी और बलूची दो वर्ष पूर्व अंगरेज़ी सेना के अत्याचारों का अनुभव प्राप्त कर चुके थे। इन लोगों ने अब पिछले जुल्मों का जो खोल कर बदला लिया। अनेक को मार्ग की सरदी और यात्रा के थकान के कारण सरहद की पहाड़ियों में सदा के लिए विश्राम लेना पड़ा। जितने पुरुष, स्त्री और बच्चे काबुल से चले थे, या यह कहना चाहिये कि सोलह हजार की उस विशाल सेना में से, जो अफ़ग़ानिस्तान विजय करने के लिए भारत से निकली थी, केवल एक व्यक्ति डॉक्टर ब्राइडन थाका माँदा जलालाबाद तक बच कर ज़िन्दा पहुँचा।

इसी बीच फ़रवरी सन् १८४२ में लॉर्ड आँकलैण्ड की जगह लॉर्ड एलेनब्रु भारत का गवरनर जनरल नियुक्त होकर कलकत्ते पहुँच चुका था। शाहशुजा, बर्न्स और मैकनॉटन तीनों की हत्याएँ लॉर्ड एलेनब्रु ही के शासन काल में हुईं।

शासन नीति में लॉर्ड एलेनब्रु के आदर्श वे दोनों वेल्सली भाई थे, जिनमें से एक गवरनर जनरल मार्किंस एलेनब्रु के विचार ऑफ़ वेल्सली के नाम से और दूसरा जनरल वेल्सली—और बाद में ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन—के नाम से ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास में प्रसिद्ध हैं। अफ़ग़ान युद्ध के वृत्तान्त से हट कर हम एक क्षण के लिए एलेनब्रु के विचार दर्शा देना चाहते हैं। गवरनर जनरल नियुक्त होने से ६ वर्ष पहले ५ जुलाई

सन् १८३३ को लॉर्ड एलेनब्रु ने इङ्गलिस्तान के हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स में वक्तृता देते हुए कहा था—

“कोई मनुष्य जिसका होश क्रायम है, हिन्दोस्तान के अन्दर राजनैतिक और सैनिक शक्ति, हिन्दोस्तानियों के हाथों में देने की तजवीज़ नहीं कर सकता । X X X

“हिन्दोस्तान के अन्दर हमारा अस्तित्व ही इस बात पर निर्भर है कि उस देश में देशवासियों को सैनिक और राजनैतिक अधिकार से बिल्कुल दूर रक्खा जाय । X X X हमने भारतीय साम्राज्य तलवार से जीता है और तलवार से ही हमें उसे क्रायम रखना होगा । X X X ”*

इन वाक्यों से और वेलसली बन्धुओं के नाम लॉर्ड एलेनब्रु के अनेक पत्रों से भारतवासियों के प्रति लॉर्ड एलेनब्रु के विचार और भाव स्पष्ट विदित हैं । इङ्गलिस्तान छोड़ने से पहले १५ अक्तूबर सन् १८४१ को एलेनब्रु ने ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन के नाम एक पत्र लिखा, जिससे पता चलता है कि उसकी मुख्य नज़र उस समय पञ्जाब और नैपाल इन दो राज्यों के ऊपर थी । वह जिस तरह बन पड़े इन दोनों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लेने के लिए उत्सुक था । उसके अनेक पत्रों से यह भी साबित है कि भारतीय नरेशों के साथ जब चाहे सन्धियों को तोड़ देना वह इतना ही न्याय्य

* “No man in his senses would propose to place the political and military power in India in the hands of the natives. . . .

“Our very existence in India depended upon the exclusion of the natives from military and political power in that country. . . . We had won the Empire of India by the sword, and we must preserve it by the same means,”—Lord Ellenborough in the House of Lords, July 5th, 1833.



डाक्टर ब्राइडन

अकॅला अंगरेज जो सोलह हजार की फौज में से जिन्दा बच कर जलालाबाद के फाटक तक पहुँचा ।

चित्रकार, लेंडी बटलर ।

[By the courtesy of the Trusees, Victoria Memorial, Calcutta.]

समझता था जितना कि उससे पूर्व का कोई भी और गवरनर जनरल ।

अफ़ग़ान युद्ध की हारों और विपत्तियों का प्रभाव भारत के नरेशों और भारतीय प्रजा के ऊपर अंगरेज़ों के भूटे एलान लिए हितकर न था । लॉर्ड एलेनब्रु ने १७ मई सन् १८४२ को ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन के नाम एक पत्र में गर्व के साथ स्वीकार किया है कि इस अहितकर प्रभाव को दूर करने के लिए मैंने भारतवर्ष भर में एलानों के ज़रिए भूठी ख़बरों के फैलाने में तनिक भी सङ्कोच नहीं किया । इस तरह के भूटे एलान विशेष कर हैदराबाद दक्खिन में, सिन्ध में, नैपाल में, सागर ज़िले में और बुन्देलखण्ड में प्रकाशित कराए गए ।

पहले अफ़ग़ान युद्ध से सम्बन्ध रखने वाली लॉर्ड एलेनब्रु के समय की एक और घटना उल्लेख करने योग्य है मुसलमानों का शत्रु यूरोप के अन्दर करीब एक हजार वर्ष से मुसलमानों और ईसाइयों में युद्ध चले आते थे । लॉर्ड एलेनब्रु मुसलमानों को अंगरेज़ों का विशेष शत्रु समझता था । उसका विचार था कि मुसलमान कभी अंगरेज़ों का साथ न देंगे । इसलिए वह हिन्दुओं को खुश करके उन्हें मुसलमानों के विरुद्ध अंगरेज़ों की ओर मिलाए रखना चाहता था । अफ़ग़ान युद्ध के समय हिन्दुओं को प्रसन्न करने का लॉर्ड एलेनब्रु को एक बड़ा सुन्दर अवसर हाथ आया ।

ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में कहा जाता है महमूद गज़नवी

सोमनाथ मन्दिर के फाटक के दो सुन्दर जड़ाऊ किवाड़ उखड़वाकर अपने साथ गज़नी ले गया था। इन किवाड़ों की चित्रकारी इतनी सुन्दर थी कि वे बाद में महमूद के मकबरे पर लगा दिए गए। लॉर्ड एलेनब्रु ने हुक्म दिया कि ये प्राचीन किवाड़ गज़नी से भारतवर्ष लाकर एक शानदार जुलूस के साथ समस्त हिन्दोस्तान में फिराए जायँ, और अन्त में सोमनाथ के मन्दिर में पहुँच कर अपनी प्राचीन जगह पर फिर से कायम कर दिए जायँ।

एलेनब्रु की आज्ञा पालन की गई। सोमनाथ के किवाड़ अफ़ग़ानिस्तान से भारत लाए गए। पञ्जाब में इन किवाड़ों का शानदार जुलूस निकाला गया। लॉर्ड एलेनब्रु ने १६ नवम्बर सन् १८४२ को भारत के समस्त हिन्दू सरदारों, राजाओं, महाराजाओं और समस्त हिन्दू प्रजा के नाम एक विचित्र एलान प्रकाशित किया, जिसमें अंगरेज़ सरकार को हिन्दुओं और हिन्दू धर्म का विशेष समर्थक बतलाया और उन्हें यह सूचना दी कि सोमनाथ के किवाड़ फिर से उसी मन्दिर में लाकर लगा दिए जाएँगे। फिर भी जो किवाड़ अफ़ग़ानिस्तान से आए थे, वे आगरे से आगे न बढ़ सके।

इसका कारण यह था कि उस समय के अंगरेज़ शासकों में दो विचारों के लोग मौजूद थे। एक वे जो लॉर्ड एलेनब्रु के समान मुसलमानों की परवा न करके हिन्दुओं को अपनी ओर मिलाए रखने के पक्ष में थे। दूसरे वे जो मुसलमानों को इस प्रकार नाराज़

कर लेना भी अंगरेजी राज के लिए हितकर न समझते थे । लॉर्ड मैकाले इस दूसरे पत्र का था । सोमनाथ के इन किवाड़ों के विषय में १८ जनवरी सन् १८४३ को लॉर्ड एलेनब्रु ने ड्यूक ऑफ वेलिङ्गटन को लिखा —

“मुझे हर तरह से विश्वास है कि सोमनाथ के मन्दिर के किवाड़ फिर से स्थापन करने के एलान से असंख्य हिन्दू जनता प्रसन्न और सन्तुष्ट हो गई है । मुझे कोई वजह यह मानने की नज़र नहीं आती कि मुसलमान इससे नाराज़ हुए हों; किन्तु मैं इस विश्वास की ओर से अपनी आँखें बन्द नहीं कर सकता कि मुसलमान जाति जब से ही हमारी दुश्मन है, इसलिए हमारी सच्ची नीति हिन्दुओं को अपनी ओर मिलाए रखने की होनी चाहिए,
× × × ।”

इसी तरह के विचार लॉर्ड एलेनब्रु के दूसरे पत्रों में भी भरे हुए हैं, अनेक पत्रों से यह भी साफ़ साफ़ मालूम होता है कि वह औरङ्गज़ेब जैसे मुसलमानों के कृत्यों की याद दिला दिला कर उन्हें हिन्दू धर्म का शत्रु, और अंगरेज़ सरकार को हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति का रक्त दिखलाना चाहता था ।

सोमनाथ के किवाड़ अभी आगरे तक भी पहुँचने न पाए थे

* “I have every reason to think that the restoration of the gates of the temple of Somnath has conciliated and gratified the great mass of the Hindoo population. I have no reason to suppose that it has offended the Mussalmans, but I can not close my eyes to the belief that, that race is fundamentally hostile to us, and therefore our true policy is to conciliate the Hindoos, . . . ”—Lord Ellenborough to the Duke of Wellington, January 18, 1843.

कि कई अंगरेजों ने एलेनब्रु की इस काररवाई के विरुद्ध शोर मचाना शुरू कर दिया। लॉर्ड मैकाले ने मैकाले की वक्तृता इंगलिस्तान की पार्लिमेण्ट में वक्तृता देते हुए कहा —

“मुसलमानों की संख्या कम है, किन्तु उनका महत्व उनकी संख्या के हिसाब से कहीं अधिक है; कारण यह है कि मुसलमान जाति संयुक्त, जोशीली, महत्वाकांक्षी और युद्ध प्रेमी है। × × × जो मनुष्य हिन्दोस्तान के मुसलमानों के विषय में कुछ भी जानकारी रखता है उसे इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि इस प्रकार उनके धर्म का अपमान करने से उनमें अत्यन्त भयङ्कर क्रोध भड़क उठेगा।”*

लॉर्ड एलेनब्रु पर यह इलज़ाम लगाया गया कि उसने मूर्ति-पूजा का समर्थन करके ईसाई धर्म को कलङ्कित अंगरेज शासकों की भारतीय नीति किया। वास्तव में न लॉर्ड एलेनब्रु को हिन्दुओं की मूर्ति पूजा से विशेष प्रेम था और न लॉर्ड मैकाले को मुसलमानों के धर्म से। किन्तु उस समय से ही भारत के हिन्दू और मुसलमानों को एक दूसरे से लड़ाए रखना अंगरेज शासकों की भारतीय नीति का एक विशेष अङ्ग रहा है।

लॉर्ड मैकाले जैसों के विरोध के कारण लॉर्ड एलेनब्रु की बात

* “The Mohammedans are a minority, but their importance is much more than proportioned to their number : for they are an united, a zealous, an ambitious, a war like class. . . . Nobody who knows anything of the Mohammedans of India can doubt that this affront to their faith will excite their fiercest indignation.”—Lord Macaulay, March 1843.

न चल सकी। हम ऊपर लिख चुके हैं कि सोमनाथ के मन्दिर के किवाड़ आगरे में रोक दिए गए।

पाठकों को आश्चर्य होगा कि जब कि अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करने वाली समस्त अंगरेज़ी सेना में से केवल एक अंगरेज़ ज़िन्दा बच कर हिन्दोस्तान लौट सका, यह प्राचीन किवाड़ अफ़ग़ानिस्तान से यहाँ तक किस प्रकार आ सके। निस्सन्देह इस सम्बन्ध में सब से अधिक चमत्कारिक बात यही है कि जो किवाड़ इतनी धूम धाम के जुलूस के साथ आगरे लाए गए, वह सोमनाथ के मन्दिर के किवाड़ थे ही नहीं। यह समस्त ढोंग और बनावटी किवाड़ों का जुलूस केवल एक राजनैतिक छल था। कम्पनी के शासकों की कूटनीति का इससे सुन्दर उदाहरण और क्या मिल सकता है ?

इसके बाद प्रथम अफ़ग़ान युद्ध की केवल थोड़ी सी कहानी बाकी रह जाती है। युद्ध का खर्च दो वर्ष से अफ़ग़ान युद्ध का कम्पनी सरकार के लिए असह्य हो रहा था। ख़मियाज़ा

१५ सितम्बर सन् १८४१ को लॉर्ड पलेनब्रु ने मलका विक्टोरिया के नाम एक पत्र में लिखा कि अफ़ग़ान युद्ध का खर्च इस समय कम्पनी सरकार को साढ़े बारह लाख पाउण्ड (करीब सवा करोड़ रुपए) सालाना देना पड़ रहा है। इसके अतिरिक्त करीब साढ़े ग्यारह लाख पाउण्ड सालाना उस समय सिन्धु नदी के इस पार नई फ़ौजों पर खर्च करना पड़ता था। ब्रिटिश भारतीय सरकार के बजट में सन् १८३६-४० में २४ लाख

पाउण्ड का घाटा हुआ, जो सन् १८४०-४१ में बीस लाख पाउण्ड और बढ़ गया।

लेकिन फिर भी एशिया के अन्दर कम्पनी की सेना की इस ज़बरदस्त ज़िन्नत को धोना आवश्यक था। दोस्त मोहम्मद खाँ अभी तक भारत में कैद था और अनेक अंगरेज़ बन्धक अफ़ग़ानिस्तान में मौजूद थे। युद्ध बन्द करने के लिए अफ़ग़ानिस्तान के साथ कोई बाज़ाबता सन्धि भी न हुई थी।

जनरल पोलक एक नई विशाल सेना सहित अफ़ग़ानिस्तान भेजा गया। लॉर्ड एलेनब्रु के नाम ड्यूक ऑफ़ दोबारा चढ़ाई वेलिङ्गटन के एक पत्र में लिखा है कि काबुल पहुँच कर जनरल पोलक ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि काबुल के मुख्य बाज़ार और वहाँ की दो सुन्दर मसजिदों को आग लगा दी जाय। जनरल पोलक की आज्ञा का पालन किया गया। उसके बाद कहा जाता है कम्पनी की सेना ने काबुल के नगर को लूटा और कई इमारतों को ज़मीन से मिला दिया।

किन्तु अन्त में अंगरेज़ों को फिर एक बार अफ़ग़ानों के हाथों हार स्वीकार करनी पड़ी। अकबर खाँ और युद्ध का अन्त उसके अफ़ग़ानियों ने इस बार भी अंगरेज़ों के साथ काफी उदारता का व्यवहार किया और सन्धि हो गई। दोस्त मोहम्मद खाँ और उसके साथ के अन्य अफ़ग़ान कैदी काबुल पहुँचा दिए गए। दोस्त मोहम्मद खाँ फिर अफ़ग़ानिस्तान के तख़्त पर बैठा। युद्ध के समस्त अंगरेज़ बन्धक छोड़ दिए गए। पोलक

को अपने शेष आदमियों सहित अफ़ग़ानिस्तान की सरहद छोड़ कर चले आने की इजाज़त मिल गई। इस प्रकार अफ़ग़ानिस्तान की राष्ट्रीय स्वाधीनता को हरने का अंगरेजों का पहला प्रयत्न निष्फल गया। इतिहास लेखक सर जॉन के इस युद्ध के परिणाम के विषय में लिखता है—

“एक महान सच्चाई पाठकों की आँखों के सामने आ जाती है। जब कभी हमारे किसी पाप कार्य के ऊपर परमात्मा का भारी आप होता है तो हमारे राजनीतिज्ञों की बुद्धिमत्ता मूर्खता साबित होती है, और हमारी सेनाओं की शक्तिमत्ता निर्बलता बन जाती है क्योंकि सब के कर्मों का फल देने वाला परमात्मा अवश्य हमें भी हमारे पापों का बदला देगा।”❀

* “ . . . The reader recognises one great truth, that the wisdom of our statesmen is but foolishness, and the might of our armies is but weakness, when the curse of God is sitting heavily upon an unholy cause. ‘For the Lord God of re-compenses shall surely requite.’”—Kaye's *History of the Afghan War*.



अड़तीसवाँ अध्याय

सिन्ध पर अंगरेजों का कब्ज़ा

सम्राट हुमायूँ के समय से सन् १७४६ तक अर्थात् दो सौ वर्ष से ऊपर सिन्ध भारतीय मुग़ल साम्राज्य का एक सूबा था। सन् १७४० में नादिरशाह ने सिन्ध पर हमला किया। १७४६ में सिन्ध के अमीर दिल्ली सम्राट के स्थान पर अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह को ख़िराज भेजने लगे। इसके बाद करीब ६० वर्ष तक के अधिकांश समय में सिन्ध के अमीर अपने देश के सर्वथा स्वाधीन शासक बने रहे।

सिन्ध के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी का सम्बन्ध १८ वीं सदी के मध्य में प्रारम्भ हुआ । सन् १७५८ ईसवी में अमीर गुलामशाह कलहोर ने कम्पनी को ठठा और औरङ्गबन्दर में कोठियाँ बनाने की इजाजत दे दी । ठठा उस समय सिन्ध में कपड़े के व्यवसाय का एक विशेष केन्द्र था । सर हेनरी पॉटिञ्जर लिखता है कि उन दिनों नफ़ीस कपड़ों और लुङ्गियों के बुनने वाले ४०,००० कारीगर ठठा में रहते थे, २०,००० अन्य कई प्रकार के कारीगर थे, और इनके अतिरिक्त ६०,००० महाजन, साहूकार, नाज के व्यापारी और अन्य दूकानदार थे । किन्तु कम्पनी की कोठी कायम होने के पचास वर्ष के अन्दर अर्थात् सन् १८०६ में ठठे की कुल आबादी घटते घटते केवल २०,००० रह गई ।*

अमीर गुलामशाह ने कम्पनी को व्यापार के लिए अनेक प्रकार की सुविधाएँ प्रदान कर दी थीं । किन्तु कम्पनी के एजेंटों का व्यवहार इतना अनुचित होने लगा कि सन् १७७५ में गुलामशाह के बेटे सरफ़राज़ ने कम्पनी की कोठियाँ बन्द करवा दीं । सन् १७६६ में कम्पनी का एक नया एजेंट नैथन क्रो हैदराबाद पहुँचा । क्रो की प्रार्थना पर उस समय के अमीर फ़तहअली खाँ ने अंगरेजों को सिन्ध में व्यापार करने की फिर इजाजत दे दी और कराची में क्रो को अपने लिए मकान बनाने की भी अनुमति मिल गई । किन्तु

* Sind Gazetteer. vol, A. p. 116.

फिर को और उसके गुमाशतों का व्यवहार सिन्ध के कारीगरों और वहाँ की प्रजा के साथ इतना असह्य हो गया कि सन् १८०२ में को को आज्ञा मिली कि दस दिन के भीतर सिन्ध छोड़ कर चले जाओ।

इसके बाद सन् १८०७ में बम्बई के अंगरेज़ गवर्नर ने फिर कम्पनी की ओर से एक एलची सिन्ध भेजा।
 सिन्ध में कम्पनी का एलची
 अमीर गुलामअली, अमीर करमअली और अमीर मुरादअली उस समय सिन्ध के शासक थे। सिन्ध के अमीरों में प्रायः यह विचित्र प्रथा चली आती थी कि कई कई भाई मिल कर प्रेम से एक साथ देश पर शासन करते थे। अंगरेज़ एलची की प्रार्थना पर अमीरों ने अब अंगरेज़ कम्पनी के साथ मित्रता की एक सन्धि कर ली, जिसमें लिखा था—

“यह सन्धि पीढ़ी दर पीढ़ी क़ायमत के दिन तक क़ायम रहेगी और अंगरेज़ सरकार कभी सिन्ध के अमीरों की एक फ़ुट ज़मीन की भी इच्छा न करेगी।”*इत्यादि।

इस सन्धि में लिखा था कि अंगरेज़ सरकार और सिन्ध की सरकार दोनों एक दूसरे के शत्रुओं के विरुद्ध एक दूसरे की मदद करेंगे। किन्तु गवर्नर जनरल को यह शर्त पसन्द न थी, इसलिए इस सन्धि पर हस्ताक्षर हुए अभी दो वर्ष भी न हुए थे कि सन् १८०६ में एक

* *Dry Leaves from Young Egypt*, by W. J. Eastwick M. P., p. 334.

दूसरा अंगरेज़ स्मिथ सन् १८०७ की सन्धि को रद्द कराने और एक दूसरी सन्धि करने के लिए सिन्ध पहुँचा।

२२ अगस्त सन् १८०६ को अंगरेजों और सिन्ध के अमोरों के बीच फिर एक सन्धि हुई, जिसकी चार धाराएँ इस प्रकार थीं—

१—अंगरेज़ सरकार और सिन्ध की सरकार के बीच सदा के लिए दोस्ती (Eternel friendship) कायम रहेगी X X X इत्यादि।

२—इन दोनों बादशाहतों के बीच कभी शत्रुता उत्पन्न न होगी।

३—अंगरेज़ सरकार और सिन्ध सरकार दोनों एक दूसरे के यहाँ अपने वकील भेजती रहेंगी। और

४—सिन्ध की सरकार सिन्ध में फ़्रान्सीसी क़ौम को बसने न देगी।

इस दूसरी सन्धि के विषय में कप्तान ईस्टविक, जो बाद में अंगरेज़ कम्पनी की ओर से सिन्ध में असिस्टेंट रेज़िडेण्ट नियुक्त हुआ, लिखता है—

“ठीक उस समय जब कि हम अपनी मित्रता और शुभ कामना दर्शाने के लिए सिन्ध के दरबार में अपना एक राजदूत भेज रहे थे, उसी समय हमारा जो राजदूत क़ाबुल गया हुआ था, वह गवर्नर जनरल के सामने यह योजना पेश कर रहा था कि सिन्ध का विजय कर लिया जाय X X X और सिन्ध का इलाक़ा भारतीय ब्रिटिश राज में मिला लिया जाय।”*

* “ . . . at the very moment we were sending an ambassador to the court of Sindh with expressions of friendship and good will, our envoy at Kabul was proposing to the Governor-General to subjugate the country, . . . and incorporate the territory with the British possessions in India.”
—*Dry Leaves from Young Egypt*, by an Ex-political, p. 243.

किन्तु सिन्ध को अंगरेज़ी राज में मिलाने का अभी समय न आया था। गवरनर जनरल लॉर्ड मिण्टो ने अपने राजदूत की सलाह को अस्वीकार किया।

सन् १८१६ में अंगरेज़ों ने कच्छ पर हमला किया। तीन वर्ष बाद कच्छ पर कब्ज़ा कर लिया गया। कच्छ की सरहद सिन्ध से मिली हुई है, इसलिए सिन्ध के साथ फिर नई सन्धि की आवश्यकता अनुभव हुई। सन् १८२० में तीसरी बार सिन्ध के अमीरों के साथ मित्रता की सन्धि की गई।

हमें इन सन्धियों और अंगरेज़ों की ओर से उनके हर बार के उल्लङ्घन को विस्तार से बयान करने की आवश्यकता नहीं है। कप्तान ईस्टविक साफ़ लिखता है—

“हम उस समय तक के लिए नित्यस्थायी मित्रता की कसम खा लेते थे, जब तक कि हमें देश पर कब्ज़ा करने और अपने मित्रों का नाश करने और उन्हें कैद कर लेने का सुविधाजनक अवसर न मिल जाय।”*

इसके बाद वह समय आया जब जनवरी सन् १८३१ में सर अलेक्ज़ेंडर बर्न्स, जो उस समय लेफ्टिनेण्ट बर्न्स था, महाराजा रणजीतसिंह के लिए उपहार लेकर सिन्ध पहुँचा। ऊपर एक अध्याय

* “... we swore perpetual amity until a convenient opportunity for appropriating the country, and the destruction and imprisonment of our allies.”—*Dry Leaves from Young Egypt*, p. 244.



सर अलेक्जेंडर बर्न्स—बोखारा की पोशाक में

[From the Life of Amir Dost Mohammad Khan, by Mohan Lal
vol. I, London 1846.]

में बयान किया जा चुका है कि उपहार ले जाने के बहाने बर्न्स और उसको भेजने वालों का गुप्त उद्देश सिन्धु नदी के मार्ग की याह लेना था। सर जेम्स मैकिण्टॉश लिखता है कि सिन्ध का एक हिन्दू व्यापारी, जिसका नाम दरियाना था, बराबर सिन्ध के अमीरों को आगाह करता रहता था कि अंगरेजों पर विश्वास न किया जाय और उन्हें मुल्क में घुसने न दिया जाय। वह अमीरों से कहता था—

“इस क़ौम ने जब कभी जिस किसी के साथ शुरू में दोस्ती की, अन्त में वे उसके दुश्मन साबित हुए, जिस देश में भी वे अत्यन्त मित्रता की प्रतिज्ञाएँ करते हुए घुसे उसी पर अन्त में उन्होंने कब्जा कर लिया।”*

सर जेम्स मैकिण्टॉश इस हिन्दू व्यापारी के विषय में लिखता है कि वह ‘एक चालाक कुत्ता’ था †।

सिन्ध के अमीर भी बर्न्स की इस सिन्धु यात्रा पर सन्देह करते थे। वे बर्न्स को इजाज़त देने के विरुद्ध बर्न्स की सिन्धु यात्रा थे। फिर भी अमीरों ने एशियाई तरीक़े पर बर्न्स और उसके साथियों की ख़ूब खातिर तवाज़ो की और उन्हें अन्त में जिस प्रकार बहका कर और डरा कर उनकी रज़ामन्दी हासिल कर ली गई, उसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। बर्न्स अपनी यात्रा के वृत्तान्त में लिखता है कि जिस समय वह महाराजा रणजीतसिंह के लिए उपहार लिए हुए अपने

* Sir James Mackintosh in his Journal, dated 9th February, 1812.

† “A shrewd dog.”

जहाज़ों में नदी के ऊपर की ओर चढ़ा चला जा रहा था, एक सिन्धी नदी के किनारे खड़ा हुआ अपने पास के साथी से कहने लगा—

“अफ़सोस ! सिन्ध अब जाता रहा, क्योंकि अंगरेज़ों ने दरिया का रास्ता देख लिया है, और यही सिन्ध को विजय करने का मार्ग है !”^१

कप्तान ईस्टविक लिखता है—

“यह पता लगा लिया गया कि सिन्धु नदी से जहाज़ जा सकते हैं; अमीरों के जवाहरात को देख कर और जो नज़रें उन्होंने अपने यूरोपियन मेहमानों को भेंट कीं उन्हें देख कर यह भी मालूम हो गया कि सिन्ध के अमीरों के पास ख़ूब धन है ।”^२

मित्रता बढ़ाने के लिए सन् १८३२ और सन् १८३४ में और नई नई सन्धियाँ की गईं । सिन्धु नदी से अंगरेज़ी जहाज़ों के आने जाने का अधिकार प्राप्त कर लिया गया । सन् १८३४ की सन्धि में लिखा गया—

“दोनों शक्तियाँ, जिनके बीच यह सन्धि हो रही है, प्रतिज्ञा करती हैं कि हम पीढ़ी दर पीढ़ी कभी भी एक दूसरे के इलाक़े को लोभ की दृष्टि से न देखेंगे ।”^३

* “Alas ! Sindh is now lost, since the English have seen the river which is the road to its conquest.”—Burnes' *Travels*, vol. iii.

† *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 249.

‡ “The two contracting powers bound themselves from generation to generation never to look with the eye of covetousness on the possessions of each other.”—Ibid p. 249.

इसके बाद २६ जून सन् १८३८ को अंगरेज कम्पनी, महाराजा रणजीतसिंह और शाहशुजा इन तीनों के बीच सिन्ध के विरुद्ध एक सन्धि हुई। इस सन्धि का जिक्र पहले सन्धि अफ़ग़ान युद्ध के सम्बन्ध में किया जा चुका है।

सिन्ध के अमीरों से इसमें कोई सलाह नहीं ली गई। फिर भी इस सन्धि में ऊपर ही ऊपर यह तय कर लिया गया कि सिन्ध के साथ अंगरेज जो भी व्यवहार करें शाहशुजा व रणजीतसिंह को कोई पतराज़ न होगा। इस सन्धि के विषय में इतिहास लेखक सर जॉन के लिखता है—

“२६ जून सन् १८३८ की उस घड़ी से सिन्ध के अमीरों का सर्वनाश शुरू होता है। उस घड़ी से ही वास्तव में सिन्ध के अमीरों की स्वाधीनता ख़त्म हो जाती है।”

उस समय तक जितनी सन्धियाँ सिन्ध के अमीरों के साथ की जा चुकी थीं वे सब अब रद्द करार दी गईं। अमीरों से ख़िराज़ की मांग अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करने के लिए अंगरेज़ी सेना सिन्ध भेज दी गई। सिन्ध के अमीरों से कहा गया कि इस सेना को अपने देश में से होकर अफ़ग़ानिस्तान जाने दो, कम्पनी के जहाज़ों के लिए जलाने की लकड़ी और मार्ग में सेना के लिए रसद इत्यादि का प्रबन्ध करो, मार्ग के ख़ास ख़ास क़िले अंगरेज़ी सेना के हवाले कर दो, और चूँकि यह युद्ध अफ़ग़ानिस्तान के पदच्युत बादशाह शाहशुजा को फिर से गद्दी पर बैठाने के लिए किया जा रहा है और चूँकि पहले किसी समय

सिन्ध अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह को ख़िराज दिया करता था, इस लिए युद्ध के खर्च के लिए २१ लाख रुपए नक़द और आइन्दा हमेशा के लिए ३ लाख रुपए प्रति वर्ष तुम अंगरेज़ कम्पनी को दिया करो, इत्यादि ।

इससे पूर्व सन् १८०६ की सन्धि के समय गवरनर जनरल स्वीकार कर चुका था कि अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह को सिन्ध के अमीरों से ख़िराज लेने का कोई हक़ नहीं । इसके अतिरिक्त सिन्ध के अमीरों ने इस समय अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह के लिखे हुए दो प्रतिज्ञापत्र पेश किए, जिन पर अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह के दस्तख़त और मोहर मौजूद थीं और जिनमें लिखा था कि भविष्य में सिन्ध के अमीरों से कभी किसी तरह का कोई ख़िराज न लिया जायगा ।*

किन्तु इनमें से किसी बात का कोई ख़याल नहीं किया गया ।

अंगरेज़ों की
ईमानदारी

सिन्ध के अमीरों से कहा गया कि अंगरेज़ों को इस समय ज़रूरत है और दोस्ती केवल इसी शर्त पर कायम रह सकती है कि तुम अंगरेज़ों की मदद करो । इस अनुचित व्यवहार पर इतिहास लेखक सर जॉन के लिखता है—

“और इसी का नाम अंगरेज़ों की ईमानदारी है X X X सबसे पहले अंगरेज़ों ने अपने वादों को तोड़ा । उन्होंने सिन्ध के अमीरों को सिखा दिया कि सन्धियों का केवल उस समय तक पालन करना चाहिए जिस

* Blue book, p. 31.

समय तक कि उनका पालन करने में फ़ायदा हो। X X X भेड़िए और मेमने के क्रिस्से में मेमने को खा जाने के लिए भेड़िए ने जो बहाने गढ़े वे उन बहानों से अधिक चतुराई के न थे जिनका अंगरेज़ सरकार ने अमीरों के साथ अपने समस्त व्यवहार में उपयोग किया।”*

जनवरी सन् १८३६ में हैदराबाद के अमीर नूरमोहम्मद ख़ाँ और क़त्तान ईस्टविक के बीच इस सम्बन्ध में जो बात चीत हुई उसका वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है।

सिन्ध का राज उस समय दो मुख्य भागों में बँटा हुआ था। ऊपर के भाग की राजधानी ख़ैरपुर थी। नीचे का हिस्सा हैदराबाद दरबार के शासन में था। दोनों में हैदराबाद के अमीर मुख्य समझे जाते थे। फिर भी हैदराबाद के अमीरों और ख़ैरपुर के अमीरों में प्रेम और समानता का व्यवहार था। दोनों एक ही कुल से थे। क़त्तान ईस्टविक की बात चीत हैदराबाद के तीनों अमीरों के साथ हुई थी। इसके बाद ख़ैरपुर के अमीर मीर रुस्तम ख़ाँ की बारी आई।

मीर रुस्तम ख़ाँ एक अस्सी वर्ष का बूढ़ा और अत्यन्त शान्ति-
 प्रिय बलूची नरेश था। हैदराबाद के अमीर,
 मीर रुस्तम ख़ाँ जिसका वह चचा लगता था, उसका बड़ा

* “ And this is British justice ! The British were the first to perpetrate a breach of good faith. They taught the Amirs of Sindh that treaties were to be regarded, only so long as it was convenient to regard them. . . . The wolf in the fable did not show greater cleverness in the discovery of a pretext for devouring the lamb than the British Government has shown in all its dealings with the Amirs. ”—Kaye, *The Calcutta Review*, vol. i. pp. 220-223

आदर करते थे। सर अलेक्जेंडर बर्न्स अपने यात्रा वृत्तान्त में लिखता है कि अमीर रुस्तम खाँ ने बड़े प्रेम और आदर भाव के साथ बर्न्स और उसके साथियों का स्वागत किया। उसने अपने बूढ़े वज़ीर फ़तहमोहम्मद खाँ गोरी को अस्सी मील, पालकियों, घोड़ों और उपहारों सहित बर्न्स का स्वागत करने के लिए भेजा। तीन सप्ताह तक उसने अंगरेज़ एलची का अपनी राजधानी में रोक कर उसकी खूब खातिरदारी की और बड़ी बड़ी दावतें हुईं। मीर रुस्तम खाँ के चरित्र के विषय में सर अलेक्जेंडर बर्न्स लिखता है कि उसकी बात चीत अत्यन्त मीठी थी, और वह स्वभाव से उदार, सुशील और सब पर विश्वास करने वाला मनुष्य था।*

मीर रुस्तम खाँ के साथ इससे पूर्व अंगरेज़ कम्पनी की यह स्पष्ट सन्धि हो चुकी थी कि सिन्धु नदी के दाईं ओर या बाईं ओर अंगरेज़ कभी किसी भी स्थान या क़िले पर क़ब्ज़ा करना न चाहेंगे। किन्तु अब अंगरेज़ों को अफ़ग़ान युद्ध की सफलता के लिए भक्खर का क़िला लेंने की आवश्यकता अनुभव हुई। यह क़िला सिन्धु नदी के बीच में एक टापू पर बना हुआ था। मीर रुस्तम खाँ ने पिछली सन्धि को याद दिलाई। गवर्नर जनरल ने लिखा कि केवल युद्ध के लिए कम्पनी को भक्खर के क़िले की आवश्यकता है और वादा किया कि अफ़ग़ान युद्ध समाप्त होते ही क़िला मीर रुस्तम खाँ को वापस कर दिया जायगा। ईस्टविक लिखता है कि इस गम्भीर और स्पष्ट वादे पर ही क़िला अंगरेज़ों

* Burnes' *Travels*, vol. iii.

के सुपुर्द कर दिया गया और गवरनर जनरल ने बड़ी प्रशंसा के शब्दों में अमीर मीर रुस्तम खाँ को धन्यवाद दिया। किन्तु यह क़िला फिर कभी भी मीर रुस्तम खाँ को वापस नहीं दिया गया।

२४ दिसम्बर सन् १८३८ को गवरनर जनरल के वादे के ऊपर १० धाराओं की एक नई सन्धि मीर रुस्तम खाँ के साथ और बहुत समझाने बुझाने के बाद ११ मार्च सन् १८३९ को १४ धाराओं की एक नई सन्धि हैदराबाद के अमीरों के साथ होगई।

जिस समय यह नई सन्धि अंगरेजों को और से पेश की गई तो उनमें से एक अमीर पिछली सब सन्धियाँ सामने रख कर कहने लगा—

“इन सब का अब क्या होगा ? जिस दिन से हमने पहली सन्धि की है, हमेशा कोई न कोई नई चीज़ पेश की जाती है। हम आपके साथ दोस्ती कायम रखना चाहते हैं, किन्तु हम इस प्रकार लगातार दिक़्र किया जाना नहीं चाहते। हमने आपकी सेना को अपने मुल्क में से रास्ता दे दिया और अब आप अपनी सेना को यहाँ कायम करना चाहते हैं X X X। ❀

फिर भी दोनों सन्धियाँ हो गईं।

खैरपुर की सन्धि में मुख्य मुख्य बात ये थी —

१—अंगरेज़ कम्पनी और खैरपुर दरबार में सदा के लिए मित्रता कायम रहेगी।

२—अंगरेज खैरपुर के राज की रक्षा करगे और खैरपुर दरबार हर काम में अंगरेजों की सहायता करेगा ।

३—अन्य विदेशी सल्तनतों के साथ खैरपुर के अमीर बिना कम्पनी की सलाह इत्यादि के किसी तरह का समझौता या पत्र व्यवहार न करेंगे ।

४—मीर रुस्तम खाँ के विरुद्ध अंगरेज उसके किसी रिश्तेदार या कुटुम्बी या प्रजा की कोई शिकायत न सुनेंगे और न राज के भीतर के मामलों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करेंगे ।

५—दोनों सरकारों के एलची एक दूसरे के दरबारों में रहा करेंगे, इत्यादि ।*

सन्धि पत्र पर दोनों ओर के हस्ताक्षर हो गए । अंगरेजी सेना ने भक्खर के किले पर कब्जा कर लिया । जगह जगह अंगरेजी छावनियाँ पड़ गईं । अंगरेज राजदूत खैरपुर के दरबार में पहुँच गए । बूढ़े और भोले मीर रुस्तम खाँ के साथ अंगरेजों का व्यवहार अब अधिकाधिक धृष्टता का होता गया । खैरपुर के बूढ़े और सम्मानित वज़ीरों का अपमान किया गया । नित्य नई ज़्यादतियाँ होने लगीं, जिनको विस्तार से बयान करना अनावश्यक है । ईस्ट-विक लिखता है—

“प्रत्येक ऐसा कार्य अर्थात् प्रत्येक इस प्रकार की ज़्यादती, जो हम बिना खतरे में पड़े कर सकते थे, हमने करनी शुरू कर दी । अधिक उग्र अन्याय, जिनमें यह साफ़ डर था कि हमें सिन्ध के साथ कुसमय युद्ध करना

* *Dry Leaves from Young Egypt*, pp. 252-53.

पड़ जायगा, उस समय तक के लिए मुलतवी कर दिए गए जिस समय तक कि सिन्ध में हमारा प्रभाव कायम न हो जाय, अर्थात् दूसरे शब्दों में जिस समय तक कि सिन्ध अंगरेजी सत्ता के अधीन न हो जाय । और इसी को हम मित्रता की सन्धि करना कहते हैं ।”*

सिन्ध के अन्दर अब तेज़ी के साथ उसी प्रकार की साजिशें शुरू हो गईं जिस प्रकार कि समय समय पर मीर अली मुराद भारत के अन्य समस्त राज दरबारों में की जा चुकी थीं । मीर रुस्तम खाँ के एक छोटे भाई मीर अलीमुराद को चुपचाप मीर रुस्तम खाँ के विरुद्ध फोड़ा गया । भारत से बड़े बड़े अभ्यस्त कूटनीतिज्ञ इस काम के लिए सिन्ध के दरबारों में पहुँचे । धीरे धीरे २४ दिसम्बर सन् १८३८ की सन्धि के स्पष्ट विरुद्ध अंगरेजों ने मीर अलीमुराद का पक्ष लेकर बात बात में मीर रुस्तम खाँ से झगड़ना शुरू किया ।

सिन्ध के अमीरों पर कई नए नए इलज़ाम लगाए गए । कहा गया कि हैदराबाद के अमीर मीर नसीर खाँ ने मुलतान के दीवान सावनमल को अंगरेजों के विरुद्ध कोई पत्र लिखा है । इसी प्रकार कहा गया कि मीर रुस्तम खाँ ने शेरसिंह को अंगरेजों के विरुद्ध एक पत्र लिखा है । इन पत्रों और इलज़ामों के विस्तार में हमें

* “ Every step, i.e., every encroachment that could be made without hazard was made ; and the more violent aggressions, which obviously could not be inflicted without risking an inopportune war, were suspended until our own influence should be substituted in Sindh ; in other words, until Sindh was reduced to a British dependency. And this is what we call making an alliance. ”—*Dry Leaves from Young Egypt*, pp. 253-54.

पड़ने की आवश्यकता नहीं है। इतिहास लेखक ईस्टविक, जिसे सिन्ध में अंगरेज़ों की राजनैतिक चालों का व्यक्तिगत अनुभव था, लिखता है—

“यह सारा मामला दोपहर की धूप से भी अधिक स्पष्ट है ? मीर अली-मुराद ने इन जाली पत्रों को तैयार किया था ।”*

उन सब पत्रों के जाली होने की ईस्टविक ने बड़ी विस्तृत दलीलें दी हैं, जिनकी बिना पर इस समय सिन्ध के अमीरों की रियासत छीनने की योजना की जा रही थी।

इस बीच ३ दिसम्बर सन् १८४० को हैदराबाद के अमीर नूरमोहम्मद खाँ की मृत्यु हो गई।

सिन्ध पर कब्ज़ा करने की अंगरेज़ों की प्रबल उत्कण्ठा के उस समय पाँच मुख्य कारण थे।

पहला और सबसे मुख्य कारण यह था कि इतने दिनों सिन्ध में रह कर अंगरेज़ नीतिज्ञ पता लगा चुके थे कि अमीरों के खज़ाने सोने, चाँदी और जवाहरात से लबालब हैं। सर चार्ल्स डिल्क लिखता है—

“अंगरेज़ क़ौम का निकास प्राचीन स्केनडिनेविया के समुद्री लुटेरों से है, सैकड़ों वर्षों की शिक्षा ने भी अंगरेज़ों के खून से उस दोष को दूर नहीं किया। भारत में पहुँचते ही हमें अपनी उत्पत्ति याद आ जाती है। वहाँ पर हमारे आदमी ज्योंही कि किसी देशी नरेश या हिन्दू महल पर दृष्टि

* “Why the whole matter is clearer than the Sun at noon ! Mir Ali Murad forged those letters. . . .”—*Dry leaves from Young Egypt*, by Eastwick, M. P., p. 259.

ढालते हैं, तुरन्त वे विवश होकर चिल्ला पड़ते हैं, 'सैंध लगाने के लिए यह कैसी अच्छी जगह है !' या 'लूटने के लिए यह कैसा अच्छा मनुष्य है ?'*

दूसरा कारण यह था कि सिन्ध पर कब्ज़ा करके कभी भी आवश्यकता के समय सिन्धु नदी के ज़रिये भारत की उत्तर पश्चिमी सीमा पर फौज भेजी जा सकती थी। लॉर्ड एलेनब्रु ने ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन के नाम अपने पत्रों में इस कारण को बयान किया है।

तीसरा कारण रूस इत्यादि के हमले से अपने भारतीय साम्राज्य को सुरक्षित रखने की चिन्ता थी।

चौथा कारण इतिहास लेखक सर जॉन के ने निम्न लिखित शब्दों में बयान किया है—

“किन्तु सिन्ध के अमीरों को इस प्रकार दण्ड देने का असली कारण यह था कि हाल में अफ़ग़ानों ने अंगरेजों को दण्ड दिया था। अपनी महान राजनैतिक यात्रा के इस अवसर पर अंगरेजों को आवश्यक मालूम हुआ कि संसार को यह दिखा दिया जाय कि अंगरेज भी किसी न किसी को पीट सकते हैं, इसीलिये सिन्ध के अमीरों को पीटने का निश्चय किया गया।

X X X गवरनर जनरल ने तय कर लिया कि उन अमीरों को इस उदार नीति का शिकार बनाया जाय, जिन्होंने कि कुछ महीने पहले ऐसे अवसर पर

* “It is in India we begin to remember our descent from Scandinavian sea-king robbers. Centuries of education have not purified the blood; our men in India can hardly set eyes on a native prince or a Hindoo palace before they cry, ‘What a place to break up!’ ‘What a fellow to loot!’”—*Greater Britain*, by Sir Charles Dilke.

हमारी सेना को छोड़ दिया था, जिस अवसर पर यदि वे चाहते तो उसे निर्मूल कर सकते थे।”❀

ड्यूक ऑफ वेलिङ्गटन ने ३० मार्च सन् १८४२ को एक पत्र में लॉर्ड एलेनब्रु को सलाह दी कि अफ़ग़ानिस्तान की हार और शर्म को दूर करने और अंगरेजों की कीर्ति फिर से कायम करने के लिए किसी न किसी भारतीय नरेश पर फ़ौरन् हमला करके उसके राज को कम्पनी के इलाक़े में मिला लिया जाय।

पाँचवाँ कारण मुसलमानों के प्रति एलेनब्रु का विशेष द्वेष और उन पर उसका अविश्वास था।

लॉर्ड एलेनब्रु ने २२ मार्च सन् १८४३ को ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन के नाम एक पत्र लिखा जिसमें उसने स्पष्ट स्वीकार किया है कि सिन्ध के अमीरों पर पत्र व्यवहार के सम्बन्ध में जो इलज़ाम लगाए गए थे वे बे बुनियाद थे। कुछ दिनों बाद इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सामने भी यह बात साबित हो गई कि वे सब पत्र जाली थे।

• “But the real cause of this chastisement of the Amirs consisted in the chastisement which the British had received from the Afgans. It was deemed expedient at this stage of the great political journey, to show that the British could beat some one, and so it was determined to beat the Amirs of Sindh . . . the Governor-General resolved, that the Amirs who a few months before had spared our army, when they might have annihilated it, should be the victims of this generous policy.”—Sir John Kaye in *the Calcutta Review*, vol. i, p. 232

फिर भी २६ अगस्त सन् १८४२ को लॉर्ड एलेनब्रु ने सिन्ध के
 अमीरों को दण्ड देने के लिए जनरल नेपियर
 साज़िश पकड़ी को एक विशाल सेना देकर सिन्ध भेज दिया।
 करना

६ सितम्बर सन् १८४२ को सर चार्ल्स नेपियर सिन्ध
 पहुँचा। हैदराबाद होते हुए वह अलीमुराद के साथ साज़िश पकड़ी
 करने के लिए संस्कार पहुँचा। ईस्टविक लिखता है कि—“तुरन्त
 अंगरेज़ सेनापति ने अलीमुराद के पास उसके हौसले को बढ़ाने के
 लिये पत्र भेजे। अंगरेज़ सेनापति ने पहले मीर हुसैन खाँ से गद्दी
 छीनने का सङ्कल्प कर लिया। उसने × × × उस बूढ़े अमीर को,
 जो अंगरेजों का मित्र था, पदच्युत करने और उसका राज छीन
 लेने का इरादा कर लिया।”*

नेपियर की सेना के मार्ग में न रोके जाने का कारण यह था
 कि अभी तक नेपियर ऊपर से अमीरों के साथ मित्रता को दुहाई
 दे रहा था। १ दिसम्बर सन् १८४२ को अचानक सिन्ध में एक
 एलान प्रकाशित किया गया, जिसमें पूर्वोक्त जाली पत्रों की बिना
 पर लोगों को यह सूचना दी गई कि रोहरी से लेकर सबज़लकोट
 तक का मीर हुसैन खाँ का इलाका कम्पनी सरकार ने ज़ब्त कर
 लिया। कप्तान ईस्टविक और करनल ऊटरम दोनों ने अपनी अपनी
 पुस्तकों में इस घोर अन्याय को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है।
 मीर हुसैन खाँ या अन्य अमीरों को जवाबदेही का कोई मौका
 नहीं दिया गया, न उन्हें उनके अपराध की सूचना तक दी गई।

अलीमुराद के ज़रिये अनेक झूठी सच्ची शिकायतें मीर रुस्तम खाँ के विरुद्ध जमा कर ली गईं। कप्तान ईस्टविक लिखता है कि —

“जनरल नेपियर ने खुले तौर पर यह प्रकट किया कि मुझे अमीरों को दमन करने के लिए किसी बहाने की आवश्यकता है; फिर इसमें क्या आश्चर्य हो सकता है कि कुछ न कुछ इस प्रकार के अधम और नीचतम लोग मिल गए, जिन्होंने अपने नरेशों के दुर्व्यवहार की शिकायत की, या अलीमुराद के एजेंटों ने इस सार्वजनिक प्रोत्साहन से लाभ उठा कर जाल साजियाँ शुरू कर दीं ?”❧

हैदराबाद के अमीरों के विरुद्ध भी २४ इलज़ामों की एक सूची तैयार कर ली गई, जिनके विषय में ईस्टविक लिखता है —

“ये सब थोथे इलज़ाम थे जो केवल एक बहाना ढूँढ़ने के लिए गढ़ लिए गये थे।”†

७ दिसम्बर को बिना अमीरों से बात चीत किए सर चार्ल्स नेपियर ने रोहरी से सब्ज़लकोट तक के इलाके पर कब्ज़ा करने के लिए अपनी फ़ौज को तैयार करना शुरू किया। १४ दिसम्बर को अमीर

* “The general openly avowed his anxiety to obtain a pretext for coercing them ; and can we wonder that there were found—among the basest and lowest of the people—some to complain of ill-treatment at the hands of their rulers, or that the agents of Ali Murad should have taken advantage of such a general encouragement for their fabrications ?”—*Dry Leaves from Young Egypt*, p. 267.

† “Trivolous accusations, which were concocted for the simple purpose of making out a case.”—*Ibid*, p. 269.

रुस्तम खाँ ने सर चार्ल्स नेपियर को पत्र लिखा कि आपसं जो शिकायतें की गई हैं वे सब झूठी हैं और मैं पूर्ववत् अंगरेजों के साथ मित्रता कायम रखने के लिए उत्सुक हूँ। इस समय एक और नई बात उड़ाई गई कि मीर रुस्तम खाँ ने कहीं पर अंगरेजों की डाक लुटवा दी। कप्तान ईस्टविक साफ़ लिखता है कि यह डाक लूटने का काम अलीमुराद के ज़रिए कराया गया था, ताकि मीर रुस्तम खाँ पर एक और झूठा इलज़ाम लगाया जा सके। इस पर ईस्टविक के शब्द हैं —

“यह देख कर कि वे लोग, जो अपने को अंगरेज़ कहते थे, इन असभ्य और द्वेषपूर्ण झूठी बातों को सहन करते थे, हम लज्जा और घृणा से मर जाते हैं।”*

गवर्नर जनरल के नाम सर चार्ल्स नेपियर के इस समय के पत्र वास्तव में घृणित और अकथनीय छुलों से भरे हुए हैं।

करनल ऊटरम स्पष्ट लिखता है —

“बूढ़े नरेश रुस्तम खाँ ने या उसके किसी भाई ने कभी किसी अंगरेज़ के सर के बाल तक का हानि न पहुँचाई थी; इसके विपरीत, उन्होंने उस समय जब हमें सबसे बड़ी आवश्यकता थी, अपना देश और माल हमारी सेवा के लिए उपस्थित कर दिया था।”†

* “One feels sick with shame and disgust that such barbarous and malignant falsehoods could be winked at by men calling themselves Englishmen.”—Ibid, p. 271.

† “Neither the venerable Prince, . . . nor any of his brethren had ever injured the hair of a head of any British subject; but they, had in the hour of our greatest need, placed their country and its resources, असूरी ला दू

मीर हुस्तम खाँ ने फिर भी शान्ति से निबटारा करना चाहा ।

उसने कई बार सर चार्ल्स नेपियर से मिलने की
 हुस्तम खाँ की इच्छा प्रकट की, किन्तु नेपियर ने स्वीकार न
 सुलह की इच्छा किया ।

अलीमुराद के विश्वासघात और अंगरेजी सेना की सहायता
 से अब बूढ़े अमीर हुस्तम खाँ को अनेक प्रकार की आपत्तियों में
 डाला गया, उसका तरह तरह से अपमान किया गया ।

इस बीच सक्कर से जनरल नेपियर ने कप्तान स्टैनली को एक
 नया सन्धि पत्र देकर हैदराबाद के अमीरों के पास भेजा ।
 इस सन्धि पत्र की शर्तें बहुत अपमानजनक थीं । हैदराबाद के
 अमीरों ने नए सन्धि पत्र को देख कर बातचीत के लिए अपने दूत
 नेपियर के पास भेजे । नेपियर ने दूतों से बात करने तक से इनकार
 कर दिया । इसी बीच नेपियर ने अपनी सेना और तोपों सहित
 अकारण खैरपुर पर चढ़ाई की और बूढ़े हुस्तम खाँ से कहला भेजा
 कि यदि आप अपनी जान बचाना चाहते हैं तो शीघ्र खैरपुर छोड़
 कर हैदराबाद चले जाइये, मैं वहीं आकर अन्य अमीरों के साथ
 आपसे बातचीत करूँगा । बूढ़े हुस्तम खाँ को नगर छोड़ कर
 अपनी स्त्रियों और बच्चों सहित ऊँटों पर बैठ कर हैदराबाद की
 ओर भाग जाना पड़ा ।

मीर रुस्तम खाँ की आयु इस समय ८५ वर्ष की थी। ईस्ट-
विक दुख के साथ लिखता है कि—

अमीरों पर
अत्याचार

“हमने खानदानी नरेशों के विरुद्ध, जो कि हमारे
मित्र थे, अनेक झूठी बातों के आधार पर उनका सर्वस्व
छीन लिया, उन्हें जगह जगह भगाया, उन्हें क़ैद में डाल दिया, यहाँ तक
कि सिवाय मौत के और उनके पास इस आपत्ति से छुटकारा पाने का कोई
उपाय न रहा।”

नेपियर की सेना ने खैरपुर के नगर को लूटा। इसके बाद
नेपियर ने इमामगढ़ के किले पर हमला किया, किले
लूट को तोड़ डाला और नगर को लूट लिया। इमामगढ़ के
बाद नेपियर ने हैदराबाद की ओर बढ़ना शुरू किया।

समाचार पाते ही हैदराबाद के अमीरों ने नेपियर के पास
हैदराबाद के
अमीर फिर अपने दूत भेजे। नए सन्धि पत्र पर हस्ता-
क्षर कर देने की रज़ामन्दी प्रकट की और
नेपियर से प्रार्थना की कि आप हैदराबाद की
ओर बढ़ कर वृथा रक्तपात से देश को बरबाद न कीजिये।
खैरपुर और हैदराबाद के बीच में नौशहरा नामक स्थान पर इन
दूतों ने नेपियर से भेंट की। नेपियर ने दूतों के उत्तर में उन्हें
हैदराबाद के अमीरों के नाम एक पत्र दिया, जिसमें लिखा था कि
आप मीर रुस्तम खाँ को हैदराबाद बुला लीजिए, मैं मेजर ऊटरम
को यहाँ से भेजता हूँ, मेजर ऊटरम वहाँ पर मीर रुस्तम खाँ के

विषय में भी सब बातें तय कर देगा और नए सन्धि-पत्र पर आपके दस्तखत भी करा लेगा, मैं अभी हैदराबाद की ओर न बढ़ूंगा।

८ फरवरी सन् १८४२ को मेजर ऊटरम हैदराबाद पहुँचा। मेजर ऊटरम के कहने के अनुसार अमीरों ने युद्ध से बचने की इच्छा से अपनी मोहरें मेजर ऊटरम के हवाले कर दीं।

किन्तु नेपियर बराबर अपनी सेना सहित हैदराबाद की ओर बढ़ता रहा। हैदराबाद के निकट बलूचियों में हैदराबाद की ओर अंगरेजी सेना खलबली मच गई। हैदराबाद के अमीरों ने मेजर ऊटरम से कहा कि आप अपना आदमी भेज कर जनरल नेपियर को रोकिए, नहीं तो बलूची प्रजा में बेचैनी बढ़ रही है। सन्धि के लिए हमारी मोहरें आपके हाथ में हैं।

मेजर ऊटरम ने स्वीकार कर लिया और अपनी ओर से एक अंगरेज़ इस काम के लिए मीर नसीर खाँ के पास भेजा। मीर नसीर खाँ ने ६ फरवरी की रात को इस अंगरेज़ को एक तेज़ ऊँट के ऊपर नेपियर के पास रवाना किया। १२ फरवरी को सिन्धी ऊँट वाले ने मीर नसीर खाँ को आकर सूचना दी कि ऊटरम के दूत और जनरल नेपियर में मुलाकात होगई किन्तु जनरल नेपियर बजाय रुक जाने के अपनी सेना सहित हैदराबाद की ओर बढ़ने लगा।

मीर नसीर खाँ ने तुरन्त ऊटरम को इसकी सूचना दी। उसी दिन तीसरे पहर ऊटरम अमीरों से आकर मिले। ऊटरम ने शपथ खाकर मीर नसीर खाँ को विश्वास दिलाया कि जनरल नेपियर का

ऊटरम के वादों
पर विश्वास

उद्देश युद्ध करना या अमीरों का राज छीनना नहीं है। ऊटरम ने अमीरों से कहा कि आप सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर कर दीजिए, मैं इसी समय जनरल नेपियर के नाम एक पत्र लिख कर आपको दे दूँगा, आप उस पत्र को अपने आदमियों के हाथ नेपियर के पास भेज दीजिए, नेपियर तुरन्त हैदराबाद की ओर आने का इरादा छोड़ कर उत्तर की ओर लौट जायगा।

अमीरों ने स्वीकार कर लिया। उन्होंने नेपियर के भेजे हुए सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। इस सन्धि-
दगा पत्र पर अमीर की मुहरें भी लगा दी गईं।

ऊटरम ने नेपियर के नाम पत्र लिख कर मीर नसीर खाँ के हवाले किया। तुरन्त एक तेज़ साँड़नी सवार के हाथों यह पत्र नेपियर के पास भेजा गया। साँड़नी सवार ने लौट कर फिर यही आश्चर्यजनक सूचना दी कि ऊटरम के पत्र को पाने के बाद भी जनरल नेपियर ने पूर्ववत् सेना सहित हैदराबाद की ओर अपनी चढ़ाई जारी रखी।

इस बीच वृद्ध मीर रुस्तम हैदराबाद पहुँच चुका था। उसकी विपत्तियों को देख कर हैदराबाद की प्रजा और सेना में क्रोध बढ़ता जा रहा था।

इसी समय जनरल नेपियर ने अपनी यात्रा में एक बूढ़े निरपराध बलूची सरदार हयात खाँ को, जो हैदराबाद की ओर आ रहा था पकड़ कर कैद कर लिया। नगर के अन्दर कुछ बलूचियों

ने मेजर ऊटरम पर इसका बदला उतारना चाहा, किन्तु अमीर नसीर खाँ ने उन्हें समझा बुझा कर शान्त कर दिया।

हैदराबाद के अमीरों ने जनरल नेपियर को फिर एक पत्र भेजा,
 जिसमें उससे पूछा कि हमारे सन्धि पत्र पर
 अमीरों का हस्ताक्षर कर देने के बाद भी आप सेना लेकर
 नेपियर से प्रश्न हैदराबाद की ओर क्यों आ रहे हैं। नेपियर ने

कोई उत्तर न दिया, वह बराबर हैदराबाद की ओर बढ़ता रहा। करीब पाँच हजार बलूची नेपियर के मुकाबले के लिये हैदराबाद के नगर के बाहर जमा हो गए। अमीर नसीर खाँ ने १५ फरवरी को सवेरे फिर अपने महल से निकल कर इन क्रुद्ध बलूचियों को शान्त करने का प्रयत्न किया और कहा कि मैं कल फिर अपना एक वकील नेपियर के पास भेजूँगा और प्रयत्न करूँगा कि बिना प्रजा के रक्तपात और बरबादी के शान्ति से सब मामला तय हो जाय।

उसी दिन दोपहर को मेजर ऊटरम के सिपाहियों के साथ कुछ बलूचियों का झगड़ा होगया, जिसमें दो बलूची
 बलूचियों में रोष और ऊटरम का एक सिपाही तीन आदमी मारे गए। मेजर ऊटरम ने इस पर नगर छोड़ कर एक जहाज में आश्रय लिया। बलूचियों ने दो अंगरेज सिपाहियों को कैद कर लिया। मीर नसीर खाँ और मीर मोहम्मद खाँ ने दोनों गोरे सिपाहियों को खाना खिला कर फिर स्वतन्त्र कर दिया।

मीर नसीर खाँ का दूसरा वकील अभी सर चार्ल्स नेपियर से



अमीर नसीर खाँ और उसके दो बेटे

[From "Dry Leaves from Young Egypt " by Eastwick]

मिलने भी न पाया था कि १७ फ़रवरी सन् १८४३ को मियानी नामक स्थान पर अमीरों की इच्छा के विरुद्ध नेपियर की मियानी का संग्राम सेना में और उन बलूचियों में जो हैदराबाद की रक्षा के लिये जमा हो गए थे, संग्राम शुरू हो गया। मीर नसीर खाँ का बयान है कि पहला बार नेपियर की ओर से हुआ। इन पाँच हजार बलूचियों के अतिरिक्त नसीर खाँ के पास हैदराबाद के क़िले के अन्दर उस समय करीब १२ हजार बलूची सेना और थी। किन्तु मीर नसीर खाँ ने ऊटरम के बार बार यह विश्वास दिलाने पर कि नेपियर का इरादा शत्रुता करना या अमीरों का राज छीनना नहीं है, उन्हें नेपियर के विरुद्ध शस्त्र उठाने से रोके रक्खा।

फिर भी मियानी के मैदान में सुबह चार बजे से लेकर सायंकाल तक अत्यन्त घमासान संग्राम हुआ। बलूचियों की वीरता अंगरेजों की ओर कुछ गोरी और शेष हिन्दोस्तानी पलटनें थीं। बलूचियों ने अपनी बन्दूकें फेंक कर तलवारों और ढालों से मुकाबला करना शुरू किया। एक दूसरे के बाद अनेक अंगरेज अफ़सर और सहस्रों अंगरेज सिपाही मैदान में कट कट कर गिरने लगे। बार बार अंगरेजी सेना को हार कर पीछे हट जाना पड़ा। बलूचियों ने इस वीरता के साथ सामना किया और अंगरेजों की ओर हताहतों की संख्या इतनी बढ़ गई कि मेजर बेडिङ्गटन, जो इस समय संग्राम में उपस्थित था,

लिखता है कि एक बार जनरल नेपियर को भी अंगरेज़ों की विजय में सन्देह हो गया ।*

मियानी के बचे हुए अनेक अंगरेज़ अफ़सरों ने बलूचियों की वीरता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है । करनल अमीरों के कारण वेडिङ्गटन लिखता है कि एक स्थान पर केवल अंगरेज़ों की विजय पचास क़दम के अन्दर चार सौ लाशें गिनी गईं । किन्तु अंगरेज़ी सेना की संख्या इन बलूचियों से कहीं अधिक थी । बलूचियों की ओर कोई विशेष नेता भी न था । हैदराबाद के अमीर अभी तक कायरतावश या शान्तिप्रियतावश क़िले के अन्दर बैठे हुए शान्ति के साथ समस्त मामले का निबटारा करने का स्वप्न देख रहे थे । क्योंकि इस बीच मेजर ऊटरम बराबर अपने को अमीरों का दोस्त बता कर उन्हें यह समझा रहा था कि यदि आप शान्ति कायम रखें तो आपका राज आपके हाथों में पूर्ववत् कायम रहेगा । मीर नसीर खाँ मैदान में पहुँचा, किन्तु अपने योधाओं को प्रोत्साहित करने के लिए नहीं, वरन् उन्हें समझा बुझा कर वापस करने के लिए । अन्त में इतिहास लेखक टॉरेन्स के अनुसार ६,००० † वीर बलूचियों की लाशों के ऊपर से १७ फ़रवरी की रात को मियानी के मैदान को तय करते हुए विजयी अंगरेज़ी सेना ने अगले दिन सुबह हैदराबाद में प्रवेश किया ।

* *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 353.

† *Torrens' Empire in Asia*, etc., on the Amirs of Sindh.

अंगरेज़ सेनापतियों के बयानों और प्रकाशित सरकारी रिपोर्टों में भूठ की मात्रा इतनी अधिक है कि अंगरेज़ अंगरेज़ी सेना के हताहत सेना के हताहतों की ठीक संख्या का पता नहीं चलता। जनरल नेपियर लिखता है कि अंगरेज़ी सेना कुल १,७०० थी, मेजर वेडिङ्गटन इसके विरुद्ध दलीलें देता हुआ लिखता है कि अंगरेज़ी सेना ३,००० थी और मियानी के संग्राम में जीवित बचे हुए जिन अफ़सरों और सिपाहियों में लूट मार का माल बाँटा गया, केवल उनकी संख्या सरकारी रिपोर्ट से अनुसार ४,८५६ थी। जो हो इसमें सन्देह नहीं, कम्पनो के हजारों गोरे और देशी सिपाही और अफ़सर मियानी के मैदान में काम आए।

सर रिचर्ड बर्टन ने मियानी के संग्राम में अंगरेज़ों की विजय के सम्बन्ध में एक और रहस्य प्रकट किया है। अंगरेज़ों की विजय वह लिखता है :—

का रहस्य “न तो उस समय के इतिहास लेखकों से हमें इस बात का पता चलता है, और न हम सरकारी कागज़ों से इस बात के जानने की आशा कर सकते हैं कि जिस दोगले अफ़सर के सुपुर्द सिन्ध के अमीरों की तोपें थीं उसे किस प्रकार अपनी ओर फोड़ कर तोपों के मुँह इतने ऊँचे करवा दिए गए जिससे गोले अंगरेज़ी सेना को बचा कर दूर जाकर गिरें, न यह पता चलता है कि किस प्रकार टालपुर का वह देशघातक, जोकि अमीरों की सवार सेना का प्रधान सेनापति था, खुल्लम खुल्ला अपनी सेना को मैदान से हटा ले गया, और उसने मैदान से निर्लज्ज होकर भागने की मिसाल दूसरों के

लिए कायम कर दी। जब कभी वह दिन आएगा कि हिन्दोस्तान के अन्दर गुप्त सेवाओं के लिए जो धन व्यय किया जाता है, उसका व्यौरेवार हिसाब छापा जायगा तब लोगों को अजीब अजीब बातों का पता चलेगा। इस बीच हममें से जो लोग अपनी ज़िन्दगी में यह देख चुके हैं कि इतिहास किस प्रकार लिखा जाता है, वे इस इतिहास का एक घटिया उपन्यास से अधिक मूल्य नहीं कर सकते।”*

इससे मालूम होता है कि भारतवासियों के समान वीर बलूची भी १७ फरवरी को अंगरेजों की चाँदी की गोलियों का शिकार होने से न बच सके !

१८ फरवरी को सवेरे नगर में प्रवेश करने के बाद जनरल नेपियर ने मेजर ऊटरम की मौजूदगी में मीर अमीर द्वारा बलूची सेना की बर्खास्तगी नसीर खाँ को फिर यह विश्वास दिलाया कि सिन्ध के अमीरों की सल्तनत उन्हें वापस दे दी जायगी, इस शर्त पर कि आप अपनी सेना को बरखास्त कर दें और उन्हें नगर से बाहर कर दें। मालूम होता है कि नसीर खाँ के दिल से अब भी अंगरेजों का विश्वास न हटा

* “Neither of our authorities tell us, nor can we expect a public document to do so, how the mulatto who had charge of the Amirs’ guns had been persuaded to fire high and how the Talpur traitor who commanded the cavalry, openly drew off his men and showed the shameless example of flight. When the day shall come to publish details concerning disbursement of ‘Secret Service money in India’ the public will learn strange things. Meanwhile those of us who have lived long enough to see how history is written, can regard it as but little better than a poor romance.”—*Life of Sir Richard Burton*, by Lady Burton, p. 141.

था। नसीर खाँ ने स्वीकार कर लिया, उसने अपनी बलूची सेना को बरखास्त कर दिया। किन्तु बलूची सेना के बरखास्त करते ही नेपियर ने मीर नसीर खाँ, मीर शहदाद खाँ और मीर रुस्तम खाँ को कैद कर लिया। इसके तीन दिन बाद जनरल नेपियर ने एक पलटन सवार, एक पलटन पैदल, दो तोपों और कुछ अंगरेज़ अफ़सरों सहित हैदराबाद के क़िले में प्रवेश किया।

नेपियर ने कैदी मीर नसीर खाँ से यह कहला भेजा कि मैं केवल क़िले को देखना चाहता हूँ, आप अपने ज़नानख़ानों पर कुछ आदमी साथ कर दीजिये। मीर नसीर खाँ ने दीवान मिठाराम, बहादुर ख़िदमतगार और अख़ूंद बाचाल को नेपियर के पास भेज दिया। जो हृदय विदारक दृश्य अब हैदराबाद के क़िले के अन्दर देखने में आया उसमें हम ठीक ठीक दीवान मिठाराम ही के मर्मस्पर्शी शब्दों में नीचे उद्धृत करते हैं। दीवान मिठाराम ने अपने बयान में जिन जिन अंगरेज़ अफ़सरों के नाम दिये थे, कप्तान ईस्टविक ने अपनी पुस्तक में उनके नामों का स्थान छोड़ कर केवल 'साहब' सामने लिख दिया है। हम यह बयान कप्तान ईस्टविक की पुस्तक से ज्यों का त्यों उद्धृत कर रहे हैं। दीवान मिठाराम लिखता है—

“इसके बाद—साहब दूसरे अफ़सरों और सिपाहियों के साथ परलोक-वासी मीर करमअली खाँ के ज़नानख़ाने में गया, उसने मिरज़ा खुसरो-बेग का गला पकड़ कर उसका अपमान किया, और उसे आज्ञा दी कि ज़नानख़ाने में जो कुछ धन और ज़ेवर हैं वे हमारे हवाले कर दें। इन

ज़ेवरों की कीमत १५ लाख रुपए थी। मीर करमअली की बेगमों ने यह दृश्य देख कर—साहब से कहला भेजा कि आप हमें पालकियाँ दिलावा दीजिए और केवल बदलने के लिए तीन तीन जोड़ी कपड़े हर एक के साथ देकर हमें शहर से निकल जाने दीजिये।—साहब ने इनकार कर दिया, मुन्शी अलीअकबर के साथ वह ज़बरदस्ती ज़नानख़ाने में घुस गया, वहाँ पर स्त्रियों के जितने ज़ेवर, जवाहरात, सोने चाँदी के बरतन और कपड़े इत्यादि मिले उसने सब लूट लिये, और जो ज़ेवर स्त्रियाँ अपनी कमर के नीचे और पैरों पर पहने हुई थीं उन तक को उसने खींच कर उतार लिया। अभागी स्त्रियाँ भय और लज्जा के मारे नगर से भाग कर पैदल हैदराबाद से पाँच कोस दूर कहतर पहुँच गईं। और—साहब और—साहब और—साहब ने अमीर मीर नूरमोहम्मद ख़ाँ के ज़नानख़ाने में प्रवेश किया, और उन्हें इसी तरह लूटा, यहाँ तक कि वहाँ की स्त्रियाँ भी इसी प्रकार विवश होकर अपने घरों से भाग कर कुछ दिन बाद पैदल कहतर पहुँच गईं। २२ फ़रवरी सन् १८४३ का अमीर मीर मोहम्मद ख़ाँ को क़िले से लाकर अंगरेज़ी कैम्प में कैद कर दिया गया, उसके ज़नानख़ाने में भी इसी प्रकार ज़बरदस्ती घुस कर उसे लूट लिया गया। इसके बाद मीर सोबदार की बेगमों को लूटा गया, वे पैदल भाग कर होसरी चली गईं।—साहब ने मीर सोबदार के लड़के फ़तहअली ख़ाँ से दो कीमती कढ़े माँगे, जो दे दिए गये। मीर सोबदार के ज़नानख़ाने की एक स्त्री ने कुछ रुपये अपने कमरबन्द में बाँध लिए थे। भागते समय इनमें से कुछ रुपये गिर पड़े, तुरन्त उस स्त्री को पकड़ लिया गया, उसका कमरबन्द काट दिया गया, और रुपये उससे ले लिए गए। इसके बाद एक एक स्त्री को अलग ले

जाकर उसके हाथों, पैरों, नाक और कान से सब ज़ेवर उतार लिए गए। इसके बाद क़िले में बाहर से आना बन्द कर दिया गया, परलोकवासी मीर नूरमोहम्मद खाँ और मीर नसीर खाँ की स्त्रियाँ अभी उस समय तक क़िले ही में थीं, दो दिन तक उन्हें लगभग बिना पानी के रक्खा गया। मीर नसीर खाँ के बेटे मीर हुसैनअली खाँ और मीर अब्बासअली खाँ क़िले में कैद थे। उन्होंने एक आदमी को—साहब के पास पानी के लिए भेजा। उत्तर मिला कि सर चार्ल्स नेपियर की आज्ञा है कि जिस किसी को पानी पीना हो, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, उसे गारद के कमागिडङ्ग अफ़सर के बँगले पर जाकर पानी पीना होगा। पूर्वोक्त अमीरों के ज़नानखानों में नौकर चाकर मिला कर कुल पाँच सौ प्राणी थे। अन्त में बड़ी कठिनाई के बाद इन पाँच सौ मनुष्यों के लिए एक मश्क पानी दिया गया, जिससे सब ने अपने गले गीले कर लिए, प्यास किसी की न बुझ सकी। थोड़ी देर बाद—साहब और—साहब कुछ सिपाही लेकर इन ज़नानखानों के दरवाज़ों पर पहुँचे। दरवाज़े बन्द थे, इन लोगों ने कुल्हाड़ों से दरवाज़ों को तोड़ा और वहाँ की स्त्रियों के सब ज़ेवर मँगो। स्त्रियों का विवश होकर अपने सब ज़ेवर उतार देने पड़े। अगले दिन—साहब ने आकर ज़नानखाने का शेष सब सामान निकाल लिया। एक स्त्री ने बच कर निकल जाना चाहा। अकस्मात् वह रेशमी पाजामा पहने हुए थी; क़िले के दरवाज़े पर सिपाहियों ने उसे रोक लिया और उसके सब कपड़े उतरवा लिए। परलोकवासी नूर मोहम्मद खाँ की बेगम ने कुछ कपड़े अपनी एक दासी को दिए कि इन्हें बेच कर मेरे लिए कुछ खाना ले आओ।—साहब के मुन्शी ने उस स्त्री को पकड़ कर उसे पीटा और उससे कपड़े छीन लिए। इसके बाद दो (अंगरेज़)

औरतें क़िले के फाटक पर बैठा दी गईं, और भीतर से जो स्त्री बाहर जाती थी ये दोनों औरतें उसकी तलाशी लेती थीं। सारांश यह कि अमीरों की एक एक चीज़ लें ली गई, उनका सर्वस्व लूट लिया गया ! इसके बाद मीर सोबदार ख़ाँ को बाहर लाकर अंगरेज़ी कैम्प में क़ैद कर दिया गया, और पहले दिन मीर नसीर ख़ाँ के बेटों को जो तलवारें दी गई थीं वे उनसे छीन ली गईं। इसके बाद मिरज़ा ख़ुसरो बेग का मकान लूटा गया और उसे ले जाकर अंगरेज़ी कैम्प में क़ैद कर दिया गया। मिरज़ा ख़ुसरो बेग को फिर क़िले में वापस लाया गया। वहाँ पर उसे इतनी बुरी तरह पीटा गया कि वह बहुत देर तक बेहोश रहा। जब उसे होश आया तो बाँध कर फिर अंगरेज़ी कैम्प में पहुँचा दिया गया और वहाँ पर क़ैद कर दिया गया।”*

इतिहास लेखक जे० बी० फ़ैरियर दीवान मिठाराम के इस कथन का पूरी तरह समर्थन करता है।†

एक और अङ्गरेज़ अफ़सर जो १८५७ के विद्रोह में लड़ा था, और जिसका बाप उस समय सिन्ध में जनरल महलों की लूटका नेपियर के साथ था, लिखता है कि विजयी तख़मीना अङ्गरेज़ों ने सिन्ध की बेगमों के कानों और उनकी नाकों से इस बेदरदो के साथ बालियाँ इत्यादि उतारीं कि उनके नाक और कान बुरी तरह कट गए।‡

* Translated from the English translation of Diwan Mitharam's Statement etc., published in, *Dry Leaves from Young Egypt*, by W. J. Eastwick, an ex-political, sometime M. P., pp. 342-44.

† *History of the Afghans*, by J. P. Ferrier, translated by Captain Jesse, London, John Murray, 1858, p. 287.

‡ “The harem ladies were not only plundered of their ornaments they

मीर नसीर खाँ का बयान है कि हैदराबाद के महलों की समस्त लूट का मूल्य करीब अठारह करोड़ रुपए था। यह सब धन जहाज़ों में बन्द करके बम्बई भेज दिया गया।

सिन्ध पर अंगरेजों का कब्ज़ा हो गया। मीर रुस्तम खाँ के राज का एक भाग विश्वासघातक अलीमुराद को दे दिया गया। शेष समस्त सिन्ध अंगरेज कम्पनी के राज में मिला लिया गया।

इसके सात वर्ष बाद अलीमुराद पर भी यह दोष लगा कर कि तुमने सन् १८४३ में मीर रुस्तम खाँ के विरुद्ध जालसाज़ी की थी, उसका आधा राज उससे छीन लिया गया। खैरपुर की शेष छोटी सी रियासत पर अभी तक अलीमुराद के वंशजों का शासन है।

एक अलीमुराद को छोड़ कर सिन्ध के शेष समस्त अमीरों और उनके पुत्रों को कैद करके बेड़ियाँ पहना कर जहाज़ पर बैठा कर अपने राज और देश दोनों से निर्वासित कर दिया गया। उनमें से कुछ को पूना में और कुछ को कलकत्ते, हज़ारीबाग़ आदि स्थानों में कैद करके रक्खा गया। बेटों को उनके बापों से पृथक् रक्खा गया। कलकत्ते ही में अंगरेजों की कैद में कुछ दिनों बीमार रह कर मीर नसीर खाँ की मृत्यु हुई। इसी प्रकार पूना में कई वर्ष कैद में रहने

had on their person, but their noses and ears were horribly mutilated."—
Captain S—as quoted by a Traveller, in his letter on the *Conquest of Sindh*,
in the *Tribune* of Lahore, September, 1893.

के बाद बूढ़े मीर रुस्तम खाँ की मृत्यु हुई। टालपुर कुटुम्ब के शेष लोग सूरत व अन्य जेलों में धीरे धीरे सड़ सड़ कर मरे।

मीर रुस्तम खाँ का एक लड़का मीर मोहम्मद हुसैन अपने घर की बूढ़ी स्त्रियों और अन्य आश्रितों सहित भूखा प्यासा अपने देश से निर्वासित बहुत दिनों गृहविहीन घूमता रहा। उसके कुछ छोटे भाई सिन्ध में रहे, जिनके विषय में ईस्टविक लिखता है कि—
“भूख और प्यास, नङ्ग और सरदी उनके पल्ले पड़ी।”*

हैदराबाद और खैरपुर की बेगमों की हालत और इससे भी अधिक हृदय विदारक थी। सिन्ध के राजकुल
सिन्ध के राजकुल
की दुर्दशा
की इस दुर्दशा को अत्यन्त मर्मस्पर्शी शब्दों में वर्णन करते हुए ईस्टविक लिखता है—

“X X X ये लोग हमारे मित्र थे X X X हमने इनके चारों तरफ कूटनीति और धूर्तता का एक जाल पूर दिया, और उन्हें इस प्रकार की झूठी बातों के पाश में फँसा लिया जिन्हें यदि इस समय प्रकट किया जाय तो सुन कर दिन में भी डर लगने लगे ! इङ्गलिस्तान के पुरुषो ! जिस स्वतन्त्रता का तुम्हें घमण्ड है उसका चिन्तन करो, और देखो कि तुम्हारे हृदय में उन लोगों के प्रति वास्तविक सहानुभूति उत्पन्न होती है या नहीं, जो अपने देश और अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए तुम्हारी तलवार से कट कर मर गए, और उन थोड़े से, किन्तु कहीं अधिक अभागो अमीरों के लिए, जो किसी समय तुम्हारे मित्र थे, बल्कि किसी समय तुम पर उपकार करते थे, और जो

* “Hunger and thirst, cold and nakedness, have been their portion.”—
Dry Leaves from Young Egypt, p. 298.

अब दूर दूर के देशों में बड़े दुख के साथ निर्वासन के दिन काट रहे हैं, जिनके आतिथ्य सत्कार और जिनकी मित्रता की एक समय तुम्हें चाह थी उनके क्रैद रखने वाले जेलरों को आज तुम तनछाहें दे रहे हो । इंगलिस्तान की स्त्रियाँ ! सोचो कि बादशाहों की माताएँ और बहिनें, जिनके समस्त आभूषण उतार लिए गए हैं, अपने देश से निर्वासित, गृहविहीन और असहाय, बिषैली दलदलों और भीषण जङ्गलों में मारी मारी फिर रही हैं ।”*

सिन्ध के मुसलमान अमीरों और उनके बाल बच्चों के साथ ईसाई विजेताओं के इस भीषण व्यवहार की अमानुषिकता को संसार की दृष्टि में कम करने के लिए जनरल सर चार्ल्स नेपियर के भाई सर विलियम नेपियर ने ‘सिन्ध की विजय’ † नाम से अंगरेजी में एक प्रसिद्ध पुस्तक लिख डाली ।

प्रसिद्ध इतिहास लेखक सर जॉन के ने एक स्थान पर लिखा है—

* “ . . . our own allies . . . victims, round whom was woven a web of cunning villainy, and who were trapped with falsehoods which now make day hideous by their revelation ! Men of England ! think of your boasted freedom, and let your pulse beat quick for those who died by your sword in defence of their own liberties and homes, and for that smaller, but far more wretched, band, once your friends, once aye ! your benefactors, now lingering out a miserable exile in a distant land, whose jailers you now pay, whose hospitality, whose alliance, you once sought. Women of England ! think of the mothers and sisters of princes, stripped of their ornaments, torn from their homes, driven to wander houseless and friendless in the wild jungles and poisonous swamps. . . . ”—*Dry Leaves from Young Egypt*, by Captain Eastwick, M. P., p. 238.

† *The conquest of Sindh*,—by Sir William Napier.

“हम लोगों में यह एक रिवाज है कि पहले किसी देशी नरेश का राज ले लेते हैं और फिर पदच्युत नरेश या उसके उत्तराधिकारी की बुराइयाँ करने लगते हैं।”*

“हम लोगों का एक रिवाज”

ब्रिटिश भारत के इतिहास में इसके अनेक ही शोकजनक उदाहरण मिलते हैं। किन्तु शायद अंगरेज इतिहास लेखकों के लिखे हुए ब्रिटिश भारत के इतिहासों में भी कहीं पर कल्पित घटनाओं और लज्जास्पद भूठों की इतनी अधिक और इतनी भयङ्कर मिसालें न मिलेंगी, जितनी सर विलियम नेपियर कृत “सिन्ध की विजय” में। अपने भाई चार्ल्स नेपियर और उसके साथियों के कारनामों को थोड़ा बहुत जायज करार देने के लिए विलियम नेपियर ने सिन्ध के अमीरों और वहाँ की प्रजा दोनों के ऊपर अनेक कल्पित और अनसुने दोष लगाए हैं। मिसाल के तौर पर, विलियम नेपियर ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि सिन्ध के अमीर लिखने पढ़ने से सर्वथा अनभिज्ञ थे, वे मादक द्रव्यों के व्यसनी थे, बूढ़े मीर रुस्तम खाँ के विषय में लिखा है कि वह निर्बल, शराबी और व्यभिचारी था, लिखा है कि अमीरों का व्यवहार हिन्दुओं के साथ बहुत बुरा था; बलूची लोग अपने हाथ से अपने बच्चों को मार डालते थे ! इत्यादि, इत्यादि ।†

* “ . . . it is a custom among us . . . to take a native ruler's kingdom and then to revile the deposed ruler or his would be successor. ”— Sir John Kaye's *History of the Sepoy War*, vol. iii, p. 361.

† “ And how did these monsters destroy their own children? etc., etc., ”— *Conquest of Sindh*, by Sir William Napier, part ii, p. 348.

वास्तव में इस प्रकार के मिथ्या कलङ्क न केवल नेपियर और उसके साथियों के अमानुषिक अत्याचारों को ही जायज़ करार नहीं देते, बल्कि सिन्ध के अमीरों और वहाँ की प्रजा के ज़ख्मों के ऊपर नमक का काम करते हैं। हम इनमें से केवल मुख्य मुख्य इलज़ामों की असत्यता को कुछ निस्पक्ष अंगरेज़ इतिहास लेखकों ही के शब्दों में दर्शाने का प्रयत्न करेंगे।

सर अलेक्ज़ेंडर बर्न्स का भाई प्रसिद्ध डॉक्टर जेम्स बर्न्स,
जो बहुत दिनों सिन्ध के अमीरों के साथ रह
सिन्ध के अमीरों
का चरित्र चुका था, लिखता है :—

“जब मैं हैदराबाद जा रहा था तो मार्ग भर में मीर नसीर खाँ के सद्गुणों और उसकी कवित्वशक्ति की प्रशंसा होती रही। मैंने अवसर पाकर मीर नसीर खाँ से प्रार्थना की कि मुझे कृपा कर अपनी रची हुई कविताओं का संग्रह ‘दीवाने जाफ़र’ देने का अनुग्रह करें।”*

मीर नसीर खाँ ‘जाफ़र’ के नाम से कविता किया करता था। इतिहास लेखक ईस्टविक लिखता है कि अमीरों के कुल के न केवल समस्त पुरुष ही, बल्कि प्रत्येक स्त्री भी फ़ारसी और अरबी लिखना पढ़ना जानती थी।†

अमीरों के मादक द्रव्यों के उपयोग के विषय में डॉक्टर बर्न्स, जो महानों उनमें से एक एक के साथ रहा, लिखता है :—

“आम तौर पर मुसलमान नरेशों की अपेक्षा सिन्ध के अमीर अय्याशी

* *Amirs of Sindh*,—by Dr. James Burns, F. R. S.

† *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 68.

और आरामतलबी में कम डूबे हुए हैं। X X X मुझे विश्वास है कि इस बात की पूरी तरह जाँच की जा चुकी है कि अमीर कभी भी मदिरा या मादक द्रव्यों का उपयोग नहीं करते। X X X अमीरों के दरबार में कहीं हुक्का दिखाई नहीं देता और न उनके कुटुम्ब में कोई अफ़्रीम तक खाता है।”^७

कप्तान ईस्टविक, जिस वर्षों तक सिन्ध में अमीरों के साथ रहने का अवसर मिला और जो वहाँ की प्रजा के हर श्रेणी के लोगों में पूरी तरह मिलता जुलता रहा, लिखता है :—

“मैं सच्चाई के साथ कह सकता हूँ कि मैंने किसी भी अमीर के विरुद्ध कभी कोई ऐसी बात नहीं सुनी कि जो अधिकांश अंगरेज़ भद्र पुरुषों के विरुद्ध न कही जा सकती हो। X X X जहाँ तक मैंने सुना है, केवल एक मिसाल को छोड़ कर उस कुल के किसी भी व्यक्ति के ऊपर कभी किसी जुर्म का इलज़ाम नहीं लगाया गया X X X।”[†]

जिस एक मात्र मिसाल का ईस्टविक ने ज़िक्र किया है वह १५ वर्ष पूर्व की यह घटना थी। कोई स्त्री बाहर से पढ़ाने के लिए मीर रुस्तम खाँ के ज़नानख़ाने में जाया करती थी। राजकुल के एक युवक मोहम्मद खाँ ने उस स्त्री के साथ अनुचित प्रेम दर्शाया। स्त्री के पिता को पता लग गया। उसने महल में घुस कर मुहम्मद खाँ को बुरी तरह घायल कर दिया। मोहम्मद खाँ बच गया। किन्तु मीर रुस्तम खाँ ने इस मामले का पता चलने पर बजाय स्त्री के पिता

* *Amirs of Sindh*,—by Dr. James Burns, p. 67.

† *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 68.

को किसी प्रकार का दण्ड देने के, निर्णय किया कि—‘इतने घोर पाप के करने वाले के साथ हम कोई सम्बन्ध नहीं रख सकते।’ मोहम्मद खाँ को राजधानी से निकाल दिया गया, और फिर इसके बाद ज़िन्दगी भर उसे खैरपुर लौटने की इजाज़त न मिली।*

यह घटना अमीर रुस्तम खाँ के दरबार की है। हैदराबाद दरबार के अमीर नसीर खाँ के जीवन की भी इस प्रकार की घटनाएँ ईस्टविक ने उद्धृत की हैं, जिनसे मालूम होता है कि स्त्री जाति और उनके सतीत्व और मान का सिन्ध के अमीरों को असाधारण खयाल रहता था।

जिस बूढ़े अमीर मीर रुस्तम खाँ को सर विलियम नेपियर ने ‘शराबी’ और ‘अय्याश’ बयान किया है, उसके विषय में पूना का अंगरेज़ सिविल सर्जन डाक्टर पोयर्ट लिखता है—

“खैरपुर का पदच्युत अमीर रुस्तम खाँ, उसका सबसे छोटा लड़का अलीबख्श, और भतीजा पदच्युत अमीर नसीर खाँ मार्च सन् १८४४ से अब तक मेरी निगरानी में रहे हैं, और मुझे यह तसदीक करते हुए अत्यन्त सन्तोष अनुभव होता है कि इन मुसीबतों में भी उनका आचरण अत्यन्त उदार और उत्कृष्ट था। मैं अच्छी तरह कह सकता हूँ कि जब से मुझे उनके परिचय का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, मैंने कभी कोई बात भी ऐसी नहीं देखी जिससे किसी प्रकार की बदपरहेज़ी या अय्याशी का उन पर अणुमात्र भी सन्देह किया जा सके; और मुझे इस बात की परोक्षा के काफ़ी अवसर मिले हैं, जिस समय चाहा मैं उनके पास पहुँच गया हूँ। मीर रुस्तम की उन्न

* Ibid, p. 68.

इस समय ८० से ऊपर है, उसकी समस्त शक्तियाँ ज्यों की त्यों बनी हुई हैं, उसकी स्मरण शक्ति बहुत अच्छी है; वह अपनी धार्मिक क्रियाओं का ठीक ठीक पालन करता है, उसका रहन सहन परहेज़गारी का है, वह दिन में केवल एक बार खाना खाता है, और सिवाय पानी या दूध के और कोई चीज़ नहीं पीता।”❀

करनल ऊटरम ने उस समय के उन समस्त अंगरेज़ राजनैतिक अफ़सरों की, जिन्हें समय समय पर सिन्ध के अमीरों के साथ रहने का अवसर मिला, इस विषय में गवाहियाँ जमा की हैं, और लिखा है कि वे सब गवाह एकमत से इस बात का समर्थन करते हैं कि सर विलियम नेपियर ने अपनी पुस्तक के अन्दर अमीरों के ऊपर जो जो इलज़ाम लगाए हैं वे सब के सब सर्वथा कल्पित हैं।†

इसके बाद हम केवल एक और अंगरेज़ कप्तान गॉर्डन की राय मादक द्रव्यों से
अमीरों को नफ़रत
नीचे उद्धृत करते हैं जो बहुत दिनों तक हैदरा-
बाद में अमीरों के साथ रहा। वह ऊटरम को
लिखता है—

“आपके प्रश्न के उत्तर में मैं लिखता हूँ कि सिन्ध के अमीर हद दरजे के परहेज़गार मनुष्य हैं, वे शराब और हर प्रकार की मदिरा से बहुत सफ़्त परहेज़ करते हैं, तम्बाकू से भी उन्हें बड़ी प्रबल घृणा है, वे तम्बाकू की गन्ध तक सहन नहीं कर सकते। इसलिए तम्बाकू और शराब पीने के विषय में हम में से बहुतों के लिए, जिन्हें कि अपनी अधिक उच्च सभ्यता

* *The Conquest of Sindh, a Commentary*, by Colonel Outram, part ii, p. 524.

† “Ibid, part ii.



THE EGYPTIAN

From "The Leaves from Young Egypt," by Eastwick

और अधिक संयमी सदाचार का धमण्ड है; सिन्ध के अमीर एक आदर्श हैं।”*

मीर रुस्तम खाँ के विषय में ईस्टविक लिखता कि—“मीर रुस्तम प्रेम और आदर के योग्य मनुष्य था
मीर रुस्तम खाँ × × × उसके अन्दर मानव सहृदयता भरी हुई
की मृत्यु थी, वह सुशील, शान्त स्वभाव, दयावान और
हृदय दर्जे का सहनशील था।”

अमीरों के उच्च और आदर्श चरित्र के विषय में इससे अधिक सम्मतियाँ उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं है। पूना जेल के अन्दर मीर रुस्तम खाँ की शोकजनक मृत्यु को वर्णन करते हुए ईस्टविक लिखता है —

“मीर रुस्तम के जीवन के अन्त के दिनों को उन लोगों के हाथों कैद ने कड़वा कर दिया था जिनके ऊपर उसने इतने अधिक उपकार किए थे। शीघ्र ही अत्याचारों के इस ढेर के नीचे दब कर बूढ़ा मीर रुस्तम समाप्त हो गया।”

ईस्टविक लिखता है कि मीर रुस्तम खाँ के पिता मीर सोहराब की मृत्यु सौ वर्ष की आयु में गिर कर हुई थी। मीर सोहराब कभी

* “I observe, therefore, in reply to your query, that the Amirs are the most temperate of men, rigidly abstaining from wine and every kind of liquor while to smoking also, they have a strong aversion and can not even endure the smell of tobacco. In regard, therefore, to smoking and drinking, the Amirs are examples to most of us, who boast a higher civilization, and a more self-denying morality.”—*Dry Leaves from Young Egypt* p. 286.

सिवाय पानी के और कोई चीज़ न पीता था, और वह भी दिन में केवल एक बार। “निस्सन्देह मीर रुस्तम उसी आयु को प्राप्त होता किन्तु अंगरेजों के हाथों उसने जो अन्याय सहन किए, उन अन्यायों ने उसके अन्यथा सबल शरीर को तोड़ डाला।” फिर भी मीर रुस्तम की आयु मृत्यु के समय ८५ से ऊपर थी।

“अपने यहाँ के न्यायशासन में”, ईस्टविक लिखता है कि,
 “अमीर दया की ओर अधिक झुकते थे, रक्त
 अमीरों का शासन
 प्रबन्ध बहाने के वे अत्यन्त विरुद्ध थे।”*

हेडल ने बम्बई सरकार के नाम अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि सिन्ध में व्यापारियों की इतनी अच्छी तरह रक्षा की जाती है और उनके व्यापार को इतनी उत्तेजना दी जाती है कि दूसरे प्रान्तों और दूसरे देशों से व्यापारी लोग जा जा कर इन अमीरों के राज में बसते हैं।†

सिन्ध का समस्त व्यापार हिन्दुओं के हाथों में था, जिसमें खास कर कराची के अन्दर मोतियों का व्यापार बड़ा लाभ दायक था।

ईस्टविक लिखता है —

“सिन्ध के अमीरों के शासन में हैदराबाद का नगर अत्यन्त धन सम्पन्न और आबाद होगया। X X X और उस समय, जब कि भारत के

* “In the administration of justice the Amirs erred on the side of clemency. They were most averse to the shedding of blood.”—Ibid, p. 68.

† *Amirs of Sindh*, by Dr. J. Burnes, p. 16.

अन्दर स्वयं हमारे इलाकों में चारों ओर लूट और रक्तपात का दौर था. सिन्ध में शान्ति और सुशासन कायम था ।”❀

ईस्टविक के अनुसार सिन्ध के अमीरों की प्रजा खुशहाल और सन्तुष्ट थी । किसान से लगान अधिकतर नाज के रूप में लिया जाता था और राज का भाग सदा के लिए नियत था । इसी कारण उन दिनों सिन्ध की समस्त भूमि हरी भरी और पैदावार से लहलहाती हुई नज़र आती थी ।

आबपाशी के लिए सिन्ध के मुसलमान अमीरों की बनवाई हुई सिन्धु नदी की लम्बी नहर, जिसे फुलैली कहते हैं, अभी तक मौजूद है । यह नहर निर्माण कला का एक अत्यन्त सुन्दर नमूना है । इसका एक चमत्कार यह है कि इसमें जगह जगह इस तरह पर ढाल दिया गया है कि ब्रिटिश भारत की अन्य नहरों के समान इसे समय समय पर साफ़ कराने और मिट्टी निकलवाने की आवश्यकता नहीं पड़ती ।

अमीरों की तुच्छ से तुच्छ प्रजा भी दाद फ़रियाद लेकर अपने नरेश के पास तक पहुँच सकती थी । हैदराबाद में अधिकांश आबादी मुसलमानों की थी, फिर भी कच्छ, गुजरात और राजपूताने के अनेक धनाढ्य हिन्दू व्यापारी हैदराबाद में रहते थे । उन सबके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया जाता था । दिवाली के रोज़ हैदराबाद

* *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 242

के समस्त नगर में यहाँ तक कि प्रत्येक मसजिद और मक़बरे में और सिन्धु नदी के दोनों तटों पर बड़े जोर की रोशनी को जाती थी। ईस्टविक लिखता है कि दिवाली की रात को भक्खर के क़िले का दृश्य अत्यन्त मनोरम होता था और चारों ओर जल में दीपक और लक्ष्मी की मूर्तियाँ तख़्तों के ऊपर बहती हुई दिखाई देती थीं।*

इस सब के विपरीत कम्पनी का शासन प्रारम्भ होते ही सिन्ध का सारा नक़शा बदल गया। “ज़मीन को कम्पनी के शासन पैदावार कम होने लगी, जगह जगह खेती बन्द का प्रारम्भ हो गई, सैनिक शासन प्रारम्भ हो गया, हर श्रेणी के लोगों में असन्तोष फैल गया, जो लगान अमीर बिना किसी प्रयत्न के वसूल कर लेते थे, उसे वसूल करने में नए शासकों को कठिनाई होने लगी।†

बड़े बड़े सिन्धी कर्मचारियों की जगह अंगरेज़ अफ़सर नियुक्त कर दिए गए। जनरल नेपियर सिन्ध का पहला दगा और गवरनर हुआ। ईस्टविक लिखता है कि— लूट का दौर “चारों ओर दगाबाज़ी और लूट शुरू हो गई।”‡ प्रजा के जान माल की कोई हिफ़ाज़त न रही। लगान की पद्धति अत्यन्त बिगड़ गई। किसान के ऊपर भार इतना बढ़ा दिया गया

* “*Dry Leaves from Young Egypt*, p. 89.

† Ibid, p. 71.

‡ “Then began a system of universal fraud and peculation.”—*Dry Leaves from Young Egypt*, p. 306.

कि जो लगान सन् १८४३ में ६, ३७, ६३७ रुपए था वह १८४४ में २७, ४०, ७२२ रुपए हो गया और सन् १८५० में २६, ८३, ७५० ।

सन् हेनरी पॉटिंगर, जिसकी अपेक्षा सिन्ध के साथ अंगरेजों के सम्पर्क और व्यवहारों से कोई दूसरा अंगरेज अधिक परिचित न था और जो बाद में मद्रास का गवर्नर हुआ, लिखता है—

“मेरी राय में चाहे हम किसी तरह की भी दलील क्यों न दें, सिन्ध के अमीरों के साथ हमारे व्यवहार से जो कलङ्क हमारी ईमानदारी और हमारी आबरू पर लग चुका है वह किसी तरह नहीं धुल सकता ।”

अन्त में हम सिन्ध के विजेता जनरल सर चार्ल्स नेपियर के ही कुछ शब्द उसके अपने कृत्य के विषय में सिन्ध विजय पर जनरल नेपियर के उद्धृष्ट करते हैं । जनरल नेपियर लिखता है—

“भारत में ज्यादाती अंगरेजों की आंर से की गई
X X X कभी किसी भी बड़ी क्रौम ने इससे अधिक
नीच और क्रूर अन्याय के लिए अपनी शक्ति का उपयोग नहीं किया । भारत (सिन्ध) को विजय करने में हमारा लक्ष्य, हमारे समस्त अत्याचारों का लक्ष्य धन था—पैसा था; कहा गया है कि पिछले साठ वर्ष के अन्दर एक हजार मिलियन पाउण्ड (यानी करीब दस अरब रुपया) भारत से निचाड़ा जा चुका है । इस धन का एक एक शिलिङ्ग खून में से उठाया गया है, उसे पोंछा गया है और हत्यारों ने उसे अपनी जेबों में रख लिया है; किन्तु हम इस धन को चाहे कितना भी क्यों न पोंछें और धोवें उस पर से

* “ No reasoning can, in my opinion, remove the fowl stain it (the case of the Amirs) has left on our faith and honour ;”— Sir Henry Pottinger's letter to the *Morning Chronicle*, 8th January 1844.

‘खून का दाग नहीं मिट सकता’। यह दाग उस पर सदा के लिए कायम रहेगा; और यदि आसमान पर कोई खुदा है, जिसके सामने कि किसी ‘कौम के व्यापारिक हित’ नहीं देखे जाते तो निस्सन्देह हमें कभी न कभी अपने पाप का दण्ड मिलेगा, अन्यथा हम खुदा को जो कुछ समझ बैठे हैं और आशा करते हैं वह सब मिथ्या है। ‘तिजारती माल बनाने वाली एक महान कौम’ की दृष्टि में न्याय और धर्म मज़ाक की चीज़ें हैं, इस तरह की कौम का सच्चा खुदा ‘धन’ है। सम्भव है मेरा विचार विचित्र प्रतीत हो, किन्तु वास्तव में मैं, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्वेच्छाचारियों की अपेक्षा, स्वेच्छाचारी नैपोलियन को अधिक पसन्द करता हूँ। जो मनुष्य चक्रवर्ती राज का आकांक्षी होता है वह आम तौर पर पराजित कौमों के भले के लिए शासन करता है; किन्तु जिन लोगों को चक्रवर्ती लूट की आकांक्षा होती है वे केवल अपने को धनी बनाने के लिए शासन करते हैं, उन्होंने दस करोड़ मनुष्यों के सुख का नाश कर दिया है। पहला मनुष्य स्वर्ग से गिरा हुआ क्रूरता हो सकता है, किन्तु दूसरा मनुष्य नरक में पैदा हुआ शैतान है !”*

* “The English were the aggressors in India, . . . and a more base and cruel tyranny never wielded the power of a great nation. Our object in conquering India (Sindh?), the object of all our cruelties, was money—lucre; a thousand millions sterling are said to have been squeezed out of India in the last sixty years. Every shilling of this has been picked out of blood, wiped, and put into the murderers’ pockets; but, wipe and wash the money as you will, the ‘damned spot’ will not ‘out’. There it sticks for ever, and we shall yet suffer for the crime, as sure as there is a God in heaven, where the ‘commercial interests of the nation’ find no place, or, heaven is not what we hope and believe it to be. Justice and religion are mockeries in the eyes of ‘a great manufacturing country,’ for the true God of such a nation is Mammon. I may be singular, but, in truth, I prefer the

ईस्टविक चकित होकर लिखता है कि—“क्या ये उसी मनुष्य के शब्द हो सकते हैं जो रक्त की नदी में से चल कर हैदराबाद के खज़ानों तक पहुँचा था।”

जो हो, सिन्ध की स्वाधीनता का अन्त हो गया और अंगरेजी माल की खपत के लिए एक नई विशाल मण्डी और इङ्गलिस्तान के ‘लड़कों’ की जीविका के लिए एक नया क्षेत्र तैयार हो गया।

इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट ने गवरनर-जनरल एलेनब्रू, सर चार्ल्स नेपियर और अंगरेजी सेना के लिए अंगरेज कौम की ओर से धन्यवाद का प्रस्ताव पास किया।

despotic Napoleon to the despots of the East India Company. The man ambitious of universal power generally rules to do good to subdued nations; but the men ambitious of universal peculation rule only to make themselves rich, to the destruction of happiness among a hundred-millions of people. The one may be a fallen angel; the other is a hell-born devil!—*Lights and Shades of Military Life*, edited by Sir Charles Napier, pp. 297, 298.



उन्तालीसवाँ अध्याय

अन्य भारतीय नरेशों के साथ एलेनब्रु का व्यवहार

मराठा मराडल के पाँच मुख्य स्तम्भों में सबसे अधिक बलवान सींधिया था। माधोजी सींधिया के अधीन एक बार करीब करीब समस्त मुगल साम्राज्य के शासन की बाग इस कुल के हाथों में आ गई थी। कम्पनी के शासकों की सदा से इस राज पर आँखें थीं। माधोजी सींधिया के उत्तराधिकारी दौलतराव सींधिया को पङ्गुल करने के जो अनेक प्रयत्न किए गए, उनका जिक्र पिछले अध्यायों में किया जा चुका है। ग्वालियर राज के विरुद्ध लॉर्ड बेरिट्रिड्ज की साज़िशों का जिक्र भी ऊपर आ चुका है। फिर भी सन् १८४३ तक महाराजा

सींधिया अंगरेज कम्पनी का बाज़गुज़ार न था। सन् १८३२ की पार्लिमेण्ट की एक रिपोर्ट में दर्ज है—“द्वीपप्राय के अन्दर अकेला सींधिया ही एक ऐसा नरेश है जिसने अभी तक अपनी ज़ाहिरा स्वाधीनता कायम रखी है।”* उस समय तक अंगरेजों और सींधिया के बीच जितनी सन्धियाँ हुई थीं उनसे महाराजा सींधिया की स्वाधीनता में कोई अन्तर न पड़ता था, और न कम्पनी सरकार को महाराजा सींधिया के शासन में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार था।

७ फ़रवरी सन् १८४३ को महाराजा जङ्गोजी सींधिया की अचानक मृत्यु हो गई। जङ्गोजी के कोई औलाद न थी। कहा जाता है, विधवा महारानी की आयु केवल ११ वर्ष की थी। महारानी ने समस्त ग्वालियर दरबार का सुशासन आयु केवल ११ वर्ष की थी। महारानी ने समस्त ग्वालियर दरबार की सम्मति से अपने एक निकट सम्बन्धी भागीरथराव को, जिसकी आयु उस समय आठ वर्ष की थी, गोद ले लिया। भागीरथराव जयाजीराव सींधिया के नाम से ग्वालियर की गद्दी पर बैठा। महारानी बालक जयाजीराव की ओर से रीजण्ट नियुक्त हुई। किन्तु महारानी की आयु भी कम थी, इसलिए राज का समस्त प्रबन्ध दरबार के सुपुर्द किया गया। उस समय के ऐतिहासिक उल्लेखों से स्पष्ट है और स्वयं लॉर्ड एलेनब्रु ने अपने

* “Within the Peninsula, Sindhia is the only Prince who preserves the semblance of independence.”—*Report of the Select Committee of the House of Commons, 1832.*

पत्रों में स्वीकार किया है कि ग्वालियर दरबार बड़ी योग्यता और सफलता के साथ राज का समस्त कारबार चला रहा था।

फिर भी इतिहास लेखक जॉन होप लिखता है—

“चूँकि लॉर्ड एलेनब्रु ने इस बात का पक्का इरादा कर लिया था कि पहले मींधिया राज के अधिकारों की अवलेहना की जाय और फिर उस राज की स्वाधीनता छीन ली जाय, इसलिए ज़रूरी तौर पर लॉर्ड एलेनब्रु के लिए पहला काम यह था कि महारानी की बाल्यावस्था का बहाना लेकर उसे अलग करदे और उसकी जगह किसी ऐसे मनुष्य को रीजेंट बना दे, जो खुशी से हर बात में अंगरेज़ सरकार का कहना मान ले। शुरू में लॉर्ड एलेनब्रु ने अपना यह इरादा दूसरों पर ज़ाहिर नहीं किया। रीजेंट चुनने का अधिकार ग्वालियर दरबार का था। दरबार की कौन्सिल के अन्दर उस समय केवल एक व्यक्ति ऐसा था जो अपनी क्रौम के हित के विरुद्ध काररवाई करने का राज़ी हो सकता था। यह व्यक्ति मामा साहब कहलाता था। इसलिए यद्यपि अभी तक यह उसूल चला आता था कि रेज़िडेंट रियासत के इस तरह के मामलों में हस्तक्षेप न करे, फिर भी अब इस उसूल का उल्लङ्घन करके मामा साहब के चुने जाने के लिए एलेनब्रु ने अपनी शक्ति भर कोशिश की।”❀

* “As Lord Ellenborough had firmly resolved, though his resolution was not then made known, first to disregard the rights of this state, and afterwards deprive it of its independence, the preliminary step would necessarily be to set aside the Maharanee on the ground of her infancy, and to put up in her place as Regent a person who would cheerfully do the bidding of the British Government. The election was in the hands of the Durbar. Now there was only one individual in that council who would lend himself to carry out an anti-national policy, and he was called the mama Saheb. Accordingly the Resident laid aside the principle of non-intervention which

अन्य भारतीय नरेशों के साथ एलेनब्रु का व्यवहार १२४१

महाराजा जङ्गोजी की मृत्यु का समाचार सुनते ही लॉर्ड एलेनब्रु ने आगरे की ओर प्रस्थान किया; और अनुचित हस्तक्षेप बिना किसी कारण आगरे के निकट ग्वालियर राज की सरहद पर कम्पनी की फौजें जमा कर लीं। आगरे में बैठ कर वहाँ से लॉर्ड एलेनब्रु ने ग्वालियर दरबार के अन्दर साजिशें शुरू कीं।

ग्वालियर दरबार उस समय नाबालिग महाराजा और रीजेंट महारानी की ओर से राज प्रबन्ध करने के लिए दादा खासजीवाला नामक एक मनुष्य को सर्व सम्मति से प्रधान मन्त्री नियुक्त करना चाहता था। दादा खासजीवाला योग्य, ईमानदार और सर्वप्रिय था। इसके विरुद्ध जिस मनुष्य को एलेनब्रु बढ़ाना चाहता था वह अयोग्य, अविश्वास्य और ग्वालियर के लोगों में अत्यन्त अप्रिय था। फिर भी ठीक उस समय जब कि प्रधान मन्त्री का चुनाव होने वाला था, लॉर्ड एलेनब्रु का एक पत्र ग्वालियर पहुँचा, जिसमें लिखा था—

“गवर्नर-जनरल खुश होगा यदि रीजेंट का पद मामा साहेब को दे दिया जाय।”❀

राज की हालत उस समय निर्बल थी। कोई प्रौढ़ और प्रभाव

hitherto had guided his conduct and strained every nerve to effect this man's election.”—*Sketch of the House of Sindhia*, by John Hope p. 42.

* “The Governor General would gladly see the Regency conferred upon the Mama Saheb.”—Lord Ellenborough.

शाली नीतिज्ञ दरबार में न था। अंगरेजी सेना सरहद पर पड़ी हुई थी। इस सब पर दरबार के अन्दर अंगरेज अंगरेजों का दूत रेज़िडेण्ट की साज़िशें। परिणाम यह हुआ मामा साहब कि रीजण्ट के रूप में नहीं, किन्तु प्रधान मन्त्री के रूप में राज की बाग एक बार मामा साहब के हाथों में दे दी गई। किन्तु मामा साहब अधिक दिनों तक राज सत्ता अपने हाथों में न रख सका। अंगरेज रेज़िडेण्ट के साथ उसकी साज़िशों के कारण शीघ्र ही सारा दरबार उसके विरुद्ध हो गया। महारानी की इच्छा के विरुद्ध रेज़िडेण्ट के उकसाने पर उसने अपनी एक छै वर्ष की भतीजी का महाराजा जयाजीराव के साथ विवाह कर देना चाहा। करीब पन्द्रह दिन इस पर दरबार के नीतिज्ञों में परामर्श होता रहा। अन्त में २० मई सन् १८४३ को समस्त दरबारियों और महारानी ने एक मत से मामा साहब को पदच्युत कर दिया। मामा साहब को महारानी की आज्ञानुसार ग्वालियर छोड़ कर चला जाना पड़ा। २४ मई सन् १८४३ को मामा साहब ग्वालियर से रवाना हुआ। २६ मई को महारानी ने राज के समस्त दरबारियों और सरदारों को आज्ञा दी कि आप लोग मिलकर मामासाहब की जगह दूसरा मन्त्री चुनें। दरबार ने दादा खासजीवाला को सर्व सम्मति से मन्त्री नियुक्त किया।

लॉर्ड एलेनब्रु ने अब यह एक नया बहाना गढ़ा कि सींधिया एलेनब्रु का नया राज और अंगरेजी इलाके की मिली हुई सरहद बहाना पर कई जगह विद्रोह खड़े हो रहे हैं और डाके

पड़ रहे हैं, जिन्हें ग्वालियर दरबार दमन करने में असमर्थ है। इतिहास लेखक जॉन होप ने इस बहाने के थोथेपन और उसके भूठ को बड़ी सुन्दरता के साथ साबित किया है। उसने लिखा है कि ठीक उस समय जब कि लॉर्ड एलेनब्रु ने सींधिया राज के प्रबन्ध में यह दोष निकाला, बुन्देल खण्ड में जो कि अंगरेजों के अधीन था और सागर व नरबदा के अंगरेजी इलाकों में जिनको सरहदें सींधिया की सरहद से मिली हुई थीं पिछले दो वर्ष से अनेक विद्रोह हो रहे थे, और जगह जगह डाके पड़ रहे थे। यहाँ तक की सींधिया की राजधानी ग्वालियर से केवल सौ मील दूर कुछ लोग खिमलासा नामक एक धनसम्पन्न नगर को जो अंगरेजी इलाके में था, नाश कर देना चाहते थे और सींधिया की दो हजार सबसीडीयरी सेना द्वारा अंगरेज खिमलासा की रक्षा करने में लगे हुए थे। इसी समय अंगरेजी इलाके के एक दूसरे नगर बालाबेहत (?) को कुछ विद्रोही जला देना चाहते थे और ग्वालियर की विधवा महारानी की सेना बालाबेहत की रक्षा कर रही थी। निस्संदेह यदि विद्रोहियों या डाकुओं का दमन करने की अयोग्यता के कारण किसी राज के शासन प्रबन्ध में एक पड़ोसी एक नरेश को हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया जा सकता है तो लॉर्ड एलेनब्रु को ग्वालियर के शासन में हस्तक्षेप करने के बजाय ग्वालियर दरबार को कम्पनी के शासन में हस्तक्षेप करने का अधिकार मिलना चाहिए था। किन्तु लॉर्ड एलेनब्रु के लिए कोई भी बहाना काफी था।

ग्वालियर का अंगरेज़ रेज़िडेंट करनल स्पायर्स एलेनब्रु के दिल का आदमी न था। इसलिए स्पायर्स को रेज़िडेंट स्लीमैन फ़ौरन् ग्वालियर से हटा कर उसकी जगह करनल स्लीमैन को, जिसकी बाबत उस समय के इतिहास से साफ़ पता चलता है और उन दिनों यह बात मशहूर थी कि उसका भारत के ठगों और डाकुओं पर बहुत बड़ा प्रभाव था, रेज़िडेंट नियुक्त करके ग्वालियर भेजा गया। यह स्लीमैन आगे चलकर अवध के अन्दर भी अपनी कूटनीति के लिए खासा प्रसिद्ध हुआ।

लॉर्ड एलेनब्रु ने मलका विक्टोरिया के नाम १३ अगस्त सन् १८४३ के एक पत्र में स्वीकार किया है कि दादा खासजीवाला दादा खासजीवाला एक अत्यन्त योग्य शासक था। की सर्वप्रियता ग्वालियर की सेना की तनखाहें कुछ दिनों से चढ़ी हुई थीं। दादा खासजीवाला ने तमाम पिछली तनखाहें अदा कर दीं और भविष्य में ठीक समय पर सब की तनखाहें मिलने का प्रबन्ध कर दिया। मामासाहब ने राज के अनेक योग्य पदाधिकारियों को लॉर्ड एलेनब्रु के इशारे पर बरखास्त कर दिया था। दादा खासजीवाला ने इन सब को फिर से अपने अपने पदों पर बहाल कर दिया। ग्वालियर राज की सेना में उस समय कई यूरोपियन और अर्ध यूरोपियन अफ़सर थे। इनमें से कुछ ने अपनी मातहत सेना को दरबार के विरुद्ध भड़काना शुरू किया। कहीं कहीं छोटे मोटे विद्रोह भी हो गए। दादा खासजीवाला ने इनमें से कई अफ़सरों को बरखास्त करके रियासत से बाहर निकाल दिया।

राजमाता और महाराजा जयाजीराव ये दोनों भी दादा से प्रसन्न थे। यह सब बातें थीं जिनके कारण दादा खासजीवाला अंगरेजों की नज़रों में खटक रहा था। लॉर्ड एलेनब्रु ने अपने पूर्वोक्त पत्र में महारानी विक्टोरिया को सूचना दी कि मैंने दादा खासजीवाला और ग्वालियर दरबार को दमन करने के लिए करीब बारह हजार सेना और तोपखाना आगरे में जमा कर लिया है, व और सेना जमा की जा रही है।

दादा खासजीवाला पर अब एक और विचित्र इलज़ाम लगाया गया। वह यह कि तुमने रीजेंट महारानी के खासजीवाला पर नाम एलेनब्रु के किसी एक पत्र को बीच में रोक फूटा इलज़ाम लिया। इस इलज़ाम की बिना पर लॉर्ड एलेनब्रु ने महारानी और ग्वालियर दरबार को लिखा कि दादा खासजीवाला को फौरन् अंगरेजों के हवाले कर दिया जाय। निस्सन्देह एक स्वाधीन राज के प्रधान मन्त्री पर इस तरह का इलज़ाम अत्यन्त लचर और बेमाइने था। लॉर्ड एलेनब्रु की माँग भी न्याय, नीति और सन्धियों सब के विरुद्ध थी।

महारानी और ग्वालियर दरबार दोनों ने एक मत से लॉर्ड एलेनब्रु की इस माँग पर एतराज किया, खासजीवाला की गिरफ्तारी और लॉर्ड एलेनब्रु से उस पर फिर से विचार करने की प्रार्थना की। एलेनब्रु अपनी जिद पर डटा रहा। वह काफी सेना सरहद पर जमा कर चुका था। स्वयं ग्वालियर के अन्दर करनल स्लीमैन की साजिशें जारी थीं महारानी

की प्रार्थना के उत्तर में एलेनब्रु ने साफ़ युद्ध की धमकी दी। कातर महारानी ने एलेनब्रु को सन्तुष्ट करने के लिए अपने योग्य मन्त्री और संरक्षक निर्दोष दादा खासजीवाला को कैद तक कर लिया और उसकी जगह रामराव फलकिया को मन्त्री नियुक्त कर दिया। फिर भी लॉर्ड एलेनब्रु को सन्तोष न हो सका। उसने दो विशाल सेनाएँ एक सींधिया राज के उत्तर में और दूसरी पूर्व में जमा कीं। युद्ध में अब कोई कसर बाकी न रही। ग्वालियर दरबार युद्ध से बचना चाहता था। विवश होकर दरबार ने दादा खासजीवाला को लॉर्ड एलेनब्रु के सुपुर्द कर दिया। लॉर्ड एलेनब्रु ने दादा को कैद कर लिया। दस वर्ष बाद बनारस में अंगरेजों की कैद के अन्दर सींधिया के इस वफ़ादार मन्त्री दादा खासजीवाला की मृत्यु हुई।

एलेनब्रु की माँग अब पूरी हो चुकी थी। फिर भी उसे संतोष न हुआ। मलका विक्टोरिया के नाम एलेनब्रु के १६ दिसम्बर सन् १८४३ के पत्र से पता चलता है कि वह शुरू से पञ्जाब पर हमला करना चाहता था और इस विचार से कि पञ्जाब पर हमला करने के समय सींधिया की सन्नद्ध सेना अंगरेजों को पीछे से दिक न करे, वह जिस तरह हो सके, पहले सींधिया की सेना का नाश कर देना चाहता था।

नया मन्त्री रामराव फलकिया एलेनब्रु से मिलने के लिए आगरे भेजा गया। एलेनब्रु ने रामराव फलकिया से एक और नई बात

छेड़ी। उसने कहा कि कुछ वर्ष हुए बरहानपुर में दौलतराव सींधिया और अंगरेजों के दरमियान जो सन्धि हुई थी उसमें यह तय हो गया था कि यदि किसी समय महाराजा सींधिया अपने यहाँ के किसी विद्रोह को दमन करने या अपने शत्रुओं को परास्त करने के लिए अंगरेज सरकार से सेना की सहायता माँगे तो अंगरेज उसकी मदद करेंगे। इस धारा के अनुसार लॉर्ड एलेनब्रु ने रामराव फलकिया को सूचना दी कि चूँकि ग्वालियर राज में इस समय विद्रोह मौजूद है, इसलिए अंगरेज सरकार ने महाराजा जयाजीराव सींधिया की सहायता के लिए अपनी सेना ग्वालियर भेजने का निश्चय कर लिया है। किन्तु न महाराजा सींधिया पर उस समय कोई आपत्ति थी और न महाराजा जयाजीराव ने या उसकी माता महारानी ने या ग्वालियर दरबार में किसी ने भी अंगरेजों से सहायता माँगी थी। इसके जवाब में लॉर्ड एलेनब्रु ने रामराव फलकिया से कहा कि महाराजा के नाबालिग होने के कारण महाराजा की आवश्यकताओं को समझने का अधिकार केवल अंगरेज गवर्नर जनरल को है। रामराव फलकिया इस उत्तर को सुन कर चकित रह गया। इसका अर्थ केवल यह था कि अब तक की तमाम सन्धियों और प्रतिज्ञापत्रों को रही के टोकरे में फेंक कर लॉर्ड एलेनब्रु एक स्वाधीन, किन्तु नाबालिग नरेश के राज पर हमला करने के लिए कटिबद्ध था, और उसका कुछ न कुछ इलाका हज़म कर लेना चाहता था।

इतिहास लेखक होप ने लिखा है कि बरहानपुर की जिस सन्धि

का लॉर्ड एलेनब्रु ने ज़िक्र किया था वह सन्धि तक अंगरेज़ों ही की इच्छा के अनुसार कुछ समय पहले रह करार दी जा चुकी थी। अर्थात् एलेनब्रु का सारा बहाना सिर से पाँव तक झूठा था।

इस प्रकार बिना किसी कारण के लॉर्ड एलेनब्रु ने महाराजा सींधिया के राज में घुस कर राजधानी ग्वालियर ग्वालियर पर पर हमला किया। ग्वालियर दरबार इस हमले के लिए तैयार न था। २६ दिसम्बर सन् १८४३

को महाराजपुर और पनियार नामक स्थानों पर दो प्रसिद्ध संग्राम हुए जिनमें टॉरेन्स के अनुसार अंगरेज़ी सेना को असाधारण हानि सहनी पड़ी। फिर भी एलेनब्रु ने कम्पनी की पुरानी पद्धति के अनुसार कुछ अपनी सेना के बल और कुछ कूटनीति के बल जयाजीराव सींधिया की सेना पर अन्त में विजय प्राप्त की। इतिहास लेखक होप लिखता है कि सींधिया की सबसीडोयरी सेना, जिसके कुछ सैनिक ठीक उसी गाँव के रहने वाले थे, जिस गाँव में महाराजा जयाजीराव सींधिया का जन्म हुआ था, अपने स्वामी के विरुद्ध अंगरेज़ों की ओर लड़े। जॉन होप ने यह भी बयान किया है कि किस प्रकार इन दोनों लड़ाइयों के बाद अंगरेज़ों ने सींधिया की सेना और प्रजा के साथ अनेक तरह के अत्याचार किए, किस प्रकार लोगों को मकानों के अन्दर बन्द करके बाहर से आग लगा दी गई और सींधिया के इस तरह के अफ़सरों को जिन्होंने हार स्वीकार कर ली थी, दगा देकर मरवा डाला गया। होप ने इस समस्त मामले के सम्बन्ध में लॉर्ड एलेनब्रु के झूठ, उसकी

कूटनीति और उसकी स्वार्थमय भूषिपासा को अच्छी तरह प्रकट किया है ।

लॉर्ड एलेनब्रु ने अपने १६ फ़रवरी सन् १८४४ के एक पत्र में बतलाया है कि यदि इस समय वह समस्त नई सन्धि सींधिया राज को अंगरेज़ी राज में मिलाने का प्रयत्न करता तो उसे डर था कि अन्य भारतीय नरेश कम्पनी के विरुद्ध भड़क उठेंगे, इसलिए एक नई सन्धि कर ली गई । ग्वालियर की सबसीडीयरी सेना की संख्या बढ़ा दी गई । उसके खर्च के लिए सींधिया से कई नए ज़िले ले लिए गए । विधवा महारानी के हाथों से सब सत्ता छीन ली गई । तय कर दिया गया कि जब तक महाराजा जयाजीराव नाबालिग है, एक कौन्सिल राज का समस्त प्रबन्ध करे । कौन्सिल के लिए अंगरेज़ रेज़िडेण्ट की आज्ञाओं का मानना आवश्यक कर दिया गया । महारानी के लिए उसके अधिकारों के बदले में तीन लाख रुपए सालाना की पेनशन मंजूर कर दी गई । इस प्रकार कम से कम दस साल के लिए ग्वालियर राज का प्रबन्ध अंगरेज़ शासकों के हाथों में आ गया ।

जिन अन्य भारतीय नरेशों के साथ लॉर्ड एलेनब्रु का व्यवहार उल्लेखनीय है, उनमें से एक कैथल का राजा था । कैथल पर कब्ज़ा कैथल सतलज के इस पार करनाल से ३० मील पर एक सिख रियासत थी जिसने दुर्भाग्यवश सन् १८०६ में कम्पनी सरकार के साथ मित्रता की सन्धि कर ली थी । कैथल के राजा की मृत्यु होगई, उसके कोई पुत्र न था । किन्तु रानो को गोद

लेने का अधिकार था। लॉर्ड एलेनब्रु ने फ़ौरन् तीन सौ सिपाहियों का एक दस्ता कैथल पर ज़बरदस्ती कब्ज़ा करने के लिए भिजवा दिया। एलेनब्रु लिखता है कि राजकुल के लोगों और दरबारियों ने अंगरेज़ी सेना को अकस्मात् अपनी राजधानी में देख कर सत्याग्रह शुरू कर दिया। इतने में आस पास की प्रजा शस्त्र लेकर राजधानी में जमा हो गई। उन्होंने अंगरेज़ी सेना को मार कर पीछे हटा दिया। बचे खुचे अंगरेज़ सिपाहियों को करनाल लौट आना पड़ा।

यह घटना १० अप्रैल सन् १८४३ की थी। १४ अप्रैल को अठारह सौ नई सेना थानेश्वर में जमा की गई। १६ अप्रैल को इस सेना ने कैथल में प्रवेश किया। किन्तु मलका विक्टोरिया के नाम लॉर्ड एलेनब्रु के एक पत्र में लिखा है कि १५ तारीख ही को कैथल की सशस्त्र प्रजा विधवा महारानी का साथ छोड़ कर वहाँ से चल दी और कैथल दरबार के कुछ मन्त्री और नगर के कुछ व्यापारी अंगरेज़ों की ओर चले आए। सारांश यह कि कैथल पर अंगरेज़ कम्पनी का कब्ज़ा हो गया।

इससे कहीं अधिक विशाल राज जिसमें लॉर्ड एलेनब्रु ने अपने षड्यन्त्र रचने शुरू किए, पंजाब का राज था। सन् १८३६ में महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु हुई। रणजीतसिंह का एक पुत्र खड़गसिंह पंजाब का राजा हुआ। किन्तु रणजीतसिंह के मरते ही समस्त पंजाब में विद्रोहों, हत्याओं और अराजकता का

रणजीतसिंह की
मृत्यु और पंजाब
में अराजकता

बाज़ार गरम हो गया। इस अराजकता के सम्बन्ध में दिसम्बर सन् १८४३ की 'ब्रिटिश फ़्रेंड ऑफ़ इण्डिया' नामक लन्दन की एक पत्रिका ने लिखा था—

“X X X हमें ज़बरदस्त सन्देह है कि कम्पनी ने रिशवतें दे देकर इन उपद्रवों को खड़ा करवाया है और उन्हें भड़काया है। X X X एक धन-लोलुप कम्पनी जिसके पास किराए की एक सेना है, बिना लूट मार के नहीं रह सकती X X X चूँकि इस समय ज़रूरी तौर पर इङ्गलिस्तान की तमाम शक्ति इन उपद्रवों की जड़ में है, इसलिए हमें बिल्कुल साफ़ दिखाई दे रहा है कि लाहौर का नगर लूटा जायगा और वहाँ के राज के टुकड़े टुकड़े किए जायँगे।”*

ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन और लॉर्ड एलेनब्रु के अनेक पत्रों से स्पष्ट है कि बहुत दिनों पहले से पञ्जाब के ऊपर एलेनब्रु की
योजनाएँ अंगरेज़ों के दाँत थे और लॉर्ड एलेनब्रु ने महाराजा खड़गसिंह और शेरसिंह के अनुयायियों, कर्मचारियों और सरदारों को सिख राज के विरुद्ध अपनी ओर फोड़ने के अनेक प्रयत्न किए। अफ़ग़ानों और सिखों को एक दूसरे के विरुद्ध भड़काया गया और लड़ाया गया। एक पत्र में लॉर्ड एलेनब्रु ने लिखा है कि मैंने जलालाबाद पर सिखों को इसलिए

* “ . . . we strongly suspect the Company's corrupt influence has been employed in framing and fomenting these plots, . . . a mercenary Company, wielding a hireling army, can not live but by plunder . . . we see too clearly, that backed as it necessarily now is, by all the resources of Britain, Lahore will be sacked, the Kingdom rent in pieces. ”— *The British Friend of India*, December 1843, pp. 247, 248.

कब्ज़ा कर लेने दिया ताकि प्रधान सिख सेना लाहौर और अमृतसर से हट कर जलालाबाद की ओर चली जाय और मुझे राजधानी लाहौर पर हमला करने का मौका मिल जाय। जनरल वेश्वरा नामक एक यूरोपियन अफसर उन दिनों पञ्जाब की सेना में अंगरेजों का गुप्तचर था। २० अक्तूबर सन् १८४३ को लॉर्ड एलेनब्रु ने ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन को लिखा कि मुझे आशा है कि एक दो वर्ष के अन्दर ही पञ्जाब हमारे हाथों में आ जायगा। सन् १८४४ में राजा हीरासिंह लाहौर दरबार का प्रधान मन्त्री था। अंगरेजों ने सिख सेना को राजा हीरासिंह के विरुद्ध भड़काया और जम्मू के राजा गुलाबसिंह को लाहौर दरबार के विरुद्ध उकसाया। लॉर्ड एलेनब्रु को आशा थी कि नवम्बर सन् १८४५ तक मुझे लाहौर पर हमला करने का अवसर मिल जायगा। इस सम्बन्ध में एलेनब्रु के पत्र पढ़ने योग्य और पाश्चात्य कूटनीति का एक सुन्दर नमूना हैं।

मई सन् १८४४ में जब कि बालक दलीपसिंह लाहौर की गद्दी पर था, अंगरेजों ने भाई भीमसिंह, अतरसिंह और काश्मीरसिंह के अधीन एक सेना थानेश्वर से दलीपसिंह और उसके मन्त्री राजा हीरासिंह पर हमला करने के लिए लाहौर भिजवाई। ७ मई को फ़ीरोज़पुर के निकट इस सेना का लाहौर दरबार की सेना के साथ संग्राम हुआ, जिसमें भीमसिंह, अतरसिंह और काश्मीरसिंह तीनों देशद्रोही मारे गए। अतरसिंह उस अजीतसिंह का भाई था, जिसने

देशद्रोहियों का
असफल प्रयत्न

रणजीतसिंह के पुत्र महाराजा शेरसिंह की हत्या की थी। अंगरेज हीरासिंह की जगह अतरसिंह को मन्त्री बनाना चाहते थे। काश्मीरसिंह के विषय में कहा जाता है कि वह महाराजा रणजीतसिंह का दत्तक पुत्र था। सम्भव है कि उसे दलीपसिंह की जगह गद्दी देने का विचार रहा हो। अंगरेजों की यह काररवाई महाराजा रणजीतसिंह के साथ उनकी सन्धि का स्पष्ट उल्लङ्घन थी। लॉर्ड एलेनब्रु के उपद्रव पञ्जाब के अन्दर इसके बाद भी जारी रहे, किन्तु उनका फल पकने से पहले ही उसे भारत छोड़ कर इङ्गलिस्तान चला जाना पड़ा। फिर भी जाने से पहले वह पञ्जाब की सरहद पर देशों और अंगरेजी फौजों, तोपों, किशतियों, पुल बाँधने के सामान इत्यादि आगामी युद्ध की समस्त सामग्री का पूरा इन्तजाम कर गया था।

दक्खिन हैदराबाद के विरुद्ध एलेनब्रु ने अनेक साजिशें कीं। मुसलमानों के वह विरुद्ध था ही। निजाम को निजाम पर दौत आर्थिक कठिनाइयों में फँसा कर, और उसे करों दे देकर एलेनब्रु धीरे धीरे उसके ज़रखेज़ राज को हड़प लेना चाहता था। हैदराबाद के करीब आधे क़िले उन दिनों वीर और वफ़ादार अरब सिपाहियों के संरक्षण में थे। एलेनब्रु इन अरबों को निजाम के राज से निकाल देना चाहता था।

मलका विक्टोरिया के नाम एलेनब्रु के १३ अगस्त सन् १८४३ के एक पत्र में लिखा है—

“निजाम की सरकार की आर्थिक कठिनाइयों के कारण पुराने मन्त्री ने

इस्तीफा दे दिया है। इन कठिनाइयों का परिणाम यह होता नज़र आता है कि हम निज़ाम को दस लाख रुपए कर्ज़ देंगे और उसके बदले में निज़ाम का समस्त राज यदि सदा के लिए नहीं तो अनेक वर्षों के लिए अंगरेज़ों के शासन में आ जायगा। यह कर्ज़ हमें फ़ौज को देने के लिए और कुछ साहूकारों और दूसरे लोगों के कर्ज़ अदा करने के लिए देना पड़ेगा। मैंने कई बातों पर निज़ाम का फ़ैसला पूछा है। चन्द रोज़ के अन्दर उसका फ़ैसला मालूम हो जायगा।”

किन्तु लॉर्ड एलेनब्रु उत्तरीय भारत में इतना फ़ैसा हुआ था कि अपने अल्प शासन काल के अन्दर वह निज़ाम राज के विषय में अपनी इच्छा पूरी न कर सका।

एक और छोटी सी रियासत जेतपुर नाम की बुन्देलखण्ड में थी, जिसके स्वतन्त्र अस्तित्व को लॉर्ड एलेनब्रु ने समाप्त कर दिया। केवल जिसकी लाठी जेतपुर की रियासत उसकी भैंस के सिद्धान्त पर २७ नवम्बर सन् १८४२ को लॉर्ड एलेनब्रु ने जेतपुर के दोनों किलों पर कब्ज़ा कर लिया और ७ दिसम्बर को जेतपुर का राज अपने हाथों में लेकर बुन्देलखण्ड के ही एक दूसरे राजा को, जो अंगरेज़ों के कहने में था सौंप दिया। जेतपुर का पहला राजा करीब दस साथियों सहित राज छोड़ कर भाग गया। इस काम में मेजर स्लीमैन ने एलेनब्रु को सबसे अधिक सहायता दी।

अपने से पूर्व के अन्य गवरनर जनरलों के समान एलेनब्रु भी

अवध के नवाब से समय समय पर खूब धन चूसता रहा ।

अवध से कर्ज़ १६ सितम्बर सन् १८४२ को एलेनब्रु ने ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन को लिखा—

“मैंने अवध के बादशाह से और दस लाख रुपये बतौर कर्ज़ वसूल कर लिए हैं ।”

दिल्ली सम्राट की प्राचीन मान मर्यादा को लॉर्ड ऐमहर्स्ट के समय से लेकर प्रायः प्रत्येक गवर्नर जनरल ने थोड़ा बहुत आघात अवश्य पहुँचाया । अंगरेज़ शासक इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि यदि उस समय किसी एक व्यक्ति के झगड़े के नीचे भारत के हिन्दू और मुसलमान मिलकर फिर से अपनी स्वाधीनता के लिए हाथ पैर मार सकते थे, तो वह व्यक्ति केवल दिल्ली का मुग़ल सम्राट ही हो सकता था । दिल्ली सम्राट के मान पर वार करना उस समय भारत के राष्ट्रीय मान पर वार करना था । सम्राट बहादुरशाह उस समय दिल्ली के तख़्त पर था । सन् १८४२ तक यह नियम चला आता था कि जो कोई अंगरेज़ दिल्ली सम्राट से मिलने जाता था वह अपनी पदवी के अनुसार कुछ न कुछ नज़र सम्राट के सामने पेश करता था । इस नियम के अनुसार प्रत्येक गवर्नर जनरल मुलाकात के समय एक सौ एक अशरफ़ी सम्राट की नज़र किया करता था । लॉर्ड एलेनब्रु ने सन् १८४२ में सम्राट के सामने अंगरेज़ों की ओर से इस प्रकार नज़रों का पेश किया जाना क़तई बन्द कर दिया ।

एलेनब्रु की हार्दिक इच्छा यह भी थी कि यदि हो सके तो दिल्ली के नगर और किले पर कब्ज़ा करके उसे ब्रिटिश भारत की राजधानी बनाया जाय। किन्तु ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन ने अपने २७ सितम्बर सन् १८४२ के पत्र में उसे आगाह कर दिया कि मुग़ल सम्राट और उसके कुल के मान में इससे अधिक हस्तक्षेप करना अंगरेजी राज के लिए ख़तरनाक साबित हो सकता है। इस पत्र के उत्तर में १८ दिसम्बर सन् १८४२ को लॉर्ड एलेनब्रु ने ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन को लिखा—

“× × × मैं पहले ही आपके समान इस नतीजे को पहुँच चुका था कि कोई ऐसा काम करना जिससे यह मालूम हो कि हम बूढ़े सम्राट के साथ अत्याचार कर रहे हैं, उचित न होगा। यह सम्भव है कि मेरा उत्तराधिकारी सम्राट के उत्तराधिकारी के साथ कोई ऐसा समझौता कर सके जिससे दिल्ली का क़िला हमारे हाथों में आ जाय। साम्राज्य की पुरानी राजधानी का हमारे हाथों में होना और हमारा वहीं से बैठ कर शासन चलाना मुझे सदा से एक बहुत बड़ा लक्ष्य प्रतीत हुआ है।”

केवल ढाई साल गवरनर जनरल रहने के बाद १ अगस्त सन्

• “ . . . I had already come to your conclusion that it would be an unadvisable step to do anything having the appearance of violence towards the old King. With his successor, my successor may be able to make some arrangement for the transfer to us of the citadel. To have in our hands the ancient seat of Empire, and to administer the Government from it, has ever seemed to me to be a very great object.”—Ellenborough to the Duke of Wellington, December, 18, 1842.

लॉर्ड एलेनब्रु की
वापसी

१८४४ को लॉर्ड एलेनब्रु ने अपनी पदवी का भार लॉर्ड हार्डिञ्ज को सौंप दिया। जाने से पहले एलेनब्रु ने इस देश की गरीब प्रजा के लिए नमक का महसूल तक बढ़ा दिया। फौज के लिए नई बारगों और छावनियों के बनवाने में उसने इतना अधिक खर्च किया कि कहा जाता है, कम्पनी के डाइरेक्टर उससे असन्तुष्ट हो गए, और यह भी उसके इतने जल्दी वापस बुला लिए जाने का एक कारण था। दूसरा कारण डाइरेक्टरों के उससे नाराज़ होने का यह बताया जाता है कि वह मुसलमानों को नाराज़ करके हिन्दुओं को खुश करना चाहता था। डाइरेक्टरों में सम्भवतः लॉर्ड मैकॉले की राय के आदमी अधिक थे। वास्तव में, इस विषय में अंगरेज़ी शासन की तराजू का पलड़ा कभी भी देर तक एक ओर को झुका हुआ नहीं रहा। एलेनब्रु के समय से आज तक इस विषय में ब्रिटिश राजनीति बारी बारी कभी एक ओर और फिर कभी दूसरी ओर को झुकती दिखाई दी है।



चालीसवाँ अध्याय

पहला सिख युद्ध

महाराजा रणजीतसिंह के समय से ही कम्पनी के शासकों के पञ्जाब पर दाँत लगे हुए थे। लॉर्ड एलेनब्रु ने युद्ध के श्रीगणेश का श्रेय रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद पञ्जाब के अन्दर विद्रोह खड़े करने और अराजकता फैलाने का पूरा प्रयत्न किया। सिखों के साथ युद्ध करने की उसने तैयारी भी कर ली थी। किन्तु सिख युद्ध के श्रीगणेश करने का श्रेय गवर्नर जनरल सर हेनरी हार्डिञ्ज को प्राप्त हुआ। यही सर हेनरी हार्डिञ्ज के शासन काल की सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटना थी।

लॉर्ड एलेनब्रु ने १७ जून सन् १८४४ को एक पत्र में अपने मित्र मेजर ब्रॉडफुट को लिखा—

“तुमने सुना होगा कि बाइरेक्टरों ने मुझे वापस बुला लेना उचित समझा है। मेरा उत्तराधिकारी मेरे तमाम विचारों को पूरा करेगा। यह मेरा अत्यन्त विश्वस्त मित्र है, और पिछले तीस साल से समस्त सार्वजनिक प्रश्नों पर मैं उसके साथ पत्र व्यवहार करता रहा हूँ।”

निस्सन्देह गवरनर जनरल हार्डिञ्ज ने एलेनब्रु के काम को ज्यों का त्यों जारी रक्खा। गवरनर जनरली सिख युद्ध की तयारी का पद सँभालते ही उसने पञ्जाब की सरहद पर युद्ध की तैयारी और अधिक ज़ोरों के साथ शुरू कर दी। सतलज नदी के दाईं ओर उस समय महाराजा रणजीतसिंह के बालक पुत्र महाराजा दलीपसिंह का राज था, और बाईं ओर फ़ीरोज़पुर, लुधियाना, अम्बाला और मेरठ, चार जगह अंगरेज़ों की मुख्य छावनियाँ थीं। एलेनब्रु के जाते समय फ़ीरोज़पुर की छावनी में ४,५६६ सिपाही और बारह तोपें थीं, हार्डिञ्ज ने इसे बढ़ा कर १०,४७२ सिपाही और २४ तोपें कर दीं। लुधियाने की छावनी में ३,०३० सिपाही थे, जिन्हें हार्डिञ्ज ने बढ़ा कर ७,२३५ कर दिए। अम्बाले की छावनी में हार्डिञ्ज से पहले ४,११३ सिपाही और २४ तोपें थीं, जिन्हें हार्डिञ्ज ने बढ़ा कर १२, ६७२ सिपाही और ३२ तोपें कर दीं। मेरठ की छावनी में ५,८७३ सिपाही और १८ तोपें थीं, जिनकी जगह हार्डिञ्ज ने ६,८४४ सिपाही और २५ तोपें कर दीं। इस प्रकार इन चार छावनियों के अन्दर १७,६१२ सिपाहियों और ६६ तोपों को बढ़ा कर हार्डिञ्ज ने ४०,५२३ सिपाही और ६४ तोपें कर दीं। खासकर लुधियाना और फ़ीरोज़पुर की

छावनियों को, जो दोनों सतलज के ऊपर थीं, उसने खूब मज़बूत कर लिया। सितम्बर सन् १८४५ में उसने ५६ बड़ी बड़ी किश्तियाँ फ़ीरोज़पुर के निकट मँगाकर जमा कर लीं। लॉर्ड एलेनब्रु का विचार नवम्बर सन् १८४५ तक इस सब तैयारी का पूरा कर लेने का था। हार्डिंज ने इस मियाद के अन्दर ही तमाम तैयारी पूरी कर ली।

अब पञ्जाब पर हमला करने के लिए केवल एक बहाने की आवश्यकता थी। महाराजा दलीपसिंह के ना-
 देश दोही बालिग़ होने के कारण उसकी माता रानी भिन्दाँ
 लालसिंह राज का अधिकतर कारबार चलाती थी। कहा जाता है कि प्रधान मन्त्री राजा लालसिंह महारानी भिन्दाँ का प्रेमपात्र और लाहौर दरबार में सब से अधिक प्रभावशाली था। कम्पनी के प्रतिनिधियों ने अपना मतलब पूरा करने के लिए अब लाहौर दरबार के कई मुख्य मुख्य व्यक्तियों को नाबालिग़ दलीप सिंह, महारानी भिन्दाँ और अपने देश तीनों के विरुद्ध अपनी ओर मिला लिया। इनमें सब से पहला व्यक्ति प्रधान मन्त्री राजा लाल सिंह था। फ़ीरोज़पुर की छावनी में उन दिनों एक कप्तान निकल्सन रहता था। इतिहास लेखक कनिङ्गम लिखता है —

“यह बात उस समय काफ़ी असन्दिग्ध और प्रसिद्ध थी कि लालसिंह का फ़ीरोज़पुर के अंगरेज़ एजण्ट कप्तान निकल्सन के साथ पत्र व्यवहार था, किन्तु निकल्सन की अकाल मृत्यु के कारण अब यह पक्की तरह मालूम नहीं

हो सकता कि लालसिंह से क्या क्या वादे किए गए और उसे क्या क्या आशाएँ दिलाई गईं।”❀

बहुत सम्भव है कि अदूरदर्शी और स्वार्थी लालसिंह को दलीपसिंह की जगह पञ्जाब की गद्दी का लालच दिया गया हो। जो हो, लालसिंह की विश्वासघातकता के और अधिक सुबूत देने की आवश्यकता नहीं है।

दूसरा प्रमुख व्यक्ति, जिसे अंगरेजों ने अपनी ओर फोड़ा, सरदार तेजसिंह नाम का सहारनपुर के ज़िले देश द्रोही तेजसिंह का रहने वाला एक ब्राह्मण था। यह तेजसिंह नाबालिग महाराजा दलीपसिंह की समस्त सेनाओं का प्रधान सेनापति था। धन के लोभ में आकर तेजसिंह भी अपने स्वामी और देश दोनों को बेचने के लिए तैयार हो गया।

तीसरा ज़बरदस्त देशद्रोही, जिसने पञ्जाब को विदेशियों के हाथों में सौंप दिया, जम्मू का राजपूत राजा देश द्रोही गुलाब सिंह गुलाबसिंह था। वास्तव में राजपूत इतिहास के अन्दर दूरदर्शी नीतिज्ञ प्रायः कम देखने में आते हैं। १६ वीं सदी के शुरू तक तरह तरह की अय्याशी और बदचलनी के कारण राजपूतों के चरित्र का पूरी तरह पतन हो

* “It was sufficiently certain and notorious at the time that Lal Singh was in communication with Captain Nicolson, the British agent at Ferozepur but owing to the untimely death of that officer, the details of the overtures made and expectation held out, can not now be satisfactorily known.”—*History of the Sikhs*, by Captain Cunningham, p. 305.

चुका था। राजा गुलाबसिंह ने सिख कौम, अपने देश और अपने स्वामी महाराजा रणजीतसिंह के नाबालिग पुत्र, तीनों के साथ दगा करके अंगरेजों का साथ दिया, जिसके इनाम में उसे और उसके वंशजों को बाद में काशमीर की विशाल रियासत प्रदान की गई।

वास्तव में भारतीय चरित्र का वह पतन, जिसके कारण अंगरेजों ने इस देश में अपना साम्राज्य कायम कर पाया, किसी भी दूसरे प्रान्त के इतिहास में इतनी बार और इतने जोरों के साथ नहीं चमकता जितना पञ्जाब के इतिहास में। आज से सौ वर्ष पूर्व का एक अंगरेज अफसर लिखता है —

“हमें फ़ौरन् यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि भारत के एक एक संग्राम में हमारी विजय का कारण इतना अधिक हमारे अपने शानदार कारनामे नहीं हैं जितना कि एशियाई चरित्र की निर्बलता। × × × उसी उसूल पर हमें यह निश्चित समझ लेना चाहिए कि जब कभी भारत की आबादी का बीसवाँ हिस्सा भी इतना दूरदर्शी और इतना चालाक हो जायगा जितने कि हम हैं, तो हमें फिर उसी तेज़ी के साथ पीछे हट कर पहले की तरह एक तुच्छ चीज़ बन जाना पड़ेगा।”*

* “We must at once admit that our conquest of India was, through every struggle more owing to the weakness of the Asiatic character than to the bare effect of our own brilliant achievements; . . . on the same principle we may set down as certain, that whenever one twentieth part of the population of India becomes as provident and as scheming as ourselves, we shall run back again, in the same ratio of velocity, the same course of our original insignificance.”—Carnaticus, in the *Asiatic Journal*, May, 1821.

निस्सन्देह पञ्जाब के राजनैतिक पतन का मुख्य कारण पञ्जाब के उस समय के राजनैतिक नेताओं और प्रभावशाली कुलों के चरित्र का आश्चर्य जनक पतन था। विशेष कर महाराजा रणजीत-सिंह के उत्तराधिकारियों का चरित्र काफी गिर चुका था, जिस पर हम अधिक कहना नहीं चाहते। राजकुल से उतर कर लालसिंह, तेजसिंह और गुलाबसिंह सिख साम्राज्य के तीन मुख्य स्तम्भ थे और ये तीनों ही स्वार्थ, विश्वासघात और देशद्रोह की मूर्ति साबित हुए।

तैयारी पूरी करने के बाद हार्डिञ्ज के चित्त में आक्रमण करने का कोई बहाना ढूँढ़ निकालने की चिन्ता उत्पन्न हुई। मेजर ब्रॉडफुट
लुधियाना, पंजाब और ब्रिटिश भारत की सरहद पर था। मेजर ब्रॉडफुट लुधियाने में गवर्नर जनरल का एजेंट था। सिखों को भड़का कर या जिस तरह हो सके, आक्रमण का बहाना ढूँढ़ने का काम ब्रॉडफुट को सौंपा गया। एलेनब्रु इंगलिस्तान से बैठा हुआ पंजाब के मामले में इतना अधिक शौक ले रहा था कि ७ मई सन् १८४५ को उसने एक पत्र द्वारा लन्दन से ब्रॉडफुट को सावधान किया कि—“आप जहाँ तक हो सके, लाहौर दरबार के विविध दलों में मेल न होने दें।” ब्रॉडफुट अपने मालिकों की इच्छा को योग्यता के साथ पूरा करता रहा।

सतलज नदी के इस पार कुछ इलाका महाराजा पटियाला इत्यादि कई सिख नरेशों का था और ये सब नरेश अंगरेज सरकार के संरक्षण में थे। कुछ थोड़ा सा इलाका लाहौर दरबार का था

जिससे अंगरेज़ों का कोई सम्बन्ध न था। महाराजा रणजीतसिंह के साथ कम्पनी की जो सन्धि हो चुकी थी उसमें अंगरेज़ों ने यह वादा किया था कि हम रणजीतसिंह के इस इलाके में किसी तरह का हस्तक्षेप न करेंगे। इतिहास लेखक कप्तान कनिङ्गम लिखता है—

“मेजर ब्रॉडफ़ुट की सब से पहली कार्रवाइयों में से एक यह थी कि उसने यह एलान कर दिया कि लाहौर दरबार का वह इलाका, जो सतलज के इस पार है, उतना ही अंगरेज़ों के संरक्षण में है जितना कि पटियाला और अन्य नरेशों के इलाके; और यदि महाराजा दलीपसिंह की मृत्यु हुई या उसे तख़्त से उतार दिया गया तो अंगरेज़ कम्पनी को इस इलाके के ज़ब्त कर लेने का अधिकार होगा। इस बात की सूचना बाज़ाब्ता सिख दरबार को नहीं दी गई, किन्तु सब को इसका पता था, और मेजर ब्रॉडफ़ुट ने इसी पर अमल किया × × ×।

“इसके अलावा (सतलज पर) पुल बाँधने के लिए जो किश्तियाँ बम्बई में तैयार कराई गई थीं वे सन् १८४५ की पतझड़ में फ़ीरोज़पुर की ओर रवाना कर दी गईं। मेजर ब्रॉडफ़ुट ने यह ज़ाहिर करने के लिए कि इन सशस्त्र किश्तियों को हमले का डर है हुकुम दिया कि सिपाहियों की ज़बरदस्त गारदेँ हिराज़त के लिए फ़ीरोज़पुर तक इन किश्तियों के साथ जायँ। किश्तियों के फ़ीरोज़पुर पहुँचते ही उसने अपने आदमियों को पुल बनाने का अभ्यास कराना शुरू किया। इन सब बातों से उसने क़रीब क़रीब यह ज़ाहिर कर दिया कि युद्ध शुरू हो गया है।”❀

* Cunningham's *History of the Sikhs*, pp. 297, et seq.

निस्सन्देह ब्रॉडफुट का लक्ष्य किसी तरह सिखों को भड़का कर उनकी ओर से युद्ध शुरू कराना था ।

उधर गवर्नर जनरल हार्डिञ्ज युद्ध का बहाना न मिलने से बेचैन हो रहा था ।

२३ अक्तूबर सन् १८४५ को उसने लॉर्ड एलेनब्रु के नाम एक पत्र में लिखा—

“किन्तु पञ्जाब या तो सिखों का होना चाहिए और या अंगरेजों का; X X X देर करना केवल इस प्रश्न के निबटारे को कुछ दिनों के लिए टालना है; साथ ही हमें याद रखना चाहिये कि अभी तक उन्होंने युद्ध का कोई कारण हमारे हाथों में नहीं दिया ।”*

इससे नौ महीने पहले २३ जनवरी सन् १८४५ को उसने लॉर्ड एलेनब्रु को एक और पत्र में लिखा था—
बहाने की तलाश

“यदि अपने मित्र (पञ्जाब) को उसकी इस विपत्ति की अवस्था में हड़प जाने के लिए हमारे पास वजह भी हो, तो भी हम इस समय तैयार नहीं हैं और उस समय तक तैयार नहीं हो सकते जब तक कि लू न चलने लगे और सतलज जोर से न बहने लगे । X X X किन्तु यदि यह महीना अक्तूबर का भी होता और हमारी सेना बिल्कुल तैयार होती, तो भी हम पञ्जाब पर हमला करने का बहाना क्या ले सकते थे ?

“आत्म रक्षा हमसे यह चाहती है कि हम सिखों की सेना को तितर

* “The Punjab must, however, be Sikh or British ; . . . The delay is merely a postponement of the settlement of the question ; at the same time we must bear in mind that as yet no cause of war has been given.”—Sir Henry Harding to Lord Ellenborough, October 23, 1845.

बितर कर दें; किन्तु × × × हम अपने उस दोस्त के इलाक़े पर क़ब्ज़ा जमा लेने का बहाना क्या बताएँगे, जिसने कि हमारी विपत्ति के समय में हमें अपनी बिगड़ी हुई अवस्था फिर से सुधारने में मदद दी थी ?”❀

निस्सन्देह सिख युद्ध करना न चाहते थे, सिख निर्दोष थे, अंगरेज़ युद्ध के लिए उत्सुक थे, और आगामी युद्ध का एक मात्र कारण कम्पनी की साम्राज्य पिपासा थी ।

कहा जाता है कि मार्च सन् १८४५ के लगभग पहले सिखों ने अपनी सरहद से निकल कर अंगरेज़ी इलाक़े पर हमला किया; अर्थात् सिख सवार सेना सतलज पार करके हरीकेपत्तन के निकट तलवण्डी नामक ग्राम पर आ पहुँची । कम्पनी के अफ़सरों ने और मेजर ब्रॉडफ़ुट ने इस घटना को सिख सेना का कम्पनी के इलाक़े पर हमला करना जाहिर किया है । किन्तु सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक कनिङ्गम से पता चलता है कि वास्तव में यह घटना क्या थी ।

कनिङ्गम लिखता है कि सतलज के इस पार कोटकपूरा नाम का एक नगर लाहौर दरबार के राज में था ।
 राई का पहाड़ वहाँ पर नगर की रक्षा के लिए लाहौर दरबार की ओर से कुछ सवार पुलिस रहा करती थी । इस पुलिस

* “ Even if we had a case for devouring our ally in his adversity, we are not ready and could not be ready until the hot winds set in and the Sutlaj becomes a torrent, . . . but on what plea could we attack the Punjab if this were the month of October, and we had our army in readiness ?

“ Self preservation may require the dispersion of this Sikh army ; . . . but . . . how are we to justify the seizure of our friend's territory, who in our adversity assisted us to retrieve our affairs ?”—Harding to Ellenborough, January 23, 1845.

की समय समय पर तबदोली होती रहती थी। इस मौके पर कुछ सिख सवार फ़ीरोज़पुर के निकट सतलज पार करके इन संरक्षकों की जगह लेने के लिए कोटकपूरा जा रहे थे। सतलज पार करने के लिए इन लोगों ने अंगरेज़ सरकार से पहले से इजाज़त नहीं ली थी। कनिङ्गम का मत है कि इतने थोड़े से सवारों के लिए, जो इस तरह के काम के लिए जा रहे हों, सन्धि के अनुसार इजाज़त की कोई आवश्यकता न थी। फिर भी मेजर ब्रॉडफुट ने, जो केवल भगड़ा मोल लेना चाहता था, इन सिख सवारों को सतलज पार कर वापस लौट जाने की आज्ञा दी। सिख अफ़सर लड़ना न चाहते थे, उन्होंने मेजर ब्रॉडफुट का कहना मान लिया। वे पीछे लौट पड़े, इस पर भी मेजर ब्रॉडफुट की तसल्ली न हुई। उसने सेना सहित उनका पीछा किया। ठीक उस समय जब कि सिख सवार नदी को पार कर लौट रहे थे, अंगरेज़ी सेना उनके पीछे आ पहुँची। अंगरेज़ी सेना ने बिना कारण सिख सवारों पर गोली चला दी। सिख दलपति को इस बात की चिन्ता थी कि मैं अकारण अपने दरबार को अंगरेज़ों के साथ युद्ध में घसीटने का कारण न बन जाऊँ। इसलिए बिना अंगरेज़ी सेना की गोलियों का जवाब दिए वह शान्ति के साथ नदी पार कर पीछे लौट गया और यह छोटा सा मामला यहीं समाप्त हो गया। फिर भी अपने मतलब के लिए इस राई का पहाड़ बनाया गया। यह समस्त बयान कप्तान कनिङ्गम का है।*

* Cunningham's *History of the Sikhs*, p. 296.

लाहौर दरबार अपनी सरहद के ऊपर कम्पनी की युद्ध की
 सन्धि का लगातार
 उल्लंघन तैयारियों को और इन सब बातों को अच्छी तरह
 देख रहा था। वह अब समझ गया कि अंगरेज़ों
 का इरादा शान्ति कायम रखने का नहीं है।

लाहौर दरबार को अंगरेज़ों के विरुद्ध और भी कई शिकायतें थीं।
 उनकी एक शिकायत थी कि कई बार अंगरेज़ों ने पिछली सन्धि
 का उल्लंघन किया। निस्सन्देह ये शिकायतें अत्यन्त गम्भीर थीं।
 फिर भी हमें उनके विस्तार में पड़ने की आवश्यकता नहीं है।
 सिखों की शिकायतों में से एक शिकायत यह भी थी कि फ़ीरोज़पुर
 का नगर वास्तव में लाहौर दरबार का था, और अंगरेज़ों की प्रार्थना
 के अनुसार कुछ शर्तों पर उन्हें दे दिया गया था। इन शर्तों में से
 एक यह थी कि अंगरेज़ एक नियमित संख्या से अधिक सेना वहाँ
 पर न रक्खेंगे। फिर भी अंगरेज़ बिना लाहौर दरबार की इजाज़त
 के फ़ीरोज़पुर की सेना को बेतहाशा बढ़ाते चले गए। लाहौर
 दरबार का कहना था कि सन्धि के अनुसार सिख कर्मचारियों
 इत्यादि के सतलज पार करने में अंगरेज़ों को किसी तरह की बाधा
 न डालनी चाहिए थी, किन्तु अंगरेज़ इस विषय में लगातार सन्धि
 का उल्लंघन करते रहे और बार बार लाहौर के उन कर्मचारियों का
 अपमान करते रहे जो सतलज पार करते थे, इत्यादि।

उस समय के सरकारी और गैर सरकारी लेखकों ने अंगरेज़ों
 के ऊपर महाराजा रणजीतसिंह के अनेक पह-
 अहसान फ़रामोशी
 सानों को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है।

अंगरेजों को प्रसन्न करने के लिए रणजीतसिंह ने अपने देशवासियों के साथ और आपत्ति में पड़े हुए जसवन्तराव होलकर के साथ विश्वासघात किया; और वह भी ऐसे अवसर पर जब कि यदि रणजीतसिंह होलकर का साथ दे जाता तो बहुत सम्भव, बल्कि करीब करीब निश्चित है कि अंगरेजी साम्राज्य की जड़ें भारत से उसी समय उखड़ गई होतीं। * दलीपसिंह के गद्दी पर बैठने के समय गवर्नर जनरल ने उसे रणजीतसिंह का न्याय उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया था और वादा किया था कि अंगरेज किसी दूसरे हकदार का पक्ष न लेंगे। लेकिन रणजीतसिंह के साम्राज्य को नष्ट करने, दलीपसिंह को उसके पैतृक राज से वञ्चित रखने और पञ्जाब को अंगरेजी साम्राज्य में मिलाने के लिए इस समय साजिशों का एक विशाल जाल पूरा जा रहा था।

नवम्बर सन् १८४५ का महीना निकट आ रहा था लॉर्ड एलेनब्रू के अनुमान के अनुसार अंगरेजों की सिख सेना का भड़काने के प्रयत्न तैयारी पूरी हो चुकी थी। अक्टूबर सन् १८४५ में सर हेनरी हार्डिञ्ज ने कलकत्ते से पञ्जाब की ओर प्रस्थान किया। सरहद से ऊपर अंगरेजी फौजों के जमा होने और गवर्नर जनरल के उस ओर प्रस्थान करने से सिख पूरी तरह समझ गए कि अंगरेजों का इरादा क्या है। अभी तक भी लाहौर दरबार शान्ति और धैर्य के साथ सब बातों को बरदाश्त कर रहा था। इसी कारण अंगरेजों को हमला करने का कोई ज़ाहिरा

* *The Career of Major Broadfoot*, p. 268.

बहाना हाथ न आ रहा था। अब हार्डिञ्ज ने लालसिंह और तेजसिंह पर जोर दिया कि जिस तरह हो सके, सिख सेना को भड़का कर उससे अंगरेजी इलाके पर फौरन हमला करा दिया जाय, ताकि अंगरेजों को युद्ध छेड़ने का बहाना मिल सके। सिखों को भड़काने के लिए सेना में अनेक गुप्तचर नियुक्त किए गए। अन्त में देशघातक लालसिंह और तेजसिंह ने कुछ सिख सेना को भड़का कर उससे अंगरेजी सरहद पर हमला करवा दिया। कप्तान कनिङ्गम इस विषय में लिखता है—

“यदि सिख सेनाओं के चतुर पञ्चों को अंगरेजों की सैनिक तैयारियाँ दिखाई न दे गई होतीं तो वे लालसिंह और तेजसिंह जैसे धनक्रीत मनुष्यों के कपटपूर्ण भड़काने की ओर कुछ भी ध्यान न देते, सिख सेना से ताने दे देकर पूछा गया कि क्या तुम खालसा राज की सीमाओं को कम होते हुए और लाहौर के मैदान पर दूरवर्ती यूरोप के बाशिन्दों का कब्ज़ा होते हुए चुपचाप बैठे देखते रहोगे? उन लोगों ने उत्तर दिया कि हम लोग गुरु गोविन्द के राज की समस्त प्रजा की रक्षा करने में अपने प्राण न्योछावर कर देंगे, और आगे बढ़ कर हमला करने वालों की सरहद के अन्दर उनसे युद्ध करेंगे।”*

* “Had the shrewd committees of the armies observed no military preparations on the part of the English, they would not have heeded the insidious exhortations of such mercenary men as Lal Singh and Tej Singh, . . . the men were tauntingly asked whether they would quietly look on while the limits of the Khalsa dominion were being reduced, and the planes of Lahore occupied by the remote strangers of Europe, they answered that they would defend with their lives all belonging to the Commonwealth of Govind, and that they would march and give battle to the invaders on their own ground.”—*History of the Sikhs*, by Cunningham, p. 299.

जाहिर है कि सीधे और वीर सिख सिपाहियों के साथ कितनी नीच चाल चली गई। जिन लोगों को वे अपने नेता समझ रहे थे वे ही उनके सर्वनाश के लिए उत्सुक थे और उसकी तद्वीरें कर रहे थे।

वीर सिख
सिपाहियों के
साथ नीच चालें

कप्तान निकल्सन ने मेजर ब्रांडफुट के नाम २३ नवम्बर सन् १८४५ के एक पत्र में साफ लिखा है कि राजा लालसिंह ने अंगरेजों की इच्छा के अनुसार सिख सेना को भड़का कर उससे अंगरेजी सरहद पर हमला करवाया। निस्सन्देह उस समय के लाखों गरीब सिख सिपाहियों की सच्ची वीरता, उनके बड़े हुए धार्मिक उत्साह और उनके आत्मोत्सर्ग के मुकाबले में सिख नेताओं के कपट, उनके नीच स्वार्थ, उनके देशद्रोह और उनके विश्वासघात का दृश्य अत्यन्त दुखकर है।

सारांश यह कि ठीक नवम्बर सन् १८४५ के मध्य में लालसिंह ही के अधीन सिख सेना लाहौर से चल पड़ी। इस सेना ने सतलज नदी को पार किया और अंगरेजों को पञ्जाब 'हड़पने' का बहाना हाथ आया। वास्तव में सारा नाटक पहले से निश्चित था।

हैदरअली, दौलतराव सींधिया और अन्य भारतीय नरेशों के समान महाराजा रणजीतसिंह ने भी अनेक यूरोपियन अफसरों को अपनी सेना में नौकर रख रक्खा था। ये यूरोपियन अफसर सङ्कट के समय अपने हिन्दोस्तानी मालिकों की ओर प्रायः कभी भी नमक

रणजीतसिंह के
यूरोपियन नौकर

दलाल साबित नहीं हुए। इन्हीं में एक जनरल वेश्वरा इस समय लाहौर सेना के अन्दर अंगरेजों का खास गुप्तचर था। सिखों की सैनिक कान्सिल ने सब से पहला दूरदर्शिता का कार्य यह किया कि इस तरह के समस्त यूरोपियन अफसरों को अपनी सेना से बरखास्त कर दिया। किन्तु अपने घर के भेदियों का उन्हें उस समय तक भी पता न था।

युद्ध का काफी बहाना मिल गया। १३ दिसम्बर सन् १८४५

को गवरनर जनरल सर हेनरी हाडिंज ने महा-
युद्ध का एलान राजा दलीपसिंह के साथ युद्ध का एलान किया और इस एलान द्वारा सतलज के इस पार के दलीपसिंह के तमाम इलाके को कम्पनी के राज में मिला लिया। पञ्जाब के सरदारों और पञ्जाब की प्रजा के नाम गवरनर जनरल का यह एलान, इस तरह के अन्य राजनैतिक एलानों के समान, भूठ और छल से भरा हुआ था। इस एलान द्वारा पञ्जाब के जागीरदारों, ज़मींदारों, सरदारों और वहाँ की प्रजा को बहका कर और प्रलोभन दे देकर बालक दलीपसिंह के विरुद्ध करने की पूरी चेष्टा की गई।

सरकारी उल्लेखों से मालूम होता है कि गवरनर जनरल हाडिंज को उस समय सिखों के दिल्ली पर हमला करने की आशङ्का थी। इसलिए दिल्ली में सेना बढ़ा दी गई और चारों ओर की सड़कों की रक्षा का विशेष प्रबन्ध किया गया।

यदि राजा लालसिंह अंगरेजों से मिला न होता तो सिख सेना के सतलज पार करते ही वह फ़ीरोज़पुर की अंगरेजी छावनी

पर हमला करता। किन्तु वह सिखों को उलटा मुदकी की ओर बढ़ा ले गया। १८ दिसम्बर सन् १८४५ को मुदकी मुदकी का संग्राम में दोनों ओर की सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ। अंगरेज इतिहास लेखकों का कथन है कि जिस भयङ्कर वीरता के साथ सिखों ने अंगरेजी सेना का मुकाबला किया, और जितनी ज़बरदस्त हानि अंगरेजों को सहनी पड़ी, उससे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि यदि सिख सेना के साथ विश्वासघात न किया जाता तो मुदकी के ऐतिहासिक मैदान में अंगरेजी सेना का एक सिपाही भी जिन्दा न बचता। किन्तु राजा लालसिंह और तेजसिंह की कोशिशों से सिख सिपाहियों को छुरों की जगह सुरसों और बारूद की जगह रँगा हुआ आटा बोरों में भर कर दे दिया गया। स्वभावतः मुदकी का मैदान अंगरेजों के हाथों में रहा।

मुदकी की लड़ाई के बाद सिख सेना वहाँ से हट कर फ़ीरोज़-शहर पहुँची। फ़ीरोज़शहर में फिर एक ज़बर
फ़ीरोज़शहर का संग्राम दस्त संग्राम हुआ, जिसमें एक बार विजय सिखों की रही। कहा जाता है कि फ़ीरोज़शहर में अंगरेजों को जितनी भारी हानि सहनी पड़ी उतनी भारत के किसी भी दूसरे मैदान में नहीं सहनी पड़ी थी। स्वयं गवर्नर जनरल हार्डिञ्ज, जो अपनी सेना के साथ था, इतना घबरा गया कि उस दिन रात को उसने अंगरेज अफ़सरों और उनके बाल बच्चों को पीछे हटा लेने का पूरा प्रबन्ध कर लिया। शेष अंगरेज

अफसर इससे भी अधिक घबराए हुए थे। यदि पूरी सिख सेना उस समय आगे बढ़ आती तो अंगरेजों का पता न चलता, किन्तु देशद्रोही लालसिंह ने इस विजय के बाद सिखों को आगे बढ़ने से रोके रक्खा। इतिहास लेखक विलियम एडवर्ड्स इस विषय में लिखता है :—

“यदि सिख सेना रात को आगे बढ़ आती तो परिणाम हमारे लिए निस्सन्देह अत्यन्त घातक होता, क्योंकि हमारी यूरोपियन सेनाओं की संख्या बहुत घट चुकी थी और तोपों और बन्दूकों दोनों के लिए हमारा गोला बारूद करीब करीब खत्म हो चुका था। उस समय हम लोग यह न समझ सके कि सिखों की नई सेना अपने साथियों की मदद के लिए आगे क्यों न बढ़ी। किन्तु बाद में मुझे लाहौर में पता लगा कि सिखों के नेताओं ने यह बहाना लेकर सेना को रोके रक्खा कि आज का दिन लड़ाई के लिए अशुभ है। कारण यह था कि रीजेंट राजा लालसिंह का हरगिज़ यह इरादा न था कि उसकी फौजें विजय प्राप्त करें; इसके विपरीत वह यह चाहता था कि अंगरेज सदा के लिए सिख फौजों का नाश कर डालें।”*

लालसिंह की नीचता और विश्वासघातकता का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है ?

फ़ीरोज़शहर का मैदान भी अन्त में अंगरेजों ही के हाथ रहा।

कनिङ्गम लिखता है कि गवर्नर जनरल ने इस समय एक नया प्लान प्रकाशित किया, जिसमें उन सिपा-सिखों को प्रलोभन दिये और अफसरों को, जो सिख सेना को

* *Reminiscences of a Bengal Civilian*, by William Edwards p. 97.

छोड़ कर अंगरेजों की ओर आमिले, तीन तरह के प्रलोभन दिए—
एक तात्कालिक नक़द इनाम, दूसरे भविष्य के लिए पेनशनें, और
तीसरे सब से अद्भुत प्रलोभन यह कि जो लोग सिख सेना को छोड़
कर अंगरेजों की ओर चले जाएँगे उनके यदि कोई मुक़दमे अंगरेजी
अदालतों के सामने पेश होंगे तो उन मुक़दमों का फ़ैसला तुरन्त
(उनके हक़ में ?) कर दिया जायगा !*

फ़ीरोज़शहर की लड़ाई में अनेक बड़े बड़े अंगरेज अफ़सरों
और सैनिकों की मृत्यु हुई, जिनमें से एक मेजर ब्रांडफुट भी था ।

इस समय के निकट गवर्नर जनरल को डर हुआ कि कहीं
पटियाले का राजा इन जोशीले ख़ालमा
महाराजा पटियाला
को प्रलोभन सिपाहियों के साथ न मिल जाय । महाराजा
पटियाले को अपनी ओर रखने के लिए विलियम
एडवर्ड्स को उसके पास भेजा गया । पूर्व से आने वाली अंगरेजी
सेना का रास्ता भी पटियाले की रियासत से होकर था, और
हार्डिञ्ज को इस बात का डर था कि यदि पटियाला सिखों के
साथ मिल गया तो अंगरेजी सेना के लिए बच कर निकल सकना
या पीछे से अपना सम्बन्ध कायम रख सकना असम्भव हो
जायगा । विलियम एडवर्ड्स ने महाराजा पटियाला से वादा
किया कि यदि आपने कम्पनी का साथ दिया तो युद्ध के बाद जो
इलाका कम्पनी के हाथ आएगा उसका एक हिस्सा आपको दे

* “ The anxiety of the Governor-General may be further inferred from his proclamation encouraging desertion, from the Sikh ranks, with the

दिया जायगा और आपका रुतबा बढ़ा कर न केवल सतलज के इस पार की रियासतों में सबसे ऊँचा कर दिया जायगा, बल्कि हिन्दोस्तान के बड़े से बड़े और प्राचीन महाराजाओं के तुल्य आपकी पदवी कर दी जायगी ।*

विलियम एडवर्ड्स को अपने उद्देश में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई ।

अंगरेज़ी सेना के सतलज पार कर लाहौर की ओर बढ़ने से पहले अलीवाल और सुबराँव नामक स्थानों पर दो और लड़ाइयाँ लड़ी गई ।

इन दोनों लड़ाइयों में अलीवाल की लड़ाई अधिकतर एक कपोलकल्पित लड़ाई थी । बुडीवाल में अंगरेज़ी अलीवाल की लड़ाई सेना का सामान सिख सेना ने छीन लिया था । इस घटना को किसी तरह खींच तान कर भी अंगरेज़ों को विजय नहीं कहा जा सकता । थोड़ी देर बाद अलीवाल में सिख सिपाहियों का एक छोटा सा दस्ता चला जा रहा था । अंगरेज़ी सेना के कुछ सिपाहियों ने उनके पीछे गोली चला दी । दोनों ओर से थोड़ी सी फट फट हुई । फ़ीरोज़शहर की हार के कारण अंगरेज़ों के युद्ध बल का उस समय चारों ओर मज़ाक उड़ रहा था । फ़ौरन् अलीवाल की इस छोटी सी घटना

assurance of present rewards and future pensions, and the immediate decision of any law suits in which the deserters might be engaged in the British provinces."—Cunningham's *History of the Sikhs*, page 311.

* *Reminiscences of a Bengal Civilian*, pp. 92, 93.

को बढ़ा कर अंगरेजों की एक शानदार विजय ज़ाहिर किया गया। एक अंगरेज़ लेखक जो मौक़े पर मौजूद था, लिखता है कि—“अलीवाल की लड़ाई सरकारी पत्रों की लड़ाई थी, क्योंकि जब तक हम लोगों ने सरकारी रिपोर्ट नहीं पढ़ी थी तब तक हममें से किसी को यह भी पता न था कि हम कोई लड़ाई लड़ चुके हैं !”*

सुबराँव की लड़ाई नीति की दृष्टि से अंगरेज़ों कोम के लिए और भी अधिक लज्जाजनक थी। इतिहास लेखक सुबराँव की लड़ाई विलियम एडवर्ड्स लिखता है कि “जिस समय गवरनर जनरल फ़ीरोज़पुर में था उस समय राजा लालसिंह के गुप्तचरों ने आकर सिख सेना की स्थिति इत्यादि के विषय में गवरनर जनरल को बड़ी कीमती ख़बरें दीं। सिखों ने बड़ी वीरता के साथ जान लड़ा कर युद्ध किया। किन्तु उन्हें किश्तियों के पुल की ओर हटा दिया गया। यह बात पहले से तय हो चुकी थी कि संग्राम शुरू होते ही सिखों के नेता राजा लालसिंह और तेजसिंह स्वयं पुल के पार पहुँच कर पुल को तोड़ डालेंगे, उन्होंने ऐसा ही किया।”†

सुबराँव के मैदान में अकेले लालसिंह और तेजसिंह ही असहाय

* “Aliwal was the battle of the despatch, for none of us knew we had fought a battle until the particulars appeared in a document
Wanderings of a Naturalist in India, by Andrew Leith Adams M. D. etc

† *Reminiscences of a Bengal Civilian*, pp. 99, 100.

सिख सिपाहियों के साथ विश्वासघात करने वाले न थे। विलियम

एडवर्ड्स और आगे चल कर लिखता है—

सिखों के विश्वास

घातक नेता

“मुदकी, फ़ीरोज़शहर और अलीवाल में सिखों की

पराजय के बाद सिख सेना का विश्वास राजा

लालसिंह, तेजसिंह और अपने अन्य नेताओं पर से बिलकुल

उठ गया। वे उन पर यह दोष लगाने लगे कि ये लोग सिखों के

नाश के लिए अंगरेज़ सरकार के साथ मिले हुए हैं। उन्होंने अब

जम्मू के राजा गुलाबसिंह को अपना नेता बनने के लिए बुला भेजा।

राजा गुलाबसिंह ने स्वीकार कर लिया और अपनी एक बहुत बड़ी विश्वस्त

पहाड़ी सेना लेकर लाहौर आ पहुँचा। लाहौर दरबार को उसने यह समझाया

कि मैं अपनी इस सेना से लाहौर के क़िले की रक्षा कर लूँगा, क़िले के

अन्दर की सिख सेना को सतलज नदी (सुबराँव) की ओर भेज दिया

जाय। X X X गुलाबसिंह ने इस सिख सेना से ज़ार देकर यह भी कह

दिया कि जब तक मैं तुमसे न आ मिलूँ तब तक अंगरेज़ों पर हमला करने

का प्रयत्न न करना। यह कह कर वह एक न एक बहाना लेकर अपना

जाना टलाता रहा। वह अच्छी तरह जानता था कि उचित समय पर

अंगरेज़ हमला करके सुबराँव जीत लेंगे।”*

इतिहास लेखक कनिङ्गम ने भी साफ़ लिखा है कि अंगरेज़ों और सिख सेना के नेताओं में यह पहले से तय हो चुका था कि अंगरेज़ों के हमला करने पर सिख नेता अपनी फ़ौज को छोड़ कर अलग हो जायँ, उसे कट जाने दें, सतलज पार करने में अंगरेज़ों



शामसिंह अटारीवाला

[By Courtesy of the Curator Central Museum, Lahore.]

का विरोध न करें और लाहौर तक की सड़क अंगरेजी सेना के लिए खोल दें।*

कनिङ्गम ने विस्तार के साथ लिखा है कि किस प्रकार सुबराँव में विश्वासघाती नेताओं ने सिख सेना को ले जाकर ऐसे स्थान पर पहुँचा दिया जहाँ पर कि सिख सैनिकों की असीम वीरता नदी को पार कर सकना असम्भव था। वहाँ पर अंगरेजी सेना ने उन्हें दोनों ओर से घेर कर उन पर हमला किया; फिर भी एक भी सिख सिपाही विदेशियों की शरण आने के लिए तैयार न हुआ। निर्दय नेताओं ने अपनी इस वीर सेना का सर्वनाश कर देने के उद्देश से तोपखाने सहित उन्हें नदी के अन्दर बढ़ा दिया और वहाँ पर अपनी आँखों के सामने अंगरेजी सेना के हाथों उनका वध करवाया। यहाँ तक कि सतलज नदी लाशों से भर गई और नदी का जल खून से रँग गया। इस प्रकार सुबराँव के मैदान में सतलज नदी के ऊपर देशद्रोही लालसिंह, तेजसिंह और गुलाबसिंह ने रणजीतसिंह के कायम किए हुये साम्राज्य, पञ्जाब की स्वाधीनता और वीर तथा अजेय सिख कौम, तीनों का खून करवा डाला !

उस समय के देशभक्त और वफ़ादार सिख सरदारों में शामसिंह अटारी वाले का नाम सदा के लिये स्मरणीय रहेगा। कनिङ्गम लिखता है—

“किन्तु बूढ़े शामसिंह को अपनी प्रतिज्ञा का

* *History of the Sikhs*, p. 324.

स्मरण रहा। उसने शोग की पोशाक (कोरे सफ़ेद वस्त्र) धारण किए और अपने आस पास के सब सैनिकों को यह याद दिला कर कि गुरु ने युद्ध में मरने वाले वीरों से अनन्त सुख का वादा किया है, उसने बार बार उन्हें अपने चारों ओर जमा कर लिया और गुरु के नाम पर प्राण न्याछावर करने के लिये प्रेरित किया। अन्त में अपने इन्हीं देशबन्धुओं की लाशों के ढेर के ऊपर वह भी स्वयं शहीद होकर गिर पड़ा।”*

प्रथम सिख युद्ध में सिखों की २२० तोपें अंगरेजों के हाथ लगीं। इनमें से ८० तोपों के विषय में गवरनर-सिखों की तोपें जनरल ने लिखा कि इतनी बड़ी तोपें उस समय यूरोप में कहीं भी मौजूद न थीं, उनकी मार अंगरेजी तोपों के मुकाबले में कहीं अधिक दूर तक जाती थी, पीछे को धक्का कम लगता था और चलाने के समय जितनी जल्दी अंगरेजी तोपें गरम हो जाती थीं उतनी जल्दी ये न होती थीं।

सुबराँव की लड़ाई के बाद १२ फ़रवरी सन् १८४६ को गवरनर-जनरल हार्डिञ्ज सतलज पार कर लाहौर की ओर लाहौर दरबार के साथ सन्धि बढा। मेजर ब्रांडफुट के पद पर इस समय मेजर लॉरेन्स था जो बाद में सर हेनरी लॉरेन्स के नाम से विख्यात हुआ। लाहौर में देशद्रोही राजा गुलाबसिंह ने इस सुन्दरता के साथ समस्त प्रबन्ध कर रक्खा था कि मार्ग में किसी ने भी एक गोली अंगरेजी सेना पर न चलाई। फिर भी विलियम एडवर्ड्स लिखता है कि पञ्जाब पर कब्ज़ा जमाने के लिए

* Ibid, p. 327.

गवर्नर जनरल को अंगरेजी सेना बिल्कुल थोड़ी मामलू हुई। गवर्नर जनरल सिखों की वीरता देख चुका था। इसलिए उसे यह भी विश्वास न था कि देश भर में समस्त सिख कौम आसानी से अंगरेजों की अधीनता स्वीकार कर लेगी। उसने लाहौर दरबार के साथ सन्धि कर लेना ही उचित समझा।

मार्च सन् १८४६ में लाहौर दरबार के साथ पहली सन्धि की गई। पञ्जाब का कुछ इलाका लाहौर दरबार और बालक दलोपसिंह से छीन कर अंगरेजी राज में मिला लिया गया, और शेष के ऊपर देशद्रोही लालसिंह को वजीर की हैसियत से शासक नियुक्त कर दिया गया।

किन्तु शीघ्र ही इस सन्धि को तोड़ कर एक दूसरी सन्धि की आवश्यकता अनुभव हुई। मालूम होता है कि देशद्रोहियों को पुरस्कार लालसिंह को कुछ और अधिक इनाम की आशा थी। गुलाबसिंह को उसके देशद्रोह के पारितोषिक रूप काश्मीर का विशाल राज, शेख इमामुद्दीन से छीन कर, एक करोड़ रुपया लेकर दे दिया गया। लालसिंह का असन्तोष और भी अधिक बढ़ा। कहा जाता है कि उसने गुलाबसिंह के काश्मीर पर कब्जा करने में बाधाएँ डालीं। अन्त में लाहौर ही में एक दूसरी सन्धि की गई, जिसे भैरोंवाल की सन्धि कहा जाता है। यह सन्धि १६ दिसम्बर सन् १८४६ को की गई। इस सन्धि के अनुसार रानी भिन्दाँ को पन्द्रह हजार पाउण्ड अर्थात् डेढ़ लाख रुपये सालाना की पेनशन देकर राज प्रबन्ध से

अलग कर दिया गया। लालसिंह की भी सत्ता समाप्त कर दी गई। बाद में उसे कैद करके देहरादून भेज दिया गया। दलीपसिंह के नाबालिग रहने के समय तक के लिए आठ सरदारों की एक कौन्सिल बना दी गई। तेजसिंह इस कौन्सिल का एक सदस्य रहा। यह तय कर दिया गया कि यह कौन्सिल अंगरेज़ रेज़िडेण्ट की हिदायतों के अनुसार राज का समस्त प्रबन्ध करे। युद्ध के दण्ड रूप एक बहुत बड़ी रकम लाहौर दरबार से वसूल की गई; दरबार की सेना का एक बड़ा भाग तोड़ दिया गया; और उसकी जगह कम्पनी की सेना पञ्जाब में नियुक्त की गई, जिसका खर्च लाहौर दरबार पर डाला गया।

पञ्जाब की स्वाधीनता का इस प्रकार अन्त करने के इनाम में
 हाडिंज़ को गवरनर जनरल सर हेनरी हाडिंज़ को 'लॉर्ड'
 इनाम की उपाधि और कम्पनी की ओर से असहाय
 भारतवासियों के दिये हुये टैक्सों में से तीन
 हजार पाउण्ड सालाना की आजीवन पेनशन अता की गई।

इस युद्ध में राजा गुलाबसिंह के विश्वासघात की याद में
 आज तक पञ्जाब के अनेक लोग 'जम्मू' शहर
 जम्मू का नाम का नाम लेना अपशकुन समझते हैं, और उसे
 लेना अपशकुन 'बड़ा शहर' कह कर पुकारते हैं।

गवरनर जनरल लॉर्ड हाडिंज़ के शासन-काल की शेष मुख्य
 मुख्य घटनाएँ बहुत थोड़े में वर्णन की जा सकती हैं। शिवाजी के



राजा प्रतापसिंह, सतारा

[From " Story of Satara, " by B. D. Basu.]

वंशज सतारा के निर्दोष और पदच्युत राजा प्रतापसिंह को उसने बनारस के अन्दर ऐसी बुरी स्थिति में रक्खा कि राजा प्रतापसिंह की रानी बीमार होकर मर गई, प्रतापसिंह का स्वास्थ्य बेहद बिगड़ गया, उसके अंगरेज जेलर मेजर कारपेण्टर तक ने प्रतापसिंह की निर्दोषता को तसदीक करते हुये गवरनर जनरल से दया की सिफारिश की, फिर भी लॉर्ड हार्डिंज ने परवान की और अक्तूबर सन् १८४७ में राजा प्रतापसिंह घुल घुल कर मर गया। अंगरेज इतिहास-लेखक लडलो लिखता है “यह पापकर्म लॉर्ड हार्डिंज के नाम के साथ सदा के लिए लगा रहेगा।” * नैपाल के अन्दर अराजकता, हत्याओं और साजिशों का वैसा ही बाजार गरम किया गया जैसा सिख युद्ध से पहले पञ्जाब में। उस समय से ही नैपालियों में एक मसल मशहूर है कि—‘सौदागर के साथ साथ बन्दूक चलती है और इञ्जील के साथ साथ सङ्गीन।’ किन्तु नैपाल में क्षेत्र इतनी आसानी से तैयार न हो सका। अवध के बादशाह को भी ‘तम्बीह’ करने के लिए लॉर्ड हार्डिंज लखनऊ पहुँचा, किन्तु वहाँ भी मामला पकने में अभी कुछ देर थी।

लॉर्ड हार्डिंज अपने आपको एक धर्मनिष्ठ ईसाई प्रकट करता था। अक्तूबर सन् १८४६ में उसने एक क़ानून पास किया कि रविवार के दिन कोई किसी से

* “With this evil deed Lord Harding's name is' inseparably connected.”
—*British India*, by Ludlow, vol. ii, p. 154.

१२८४

भारत में अंगरेज़ी राज

काम न ले । यूरोपियन सिपाहियों के लिए उसने हिन्दोस्तान में अनेक नई सुविधाएँ पैदा कर दीं । अन्त में १८ जनवरी सन् १८४८ को उसने भारत से प्रस्थान किया और लॉर्ड डलहौज़ी उसको जगह गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ ।



इकतालीसवाँ अध्याय

.....

दूसरा सिख युद्ध

भारत के अन्दर अंगरेज़ी साम्राज्य को विस्तार देने वालों में डलहौज़ी का नाम सब से अन्तिम है ; अर्थात् लॉर्ड डलहौज़ी की निश्चित नीति डलहौज़ी के शासनकाल के पश्चात् भारत के मानचित्र में कोई और हिस्सा लाल नहीं रंगा गया । ऊपर लिखा जा चुका है कि लॉर्ड आँकलैण्ड के समय में इंगलिस्तान के अन्दर लॉर्ड लैण्ड्सडाउन के मकान पर वहाँ के मन्त्रियों और खास खास नीतिज्ञों की एक सभा हुई, जिसमें यह निश्चय किया गया कि हमें भारत में अपने मित्र देशी नरेशों के राज्यों को जिस तरह बन पड़े अपने साम्राज्य में मिला मिला कर अपनी वार्षिक आय को बढ़ाना चाहिए ।* इसी निश्चित नीति के

* *Memoir of General John Briggs*, p. 279.

अनुसार लॉर्ड डलहौज़ी ने एक एक कर भारत के रहे सहे देशी राज्यों का खात्मा करना शुरू कर दिया ।

इनमें दो सब से बड़े राज्य, पञ्जाब और बरमा थे, जिनमें सब से पहले हम पञ्जाब की कहानी संक्षेप में बयान करते हैं ।

लॉर्ड हार्डिञ्ज अपने समय में पञ्जाब की अवस्था को देखते हुए पञ्जाब को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लेने का पञ्जाब में असन्तोष साहस न कर सका था । फिर भी १६ दिसम्बर सन् १८४६ वाली भैरोंवाल की सन्धि पर जिस प्रकार अमल किया जा रहा था उससे मालूम होता था कि पञ्जाब के लोगों को भड़का कर दूसरे सिख युद्ध के लिए बहाने पैदा किए जा रहे हैं, ताकि अन्त में मौका पाकर पञ्जाब की स्वाधीनता का अन्त कर दिया जाय । सर फ्रेडरिक करी इस समय लाहौर का रेज़िडेण्ट था । उसके पत्रों से प्रकट है कि वह आरम्भ से ही बालक दलीपसिंह और सिख राज दोनों का शत्रु था और दोनों को समूल नष्ट कर देना चाहता था । रेज़िडेण्ट की हैसियत से भैरोंवाल की सन्धि के अनुसार करी ही इस समय पञ्जाब का क्रियात्मक शासक था । राज के एक एक महकमें में उच्च और जिम्मेवार पदों से देशवासियों को निकाल कर उसने उनकी जगह अंगरेज़ भरती करने शुरू कर दिए । पञ्जाबियों में असन्तोष बढ़ने लगा और उन्हें यह सन्देह होने लगा कि अंगरेज़ों का इरादा महाराजा दलीपसिंह के बालिग हो जाने पर भी सन्धि की शर्तों के अनुसार पञ्जाब का राज उसे सौंप देने का नहीं है, वरन् वे पञ्जाब पर स्वयं कब्ज़ा करने की

फ़िक्र में हैं। रेज़िडेंट करी के समस्त व्यवहार से इस सन्देह को अधिकाधिक पुष्टि मिलती गई।

इस समय की पञ्जाब की घटनाओं में सबसे मुख्य मुलतान की घटना थी। यहाँ तक कि यह घटना ही दूसरे मुलतान की घटना सिख युद्ध का मुख्य कारण बताई जाती है।

मुलतान का प्रान्त महाराजा रणजीतसिंह ने सन् १८१८ में अपने साम्राज्य में शामिल किया था। दीवान सावनमल को लाहौर दरबार की ओर से वहाँ का शासक नियुक्त किया गया था। मुलतान प्रान्त की आमदनी उस समय ३५ लाख रुपए वार्षिक थी, जिसमें से १७½ लाख वार्षिक सावनमल को लाहौर के खज़ाने में जमा कराने पड़ते थे। अपने प्रान्त के शेष समस्त शासन प्रबन्ध में दीवान सावनमल पूर्णरूप से स्वतन्त्र था। कम्पनी की सरकारी रिपोर्टों में दर्ज है कि दीवान सावनमल के सुयोग्य शासन में मुलतान की भौतिक और आर्थिक स्थिति में बहुत बड़ी उन्नति हुई। उसने कई नहरें खुदवाईं, बहुत से बज़र इलाक़े को ज़रखेज़ बना दिया, कृषि, व्यापार और कारीगरी को ख़ूब उन्नति दी, यहाँ तक की आस पास के इलाक़ों से अनेक लोग आ आकर मुलतान प्रान्त में बसने लगे; और उस प्रान्त का वैभव दिनों दिन बढ़ता चला गया।

सावनमल की मृत्यु के बाद उसका बेटा मूलराज मुलतान का शासक हुआ। देशद्रोही लालसिंह उस समय दीवान मूलराज बालक दलीपसिंह की ओर से लाहौर दरबार

का कर्ता धर्ता था। उसने मूलराज से बाप की गद्दी पर बैठने के लिए १८ लाख की रकम बतौर नज़राने के माँगी। दीवान मूलराज ने एक नियत समय के अन्दर यह रकम पूरी कर देने का वादा किया। किन्तु इसके बाद ही अंगरेजों के प्रताप से लाहौर दरबार के अन्दर नित्य नए उपद्रव खड़े होने लगे। कुछ दिनों तक यह भी पता न चलता था कि राज की वास्तविक बाग किसके हाथों में है, अंगरेजों के या सिखों के। मूलराज ने ऐसी स्थिति में १८ लाख रुपये नज़राने के भेजना उचित न समझा। पहले सिख युद्ध और लाहौर की पहली सन्धि के बाद लालसिंह ने अपने भाई भगवानसिंह के अधीन एक सेना मूलराज को ज़ेर करने और उससे यह रकम वसूल करने के लिए मुलतान भेजी। मालूम होता है कि अंगरेज और लालसिंह दोनों मूलराज को हटा कर उसकी जगह भगवानसिंह को मुलतान की दीवानी देना चाहते थे किन्तु भगवानसिंह की सेना को मूलराज के मुकाबले में हार खाकर लौट आना पड़ा। फिर भी मुलतान प्रान्त का एक इलाका जुन्नक (?), जिसको आय आठ लाख रुपये सालाना थी, दीवान मूलराज से छीन कर भगवानसिंह को दे दिया गया।

कुछ दिनों बाद दीवान मूलराज को हिसाब साफ़ करने के लिए लाहौर बुलाया गया। मूलराज को सन्देह हुआ, फिर भी वह लाहौर आया। सब बातें तय हो गईं। मूलराज अपने पद पर बहाल रक्खा गया और मुलतान लौट गया।

इसके बाद भैरोंवाल की सन्धि हुई। इस सन्धि को चन्द महीने

भी न बीतने पाए थे कि अंगरेजों ने फिर दीवान मूलराज को हटा कर उसकी जगह अपना एक आज्ञाकारी अनुचर मूलराज के शासन में अंगरेजों का हस्तक्षेप नियुक्त करने की आवश्यकता अनुभव की। दीवान मूलराज को अब इस उद्देश से दिक्र किया जाने लगा ताकि वह तङ्ग आकर अपने पद से इस्तीफा दे दे। मुलतान प्रान्त की आमदनी इस समय ३६½ लाख रुपए सालाना थी, जिसमें लाहौर दरबार का खिराज १७½ लाख था। इसे बढ़ा कर अब १६½ लाख कर दिया गया और यह तय कर दिया गया कि दो साल बाद १६½ लाख से बढ़ा कर इस खिराज को २५ लाख कर दिया जाय, और उसके तीन साल बाद ३० लाख।* इतना ही नहीं, मुलतान प्रान्त के शासन में दीवान मूलराज की सहायता के लिए ज़बरदस्ती दो अंगरेज कमिश्नर, नौ अंगरेज कलेक्टर और सात अंगरेज जज नियुक्त करके मुलतान भेजने की तजवीज़ की गई। दीवान मूलराज का शासन प्रबन्ध इतना सुन्दर था; उसकी प्रजा इतनी सुखी, सन्तुष्ट और समृद्ध थी कि उस समय के अंगरेज लेखकों तक ने इन सब बातों को स्वीकार किया है। मूलराज का वीरोचित आत्म सम्मान और उसकी प्रजापालकता दोनों में से किसी ने भी उसे इजाज़त न दी कि वह अपने यहाँ के शासन में इस अनुचित हस्तक्षेप को गवारा करे। विवश होकर नवम्बर सन् १८४७ में वह लाहौर पहुँचा। वहाँ पर उसने अंगरेज रेज़िडेंट से प्रार्थना की कि दीवानी के पद

* *Notes on the Revenues and Resources of the Punjab*, by Elliots, p. 41

से मेरा इस्तीफ़ा स्वीकार किया जाय । जॉन लॉरेन्स इस समय लाहौर का रेज़िडेण्ट था । किन्तु अंगरेज़ अभी तक मुलतान का शासन मूलराज के हाथों से लेने के लिए तैयार न हो पाए थे । दीवान मूलराज को समझा बुझा कर फिर मुलतान वापस कर दिया गया ।

इसके बाद सर फ़्रेडरिक करी रेज़िडेण्ट नियुक्त होकर लाहौर पहुँचा । उसने मूलराज को और अधिक दिक्कत
मूलराज की
बर्खास्तगी
करना शुरू कर दिया । वास्तव में मुलतान प्रान्त का धन वैभव उस समय अत्यन्त बढ़ा हुआ था ।

पञ्जाब के समस्त प्रान्तों में अंगरेजों के सब से अधिक उसी पर दाँत थे । रेज़िडेण्ट करी अब जिस तरह हो सके, दीवान मूलराज से भगड़ा मोल लेने के लिए कृतनिश्चय था । ये सब बातें करी और अन्य अंगरेजों के उस समय के पत्र व्यवहार से स्पष्ट हैं । करी ने लाहौर दरबार से दीवान मूलराज पर इस्तीफ़ा देने के लिए फिर से ज़ोर दिया । इस बार उसका इस्तीफ़ा मंज़ूर कर लिया गया । काहनसिंह मान नामक एक मनुष्य तीस हजार रुपये सालाना तनखाह पर मूलराज की जगह मुलतान का शासक नियुक्त किया गया । यह भी तय कर दिया गया कि दो अंगरेज़ अफ़सर एक एगन्यू और दूसरा एण्डरसन, काहनसिंह के साथ मुलतान जायें और इन दोनों की सलाह से काहनसिंह शासन का समस्त कार्य करे ।

काहनसिंह, एगन्यू और एण्डरसन कुछ सेना सहित १८ अप्रैल

सन् १८४८ को मुलतान पहुँचे । १६ अप्रैल को दीवान मूलराज ने शासन का भार बाज़ाब्ता काहनसिंह के सुपुर्द कर दिया । एगन्यू ने फ़ौरन् नगर के सब दरवाज़ों के ऊपर अंगरेज़ी गारद नियुक्त कर दी । उसी दिन नगर के करीब समस्त मुलतानी सिपाहियों को बरखास्त करके उनकी जगह गोरे नियुक्त कर दिए गए । मुलतान निवासी समझ गए कि शासन की बाग काहनसिंह के हाथों में नहीं, बल्कि वास्तव में विदेशियों के हाथों में चली गई । इन विदेशियों के विरुद्ध असन्तोष समस्त पञ्जाब में बढ़ता जा रहा था । १६ अप्रैल ही को जब कि एगन्यू अपने घोड़े पर चढ़ रहा था, दो मुलतानी सवारों ने जिन्हें उसी दिन बरखास्त किया गया था, तेज़ी से आकर एगन्यू पर वार किया । एगन्यू बुरी तरह घायल होगया । किन्तु काहनसिंह ने फ़ौरन् बीच में पड़ कर एगन्यू को मरने से बचा लिया ।

एगन्यू और एण्डरसन के रहने के लिए नगर के बाहर एक ईदगाह तजवीज़ की गई । मूलराज नगर छोड़ मुलतान का संग्राम कर चला गया । किन्तु अनेक मुलतानी सिपाहियों ने, जो १६ तारीख को बरखास्त किए गए थे, २० अप्रैल की सुबह ईदगाह को आकर घेर लिया । गोरी सेना के अतिरिक्त काहनसिंह के साथ एक हिन्दोस्तानी सेना भी थी । इस सेना के सब सिपाही अब मुलतानियों की ओर जा मिले; किन्तु उनके सरदार अधिकतर काहनसिंह और उसके विदेशी साथियों की

और रहे। पगन्यू और पण्डरसन दोनों उस दिन के संग्राम में मार डाले गए। काहनसिंह जख्मी होकर कैद कर लिया गया। निस्सन्देह इस दुर्घटना का मुख्य कारण था मुलतानियों की स्वाधीनता पर हमला और उनमें से सहस्रों निरपराधों की जीविका का छीन लिया जाना।

पञ्जाब को हड़प जाने के लिए अभी और अधिक सङ्गीन बहानों की ज़रूरत थी। लाहौर में बैठे बैठे रेज़िडेण्ट महारानी फ़िन्दाँ कौर के साथ अन्याय करी ने महाराज दलोपसिंह की माता, महारानी फ़िन्दाँ कौर पर यह विचित्र इलज़ाम लगाया कि मुलतान के विद्रोह में फ़िन्दाँ कौर का हाथ था। रेज़िडेण्ट करी ने स्वयं अपने पत्रों में स्वीकार किया है कि महारानी के विरुद्ध उसके पास कोई सुबूत न था। न कोई तहकीकात की गई और न यह मामला लाहौर दरबार या कौन्सिल के सामने तक पेश किया गया। केवल अंगरेज़ रेज़िडेण्ट के हुकुम से १५ मई सन् १८४८ को महाराजा रणजीतसिंह की विधवा महारानी और महाराजा दलोपसिंह की माता, फ़िन्दाँ कौर को शेखुपुरे के महल से कैद करके तुरन्त बनारस भेज दिया गया। हुकुम दे दिया गया कि महारानी फ़िन्दाँ कौर बिना अपने अंगरेज़ पहरदार की इजाज़त के न किसी से पत्र व्यवहार करे और न किसी से किसी तरह का सम्बन्ध रखे !

समस्त पञ्जाब और विशेष कर समस्त सिख जाति महारानी फ़िन्दाँ कौर को अपनी माता के समान समझती थी। विधवा

महारानी के साथ इस प्रकार के व्यवहार को देखते ही समस्त सिख जाति में एक आग सी लग गई।

१५ मई को महारानी को कैद किया गया। २५ मई को रेज़िडेण्ट करी ने गवर्नर जनरल को लिखा कि महारानी की गिरफ्तारी ख़ालसा सेना महारानी की गिरफ्तारी की ख़बर सुनते ही भड़क उठी, सिख सिपाही चिल्लाने लगे कि 'महारानी भिन्दाँ कौर हमसे जुदा कर दी गई, बालक दलीपसिंह अंगरेज़ों के हाथों में है, अब हम किसके लिए लड़ें और किसके झण्डे के नीचे जमा हों!' समस्त सिख जाति अब दीवान मूलराज और उसके विद्रोही सिपाहियों के साथ सहानुभूति अनुभव करने लगी।

लाहौर के सिख सरदार भी इस अत्याचार को देख कर क्रोध और दुख से भर गए। लाहौर कौन्सिल के सिखों में असन्तोष प्रमुख सदस्य राजा शेरसिंह ने समस्त पञ्जाब में एक एलान प्रकाशित किया, जिसके शुरू में लिखा था—

“पञ्जाब के तमाम बाशिन्दों को, तमाम सिखों को, और वास्तव में तमाम दुनियां को अच्छी तरह मालूम है कि फ़िरङ्गियों ने स्वर्गवासी महान् महाराजा रणजीतसिंह की विधवा महारानी के साथ कितने जुल्म, ज़्यादती और बेजा ज़बरदस्ती का व्यवहार किया है।

“लोगों की माता महारानी को कैद करके और हिन्दोस्तान भेज कर फ़िरङ्गियों ने सन्धि को तोड़ डाला है, इत्यादि।”

यहाँ तक कि अफ़ग़ानिस्तान के अमीर दोस्तमोहम्मद खाँ की सहानुभूति भी इस समय पञ्जाबियों के साथ थी। दोस्तमोहम्मद खाँ ने कप्तान एबट के नाम एक पत्र में लिखा—

अमीर
दोस्तमोहम्मद
की सहानुभूति

“इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि सिखों में असन्तोष दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा है। कुछ को नौकरी से बरखास्त कर दिया गया है, कुछ को जलावतन करके हिन्दोस्तान भेज दिया गया है, ख़ास कर महाराजा दलीपसिंह की माँ को कैद कर लिया गया है और उनके साथ बेजा सलूक किया गया है। तमाम मज़हबों के लोग इस तरह के सलूक को बेजा समझते हैं, और छोटे और बड़े दोनों इसकी निस्वत मर जाने को बेहतर समझते हैं, इत्यादि।”

निस्सन्देह महारानी फ़िन्दाँ कौर के साथ अंगरेज़ों का अत्याचार दूसरे सिख युद्ध के कारणों में से एक मुख्य कारण था।

सिख युद्ध का
मुख्य कारण

समस्त सिख साम्राज्य के अन्दर इस समय दो सरदार सब से अधिक दबङ्ग और स्वतन्त्रताप्रिय मालूम होते थे। एक मुलतान का दीवान मूलराज और दूसरा हज़ारा प्रान्त का शासक सरदार चतरसिंह अटारीवाला। जिस तरह इस समय दीवान मूलराज को दिक्कत किया जा रहा था, उसी तरह बूढ़े सरदार चतरसिंह अटारी वाले को भी दिक्कत किया जा रहा था।

हज़ारा का प्रान्त पहले काश्मीर में शामिल था और राजा

गुलाबसिंह को दिया जा चुका था। बाद में कुछ और इलाके के बदले यह प्रान्त राजा गुलाबसिंह से लेकर चतरसिंह अटारी वाला महाराजा दलीपसिंह के अधीन कर दिया गया। लाहौर कौन्सिल के प्रसिद्ध सदस्य राजा शेरसिंह का पिता सरदार चतरसिंह अटारी वाला इस प्रान्त का नाज़िम नियुक्त किया गया। सरदार चतरसिंह उस समय पञ्जाब का बहुत सम्माननीय व्यक्ति था।

सरदार चतरसिंह की बेटी की सगाई महाराजा दलीपसिंह के साथ हो चुकी थी। जुलाई सन् १८४८ में दलीपसिंह के विवाह में हस्तक्षेप विवाह की बातचीत होने लगी। रेज़िडेण्ट करी ने बिना किसी कारण के चतरसिंह को लिख दिया कि—“बिना रेज़िडेण्ट की रज़ामन्दी व मंजूरी के” विवाह नहीं किया जा सकता ! रेज़िडेण्ट की ओर से कप्तान ऐबट उस समय सरदार चतरसिंह को सलाह देने के लिए हज़ारा में रहता था। कप्तान ऐबट ने सरदार चतरसिंह के साथ इतना बुरा व्यवहार करना शुरू कर दिया कि जिसे कोई भी सम्माननीय मनुष्य सहन नहीं कर सकता। स्वयं रेज़िडेण्ट करी ने अपने पत्रों में कप्तान ऐबट के अनुचित व्यवहार और सरदार चतरसिंह के निर्दोष होने को स्वीकार किया है।

कप्तान ऐबट की शरारतें और साज़िशें हद को पहुँच गईं। हज़ारा प्रान्त में अधिकतर आबादी मुसलमानों की थी। ये सब लोग वीर और सशस्त्र थे। कप्तान ऐबट ने उनमें खूब धन खर्च

करना शुरू किया, और उन्हें यह समझाया कि सिख कौम
 सदा से मुसलमानों की शत्रु है। कप्तान ऐबट ने
 ऐबट की
 साम्प्रदायिक
 शरारतें
 इन भोले, किन्तु युद्ध प्रेमी मुसलमानों को सिखों
 के विरुद्ध भड़का कर उनसे यह वादा किया कि
 यदि तुम सिख राज को मिटाने में अंगरेजों को
 मदद दोगे तो सिखों से बदला निकालने का तुम्हें काफ़ी मौका दिया
 जायगा ! सरदार चतरसिंह हरीपुर में रहता था। ६ अगस्त सन्
 १८१८ को कप्तान ऐबट के उकसाने पर आस पास के मुसलमानों ने
 आकर हरीपुर को घेर लिया। नगर की रक्षा के लिए कुछ सेना चतर-
 सिंह के अधीन हरीपुर में रहती थी। करनल कैनोरा नामक एक
 अंगरेज इस सेना का अफसर था। सरदार चतरसिंह ने करनल
 कैनोरा को नगर की रक्षा का हुकुम दिया। करनल कैनोरा ने चतर
 सिंह का हुकुम मानने से इनकार कर दिया। इतना ही नहीं, बल्कि
 करनल कैनोरा ने अपनी तोपें भर कर, स्वयं उनके बीच में खड़े होकर,
 यह साफ़ कह दिया कि यदि चतरसिंह का कोई आदमी निकट
 आएगा तो मैं उस पर बार करूँगा। सरदार चतरसिंह ने अपने
 कुल पैदल सिपाही करनल कैनोरा से तोपें छीनने के लिए भेजे।
 कैनोरा ने अपने एक हवलदार को इन सिपाहियों पर गोली चलाने
 का हुकुम दिया। पञ्जाबी हवलदार ने इनकार कर दिया। इस पर
 बागी करनल ने हवलदार को क़त्ल कर डाला। इतने ही में दो पैदल
 सिपाहियों ने अपनी बन्दूकों से नमकहराम करनल कैनोरा का
 खात्मा कर दिया।

कप्तान ऐबट को और अधिक बहाना मिल गया। उसने चतरसिंह के विरुद्ध मुसलमानों की एक सेना जमा करनी शुरू कर दी। रेज़िडेण्ट करी ने कप्तान ऐबट के नाम अपने एक निजी पत्र में करनल कैनोरा की हत्या के सम्बन्ध में सरदार चतरसिंह को निरपराध और कैनोरा को साफ़ अपराधी स्वीकार किया है। फिर भी करी और ऐबट दोनों भीतर ही भीतर सरदार चतरसिंह और सिख राज दोनों के नाश का संकल्प कर चुके थे।

कप्तान ऐबट ने हज़ारा प्रान्त के सब मुसलमान सरदारों को जमा किया; उन्हें पुराने मज़हबी झगड़ों की याद दिलाई और सिख राज के नष्ट करने में उनसे स्पष्ट मदद चाही। प्रान्त भर में उसने इस विषय के खुले परवाने जारी कर दिए। कप्तान ऐबट इससे पूर्व दीवान ज्वालासहाय और सरदार भण्डासिंह आदि पञ्जाब के कई अन्य प्रान्तीय शासकों का इसी प्रकार सत्यानाश कर चुका था।

सरदार चतरसिंह ने बार बार लाहौर दरबार और रेज़िडेण्ट करी से कप्तान ऐबट की इन हरकतों की, शिकायत की। किन्तु कोई सुनवाई न हुई। लाचार होकर बूढ़े सरदार चतरसिंह को अपने देश, धर्म और खालसा राज की रक्षा के लिए तैयार हो जाना पड़ा।

अब हम फिर मुलतान की ओर आते हैं। रेज़िडेण्ट करी ने रेज़िडेण्ट करी की लाहौर दरबार पर जोर दिया कि दरबार की वास्तविक इच्छा सेना भेज कर दीवान मूलराज को दण्ड

दिया जाय। किन्तु भैरोंवाल की सन्धि के अनुसार दरबार की अधिकांश सेना बरखास्त की जा चुकी थी। उसकी जगह लाहौर, जालन्धर और फ़ीरोज़पुर में कम्पनी की सेनाएँ रहती थीं। इन अंगरेजी सेनाओं का खर्च लाहौर दरबार से लिया जाता था, और सन्धि में यह तय हो चुका था कि देश के अन्दर के विद्रोहों को दमन करने और शान्ति कायम रखने में ये सेनाएँ सदा दरबार को मदद देंगी। इस सहायता के बदले में ही लाहौर दरबार ने इन सेनाओं का खर्च देना स्वीकार किया था। इस अवसर पर लाहौर दरबार ने रेज़िडेण्ट से प्रार्थना की कि कम्पनी की इन सेनाओं में से जितनी आवश्यक हों, मुलतान के विद्रोह को दमन करने के लिए भेज दी जायँ। रेज़िडेण्ट ने, भैरोंवाल की सन्धि का साफ़ उल्लङ्घन कर कम्पनी की उन फ़ौजों में से जो वास्तव में लाहौर दरबार ही की फ़ौजें थीं, एक भी सिपाही मुलतान भेजने से इनकार कर दिया। साथ ही उसने दरबार को यह धमकी दी कि यदि दरबार की निजी सेना मुलतान के विद्रोह को दमन न कर सकी तो पञ्जाब का राज ज़ब्त कर लिया जायगा। वास्तव में रेज़िडेण्ट करी को मुलतान के विद्रोह से बढ़ कर बहाना डलहौजी की वास्तविक इष्टसिद्धि का न मिल सकता था। लाहौर, जालन्धर और फ़ीरोज़पुर की फ़ौज वास्तव में लाहौर दरबार की सहायता के लिए न थीं, वरन् उसके सर्वनाश के लिए रक्खी गई थीं।

रेज़िडेण्ट करी की ज़िद्द पर लाहौर दरबार ने सरदार चतरसिंह के पुत्र राजा शेरसिंह को दरबार की सेना सहित मूलराज को



2000

दीवान मूलराज

[By courtesy of the Trustees, Victoria Memorial, Calcutta.]

दमन करने के लिए भेजा । रेज़िडेण्ट की आज्ञा से मेजर एडवर्ड्स शेरसिंह के साथ हो लिया । मेजर एडवर्ड्स ने लाहौर दरबार की मजबूरी सरहद के अनेक मुसलमानों को हिन्दुओं और सिखों के खिलाफ़ भड़काकर उनकी एक नई सेना तैयार की । नवाब बहावलपुर की सेना भी इस समय एडवर्ड्स के साथ आ मिली । मार्ग में मेजर एडवर्ड्स ने सरदार फ़तहख़ाँ तवाना को एक पत्र लिखा कि आप अपने आदमियों को जमा करके डेरागाज़ीख़ाँ और बन्नू के सिखों को लूट लीजिए और उन्हें मार डालिए । फ़तहख़ाँ और मूलराज का पहले से कुछ भगड़ा चला आता था । उसने एडवर्ड्स की बात मान ली । एडवर्ड्स ने फ़तहख़ाँ को डेरागाज़ीख़ाँ और बन्नू का शासक नियुक्त कर दिया । किन्तु ज्योंही फ़तहख़ाँ ने सिखों को लूटने के लिए आदमी जमा किए, सिखों ने उसे मार डाला ।

दीवान मूलराज की सेना के साथ एडवर्ड्स और शेरसिंह की सेनाओं के कई संग्राम हुए, जिनके विस्तार में मूलराज के साथ पड़ने की आवश्यकता नहीं है । किनेरी (?) और सद्दूसाम (?) की लड़ाइयों में मालूम होता है एडवर्ड्स की जीत रही । इसके पश्चात् मुलतान के मोहामरे का समय आया । एडवर्ड्स ने इस मोहामरे के लिए रेज़िडेण्ट करी से सहायता चाही । करी ने सहायता भेजने से इनकार कर दिया । इस बीच बहावलपुर और पञ्जाब से हज़ारों हिन्दू, मुसलमान और सिख आकर मूलराज के भण्डे के नीचे जमा होने लगे । अन्त

में एक दिन मूलराज ने क़िले से निकल कर एडवर्ड्स और उसके साथियों को बुरी तरह शिकस्त दी। एडवर्ड्स को अपनी जान बचा कर मुलतान से भाग आना पड़ा। लिखा है कि यदि एडवर्ड्स के सिख साथी समय पर उसकी सहायता न करते तो एडवर्ड्स के लिए जान बचा कर आ सकना असम्भव था।

राजा शेरसिंह को भी मूलराज के विरुद्ध सफलता प्राप्त न हो सकी। शेरसिंह की सिख सेना मूलराज से जा मिली। मालूम होता है कि शेरसिंह भी मूलराज की ओर जा मिलता, किन्तु एडवर्ड्स ने बड़ी

एडवर्ड्स की
जालसाज़ी

चाल से शेरसिंह की ओर से मूलराज के चित्त में अविश्वास बनाए रखवा। एक मुसलमान लेखक सर चार्ल्स नेपियर के नाम अपने ६ अक्तूबर सन् १८४८ के पत्र में लिखता है—

“एडवर्ड्स बड़ी मेहनत से जनरल शेरसिंह की ओर से इस तरह के जाली छत लिखता रहा है कि जो मूलराज के हाथों में पड़ जायँ और जिनसे उसके चित्त में शेरसिंह की ओर से सन्देह उत्पन्न हो जाय। इस काम में एडवर्ड्स का थोड़ी बहुत सफलता भी प्राप्त हुई है, और मूलराज एडवर्ड्स पर हमला करने से रुक रहा है।”❀

राजा शेरसिंह के लाहौर से चलते समय तक सरदार चतर-

* “Edwardes has been busy, writing false letters from General Sher Singh, to fall into the hands of Mool Raj to create suspicion, in which he partially succeeded and prevented Mool Raj attacking him.”—*Life of Sir Charles Napier*, vol. iv, p. 129.

सिंह और कप्तान ऐबट के बीच झगड़ा अधिक न बढ़ा था । कप्तान ऐबट और उसके साथियों ने इसके बाद हज़ारा निवासियों से यह वादा किया कि यदि तुम चतरसिंह को बाहर निकालने में अंगरेज़ों की मदद दोगे तो तुम्हारा तीन साल का लगान माफ़ कर दिया जायगा । मामला इस हद को पहुँचा कि शेरसिंह को मुलतान छोड़ कर अपने पिता की मदद के लिए उत्तर की ओर चला जाना पड़ा । मुलतान का क़िला एक काफ़ी मज़बूत क़िला था । उसे विजय करना इतना आसान न था । अगस्त सन् १८४८ में सर चार्ल्स नेपियर ने अपने भाई के नाम एक पत्र में लिखा—

“यदि एडवर्ड्स ने मूलराज को हरा दिया तो उसे कोई ख़तरा नहीं ; किन्तु यदि मूलराज जीत गया तो एडवर्ड्स की हालत ख़तरनाक हो जायगी; × × × यदि मूलराज के आदमी ईमानदार रहे तो एडवर्ड्स मुलतान नहीं ले सकता; यदि वे बेईमान साबित हुए तो मुलतान का नगर स्वयं ही अपने दरवाज़े खोल देगा ।”❀

सितम्बर सन् १८४८ में मुलतान का मोहासरा हटा लिया गया ।

मुलतान के मोहासरे की असफलता के कारण सिखों की

* “ If he (Lt , H. B. Edwardes) beats Mool Raj, he will be safe ; but if Mool Raj gets an advantage Edwardes' position will be dangerous, . . . If Mool Raj's men are true, Edwardes can not take Multan ; if they are false the town will open its gates. ”—Ibid, vol. iv, p. 106.

हिम्मत बढ़ गई। अंगरेजों के विरुद्ध असन्तोष समस्त पंजाब में फैला हुआ था। सब लोग खालसा राज की दूसरे सिख युद्ध रक्षा के लिए चतरसिंह और शेरसिंह के भण्डे का प्रारम्भ के नीचे आ आ कर जमा होने लगे। यही दूसरे सिख युद्ध का प्रारम्भ था।

पहले सिख युद्ध में लालसिंह, तेजसिंह और गुलाबसिंह जैसे देशद्रोहियों की मदद से अंगरेजों को सफलता प्राप्त हुई थी। इस बार सिख सरदारों तक को अंगरेजों की दुरङ्गी चालों का इतना काफी परिचय मिल चुका था कि सिखों में अब इस प्रकार के देशद्रोही मिल सकना कठिन था। जिस मुसलमान लेखक का हम ऊपर जिक्र कर चुके हैं वह सर चार्ल्स नेपियर के नाम अपने पत्र में लिखता है—

“सन् १८४६ की अपेक्षा इस समय पंजाब को क़ाबू में करना कई गुना ज़्यादा कठिन है × × × उस समय × × × सिख सरदारों ने हमारे वादों पर विश्वास कर लिया था, बल्कि हमसे रिशवतें तक ले ली थीं, किन्तु अब वे रिशवतें स्वीकार न करेंगे। जिस तरह का उनके साथ व्यवहार किया गया है उससे उनके चित्तों में ज़बरदस्त घृणा उत्पन्न हो गई है। यदि कोई असाधारण बात, कि जिसकी इस समय मुझे आशा नहीं है, सिखों को रोकने वाली न हुई, तो एक एक सिख हमारे विरुद्ध निकल पड़ेगा।”*

* “It is now many more times more difficult to subdue Punjab than 1846 . . . then . . . the Sirdars accepted promises, nay took bribes, too, but now they will not take bribes, and animated with great hatred for the way they were treated, . . . the Sikhs will turn out to a man, unless

इस कमी को पूरा करने के लिए अंगरेजों ने इस बार पञ्जाब और सरहद के मुसलमानों को सिखों के विरुद्ध मुसलमानों को भड़काना भड़काया। सिखों और मुसलमानों के पुराने आपसी झगड़ों के अनेक भूठे और सच्चे किस्से उनके सामने रखे गए। फ़कीर अज़ीजुद्दीन महाराजा रणजीतसिंह का एक अत्यन्त विश्वस्त मन्त्री था। अज़ीजुद्दीन का भाई नूरुद्दीन इस समय लाहौर की रीजेन्सी कौन्सिल का एक सदस्य था। यह नूरुद्दीन अंगरेजों की बातों में आकर उनसे मिल गया। नूरुद्दीन का लड़का शम्सुद्दीन गोविन्दगढ़ के किले का थानेदार था। उसने सिख राज के साथ विश्वासघात करके दूसरे सिख युद्ध में गोविन्दगढ़ का किला अंगरेजों के हवाले कर दिया, और वह भी ऐसे सङ्कट के समय जब कि कहा जाता है कि यदि शम्सुद्दीन अंगरेजों से न मिल जाता तो सम्भव है, अंगरेजों के लिए परिणाम अत्यन्त नाशकर होता।* कहा जाता है कि अधिकतर ऐसे लोगों ही की सहायता से अंगरेजों ने दूसरे सिख युद्ध में सिखों पर विजय प्राप्त की।

इस युद्ध के अनेक संग्रामों को विस्तार से वर्णन करने की शेरसिंह की वीरता आवश्यकता नहीं है। अक्टूबर सन् १८४८ में, जब कि मूलराज छै महीने तक सफलता के साथ अंगरेजों का मुकाबला कर चुका था,

something extraordinary may happen to present, which I can not vouch for at present."—*ibid*, vol. iv, p. 125.

* *The Punjab Chiefs*, (New Edition) 1890, vol. i, p. 1109.

पञ्जाब के सिख सरदारों ने चतरसिंह के भण्डे के नीचे जमा होकर अपने देश को विदेशियों के पञ्जे से छुड़ाने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। अंगरेज़ पहले ही अपनी फौजें चारों ओर जमा कर चुके थे। मुलतान का फिर से मोहासरा शुरू किया गया। उसी पुरानी कूटनीति से काम लिया गया। सबसे मशहूर लड़ाइयाँ रामनगर, चिलियानवाला और गुजरात की लड़ाइयाँ थीं। राजा शेरसिंह ने अपनी वीरता और युद्ध कौशल से अंगरेज़ कमाण्डर-इन-चीफ़ लॉर्ड गफ़ के छक्के छुड़ा दिए।

जनवरी सन् १८४६ में चिलियानवाला के मैदान में सिख सेना की संख्या अंगरेज़ी सेना से कम थी; फिर चिलियानवाला का संग्राम भी अंगरेज़ों को बड़ी ज़िल्लत के साथ ज़बर-दस्त हार खानी पड़ी। अंगरेज़ों के २३,००० से ऊपर आदमी चिलियानवाला के मैदान में घायल हुए और मारे गए। २६ अंगरेज़ अफ़सर मारे गए और ६६ घायल हुए। कम्पनी की कई पैदल रेज़िमेण्टें बेकार हो गईं। उनके भण्डे तक उनके हाथों से छीन लिए गए। किन्तु चिलियानवाला की विजय हिन्दोस्तान की भूमि पर सिख जाति की अन्तिम विजय थी। अनेक अंगरेज़ इतिहास लेखकों ने इस युद्ध के समय की सिखों की वीरता और उनके युद्ध कौशल की खुलं शब्दों में प्रशंसा की है और इन दोनों गुणों में उन्हें अंगरेज़ी सेना से कहीं बड़ा हुआ स्वीकार किया है। चिलियानवाला के बाद ही न जाने क्यों और कैसे शेरसिंह और अन्य सिख सरदारों में बहुत बड़ा मतभेद उत्पन्न होगया। शेरसिंह

यदि चाहता तो उस समय गफ़ और उसकी सेना के अस्तित्व को खाक में मिला सकता था। किन्तु ऐसा करने के बजाय वह लाहौर की ओर बढ़ा।

मार्ग में गुजरात नामक स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं में फिर एक घमासान युद्ध हुआ। इस बीच अंग-गुजरात का संग्राम रेज़ों को अपनी कूटनीति के लिए काफी मौका मिल चुका था। गुजरात के मैदान ही में पञ्जाब की स्वाधीनता और सिखों की राजसत्ता दोनों का खात्मा हो गया। उधर मुलतान में भी ६ महीने तक वीरता के साथ मुकाबला करने के बाद दीवान मूलराज को अपने तर्ई अंगरेज़ों के हवाले कर देना पड़ा। कहते हैं कि किसी ने दगा से मूलराज के मेगज़ीन में आग लगा दी थी।

२६ मार्च सन् १८४६ को गवरनर जनरल लॉर्ड डलहौज़ी ने एक एलान प्रकाशित किया, जिसमें सिखों की पञ्जाब की स्वाधीनता का अन्त हुकूमत का आइन्दा के लिए खात्मा कर दिया गया। पञ्जाब पर अंगरेज़ों की हुकूमत कायम हो गई, और पञ्जाब ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य का एक प्रान्त बन गया।

यह एक बात ध्यान देने योग्य है कि जब कि पञ्जाब के अनेक मुसलमान अंगरेज़ों के बहकाए में आकर विदेशी राष्ट्रीयता का अभाव आक्रामकों का साथ दे रहे थे, उसी समय अफ़-ग़ानिस्तान का अमीर दोस्तमोहम्मद खाँ सिखों और लाहौर दरबार के साथ पूर्ण सहानुभूति प्रकट कर रहा था।

इतना ही नहीं, बल्कि लॉर्ड डलहौज़ी का कथन है कि दोस्तमोहम्मद खाँ और उसके पठान सिखों को मदद तक दे रहे थे। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि ठीक उसी समय बहावलपुर और अन्य स्थानों के हजारों मुसलमान दीवान मूलराज के भण्डे के नीचे आकर जमा हो रहे थे। फिर भी यदि पहले सिख युद्ध में तेजसिंह और लालसिंह मौजूद थे तो दूसरे सिख युद्ध में शम्सुद्दीन और नूरुद्दीन मौजूद थे। हिन्दू या मुसलमान, इसमें सन्देह नहीं कि अन्य भारतवासियों के समान पञ्जाबियों और विशेषकर उच्च और मध्यम श्रेणी के पञ्जाबियों का चरित्र उस समय बेहद गिरा हुआ था; राष्ट्रीयता के भाव का उनमें अभाव था; यही कारण था कि शासन की योग्यता, अपूर्व वीरता, युद्ध कौशल और साहस के होते हुए भी वे अल्पसंख्यक, कायर, अकुशल, किन्तु चालाक विदेशियों के एक दो भाँकों के सामने निस्सत्त्व होकर गिर पड़े।

मेजर ईवन्स बेल का मत है कि पंजाब में जो कुछ उपद्रव खड़े हो गए थे उनके कारण उन्हें शान्त कर लेने के बाद भी पंजाब को कम्पनी के राज में मिला लेने का डलहौज़ी को कोई अधिकार न था।

मेजर ईवन्स बेल
के विचार

उसका कथन है :—

“सन् १८४६ के युद्ध के बाद ब्रिटिश भारत के साथ पंजाब के भावी सम्बन्ध को तय करने में लॉर्ड डलहौज़ी की कार्रवाई बिल्कुल इस प्रकार थी—एक आदमी रुपए के बदले में एक कष्टकर और खतरनाक जायदाद प्रबन्ध की ज़िम्मेवारी किसी नाबालिग मालिक की ओर से अपने ऊपर ले

लेता है। उस आदमी को पहले से पूरी तरह बता दिया जाता है और आगाह कर दिया जाता है कि इस जायदाद के प्रबन्ध करने और नाबालिग की रक्षा करने में तुम्हें अमुक अमुक कष्टों और आपत्तियों का सामना करना पड़ेगा, फिर भी उन कष्टों और आपत्तियों के पैदा होते ही वह इस बात का प्लान कर देता है कि आइन्दा के लिए अपने प्रयत्नों और अपने संरक्षण के बदले में नाबालिग की तमाम जायदाद और माल असबाब पर मैं अपना कब्ज़ा जमाता हूँ, और यह उस सूरत में जब कि संरक्षक का जो कुछ खर्च हो उसको पूरा करने के लिए और अपने फ़र्ज़ के अदा करने में जो कुछ उसे नुक़सान सहना पड़े उस सबके भरने के लिए उस संरक्षक के हाथों में काफ़ी ज़मानत पहले ही से दे दी गई हो।”❀

इसी विद्वान लेखक ने बड़े विस्तार के साथ दिखलाया है कि लॉर्ड डलहौजी का २६ मार्च वाला प्लान कल्पित और भूठी बातों से भरा हुआ था। लाहौर दरबार ने सन्धि का या अपने वादों का कभी भी उल्लङ्घन नहीं किया था और लॉर्ड डलहौजी का

* “Lord Dalhousie's procedure in settling the future relations of the Punjab with British India after the Campaign of 1849, just amounts to this:—a guardian, having undertaken for a valuable consideration, a troublesome and dangerous trust, declares, on the first occurrence of those troubles and dangers, of which he had full knowledge and forewarning, that as a compensation for his exertions and a protection for the future, he shall appropriate his Ward's estate and personal property to his own purposes. And this, although the guardian holds ample security in his own hands for the repayment of any outlay, and the satisfaction of any damages he might have incurred, in executing the conditions of the trust.”—*Retrospects and Prospects of Indian Policy*, by Major Evans Bell, p. 142.

नाबालिग महाराजा दलीपसिंह का राज छीन कर उसे अंगरेजी राज में मिला लेना एक ज़बरदस्त राजनैतिक अन्याय था।* किन्तु राज नीति में और विशेष कर पाश्चात्य राजनीति में इस तरह के न्याय और अन्याय के विचारों के लिए शायद कोई स्थान नहीं।

* Ibid, chapter vi.



बयालीसवाँ अध्याय

दूसरा बरमा युद्ध

लॉर्ड डलहौजी के शासन की एक और महत्वपूर्ण घटना बरमा देश के साथ कम्पनी का दूसरा युद्ध था। इस युद्ध के लिए वास्तव में इतना बहाना भी न था बहाने की कमी जितना दूसरे सिख युद्ध के लिए।

जून सन् १८५१ में 'मॉनर्क' नामक एक अंगरेजी जहाज मोल-मई से चलकर रङ्गून पहुँचा। जहाज के अंगरेज कप्तान का नाम शैपर्ड था। रङ्गून का बन्दरगाह बरमा के राज में था। रङ्गून पहुँचने के बाद दो मुकदमें रङ्गून की बरमी अदालत में कप्तान शैपर्ड के विरुद्ध दायर किये गए। पहला मुकदमा चट्टग्राम के रहने वाले हाजिम नामक एक मनुष्य ने दायर किया। हाजिम की शिकायत यह थी कि

कप्तान शेपर्ड ने मोलमई और रङ्गून के बीच में मेरे एक भाई यूसुफ़ मल्लाह को समुद्र में फेंक दिया। दूसरा मुक़दमा यूसुफ़ के एक दूसरे भाई दीवानअली ने दायर किया। दीवानअली की शिकायत यह थी कि यूसुफ़ को जब समुद्र में फेंका गया उस समय उसके पास ५००) ६० नक़द मौजूद थे, और कप्तान शैपर्ड ने उसे समुद्र में फेंकने से पहले उससे यह रकम छोन ली।

बरमी अदालत के सामने कप्तान शैपर्ड पर नर हत्या और लूट दोनों का मुक़दमा चलाया गया। जहाज़ के अन्य लोगों की गवाहियाँ ली गईं। अन्त में शैपर्ड दोनों जुर्मों का दोषी साबित हुआ। अदालत ने नर हत्या के अपराध में उस पर ४६ पाउण्ड जुरमाना किया और इसके अतिरिक्त दीवानअली को शैपर्ड से ५५ पाउण्ड हरजाना दिलवाया। इस प्रकार कप्तान शैपर्ड को अपने समस्त अपराध के बदले में कुल १०१ पाउण्ड अर्थात् करीब एक हजार रुपए देकर छुटकारा मिल गया।

अगस्त सन् १८५१ में इसी तरह की एक दूसरी घटना हुई।

‘चैम्पियन’ नामक एक दूसरा अंगरेजी जहाज़ कप्तान लुई का मुक़दमा मॉरीशस से रङ्गून पहुँचा। इस जहाज़ के कप्तान लुई के विरुद्ध दो बङ्गाली कुलियों ने नरहत्या और और कई सङ्गीन जुर्मों की शिकायत की। कप्तान लुई दोषी पाया गया और उस पर ७० पाउण्ड जुरमाना करके छोड़ दिया गया।

इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि रङ्गून की बरमी अदालत

को इन दोनों गोरे अपराधियों का मुकदमा सुनने और उन्हें दण्ड देने का पूरा अधिकार था। इसमें कोई डलहौज़ी का हस्तक्षेप सन्देह नहीं हो सकता कि जो दण्ड इन्हें दिये गए वे अपराध के मुकाबले में बहुत ही हलके थे। फिर भी कप्तान शैपर्ड और कप्तान लुई दोनों ने भारत पहुँच कर कम्पनी सरकार से शिकायत की। बरमा एक स्वाधीन देश था। भारत की कम्पनी सरकार को बरमी अदालत के फैसले के विरुद्ध अपील सुनने का कोई अधिकार न था, किन्तु लॉर्ड डलहौज़ी बरमा के साथ छेड़ छ़ाड़ का बहाना ढूँढ़ रहा था। उसने फ़ौरन फैसला कर दिया कि इन दोनों अंगरेज़ों को मिला कर ६१० पाउण्ड बतौर हरजाने के बरमा सरकार से दिलवाए जायँ ; ३५० पाउण्ड कप्तान शैपर्ड को और ५६० पाउण्ड कप्तान लुई को। हमें स्मरण रखना चाहिये कि इन दोनों से मिला कर बरमी अदालत ने केवल १७१ पाउण्ड दण्ड के वसूल किए थे, और वह भी इतने सज़्जीन जुर्मों के लिये।

सन् १८४० से उस समय तक जितना पत्र व्यवहार अंगरेज़ सरकार और बरमा सरकार के दरमियान हुआ करता था वह तेनासई के कमिश्नर की मारफ़त हुआ करता था। यह उचित या अनुचित माँग भी तेनासई के कमिश्नर की मारफ़त ही बरमा दरबार तक पहुँचाई जा सकती थी। बात इतनी छोटी सी थी कि यदि इसके लिए किसी विशेष दूत की आवश्यकता भी थी तो कोई

युद्ध के लिये
अंगरेज़ी जहाज़ों
की खानगी

भी सिविल अफ़सर काफ़ी हो सकता था। किन्तु लॉर्ड डलहौज़ी का उद्देश कुछ और ही था। फ़ौरन् बिना बरमा दरबार के साथ किसी तरह का पत्र व्यवहार किए या कुछ पूछे गिने दो अंगरेज़ी युद्ध के जहाज़ कमाण्डर लैम्बर्ट के अधीन यह ६१० पाउण्ड बरमा दरबार से वसूल करने के लिये कलकत्ते से रङ्गून भेज दिये गए। इन जहाज़ों में से एक का नाम 'फ़ॉक्स' (अर्थात् लोमड़ी) और दूसरे का नाम 'सरपेण्ट' (अर्थात् साँप) था। युद्ध के जहाज़ों का रङ्गून भेजना ही एक प्रकार से युद्ध छेड़ना था।

कमाण्डर लैम्बर्ट के हाथ एक पत्र बरमा के महाराजा के नाम भेजा गया और लैम्बर्ट को यह हिदायत कर दी गई कि यदि रंगून का बरमी शासक अंगरेज़ सरकार की माँग को पूरा न करे तो वह पत्र महाराजा के पास भेज दिया जाय। इस युद्ध के सम्बन्ध के पार्लिमेण्ट के कागज़ों में साफ़ लिखा है कि कमाण्डर लैम्बर्ट के नाम लॉर्ड डलहौज़ी की प्रकट हिदायतें कुछ और थीं और उसे गुप्त ज़बानी हिदायतें कुछ और दी गईं।

नवम्बर सन् १८५१ के अन्त में कमाण्डर लैम्बर्ट अपने दोनों जहाज़ों सहित रंगून पहुँचा। पहुँचते ही उसने अंगरेज़ बाशिन्दों की शिकायतें रंगून के अंगरेज़ बाशिन्दों से, जिनमें से अधिकतर व्यापारी थे, रंगून दरबार के विरुद्ध अनेक शिकायतें जमा कीं। २७ नवम्बर को उसने रंगून के बरमी शासक के पास एक अत्यन्त धृष्टतापूर्ण पत्र भेजा। २८ नवम्बर को उसने

रंगून के गवर्नर की मारफ़्त बरमा के महाराजा के नाम कम्पनी सरकार का पत्र रवाना कर दिया। जो शिकायतें कहा जाता है कि रंगून के अंगरेज़ बाशिन्दों ने बरमा दरबार के विरुद्ध या रंगून के गवर्नर के विरुद्ध लिख कर लैम्बर्ट के हाथों में दीं, उनकी संख्या ३८ थी। कोई भी निष्पक्ष मनुष्य उन शिकायतों का कौड़ी भर मूल्य नहीं कर सकता। इन पर शिकायत करने वालों के कोई हस्ताक्षर न थे। अधिकतर शिकायतों की कोई तारीख़ तक न थी। प्रसिद्ध अंगरेज़ राजनीतिज्ञ कॉबडेन ने, जिसने पार्लिमेण्ट के सरकारी कागज़ों से लेकर दूसरे बरमा युद्ध का एक निष्पक्ष इतिहास लिखा है इन ३८ शिकायतों की सूची को 'बेहूदा' (Absurd) बतलाया है। लॉर्ड एलेनब्रु तक ने ६ फ़रवरी सन् १८५२ को इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सामने कहा कि जिस श्रेणी के लोगों ने लैम्बर्ट के सामने शिकायतें पेश कीं वे किसी तरह भी विश्वसनीय नहीं कहे जा सकते। किसी तरह की कोई जाँच इन 'बेहूदा' शिकायतों की नहीं की गई। कमाण्डर लैम्बर्ट को विश्वास था कि बरमा दरबार मेरी इन शिकायतों को मञ्जूर न करेगा और न हरजाना देना स्वीकार करेगा। इस प्रकार लैम्बर्ट को आशा थी कि डलहौज़ी को बरमा के साथ युद्ध प्रारम्भ करने का आसानी से बहाना मिल जायगा। उसने बरमा दरबार को पत्र में लिख दिया था कि पाँच सप्ताह के अन्दर इसका उत्तर मेरे पास पहुँच जाना चाहिए।

किन्तु कमाण्डर लैम्बर्ट की दिली आशा पूरी न हुई। पाँच

सप्ताह के अन्दर अन्दर पहली जनवरी सन् १८५२ को बरमा के महाराजा का उत्तर कमाण्डर लैम्बर्ट के पास बरमा दरबार की पहुँच गया। बरमा का बौद्ध महाराजा अंगरेजों शान्तिप्रियता के साथ लड़ना न चाहता था। उसने बिना जाँच लैम्बर्ट की सब शिकायतों को सच मान लिया, राज की ओर से क्षतिपूर्ति का वादा किया और अपनी सच्चाई और मित्रता प्रकट करने के लिए रङ्गून के शासक को फौरन बदल कर उसकी जगह दूसरा गवर्नर नियुक्त कर दिया। १ जनवरी सन् १८५२ को लैम्बर्ट ने भारत सरकार के नाम एक पत्र में लिखा कि—“बरमा की सरकार ने रङ्गून के शासक को बरखास्त कर दिया है और कम्पनी की माँग को पूरा करने का वादा किया है। मेरी सम्मति में बरमा का बादशाह सच्चा है और उसकी सरकार अपने वादों को पूरा करेगी।”

४ जनवरी सन् १८५२ को नया शासक रंगून पहुँचा। कमाण्डर लैम्बर्ट को अब जिस तरह हो सके, नए शासक रंगून का नया शासक के साथ झगड़ा मोल लेने की चिन्ता हुई।

५ जनवरी को लैम्बर्ट ने एडवर्ड्स नामक अपने एक आदमी को इस नए शासक के पास भेजकर यह दरयाफ्त करवाया कि कमाण्डर लैम्बर्ट भारत सरकार की सब शिकायतों और माँगों का एक व्योरेवार पत्र आपके पास भेजना चाहता है, आप उस पत्र को कब लेने के लिए तैयार होंगे। बरमी शासक ने उत्तर में कहला भेजा कि पत्र कल ही मेरे पास भेज दिया

जा सकता है, या जब कमाण्डर लैम्बर्ट को सुविधा हो। एडवर्ड्स के ज़बानी कहने पर नए बरमी शासक ने अंगरेजों की और कई छोटी छोटी शिकायतें भी हाथ के हाथ दूर कर दीं।

अगले दिन कमाण्डर लैम्बर्ट ने बजाय एक पत्र भेजने के पाँच अंगरेज़ फ़ौजी अफ़सरों का एक डेपुटेशन ठीक दोपहर के समय रंगून के नए शासक के पास भेजा। बरमी शासक से बातचीत केवल एक पत्र भेजने की हुई थी। वह उस समय डेपुटेशन से मुलाकात करने के लिये तैयार न था। फिर भी उसने उन्हें मुलाकात के लिए बुला लिया। बाद में कमाण्डर लैम्बर्ट ने डलहौज़ी को यह शिकायत लिख कर भेजी कि—“डेपुटेशन के लोगों को पूरा पाव घण्टा धूप में इन्तज़ार करना पड़ा।” बस, बरमा के साथ युद्ध छेड़ने के लिए काफी बहाना मिल गया!

कमाण्डर लैम्बर्ट ने रंगून के नए शासक से अब किसी तरह का जवाब तलब करने की ज़रूरत महसूस न की; और न बरमा दरबार को किसी तरह की कोई सूचना दी गई। लैम्बर्ट ने तुरन्त रंगून के समस्त अंगरेज़ बाशिन्दों को सूचना दी कि आप लोग अपनी स्त्रियों और बच्चों समेत आज शाम तक नगर छोड़कर अंगरेज़ी जहाज़ों पर आ जायें। बरमा के महाराजा का एक जहाज़ बन्दरगाह में कुछ दूर ऊपर खड़ा हुआ था। लैम्बर्ट ने उसी दिन शाम को इस बरमी जहाज़ को पकड़ लिया। उसी दिन लैम्बर्ट ने अंगरेज़ सरकार की

बरमी जहाज़ की
गिरफ़्तारी

और से बरमा सरकार के साथ युद्ध का प्लान कर दिया और रंगून का मुहासरा शुरू कर दिया। बरमी जहाज़ का पकड़ना ही वास्तव में युद्ध का श्रीगणेश था। कॉबडेन लिखता है—

“रंगून के शासक का व्यवहार इसके बाद बहुत कम महत्व का विषय रह जाता है—राजनीतिज्ञ लोग, इतिहास लेखक, और धर्म अधर्म की विवेचना करने वालों के लिए प्रश्न यह है कि बरमी शासक का व्यवहार चाहे कुछ भी क्यों न रहा हो, जब हम यह जानते थे कि बरमा के महाराजा का भाव हमारी ओर मित्रता का था, तब क्या हमारे लिए बरमी क्रौम के साथ युद्ध प्रारम्भ कर देना न्याय्य था ?”*

रंगून के वाशिन्डे और राज कर्मचारी लैम्बर्ट के इस व्यवहार को देख कर चकित रह गए। राज कर्मचारियों ने बड़ी नम्रता के साथ और बार बार लैम्बर्ट से प्रार्थना की कि आप बरमा के सरकारी जहाज़ को छोड़ दें और बरमा दरबार के साथ आपकी जो कुछ शिकायतें हैं, एक बार मित्र भाव से उनके निबटारे का हमें अवसर दें।

किन्तु कमाण्डर लैम्बर्ट ने एक न सुनी। ६ जनवरी को बरमी जहाज़ पकड़ा गया। तीन दिन तक कमाण्डर लैम्बर्ट के आदमियों ने उसे बन्दरगाह के अन्दर रक्खा। इन तीन दिन के अन्दर भी बरमी कर्मचारियों ने अपनी

* “The conduct of the Governor of Rangoon is now a subject of minor importance—the question for the statesman, the historian and the

शोर से कोई काररवाई युद्ध की न की। १० जनवरी को लैम्बर्ट ने इस जहाज़ को रंगून के बन्दरगाह से बाहर ले जाना चाहा। मज़बूर होकर बरमी कर्मचारियों ने लैम्बर्ट को सूचना दी कि यदि जहाज़ को बन्दरगाह से बाहर ले जाने की कोशिश की गई तो उसकी रक्षा के लिए गोली चलाना हमारा पवित्र कर्तव्य हो जायगा। इस पर भी १० जनवरी के साढ़े नौ बजे सुबह अंगरेज़ी जहाज़ 'फ़ॉक्स' बरमी जहाज़ को, जिसे 'यलो शिप' कहते थे अपने साथ बाँध कर बन्दरगाह से बाहर निकला। बन्दरगाह के बरमी संरक्षकों को विवश होकर गोली चलानी पड़ी। जवाब में जहाज़ 'फ़ॉक्स' के ऊपर से रंगून नगर के ऊपर गोले बरसाए गए। स्वयं अंगरेज़ों के सरकारी कागज़ों में दर्ज है कि इस गोलेबारी के कारण सहस्रों निरपराध बरमियों की मृत्यु हुई। कॉबडेन लिखता है—

“आशा की जा सकती थी कि एक युद्ध के जहाज़ को ले जाकर और असंख्य बरमियों की हत्या करके ११० पाउण्ड के दावे का काफ़ी हरजाना अंगरेज़ों को मिल चुका था। किन्तु युद्ध का एलान बराबर जारी रहा।”

कॉबडेन ने दिखलाया है कि जो पत्र व्यवहार इस समय अंगरेज़ों और बरमियों के दरमियान हुआ उस नई मॉर्गेन सब में बरमियों की ओर से न्याय, निष्कपटता और सुजनता और अंगरेज़ों की ओर से इनके विपरीत गुण साफ़ दिखाई देते थे। तथापि गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौज़ी ने इस सब

moralist is, were we justified, whatever his behaviour was, with the known friendly disposition of the King, in commencing war with the Burmese nation ?”—*How Wars are Got up in India*, by Cobden, p. 55.

मामले की खबर पाते ही एक और ज़बरदस्त सेना बरमा की ओर खाना की ओर पिछली माँगों के अतिरिक्त इस बार दस लाख रुपए नक़द बतौर हरजाने के बरमा दरबार से तलब किए। कॉबडेन ने उस पत्र को जो इस समय डलहौज़ी ने बरमा दरबार के नाम भेजा—“राजनीति, धर्म और तर्क तीनों के विरुद्ध”* बतलाया है।

ठीक उस समय जिस समय कि लॉर्ड डलहौज़ी रंगून के लिए और अधिक सेना खाना कर रहा था, बरमा के बरमा महाराजा का नम्र पत्र बौद्ध महाराजा का एक अत्यन्त शान्त, नम्र और मित्रता सूचक पत्र, लैम्बर्ट के ७ जनवरी के पत्र के उत्तर में, लॉर्ड डलहौज़ी के नाम रंगून से कलकत्ता जा रहा था। किन्तु डलहौज़ी को इस पत्र का इन्तज़ार कहाँ हो सकता था। ११ अप्रैल सन् १८५२ को ईस्टर रविवार के दिन अंगरेजी युद्ध के जहाज़ों ने रंगून और डाला के तटों के बराबर बराबर गोलेबारी शुरू कर दी।

दूसरे बरमा युद्ध की अनेक लड़ाइयों के विस्तार में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। बरमी जाति इस विध्वंस और क्रलेश्राम युद्ध के लिए बिल्कुल तैयार न थी। कॉबडेन लिखता है—

* “An unstatesman like, immoral, and illogical production.”—Ibid, p. 78.

“उसे युद्ध कहा ही नहीं जा सकता । युद्ध की अपेक्षा उसे विध्वंस, क्रलेश्राम या एक बला कहना अधिक उचित होगा ।”❀

युद्ध के दिनों में निरपराध बरमो प्रजा का खूब संहार किया गया और खूब लूट खसोट हुई । अन्त में बरमी साम्राज्य का सब से अधिक उपजाऊ और विशाल प्रान्त ‘पगू’ से प्राचीन पुस्तकों में ‘स्वर्ण भूमि’ कहा गया है, जिसमें पृथ्वी के ऊपर धन ही धन और पृथ्वी के नीचे असंख्य सोने की कानें छिपी हुई थीं, बरमा के बौद्ध महाराजा से छीन कर कम्पनी के भारतीय साम्राज्य में मिला लिया गया । यही लॉर्ड डलहौजी और उसके साथियों की हार्दिक कामना थी । दिसम्बर सन् १८५२ में यह प्रान्त अंगरेजों के शासन में आया । ५० वर्ष के अंगरेजी शासन ने उसे संसार के सब से अधिक धनसम्पन्न प्रदेशों की श्रेणी से गिरा कर सब से अधिक निर्धन देशों की श्रेणी में पहुँचा दिया ।

काँबडेन ने इस युद्ध के कारणों, उसकी प्रगति और उसके परिणाम के विषय में बड़े मार्मिक शब्दों में काँबडेन के विचार लिखा है—

“ये युद्ध हिन्दोस्तानियों के खर्च से चलाए जाते हैं । × × × बंगाल के अर्धनग्न किसानों को कप्तान शैपर्ड और कप्तान लुई के दावों की वसूली से क्या विशेष लाभ था, कि इन दावों के कारण जो युद्ध खड़ा हो गया उसका सब खर्च इन किसानों के सर पर डाला जाय ?”

* “A war it can hardly be called. A rout, a massacre, or a visitation, would be a more appropriate term. ”—Ibid, p. 98.

“शुरू में लॉर्ड डलहौज़ी ने हजार पाउण्ड से कम का बरमियों से दावा किया; इसके बाद रंगून के शासक ने हमारे अफ़सरों की जो हतक की उसके लिए गवर्नर से माफ़ी माँगने के लिए कहा गया; इसके बाद लॉर्ड डलहौज़ी ने अपनी माँगों को बढ़ा कर एक लाख पाउण्ड नक़द कर दिया और बरमा के महाराजा के वज़ीरों से माफ़ी माँगने के लिए कहा, फिर बरमा के राज पर हमला कर दिया गया; इस पर नक़दी और माफ़ियों की सब माँगें एकाएक बन्द हो गईं, और लॉर्ड डलहौज़ी पिछली तमाम बातों के ‘बदले’ और ‘हरजाने’ में पगू का प्रान्त ले लेने के लिए राज़ी हो गया।”❧

दिसम्बर सन् १८५२ में संयुक्त राज अमरीका की सेनेट में
 वक्तृता देते हुए सेनेट के एक सदस्य जनरल
 बरमा युद्ध पर
 अमरीकन सेनेटर कैस ने इसी युद्ध के विषय में कहा था—

“हिन्दोस्तान की एक और देशी रियासत एक
 ज़बरदस्त व्यापारी मण्डली की बढ़ौती का शिकार हो गई। और उसके अस्सी
 लाख अथवा एक करोड़ लोग अंगरेज़ों की असंख्य भारतीय प्रजा में शामिल

* “These wars are carried on at the expense of the people of India. . . . What exclusive interest had the half-naked peasant of Bengal in the settlement of the claims of Captains Shepperd and Lewis, that he should alone be made to bear the expense of the war which grew out of them?”

“Lord Dalhousi begins with a claim on the Burmese for less than a thousand pounds; which is followed by the additional demand of an apology from the Governor of Rangoon for the insult offered to our officers; next his terms are raised to one hundred thousand pounds, and an apology from the King’s ministers; then follows the invasion of the Burmese territory; when, suddenly, all demands for pecuniary compensation and apologies cease, and His Lordship is willing to accept the cession of Pegu as a ‘compensation’ and ‘reparation’ for the past.”—Ibid, by Cobden, pp. 101-104.

कर लिए गए। और आप क्या समझते हैं कि इस युद्ध का क्या कारण रहा होगा जिसके परिणाम रूप अंगरेज़ अभी हाल ही में बरमा के राज को हड़प गए? X X X यदि हमारे पास अत्यन्त अकाट्य गवाहियाँ न होतीं, तो हम इस सच्ची लूट के क्रिस्से पर विश्वास करने से इनकार कर देते। किन्तु यह एक निर्विवाद घटना है कि इंगलिस्तान का बरमा के साथ युद्ध करने और बरमा के राजनैतिक अस्तित्व को मिटाने का कारण यह था कि बरमा ने ६१० पाउण्ड की एक विवादास्पद रकम अदा नहीं की थी। X X X दूसरी क्रौमों को संयम और निस्वार्थता का उपदेश देना इस जाति को खूब शोभा देता है !”*

लॉर्ड डलहौज़ी के इस युद्ध का वृत्तान्त हमने कॉबडेन की पुस्तक से लिया है। कॉबडेन ने अपनी पुस्तक की पगू प्रान्त पर भूमिका में लिखा है कि उसने तमाम हाल कम्पनी का क्रब्ज़ा पार्लिमेण्ट के सरकारी कागज़ों से लिया है। कॉबडेन ने यह भी लिखा है, “मुझे सन्देह है कि दूसरे बरमा युद्ध के सरकारी कागज़ों में काट छाँट की गई है।” निस्सन्देह यदि इस

* “Another of the native Powers of Hindostan has fallen before the march of a great commercial corporation and its 8,000,000 or 10,000,000 of people have gone to swell the immense congregation of British subjects in India. And what do you think was the cause of the war which has just ended in the swallowing up of the Kingdom of Burmah? . . . Had we not the most irrefragable evidence we might well refuse credence to this story of real rapacity. But the fact is indisputable that England went to war with Burmah, and annihilated its political existence, for the nonpayment of the disputed demand of £s. 910. . . . Well does it become such a people to preach homilies to other nations upon disinterestedness and moderation.”—Speech by General Cass in the Senate of the United States, December, 1852.

युद्ध का सच्चा वृत्तान्त बरमियों से सुना जाय तो वह इससे भी कहीं अधिक भयङ्कर और अन्यायपूर्ण होगा । इतिहास लेखक लडलो लिखता है कि पगू पर कब्ज़ा करना अंगरेज़ों के लिए इतना सरल न था । अप्रैल सन् १८५५ तक बरमियों और अंगरेज़ों में बराबर लड़ाई भगड़े होते रहे । अन्त में बरमा की राजधानी आवा में किसी तरह (?) एक क्रान्ति हुई । एक दूसरा महाराजा बरमा की गद्दी पर बैठा और पगू का प्रान्त अंगरेज़ कम्पनी को हज़म होगया ।



तेतालीसवाँ अध्याय

डलहौज़ी की भू-पिपासा

दूसरे सिख युद्ध और दूसरे बरमा युद्ध के अतिरिक्त और कोई युद्ध लॉर्ड डलहौज़ी के शासन काल में नहीं लड़ा “लैप्स” की नीति गया ; फिर भी बिना युद्ध के डलहौज़ी ने आठ अन्य हिन्दोस्तानी राज्यों के अस्तित्व का अन्त कर दिया और एक और विशाल राज को अंग भंग कर डाला । जिस नीति के अनुसार इनमें से सात राज्यों अर्थात् सतारा, नागपुर, भाँसी, सम्बलपुर, जैतपुर, तञ्जोर और करनाटक को अंगरेज़ी राज में मिलाया गया उसे अंगरेज़ी में “लैप्स” कहते हैं । “लैप्स” का अर्थ यह था कि जिन देशों नरेशों ने कम्पनी के साथ मित्रता की सन्धि कर रखी थी, अथवा जिनके पूर्वजों की सहायता से कम्पनी ने भारत में अपना राज कायम किया था, उनमें से किसी के मर जाने पर यदि उसके कोई पुत्र न हो तो उसकी समस्त रियासत पर अंगरेज़

कम्पनी का हक हो जाता था और कम्पनी तुरन्त उस पर कब्ज़ा कर लेती थी ।

पुत्र न होने की सूरत में अपने किसी नज़दीकी रिश्तेदार को गोद लेने का हक प्रत्येक भारतवासी को धर्मशास्त्रों के अनुसार सदा से प्राप्त रहा है । पति के पुत्रहीन मरने पर उसकी विधवा को गोद ले लेने का हक होता है । यह हक और गोद लेने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन समय से भारत में चली आती है । किन्तु पूर्वोक्त “लैप्स” की नीति के अनुसार किसी भी भारतीय नरेश को, जिसने दुर्भाग्यवश एक बार अंगरेजों के साथ मित्रता कर ली हो, या उसकी विधवा महारानी को गोद लेने का कोई हक न था । गोद लिए हुए पुत्र को गद्दी का अधिकारी न माना जाता था, और न सिवाय आत्मज पुत्र के किसी भाई, भतीजे, चचा, पुत्री आदिक को गद्दी का हकदार माना जाता था । इस विचित्र नीति पर अमल करके लॉर्ड डलहौजी ने इन रियासतों के साथ कम्पनी की पहली समस्त सन्धियों और अहदनामों को उठा कर ताक़ पर रख दिया ।

यह नीति वास्तव में सन् १८३४ से प्रारम्भ हुई । उस वर्ष कम्पनी के डाइरेक्टरों ने भारत सरकार को लिखा—

“जब कभी किसी गोद लेने की क्रिया को मंज़ूर करना या न करना आपके हाथों में हो, आपको बहुत ही कम कभी मंज़ूरी देनी चाहिए, आमतौर पर नहीं, और जब कभी आप मंज़ूरी दें तो वह आपका विशेष अनुग्रह समझा जाना चाहिए ।”❀

* “Whenever it is optional with you to give or to withhold your

इसी नीति के अनुसार लॉर्ड डलहौजी के पूर्व कोलाबा, माण्डवी और अम्बाला की रियासतों पर कब्ज़ा किया जा चुका था। लॉर्ड डलहौजी ने और अधिक ज़ोरों के साथ इस नीति पर अमल किया। निस्सन्देह यदि लॉर्ड डलहौजी के बाद ही सन् १८५७ का विप्लव न हुआ होता तो सम्भव है भारत के अन्दर एक भी हिन्दू या मुसलमान देशी रियासत न बची होती।

सब से पहला भारतीय राज, जिसे इस नीति के अनुसार लॉर्ड डलहौजी ने ज़ब्त किया, सतारा का राज था। सन् १८१८ में पेशवा बाजीराव की सत्ता का नाश करने के लिए जो एलान कम्पनी ने प्रकाशित किया था उसमें मराठा मण्डल के शेष समस्त नरेशों और जागीरदारों से यह वादा किया गया था कि आपके और आपके उत्तराधिकारियों के अधिकारों में कभी किसी तरह का हस्तक्षेप न किया जायगा। सतारा के राजा शिवाजी के वंशज थे। सतारा के राजा के नाम का उस समय पेशवा के विरुद्ध उपयोग करने के लिए सतारा के राजा से यह साफ़ वादा किया गया कि पेशवा की सत्ता को अन्त कर मराठा साम्राज्य का आधिपत्य फिर से आपको प्रदान कर दिया जायगा और सतारा ही को समस्त मराठा साम्राज्य की मुख्य राजधानी बना दिया जायगा।*

consent to adoptions, the indulgence should be the exception and not the rule, and should never be granted but as a special mark of approbation."—Court of Directors of the East India Company, 1834.

* *The Bakhar or Historical Sketch*, by Balwant Rao Chitnavis, translated into English, by Dr. Milne.

पूर्वोक्त एलान और सतारा के राजा की मदद से ही अंगरेजों ने पेशवा बाजीराव का नाश किया। बाद में अंगरेजों का वचन सतारा के राजा के साथ प्रतिज्ञाओं और उस भंग एलान के अन्य सब वादों को तोड़ दिया गया।

रॉबर्ट नाइट नामक एक अंगरेज लिखता है—

“एलान के वादों और सतारा के राजा की पुनः स्थापना, इन दोनों ने मिल कर पेशवा का नाश कर दिया; और अब हमारा जान बूझ कर उन वादों से पीछे हटना, जो हमने उस समय किए थे, एक ऐसा कार्य है जिसे कोई भी ईमानदार आदमी निन्दनीय ठहराये बिना नहीं रह सकता, चाहे इस बचन भङ्ग के लिये ऊपरी दलीलें कैसी भी क्यों न दी जायँ।”*

राजा का नाम प्रतापसिंह था। प्रतापसिंह उस समय नाबालिग था। युद्ध के बाद प्रतापसिंह को महाराजा राजा प्रतापसिंह की योग्यता स्वीकार किया गया और कप्तान ग्रॉण्ट डफ़ को प्रतापसिंह के बालिग होने के समय तक राज-कार्य चलाने के लिये रेज़िडेण्ट नियुक्त करके सतारा भेज दिया गया। बालिग होने पर प्रतापसिंह बुद्धिमान और योग्य शासक निकला। अपनी इस योग्यता और बुद्धिमत्ता के कारण ही वह अपने अंगरेज मित्रों की नज़रों में और अधिक खटकने लगा। बम्बई

* “The assurances of the proclamation, and the reinstatement of the Raja of Satara, ruined the Peshwa; and our deliberate withdrawal now from the pledges then given, merits the reprobation of every conscientious man, however spacious the arguments upon which the withdrawal has been recommended.”—*The Inam Commission Unmasked*, by Robert Knight, pp. 45, 46.

के गवरनर सर रॉबर्ट ग्रॉएट ने फ़ैसला किया कि प्रतापसिंह को कुचल दिया जाय। फौरन् एक षड्यन्त्र रचा गया। निरपराध प्रतापसिंह को कैद करके बनारस भेज दिया गया और उसके भाई को उसकी जगह सतारा के तख्त पर बैठा दिया गया।

सन् १८४८ के करीब दोनों भाइयों की मृत्यु होगई। दोनों में से किसी के भी आत्मज पुत्र न था। किन्तु दोनों प्रतापसिंह की मृत्यु पर हाँबहाउस के दत्तक पुत्र मौजूद थे। २४ दिसम्बर सन् १८४७ को राजा प्रतापसिंह की मृत्यु पर आलोचना करते हुए इङ्गलिस्तान के भारत मन्त्री

हाँबहाउस ने लॉर्ड डलहौजी को एक पत्र में लिखा —

“सतारा के पदच्युत राजा की मृत्यु निस्सन्देह बड़े ही अच्छे अवसर पर हुई है। मैंने सुना है कि वर्त्तमान राजा का स्वास्थ्य भी बहुत खराब है; और यह कदापि असम्भव नहीं है कि हमें शीघ्र ही उसके राज के भाग्य का फ़ैसला करना पड़े। मेरी यह निश्चित राय है कि वर्त्तमान राजा के पुत्र-विहीन मरने पर दत्तक पुत्र को स्वीकार न किया जाय और इस छोटे से राज को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया जाय। यदि यह प्रश्न मेरे मन्त्री रहते हुए तय हो गया तो मैं इस कार्य को पूरा करने में कोई कसर उठा न रखूँगा।”❀

* “The death of the Ex-Raja of Satara certainly comes at a very opportune moment. The reigning Raja is, I hear, in very bad health, and it is not at all impossible we may soon have to decide upon the fate of his territory. I have a very strong opinion that on the death of the present prince without a son, and no adoption should be permitted, this petty principality should be merged in the British Empire; and if the question is

इसी आदेश के अनुसार लॉर्ड डलहौज़ी ने, सतारा के राजा के मरते ही, तमाम पिछली सन्धियों का उल्लङ्घन करके, राजा के पुत्र न होने का बहाना लेकर, और गोद लेने की प्राचीन प्रथा को नाजायज़ कह

सतारा का
अपहरण

कर, ज़बरदस्ती सतारा के राज पर कम्पनी का कब्ज़ा जमा लिया ।

ग़दर के सत्रह वर्ष बाद सन् १८७४ ई० में सतारा की विधवा रानी ने इस अन्याय के विरुद्ध महारानी विक्टोरिया के नाम एक प्रार्थना पत्र भेजा, किन्तु उसका परिणाम क्या हो सकता था !

नागपुर के अन्तिम राजा तीसरे राघोजी भोंसले की मृत्यु ११ दिसम्बर सन् १८५३ को हुई । इतिहास से पता चलता है कि राघोजी समझदार और नेक नरेश था । उसका शासन प्रबन्ध अत्यन्त सराहनीय

नागपुर का
अन्तिम राजा

था । किन्तु लॉर्ड डलहौज़ी ने राजा की मृत्यु के बाद ही उसके चरित्र पर अनेक भूठे और लज्जाजनक इलज़ाम लगाने शुरू कर दिए ।

राघोजी के कोई पुत्र न था । विधवा महारानी ने विधिवत् यशवन्तराव नामक अपने एक नज़दीकी रिश्तेदार को गोद ले लिया । यशवन्तराव ही ने पुत्र की तरह परलोकवासी राजा का श्राद्ध किया ।

राजा का दत्तक
पुत्र

decided in my "day of sextonship," I shall leave no stone unturned to bring about that result."—Letter from Hobhouse to Lord Dalhousie, 24th December, 1847.

लॉर्ड डलहौज़ी ने सन् १८२६ की सन्धि की अवहेलना करते हुए २८ जनवरी सन् १८५४ को यह एलान कर दिया कि नागपुर के तख़्त का कोई हक़दार न होने के कारण नागपुर का समस्त राज अंगरेज़ कम्पनी के कब्ज़े में आगया ।

मेजर ईवन्स बेल ने इस अन्याय को बयान करते हुए लिखा है कि केवल १० वर्ष पूर्व अर्थात् सन् १८४४ में नागपुर के रेज़िडेण्ट के एक पत्र के उत्तर में गवरनर जनरल ने यह साफ़ स्वीकार किया था कि पुत्र न होने की सूरत में राजा को और राजा की मृत्यु हो जाने पर उसके कुटुम्बियों को गोद लेने का पूर्ण अधिकार है । किन्तु केवल दस वर्ष के अन्दर अंगरेज़ शासकों के उसूल बदल गए थे । राघोजी के कुटुम्बियों और विधवा रानियों से किसी तरह की राय नहीं ली गई और न उनसे कोई पूछा ताछा की गई । उन्हें यह भी नहीं बतलाया गया कि किन कारणों से अंगरेज़ सरकार ने उनके और उनके कुल के पैतृक अधिकारों का क्षण भर के अन्दर अन्त कर दिया । उन्हें केवल यह सूचना दे दी गई कि तुम्हारा राज अब अंगरेज़ी साम्राज्य में मिला लिया गया ।

२८ जनवरी सन् १८५४ के एलान में लॉर्ड डलहौज़ी ने यह निर्लज्ज भूठ तक लिख दिया कि “रानियाँ दत्तक यशवन्तराव को गद्दी देना पसन्द नहीं करतीं और यशवन्तराव को गद्दी न देना अंगरेज़ सरकार का रानियों के ऊपर उपकार करना है !”

गवर्नर जनरल की कौन्सिल का एक सदस्य जनरल लो किसी कारण इस अत्याचार के विरुद्ध था। उसने
 इंगलिस्तान में भोंसले कुल की ओर डलहौज़ी के इस अन्याय
 डलहौज़ी की को बड़े जोरदार शब्दों में स्वीकार किया है।
 प्रशंसा फिर भी इंगलिस्तान के उदार से उदार नीतिज्ञों
 ने इस कार्य के लिए लॉर्ड डलहौज़ी की खूब प्रशंसा की।

नागपुर राज का एक भाग इससे पूर्व ही अंगरेज़ी राज में मिला लिया जा चुका था। शेष समस्त भाग भी अब कम्पनी के भारतीय राज में शामिल कर लिया गया।

किन्तु लॉर्ड डलहौज़ी और उसके अंगरेज़ साथियों की धन-
 लोलुपता यहीं पर समाप्त नहीं हुई। इतिहास
 नागपुर में महलों लेखक सर जॉन के लिखता है कि नागपुर के
 की लूट राजमहल का सारा असबाब, यहाँ तक कि
 घोड़े, हाथी, ऊँट, बैल, गाय इत्यादि और रानियों के तमाम ज़ेवर
 और जवाहरात, घर का सामान, बरतन और पहनने के कपड़े तक
 ज़बरदस्ती बाहर निकाल कर नीलाम कर दिए गए ! सर जॉन के
 लिखता है कि उस दिन सीताबल्डी में शाही हाथी, घोड़े और सवारी
 के बैल मांस के दामों बेचे गए ! अस्सी वर्ष की वृद्धा राजपितामही
 महारानी बङ्गाबाई इस अपमान को देख कर इतनी दुखी हुई कि
 एक बार उसने कह दिया कि यदि महल का सामान बाहर निकाला
 गया तो मैं महल में आग लगा दूँगी। फिर भी सामान बाहर
 निकाल लिया गया। महल के भीतर का फ़र्श तक खोद डाला

गया। रानियों के ज़ेवर, जवाहरात और सोने चाँदी के जड़ाऊ बर्तन और अन्य कीमती सामान कलकत्ते ले जाकर नीलाम किया गया। नागपुर में करीब ६०० हाथी, घोड़े, ऊँट और बैल १३,००० रुपए में नीलाम हुए। यह नीलाम अधिकतर ४ सितम्बर को हुआ। कलकत्ते की 'हैमिल्टन पेगड कम्पनी' नामक एक अंगरेज़ कम्पनी को इस नीलाम का ठेका दिया गया। एक एक जोड़ी बैलों को और शाही घोड़ों की पाँच पाँच रुपए में बेची गई। हाथो सौ रुपए में और करोड़ों के जवाहरात लाखों और सहस्रों में नीलाम कर दिए गए।

नागपुर का राजकुल क्षत्रपति शिवाजी के वंश से था। इसी कुल ने उस समय, जब कि नाना फड़नवीस पाप का प्रायश्चित्त और हैदरअली जैसे देशभक्त नीतिज्ञ विदेशियों से भारत को स्वाधीन रखने के विकट प्रयत्न कर रहे थे, विदेशियों का साथ देकर कम्पनी के भारतीय साम्राज्य के कोमल अङ्गुरों को नष्ट होने से बचाया था। इसी पाप के प्रायश्चित्त रूप इस कुल के एक नरेश को निर्वासित होकर अकेले देश देश और जङ्गल जङ्गल घूमना पड़ा और दूसरे के कुटुम्बियों, रानियों और उत्तराधिकारी को इस प्रकार ज़िल्लत सहनी पड़ी।

एक इतिहास लेखक लिखता है कि नागपुर राज के अन्दर रुई अधिक और उत्तम उत्पन्न होती थी। इङ्गलिस्तान नागपुर की रुई को अपनी बढ़ती हुई कपड़े की कारीगरी के लिए रुई की आवश्यकता थी। इसीलिए नागपुर पर कब्ज़ा करना उस समय आवश्यक था।

वही लेखक यह भी लिखता है कि नागपुर पर कब्ज़ा जमाने से पहले राज के अनेक कर्मचारियों को अंगरेज़ों ने रिशवतें देकर अपनी ओर करने का प्रयत्न किया, किन्तु “इसमें आसानी से सफलता न मिल सकी।”*

पेशवा सत्ता के दिनों में पेशवा का एक सूबेदार भाँसी के राज पर शासन किया करता था। धीरे धीरे भाँसी की रियासत सूबेदार का पद पैतृक हो गया, किन्तु पेशवा का आधिपत्य भाँसी के राजा के ऊपर बराबर बना रहा।

सन् १८१७ में कम्पनी ने भाँसी के राजा रामचन्द्रराव के साथ मित्रता की सन्धि की, जिसमें कम्पनी सरकार ने वादा किया कि भाँसी का समस्त राज “सदा के लिए” राजा रामचन्द्रराव, उसके उत्तराधिकारियों और वंशजों के शासन में पैतृक रूप से रहने दिया जायगा।”†

२१ नवम्बर सन् १८५३ को भाँसी के राजा गङ्गाधरराव का देहान्त हुआ। गङ्गाधरराव की आयु मृत्यु के समय बहुत थोड़ी थी। मृत्यु के पहले उसने विधिवत् दामोदरराव नामक एक बालक को गोद ले लिया। दामोदरराव गङ्गाधरराव के ही कुल का और गङ्गाधरराव का अत्यन्त नज़दीकी रिश्तेदार था।

मेजर ईवन्स बेल लिखता है :—

“X X X गोद लेने का संस्कार बिलकुल ठीक ठीक हिन्दू शास्त्र की

*“ . . . They were not easily seduced . . . ”— *Calcutta Review*, vol. 38, 1863, pp. 230-31.

† Aitchison's *Treaties*, etc, revised edition.

मर्यादा के अनुसार किया गया, अंगरेज़ अफ़सर संस्कार में मौजूद थे, और राजा ने अपने मरने से पहले बाज़ाब्ता पत्र द्वारा अंगरेज़ सरकार को उसकी सूचना दे दी। ”*

फिर भी लॉर्ड डलहौजी ने २७ फ़रवरी सन् १८५४ को फ़ैसला किया कि दत्तक पुत्र को राज का कोई अधिकार भाँसी का अपहरण नहीं। १३ मार्च सन् १८५४ को एक पलान द्वारा भाँसी की रियासत ज़बरदस्ती कम्पनी के राज में मिला ली गई। इतिहास लेखक मेजर ईवन्स बेल ने अपनी पुस्तक ‘दी एम्पायर इन इण्डिया’ में लॉर्ड डलहौजी के इस अन्याय को बड़े स्पष्ट शब्दों में और विस्तार के साथ बयान किया है।

भाँसी की प्रजा और राजकुल के साथ कम्पनी के इस घोर अन्याय का ही फल था कि सन् १८५७-५८ के विप्लव में भाँसी की प्रसिद्ध रानी लक्ष्मीबाई ने शस्त्र धारण कर, अद्भुत वीरता के साथ अंगरेज़ी सेना का मुक़ाबला किया। किन्तु रानी लक्ष्मीबाई के चरित्र और इस विषय का अधिक सम्बन्ध एक अगले अध्याय से है।

सम्बलपुर का ज़िला, जो इस समय बिहार और उड़ीसा प्रान्त में है, इससे पूर्व मध्यप्रान्त में शामिल था। सन् १८४६ में लॉर्ड डलहौजी ने इसी ‘लैप्स’ के सिद्धान्त के अनुसार सम्बलपुर के स्वतन्त्र, किन्तु निर्बल राज पर अपना क़ब्ज़ा जमाया।

सम्बलपुर का
अपहरण

* *Empire in India*,—by Major Evans Bell, pp. 212-13.

जेतपुर का छोटा सा राज बुन्देलखण्ड में था। सन् १८४६ ही
में इसी प्रकार जेतपुर को भी खत्म किया गया।

जेतपुर का
अपहरण

तञ्जोर का रहा सहा इलाका सन् १८५५ में
इसी प्रणाली के अनुसार कम्पनी के राज में
मिला लिया गया। तञ्जोर की विधवा महारानी कामत्ती बाई ने
मद्रास गवर्मेण्ट के विरुद्ध मद्रास की सुप्रीम
तञ्जोर का अपहरण कोर्ट में इस बात की नालिश की कि मेरे पति की
वैय्यक्तिक सम्पत्ति को भी मद्रास गवर्मेण्ट ने ज़ब्त कर लिया है,
वह मुझे दिलवा दी जाय। मद्रास की सुप्रीम कोर्ट ने फ़ैसला रानी
के हक़ में किया। मद्रास गवर्मेण्ट ने इस फ़ैसले के विरुद्ध इङ्ग-
लिस्तान की प्रीवी कौन्सिल के सामने अपील की। प्रीवी कौन्सिल
के विद्वान जजों ने फ़ैसला दिया कि यद्यपि अंगरेज़ सरकार को
तञ्जोर पर क़ब्ज़ा करने का कोई क़ानूनी अधिकार हासिल न था,
और रानी के साथ ज़बरदस्त अन्याय किया गया है, फिर भी
यह मामला राजनैतिक है और अदालत को इसमें दखल देने का
कोई हक़ नहीं; इसलिए मद्रास सुप्रीम कोर्ट का फ़ैसला रह किया
जाता है और रानी का दावा खारिज !

मद्रास का नगर और उसके आस पास का तमाम इलाका
किसी समय करनाटक की मुसलमान सल्तनत
करनाटक का
अपहरण में शामिल था। कम्पनी ने सबसे पहले मद्रास और
कडलोर करनाटक के नवाब से प्राप्त किए।

उसके बाद नवाब मोहम्मदअली वालाजाह ने पूना माली का

तालुका और और कई तालुके अंगरेज़ कम्पनी को प्रदान कर दिए । सन् १७६३ में नवाब ने चिङ्गलपुट की जागीर, जिसकी आमदनी उस समय १८ लाख रुपये सालाना थी, अपने मित्र अंगरेज़ों को दे दी । इन तमाम इलाकों के लिए कम्पनी के नाम नवाब के दरबार से बाज़ाब्ता सनदें जारी की गईं । इसके बहुत समय बाद तक अंगरेज़ कम्पनी करनाटक के नवाब को इन इलाकों के लिए खिराज देती थी और वहाँ पर रहने वाले अंगरेज़ अपने को नवाब की प्रजा कहते थे । नवाब मोहम्मद अली अन्य भारतीय नरेशों के विरुद्ध अंगरेज़ों का सदा मददगार रहा । फिर भी मोहम्मदअली के बेटे उमदतुलउमरा की मृत्यु पर करनाटक का बहुत सा इलाका और नवाब के अनेक अधिकार ज़बरदस्ती कम्पनी ने अपने हाथों में ले लिए । किंतु सन् १८०१ की सन्धि में भी कम्पनी और नवाब करनाटक का यह नाम मात्र का सम्बन्ध कायम रक्खा गया । सन् १८५५ के अक्तूबर मास में नवाब मोहम्मद ग़ौस का देहान्त हुआ और उसके उत्तराधिकारी अज़ीम जाह को अंगरेज़ों ने नवाब स्वीकार करने ही से इनकार कर दिया । मद्रास के गवर्नर लॉर्ड हैरिस ने लॉर्ड डलहौजी को लिखा कि—“करनाटक के नवाब की सत्ता केवल एक दिखावटी तमाशा है, किन्तु किसी भी समय वह हमारे विरुद्ध विद्रोह और आन्दोलन का एक केन्द्र बन सकती है । इसलिए इस तमाशे को जारी रखना अब बुद्धिमत्ता नहीं है ।” इत्यादि ।

डलहौजी ने हैरिस की राय को पसन्द किया । करनाटक का

समस्त रहा सहा इलाका अंगरेजी राज में मिला लिया गया; और भारत के एक और प्राचीन राजकुल का अन्त हुआ ।

इतिहास लेखक लडलो लिखता है—

“जिस समय से गवरनर जनरल ने अपनी इस अपहरण नीति का एलान किया, उस समय से ही भारतीय नरेशों में पुत्रविहीन मौतें इतनी अधिक होने लगीं कि जिसे देख कर मनुष्य को आश्चर्य हुए बिना नहीं रह सकता ।”❀

उस समय की भारतीय रियासतों और उनके अन्दर कम्पनी के कारनामों का कोई सच्चा इतिहास किसी भारतवासी के हाथ का लिखा हुआ नहीं मिलता, इसलिए इतिहास लेखक लडलो के आश्चर्य को हल कर सकना अब असम्भव है ।

हिन्दू, सिख, बौद्ध या मुसलमान किसी भी धर्म के भारतीय नरेश डलहौजी के चङ्गुल से न बच सके । उसके मुसलिम रियासतें भारत आगमन के समय दो विशाल मुसलमान राज भारत में मौजूद थे । उत्तर में अवध का राज और दक्खिन में निज़ाम की रियासत । इनमें से प्रत्येक की वार्षिक आमदनी कई करोड़ रुपए थी । अवध हिन्दोस्तान के सबसे अधिक ज़रखेज़ हिस्सों में गिना जाता था और बरार में अनेक धातुओं की कानें थीं ।

* “One can not fail to be struck with the frequency of death without heirs among Indian sovereigns from the moment when the policy of annexation is proclaimed by a Governor-General,”—Ludlow's *British India*, vol. ii, p. 190.

रॉबर्ट नाइट ने सन् १८८० में लिखा था कि सन् १८५१ के करीब अंगरेज़ सरकार की प्रधान नीति यह थी कि जब भी मौका मिल सके देशी रियासतों की संख्या को कम किया जाय और हैदराबाद और अवध के नाश में यदि देरी हुई तो केवल पञ्जाब और बरमा के युद्धों के कारण हुई ।❧

सन् १८०० की सन्धि के अनुसार हैदराबाद के निज़ाम को सबसीडीयरी सेना के खर्च के लिए एक बहुत बड़ी रक़म प्रति वर्ष कम्पनी को देनी होती थी । बरार का प्रान्त दूसरे मराठा युद्ध के बाद नागपुर के राजा से छीन कर निज़ाम को दे दिया गया था । उस समय से बराबर बरार के अन्दर निज़ाम के विरुद्ध उपद्रव चले आते थे । कहा जाता है कि बरार के हिन्दू देशमुख प्रायः निज़ाम के विरुद्ध विद्रोह करते रहते थे । इतिहास लेखक लॉयल लिखता है कि बरार के शहरों में आधे दिन ही हिन्दू और मुसलमानों में झगड़े होते रहते थे, किन्तु ये झगड़े निज़ाम के शेष राज में और कहीं सुनने में न आते थे । इन उपद्रवों को शान्त करने के लिए गवर्नर जनरल ने सबसीडीयरी सेना देने से इनकार कर दिया; यद्यपि यह सेना वास्तव में निज़ाम ही की सेना थी, निज़ाम ही के खर्च से रक्खी गई थी, और जिस सन्धि द्वारा यह सेना निज़ाम के इलाक़े में रक्खी गई थी, उसमें यह साफ़ दर्ज था कि इस सेना का उद्देश निज़ाम के इलाक़े में शान्ति कायम रखना

और निज़ाम को हर तरह की सहायता देना है। बरार के उपद्रवों को शान्त करने के लिए निज़ाम पर जोर दिया गया कि वह बरार के अन्दर विशेष सेना रखे। यह नई सेना भी कम्पनी ही की थी, इसके भी अफ़सर अंगरेज़ थे और अंगरेज़ों ही के वह नियन्त्रण में थी; फिर भी इसका खर्च निज़ाम पर डाला गया।

इन सब का परिणाम यह हुआ कि निज़ाम का खर्च और उसकी मुसीबतें दोनों बढ़ती चली गईं। निज़ाम की मुसीबतें सबसे डीयरी सेना का खर्च अदा करने के लिए निज़ाम को धन की कमी होने लगी। हैदराबाद के अन्दर कई नई अंगरेजी कम्पनियाँ खोली गईं जो निज़ाम को कर्ज़ देने के लिए राजी होगईं। मजबूरन् इन अंगरेज़ बैंडिङ्ग कम्पनियों के निज़ाम को बार बार कर्ज़ लेना पड़ा, और अन्य मुसीबतों के साथ साथ निज़ाम का कर्ज़ भी बढ़ता चला गया। इन विदेशी साहूकार कम्पनियों का धन भी यदि सब नहीं तो अधिकतर हैदराबाद ही से कमाया हुआ था।

६ जून सन् १८५१ को लॉर्ड डलहौज़ी ने निज़ाम के नाम एक अत्यन्त धृष्टतापूर्ण पत्र लिखा। निज़ाम के राज बरार का अपहरण में थोड़े से ऐसे क़िले रह गए थे जो दरबार के वफ़ादार अरब सिपाहियों के हाथों में थे। ये वीर अरब कहीं भी अंगरेज़ों के क़ाबू में न आए थे। लॉर्ड डलहौज़ी ने निज़ाम को धमकी दी कि फ़ौरन् इन अरबों को बरखास्त कर दिया जाय। और यद्यपि कम्पनी का एक पैसा कर्ज़ भी निज़ाम के ज़िम्मे न था,

निज़ाम के जो कुछ कर्ज़ थे वे व्यक्तिगत कम्पनियों के कर्ज़ थे, फिर भी “अपने कर्ज़ों की अदायगी में” निज़ाम से उसका एक तिहाई राज अर्थात् बरार का उपजाऊ प्रान्त फ़ौरन् कुछ वर्षों के लिए पट्टे पर तलब किया गया। निज़ाम ने बहुतेरे एतराज़ किए, किन्तु अंगरेज़ी फ़ौज़ ने बरार पर कब्ज़ा कर लिया। लॉर्ड डलहौजी ने सञ्जीदगी के साथ यह एतान किया कि बरार बाद में निज़ाम को लौटा दिया जायगा। इसके करीब पचास वर्ष बाद गवर्नर जनरल लॉर्ड करज़न ने बरार के पट्टे को मौजूदा अंगरेज़ सरकार के नाम स्थायी कर लिया। निज़ाम के पास स्वीकार करने के सिवा कोई चारा न था।

भारत भर में सब से अच्छी रुई बरार के प्रान्त में पैदा होती है।

सब से अन्तिम भारतीय राज, जिसे लॉर्ड डलहौजी ने अंगरेज़ी

राज में शामिल किया, अवध का राज था।

डलहौजी की माँ
का नवाब अवध से
परिचय

लॉर्ड डलहौजी के इस कार्य को वर्णन करने से पहले कुछ वर्ष पूर्व की एक और हास्यजनक घटना को वर्णन करना अप्रासङ्गिक न होगा।

डलहौजी का पिता एक समय कम्पनी की भारतीय सेना का कमाण्डर-इन-चीफ़ था। अपने समय के अन्य अंगरेज़ अफ़सरों के समान वह एक बार लखनऊ के नवाब से भेंट करने गया। कमाण्डर-इन-चीफ़ ने अवध के नवाब से अपनी अर्धाङ्गिनी का परिचय कराया। सम्भवतः कमाण्डर-इन-चीफ़ का उद्देश अपनी पत्नी को महल में भिजवा कर बेगमों से कुछ नज़रें कमाना था। पुरुषों से स्त्रियों का

इस प्रकार परिचय कराने का रिवाज भारत में न था। अवध नरेश कमाण्डर-इन-चीफ़ का मतलब न समझ सका। वह यह समझा कि कमाण्डर-इन-चीफ़ अपनी बीवी को नवाब के हाथों बेचना चाहता है। निस्सन्देह अवध के नवाब को इस तरह का सौदा रुचिकर न हो सकता था। थोड़ी देर के बाद उसने अपने मुलाजिमों से कहा—“काफ़ी हो चुका ! इस औरत को यहाँ से हटाओ !”*

अंगरेजों और अवध का इतिहास पूर्व के कई अध्यायों में दिया जा चुका है। उसे यहाँ पर संक्षेप में दोहराना अप्रासङ्गिक न होगा। आरम्भ में अवध का राज विशाल मुग़ल साम्राज्य का एक अंग था। अवध के नवाब दिल्ली सम्राट के पैतृक वज़ीर समझे जाते थे। धीरे धीरे मुग़ल साम्राज्य की निर्बलता के अन्तिम दिनों में अवध नरेश बहुत दूर तक उस साम्राज्य से स्वतन्त्र होते चले गए।

कम्पनी के साथ अवध के नवाब का सम्बन्ध सन् १७६४ में प्रारम्भ हुआ। आरम्भ में अवध के नवाब को अपनी सल्तनत की रक्षा के लिए सल्तनत के अन्दर कम्पनी की सेना रखने की सलाह दी गई। इस सेना के खर्च के लिए सोलह लाख रुपए वार्षिक नवाब से लिए जाने लगे। धीरे धीरे इस सबसीडीयरी

* *The Life and Opinions of General Sir Charles James Napier, G. C. B.,* —by Lieutenant-General Sir W. Napier, K. C. B., 2nd Edition 1857. vol. iv, p. 296.

सेना की संख्या बढ़ने लगी। उसके खर्च के लिए रकम भी बढ़ती चली गई। यहाँ तक कि इस विशाल सेना के खर्च के लिए रुहेल-खण्ड और दोआब का इलाका, जिसकी बचत उस समय दो करोड़ रुपए सालाना थी, नवाब से ले लिया गया।

सन् १८०१ में अवध के नवाब और कम्पनी के बीच एक और नई सन्धि हुई, जिसमें अंगरेजों ने वादा किया १८०१ की सन्धि कि नवाब का शेष समस्त राज पीढ़ी दर पीढ़ी उसके शासन में कायम रहेगा और अंगरेज उसमें कभी किसी तरह का दखल न देंगे। किन्तु इसी सन्धि की एक धारा यह भी थी कि—“अंगरेज सरकार नवाब वज़ीर के समस्त इलाके की बाहर के आक्रमणों और भीतर के विद्रोहों से रक्षा करने का वादा करती है।” वास्तव में यही धारा अवध की समस्त भावी मुसीबतों को जड़ साबित हुई।

इसके बाद समय समय पर अंगरेज गवर्नर जनरलों ने अपने भारतीय युद्धों के लिए करोड़ों रुपए, कभी बतौर अवध से ऋण कर्ज के और कभी बतौर सहायता के, अवध के नवाब से वसूल किए। असंख्य अंगरेज शासकों और अफसरों की व्यक्तिगत आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने के लिए भी अवध के खज़ाने ने समय समय पर कामधेनु का काम दिया। वास्तव में अवध और करनाटक इन दो राज्यों से धन चूस चूस कर ही अधिकतर कम्पनी के बाल साम्राज्य ने भारत में अपने शरीर को दृष्ट पुष्ट किया।

आप दिन की नित्य नई माँगों के कारण अवध के नवाब की आर्थिक कठिनाई बढ़ती चली गई। एक अंगरेज़ रेज़िडेंट लखनऊ के दरबार में रहने लगा। अंगरेज़ों का अनुचित शासन के छोटे से छोटे मामलों में नित्य नए हस्तक्षेप होने लगे। कई छोटे छोटे इलाकों का शासन नवाब से कह कर अंगरेज़ अफ़सरों को सौंप दिया गया। इन अंगरेज़ अफ़सरों ने स्थान स्थान पर अपने क़ानून जारी कर दिये। इस अनुचित हस्तक्षेप के कारण प्रजा में दुख और दारिद्र्य बढ़ने लगा। नवाब ने प्रजा की दशा सुधारने के अनेक प्रयत्न किये। हर बार कम्पनी के प्रतिनिधियों ने इन प्रयत्नों को सफल होने से रोक लिया।

अवध के शासन में कम्पनी के प्रतिनिधियों के इस अनुचित हस्तक्षेप और उसके परिणामों को वर्णन करते हस्तक्षेप के परिणाम हुए सर हेनरी लॉरेन्स लिखता है—

“हमारे भारतीय इतिहास में अवध का अध्याय हमारे लिए एक कलङ्ककर अध्याय है। उससे हमें यह भयङ्कर चेतावनी मिलती है कि जो राजनीतिज्ञ एक बार धर्म अधर्म के सीधे नियम को छोड़ कर उसकी जगह क्षणिक उपयोगिता या अपने विचार के अनुसार ‘अपने राष्ट्रीय हित’ की दृष्टि से काम करने लगता है तो वह किस हद तक पहुँच सकता है। अवध के इतिहास के प्रत्येक लेखक ने जो घटनाएँ बयान की हैं उन सबसे यही सिद्ध होता है कि उस प्रान्त में अंगरेज़ों का दखल देना जिस दर्जे अंगरेज़ों के नाम पर कलङ्क था उस दर्जे तक ही अवध दरबार

और वहाँ की प्रजा के लिए नाशकर था। × × × हम जिधर भी नज़र डालते हैं, हमें अपने हस्तक्षेप के नाशकर परिणाम स्पष्ट अक्षरों में लिखे हुए दिखाई देते हैं। × × × यदि कहीं पर भी कुशासन क्रायम रखने के लिए कोई पक्की तरीक़ब की जा सकती है “तो वह यह है कि नरेश देशी हो, उसका वज़ीर देशी हो, दोनों की पुष्टि के लिए विदेशी सज़ीनें हों और एक अंगरेज़ रेज़िडेण्ट उन्हें पीछे से चलाते वाला हो।”❀

जब कि एक ओर अवध के शासन में इस प्रकार पद पद पर हस्तक्षेप किया जा रहा था, दूसरी ओर अवध अवध के असहाय के नवाब को दिल्ली के दरबार से तोड़ने की पूरी कोशिशें जारी थीं। कम्पनी के प्रतिनिधि इस बात के लिए चिन्तित मालूम होते थे कि अवध के नरेश दिल्ली की ओर से सर्वथा स्वाधीन हों ! यहाँ तक कि मार्किंस ऑफ़ हेस्टिंग्स ने अवध के ‘नवाब-वज़ीर’ को ‘अवध के बादशाह’ की उपाधि दी और इसके बाद नवाब के उत्तराधिकारियों को इसी उपाधि से

* “Oude affords but a discreditable chapter in our Indian annals, and furnishes a fearful warning of the lengths to which a statesman may be carried, when once he substitutes expediency and his own view of public advantage, for the simple rule of right and wrong. The facts furnished by every writer on Oude affairs all testify to the same point, that British interference with that province has been as prejudicial to its Court and people as it has been disgraceful to the British name. . . . In short, wherever we turn, we see written in distinct characters the blighting influences of our interference. . . . If ever there was a device for insuring mal government it is that of a Native Ruler and Minister, both relying on foreign bayonets, and directed by a British Resident.”—Sir Henry Lawrence, In the *Calcutta Review*, for January, 1845.

पुकारा गया। किन्तु ज्यों ज्यों मुगल दरबार की ओर से अवध के नवाबों की स्वतन्त्रता बढ़ती गई, उतना उतना ही अंगरेज कम्पनी की ओर से उनकी परतन्त्रता बढ़ती चली गई; यहाँ तक कि अवध के अदूरदर्शी भारतीय नरेश कम्पनी की मित्रता के चङ्गुल में पड़ कर थोड़े ही दिनों में सर्वथा पङ्गुल होगए।

नवाब पर बार बार यह इलजाम लगाया जाने लगा कि तुम्हारा राज-प्रबन्ध ठीक नहीं, तुम्हारी प्रजा अवध निवासियों में असन्तोष असन्तुष्ट है। वास्तव में जो कुछ कुप्रबन्ध या असन्तोष उस समय अवध में मौजूद था, वह अंगरेजों ही का जान बूझ कर पैदा किया हुआ था। लॉर्ड हेस्टिंग्स लिखता है—

“वास्तव में इस प्रकार का शासन क्रायम करने का, जिससे प्रजा सुखी हो, एक मात्र सच्चा और कारगर उपाय यही हो सकता था कि अंगरेज रेज़िडेण्ट को वापस बुला लिया जाय और नवाब को अपने राज के प्रबन्ध में आज़ाद छोड़ दिया जाय। इस प्रकार, उस इलाके के असन्तोष का सारा पाप कम्पनी के सर पर है।”*

सन् १८३७ में नवाब के साथ एक नई सन्धि की गई, जिससे नवाब को और भी अधिक जकड़ दिया गया।

*“As a matter of fact, the true and effectual way of introduction of an administration which would render the people happy would have been to call British Resident back and to give the Nabob a free hand in the administration of his dominion, Thus the whole guilt of unrest in his territory rests on the head of the Company.”—Charles Ball's *History of the Indian Mutiny*, vol. i, p. 152.

सन् १८४७ में नवाब वाजिदअली शाह तख्त पर बैठा । वाजिद-
 अली शाह नौजवान, उत्साही और समझदार
 नवाब वाजिदअली था । उसने अवध के शासन में अनेक सुधार
 शाह का शासन किए । वह समझ गया कि अवध की सल्तनत
 का वास्तविक रोग क्या है । जिस अभागे वाजिदअली शाह के
 ऊपर विषय लोलुपता के असंख्य भूठे और द्वेषपूर्ण इलज़ाम लगाए
 जा चुके हैं, उसने तख्त पर बैठते ही सबसे पहले अपनी रही सही
 सेना को सुधारने और उसे फिर से मज़बूत करने के जोरदार
 प्रयत्न प्रारम्भ किए । सेना के अनुशासन के लिए उसने अनेक नए
 और कठोर नियम बनाए । उसने रोज़ अपने सामने फौज से
 क़वायद करवानी शुरू की ।

लखनऊ दरबार की समस्त पलटनों को प्रति दिन सूर्योदय से
 पहले क़वायद के मैदान में जमा हो जाना पड़ता
 सेना का था । नवाब वाजिदअली शाह स्वयं सूर्योदय से
 संगठन पूर्व सेनापति की वर्दी पहन कर, घोड़े पर सवार
 होकर मैदान में पहुँच जाता था । यदि किसी पलटन को आने में
 देर होती थी तो उससे दो हजार रुपए जुर्माना वसूल किया जाता
 था । इतिहास लेखक मेटकॉफ़ लिखता है कि वाजिदअली शाह
 अपने नियमों का इतना पाबन्द था कि यदि कभी किसी कारण-
 वश उसे देर होती थी तो इतनी ही रक़म जुर्माने की वह स्वयं
 अदा करता था ।* किन्तु वाजिदअलीशाह को प्रायः कभी भी देर

* *Native Narrative of the Mutiny*, by Metcalf, p. 32, 33.

न होती थी। दोपहर तक सारी पलटनें क़वायद करती थीं, और वाज़िदअली शाह बराबर घोड़े पर सवार मैदान में मौजूद रहता था।

कम्पनी के प्रतिनिधियों को अवध के नवाब की ये हरकतें कहाँ पसन्द आ सकती थीं! अनेक तरह से ज़ोर डालकर नवाब को इस कार्य से रोका गया। यहाँ तक कि वाज़िदअली शाह को विवश होकर क़वायद के मैदान में जाना बन्द कर देना पड़ा।

थोड़े ही दिनों बाद डलहौज़ी का समय आया। अवध की हरी भरी भूमि का प्रलोभन डलहौज़ी के लिए कोई साधारण प्रलोभन न था। अवध के विषय में पार्लिमेण्ट की रिपोर्टों में दर्ज है—

“इस सुन्दर भूमि में हर जगह ज़मीन की सतह से बीस फुट नीचे और कहीं कहीं दस फुट नीचे विपुल जल भरा हुआ है। यह प्रदेश अत्यन्त मनोरम और वैभवपूर्ण है। उसमें लम्बे और ऊँचे बाँसों के जङ्गल के जङ्गल हैं, मैदानों में आम के वृक्षों की ठण्डी छाया है, खेत हरी भरी पैदावार से लहलहाते हैं। स्वयं प्रकृति ने वहाँ की भूमि को अत्यन्त सुन्दर बनाया है; उस पर इमली के वृक्षों का घना साया, सन्तरे के बाग़ों की सुगन्ध, इज़ीर के दरख़्तों का गहरा रङ्ग और फूलों की रज की सुन्दर और व्यापक खुशबू वहाँ के दृश्य को और भी अधिक वैभव प्रदान करती रहती है!”

निस्सन्देह अवध का धन वैभव उस समय कल्पनातीत था।

इसी कारण डलहौजी के लिए इस प्रलोभन को जीत सकना असम्भव हो गया। किन्तु अवध के अपहरण के लिए उतना भी बहाना न मिल सका जितना नागपुर, भाँसी या सतारा के लिए। अवध के नवाबों ने सदा अंगरेजों की मदद की थी। सन्धि का वे सदा ईमानदारी के साथ पालन करते रहे थे। वाजिदअली शाह अपने पूर्वाधिकारी का आत्मज था, और वाजिदअली शाह के अनेक पुत्र लखनऊ के महल में मौजूद थे। फिर भी सन् १८५६ में लॉर्ड डलहौजी ने अपने इस निश्चय का एलान कर दिया कि अवध की सल्तनत कम्पनी के राज में मिला ली जायगी। इसका कारण यह बताया गया कि नवाब अपने शासन में उचित सुधार नहीं कर रहा है या करने के अयोग्य है !

निस्सन्देह डलहौजी का यह कार्य सन् १८०१ और १८३७ की सन्धियों का साफ़ उल्लङ्घन था।

लॉर्ड डलहौजी की आज्ञा से लखनऊ का रेज़िडेण्ट ऊटरम महल में वाजिदअली शाह से मिलने गया। अवध का अपहरण ऊटरम ने नवाब के सामने एक पत्र पेश किया, जिसमें लिखा था कि मैं खुशी से अपनी सल्तनत कम्पनी को देने के लिए राजी हूँ। रेज़िडेण्ट ऊटरम ने उस पत्र पर दस्तख़त करने के लिए नवाब पर ज़ोर दिया। नवाब ने पत्र पढ़ कर दस्तख़त करने से साफ़ इनकार कर दिया। रिश्वतों और धमकियों के ज़रिफ़े वाजिदअली शाह के दस्तख़त कराने का प्रयत्न किया गया। तीन

दिन गुज़र गए, वाजिदअली शाह ने फिर भी दस्तख़त करने से इनकार किया। इस पर कम्पनी की सबसीडियरी सेना ने सब सन्धियों को खाक में मिलाकर लखनऊ के महल में ज़बरदस्ती प्रवेश किया। कम्पनी की मर्यादा के अनुसार महलों को लूटा गया, बेगमों का अपमान किया गया, वाजिदअली शाह को कैद करके कलकत्ते भेज दिया गया, और समस्त अवध पर कम्पनी का कब्ज़ा हो गया।

इसी समय के निकट वाजिदअली शाह के शासन और उसके चरित्र पर तरह तरह के भूठे कलङ्क लगा कर वाजिदअली शाह अनेक पुस्तकें लिखवाई गईं। इनमें एक प्रसिद्ध पर झूठे कलङ्क पुस्तक लॉर्ड डलहौज़ी के जीवन चरित्र के रचयिता आरनॉल्ड की लिखी हुई है। हमें इन रही पुस्तकों और उनके झूठे इलज़ामों पर बहस करने की आवश्यकता नहीं है। सर जॉन के के शब्दों में कम्पनी की यह एक प्रथा थी कि जिस देशी नरेश का राज छीना जाता था उसे जन सामान्य की दृष्टि में गिराने के लिए उसके चरित्र पर अनेक झूठे दोष लगाये जाते थे। किन्तु दुर्भाग्यवश आरनॉल्ड जैसों की पुस्तकों के आधार पर अनेक उपन्यास रचे गए। वाजिदअली शाह के कल्पित पाप इतिहास से इतिहास में नक़ल किए जाने लगे और आज तक वाजिदअली शाह के असंख्य देशनिवासी तक इनमें से अनेक गन्दे इलज़ामों को सच्चा मानते चले आ रहे हैं।

हमारा कदापि यह अभिप्राय नहीं है कि वाजिदअली शाह के

जीवन में अय्याशी लेशमात्र भी न थी, या यह कि उसका व्यक्तिगत चरित्र सर्वथा एक आदर्श चरित्र था। किन्तु वाजिदअली शाह का चरित्र हम उस भारतीय नरेश के साथ केवल न्याय और सत्य की दृष्टि से निम्न लिखित बातों का प्रतिपादन करते हैं—

एक यह कि वाजिदअली शाह का अय्याशी का ज़माना केवल उस समय प्रारम्भ हुआ, जिस समय अंगरेज़ गवर्नर जनरल और रेज़िडेण्ट के हस्तक्षेप द्वारा उसे अपनी फ़ौज को क़वायद कराने तक से रोका गया। उस ज़माने में भी वाजिदअली शाह की अय्याशी की निस्वत जितनी बातें कही जाती हैं, उनमें ६० फ़ीसदी कल्पित और मिथ्या हैं। और उनमें सत्य की मात्रा कदापि उससे अधिक नहीं है जितनी संसार के ६० फ़ीसदी नरेशों के जीवन में पाई जाती है और जितनी कलाइव, वारन हेस्टिंग्स जैसे अनेक गवर्नर जनरलों के जीवन में कहीं अधिक पतित और असभ्य रूप में पाई जाती थी। साथ ही इस अनुचित हस्तक्षेप से पहले वाजिदअली शाह का जीवन एक नरेश की हैसियत से असाधारण संयम का जीवन था।

दूसरी बात यह कि वाजिदअली शाह शुजाउद्दौला के बाद अवध का पहला नवाब था जिसने अपनी सल्तनत को अंगरेज़ों के प्रभाव से मुक्त करने का विचार किया, और यही उसकी आपत्तियों और उस पर भूटे कलङ्कों का कारण हुआ।

तीसरी बात यह कि सन् १८५७ के विप्लव ने, जिसका जिक्र
 अगले अध्याय में किया जायगा, पूरी तरह
 वाजिदअली शाह साबित कर दिया कि नवाब वाजिदअली शाह
 की सर्वप्रियता अपनी हिन्दू और मुसलमान प्रजा में सर्वप्रिय
 था, और कम्पनी का हस्तक्षेप अवध के अन्दर किसी भी अवध
 निवासी को रुचिकर न था ।

अवध के नवाबों के अधीन अधिकांश बड़े बड़े ज़मींदार और
 ताल्लुकेदार हिन्दू थे । कम्पनी की सत्ता जमते
 ताल्लुकेदारों के ही इनमें से अधिकांश की ज़मीनें छीनी जाने
 साथ जुल्म लगीं, उनके गाँव ज़ब्त किए जाने लगे, उनके
 किले गिराए जाने लगे । सर जॉन के लिखता है कि इन प्राचीन
 पैतृक ज़मींदारों के साथ 'घोर अन्याय' (a cruel wrong)
 किया गया । समस्त अवध के अन्दर वह ज़बरदस्ती और बरबादी
 शुरू हो गई जिसका परिणाम सन् १८५७ के भयङ्कर विप्लव में
 दिखाई दिया ।

अधिकांश अंगरेज़ इतिहास लेखकों ने अत्यन्त स्पष्ट और
 जोरदार शब्दों में अवध के नरेश और अवध की प्रजा के प्रति
 डलहौज़ी के इस अन्याय की घोरता को स्वीकार किया है ।

भारत की शेष समस्त छोटी बड़ी ज़मींदारियों के लिए लॉर्ड
 डलहौज़ी ने इनाम कमीशन नाम की एक जाँच
 इनाम कमीशन कमेटी कायम की । इस कमेटी ने समस्त भारत
 की लगभग ३५ हजार जागीरों और इनामों की जाँच की और दस

वर्ष के अन्दर उनमें से करीब २१ हजार को जूत करके कम्पनी के राज में मिला लिया ।

इसके २३ वर्ष बाद के दूसरे अफ़ग़ान युद्ध और ३० वर्ष बाद के तीसरे बरमा युद्ध से पहले और कोई नया इलाका ब्रिटिश भारतीय राज में नहीं मिलाया गया । वास्तव में लॉर्ड डलहौजी के अन्तिम दिनों में कम्पनी के राज की सीमाएँ उस हद को पहुँच गईं कि जहाँ से दूरदर्शी लोगों को निकटवर्ती महान आपत्ति की झलक दिखाई देने लगी और उस आपत्ति के आते ही भारत के अंगरेज़ शासकों की इस अपहरण नीति को एक गहरा धक्का लगा ।



चवालीसवाँ अध्याय

सन् १८५७ की क्रान्ति से पहले

मार्च सन् १८५६ में लॉर्ड डलहौजी की जगह लॉर्ड कैनिङ्ग ने
भारत की गवर्नर जनरली का पद ग्रहण किया।
लॉर्ड कैनिङ्ग लॉर्ड कैनिङ्ग के समय की सब से अधिक महत्त्व
की घटना सन् १८५७ की वह प्रसिद्ध क्रान्ति थी, जिसकी प्रचण्ड
ज्वाला में एक बार इस देश के अन्दर अंगरेजी राज और अंगरेजी
कौम का अस्तित्व तक भस्मीभूत होता हुआ मालूम होता था।

सन् ५७ का विद्रोह भारत में अंगरेजी राज के इतिहास की
सब से ज़बरदस्त और सबसे महत्त्वपूर्ण घटना
प्रासी का बदला थी। उस विद्रोह के कारणों को ठीक ठीक
समझने के लिए हमें उससे ठीक सौ वर्ष पूर्व के इतिहास पर एक

दृष्टि डालनी होगी। सन् १८५७ के विप्लव की नींव वास्तव में सन् १७५७ में प्लासी के मैदान में रखी गई थी। जो अनेक तरह की आवाज़ें सन् १८५७ के असंख्य संग्रामों में भारतीय सिपाहियों के मुख से निकलती हुई सुनाई देती थीं, उनमें एक आवाज़ यह भी थी—“आज हम प्लासी का बदला चुकाने वाले हैं!” मई और जून के महीनों में दिल्ली के हिन्दोस्तानी अखबारों में यह पेशीनगोई छपी थी कि ठीक प्लासी की शताब्दी के दिन अर्थात् २३ जून सन् १८५७ को भारत के अन्दर अंगरेज़ी राज का अन्त हो जायगा। इस पेशीनगोई का उत्तर से दक्खिन और पूर्व से पच्छिम तक समस्त भारत में पलान कर दिया गया, और इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि विप्लव में भाग लेने वाले भारतवासियों के दिलों पर इसका बहुत भारी प्रभाव पड़ा।

प्लासी के समय से ही अनेक भारतवासियों के दिलों में अंगरेज़ों और अंगरेज़ी राज के विरुद्ध क्रोध और असन्तोष प्लासी से वेलोर के ग़दर तक के भाव बढ़ते जा रहे थे। क्लाइव के समय से लेकर डलहौज़ी के समय तक जिस प्रकार कम्पनी के प्रतिनिधियों ने अपने गम्भीर वादों और दस्तखती सन्धि-पत्रों की खाक परवान कर भारत के अगणित राजकुलों को पददलित किया और उनकी रियासतों को एक एक कर अंगरेज़ी राज में शामिल किया, जिस प्रकार देश के प्राचीन उद्योग धन्धों को नष्ट कर लाखों भारतवासियों से उनकी जीविका छीनी, जिस प्रकार असहाय बेगमों और रानियों के महलों में घुस कर उन्हें

लूटा और उनका अपमान किया, जिस प्रकार ज़मींदारों की ज़मींदारियाँ ज़ब्त करके, असंख्य प्राचीन घरानों का खात्मा किया और गोरखपुर और बनारस के समान लाखों भारतीय किसानों को उनकी पैतृक ज़मीनों से बाहर निकाल कर गृहविहीन बना दिया, इस सबकी शोकास्पद कहानी पिछले अध्यायों में वर्णन की जा चुकी है। निस्सन्देह इन सब बातों के कारण भारतीय नरेशों और भारतीय प्रजा दोनों में अंगरेजों के विरुद्ध असन्तोष की आग भीतर ही भीतर सुलग रही थी। सन् १७८० के करीब पूना दरबार के प्रधान मन्त्री नाना फ़ड़नवीस और मैसूर राज के स्वामी हैदरअली का मिलकर, दिल्ली सम्राट और अन्य भारतीय नरेशों को अपनी ओर कर, अंगरेजों को भारत से निकालने का प्रयत्न करना इसी असन्तोषाग्नि का एक रूप और सन् १८५७ के विद्रोह का पेशखेमा था। सन् १८०६ का बेलोर का विद्रोह भी इसी अग्नि का एक छोटा सा स्वरूप था।

इसके बाद डलहौज़ी का समय आया। डलहौज़ी के समय में कम्पनी और इंगलिस्तान के नीतिज्ञों की साम्राज्य-राजघरानों के प्रति पिपासा हृद को पहुँच गई। डलहौज़ी ने डलहौज़ी का महाराजा रणजीतसिंह के साथ कम्पनी की बर्ताव सन्धियों को खाक में मिलाकर पञ्जाब पर हमला किया, लाहौर दरबार के अन्दर फूट डलवाई, दलीपसिंह और उसकी विधवा माता महारानी भिन्दाँ को पञ्जाब और भारत दोनों से देश निकाला दिया, और पञ्जाब के उर्वर प्रान्त को कम्पनी

के राज में शामिल कर लिया। डलहौजी ने निरपराध बरमा के साथ युद्ध छेड़ कर पगू के प्रान्त को बरमा राज से पृथक् कर लिया। भारतीय नरेशों में गोद लेने की प्राचीन प्रथा का तिरस्कार कर डलहौजी ने सतारा, भाँसी, नागपुर इत्यादि अनेक रियासतों का अन्त कर उन्हें अंगरेजी राज में शामिल कर लिया। नवाब के 'कुशासन' का बहाना लेकर उसने सन् १८५६ में अवध की ज़रखेज़ सल्तनत को कम्पनी के राज में मिला लिया, नवाब वाजिदअली शाह को कैद करके कलकत्ते भेज दिया और भारत के सैकड़ों पुराने ताल्लुकेदारों और ज़मींदारों की पैतृक जागीरें छीन कर उन्हें कङ्काल बना दिया।

यह सब व्यवहार तो भारतीय नरेशों और सरदारों के साथ हुआ। किन्तु साधारण प्रजा के साथ भी अंगरेजों का व्यवहार अनेक प्रकार से दिन प्रति दिन अधिकाधिक धृष्ट और असह्य होता जा रहा था। स्थान स्थान पर अंगरेज अफ़सर अपने सामने से घोड़े पर आने वाले हिन्दोस्तानियों को घोड़े से उतर कर चलने के लिए विवश करते थे। उनके धार्मिक और सामाजिक रिवाज की भी परवा न की जाती थी।

लॉर्ड डलहौजी के शुरू के दिनों में सहारनपुर में एक नया अंगरेजी अस्पताल बना, जिसमें हर मज़हब के पुरुष और स्त्री रोगियों को आने की आज्ञा दी गई। सहारनपुर के अंगरेज हाकिमों ने यह

साधारण प्रजा के
साथ अंगरेजों
का बर्ताव

सहारनपुर का
अंगरेजी अस्पताल

एलान प्रकाशित किया कि हर जात के रोगी, पुरुष और स्त्री, यहाँ तक कि परदानशील स्त्रियाँ भी इलाज के लिए इसी अस्पताल में आवें और कोई देशी हकीम या वैद्य न किसी रोगी को दवा दे और न किसी का इलाज करे।

इस एलान के प्रकाशित होते ही सहारनपुर की जनता में तहलका मच गया। लोगों के भाव यहाँ तक बिगड़े कि अफ़सरों को अपना एलान वापस ले लेना पड़ा।^१

इस तरह के अनुचित व्यवहार की और भी अनेक मिसालें दी जा सकती हैं।

अंगरेज़ों के
अनुचित व्यवहार
की कुछ मिसालें

फिर भी मोटे तौर पर सन् १८५७ की
क्रान्ति के पाँच मुख्य कारण कहे जा सकते हैं—

१—दिल्ली सम्राट के साथ अंगरेज़ों का
लगातार अनुचित व्यवहार।

२—अवध के नवाब और अवध की प्रजा के साथ अत्याचार।

३—डलहौज़ी की अपहरण नीति।

४—अन्तिम पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना साहब के साथ कम्पनी का अन्याय। और

५—भारतवासियों को ईसाई बनाने की आकांक्षा और भारतीय सना में ईसाई मत प्रचार।

इनमें से एक एक कारण को थोड़े विस्तार के साथ बयान करना आवश्यक है।

^१ *Narrative of the Indian Revolt*, p. 359.

सम्राट शाहआलम के समय तक, जो सन् १७५६ से १८०६ तक दिल्ली के तख्त पर रहा, भारत में रहने वाले दिल्ली सम्राट और अंगरेज़ समस्त अंगरेज़ अपने तई दिल्ली सम्राट की प्रजा कहा करते थे। सम्राट के फ़रमानों द्वारा ही अंगरेज़ कम्पनी को अपनी तिजारती कोठियाँ बनाने के लिये कलकत्ता, मद्रास, सूरत आदिक में जागीरें मिलीं। उन जागीरों के लिए अंगरेज़ दिल्ली दरबार को बराबर ख़िराज देते थे और गवर्नर जनरल से लेकर छोटे से छोटे तक जो अंगरेज़ सम्राट के दरबार में जाता था वह शेष दरबारियों के समान आदाब बजा लाता था, सम्राट को नज़र पेश करता था, और अपने स्थान पर अदब के साथ खड़ा रहता था। हर गवर्नर जनरल की मुहर में “दिल्ली के बादशाह का फ़िदवी ख़ास” (अर्थात् विशेष नौकर) ये शब्द खुदे रहते थे। शाहआलम ने सबसे पहले १७६५ में क़ाश्ग़ को बङ्गाल और बिहार की दीवानी के अधिकार प्रदान किए।

इसके बाद धीरे धीरे दिल्ली सम्राट के दरबार में साज़िशें और ख़ानेजङ्गियाँ बढ़ती गईं। दिल्ली सम्राट का बल घटता गया और अंगरेज़ कम्पनी का बल बढ़ता गया। माधोजी सींधिया ने दिल्ली पर चढ़ाई करके भारत सम्राट के बल को फिर से थोड़ा बहुत स्थापित किया और सम्राट, उसकी राजधानी और आस पास के इलाक़े की सैनिक रक्षा का भार अपने हाथों में लिया। सम्राट शाहआलम की लिखी हुई एक फ़ारसी कविता अभी तक

प्रचलित है, जिसमें उसने माधोजी सींधिया को अपना “फ़रज़न्द जिगरबन्दे मन” कहा है और उसकी दिल से तारीफ़ की है।* कम्पनी ने भारत में अपना राज जमाने के लिये मराठों की बढ़ती हुई सत्ता को कुचलना आवश्यक समझा। यह दूसरे मराठा युद्ध का समय था।

लेक का इकरारनामा

जनरल लेक ने कम्पनी की ओर से एक “इकरारनामा” लिखकर अपने दस्तख़तों से शाहआलम के सामने पेश किया, जिसमें कम्पनी ने शाहआलम से यह वादा किया कि हम समस्त देश पर आपका प्राचीन क्रियात्मक आधिपत्य फिर से कायम कर देंगे, इत्यादि। अभाग, निर्बल और अदूरदर्शी शाहआलम फिर अंगरेज़ों की चालों में आ गया। शाहआलम ही की मदद से अंगरेज़ों ने सन् १८०४ में मराठों को दिल्ली से निकाल दिया, अपने तई सम्राट की वफ़ादार और फ़रमाँबरदार प्रजा जाहिर किया, सम्राट के निजी खर्च के लिए १२ लाख रुपए सालाना का तुरन्त प्रबन्ध कर दिया और राजधानी की सैनिक रक्षा का भार अपने हाथों में ले लिया। उस समय तक भी अंगरेज़ दिल्ली सम्राट के देशव्यापी मान, मराठों और अफ़ग़ानों के बल और अपनी निर्बलता के कारण दिल्ली सम्राट और उसके ऊपरी मान को कायम रखना और अपने तई सम्राट की प्रजा जाहिर करना आवश्यक समझते थे।

❁ माधोजी सींधिया फ़रज़न्द जिगरबन्दे मन, हस्त मसरूफ़ तलाफ़ीफ़ सितमगारि-ए-मा।

भारत सम्राट और उसके हितचिन्तकों को सबसे पहला सन्देह
 अंगरेजों की नीयत के विषय में उस समय हुआ
 लॉर्ड वेल्सली की तजवीज़ जिस समय कि लॉर्ड वेल्सली ने यह तजवीज़
 की कि शाहआलम और उसके दरबार को दिल्ली
 के लाल क़िले से हटा कर मुझेर के क़िले में लाकर रक्खा जाय ।
 लिखा है कि बूढ़ा शाहआलम इस तजवीज़ को सुनते ही क्रोध से
 भर गया । लॉर्ड वेल्सली को अपनी तजवीज़ के वापस ले लेने में
 ही कुशल दिखाई दी । किन्तु अनेक दिल्ली निवासियों के चित्त
 उसी समय से अंगरेजों की ओर से सशङ्क हो गये । दिल्ली के अन्दर
 १८५७ के विद्रोह का एक प्रकार यही बीजारोपण था । इसके बाद
 ही सन् १८०६ में शाहआलम की मृत्यु हुई ।

शाहआलम के बाद अकबरशाह दिल्ली के तख्त पर बैठा ।
 इससे पहले सीटन दिल्ली में कम्पनी के रेज़ि-
 डेंट की हैसियत से रहा करता था । सीटन
 जब कभी दरबार में जाता था तो निम्न श्रेणी के
 एक भारतीय अमीर के समान सम्राट के सामने बाकायदा
 'तसलीम, कोरनिश और मुजरा' किया करता था और सम्राट-कुल
 के प्रत्येक बच्चे की ओर यथोचित मान दर्शाता था । किन्तु सीटन
 के बाद चार्ल्स मेटकॉफ़ रेज़िडेंट नियुक्त हुआ । मेटकॉफ़ ने तुरन्त
 अपने अंगरेज मालिकों की आज्ञा से सम्राट अकबरशाह की ओर
 अपना व्यवहार बदल दिया और अनेक ऐसी हरकतें करनी शुरू
 कर दीं जो सम्राट और उसके दरबार के लिए अपमानजनक थीं ।

सम्राट और उसके हितचिन्तकों के दिलों में अंगरेज़ों की ओर से घृणा बढ़ती चली गई। दिल्ली में अंगरेज़ों के विरुद्ध असन्तोष फैलने का यह दूसरा कारण हुआ।

सम्राट अकबरशाह ने अपने एक पुत्र मिरज़ा सलीम को, जिसे मिरज़ा जहाँगीर भी कहते थे, युवराज नियुक्त करना चाहा। कहा जाता है, मिरज़ा सलीम अंगरेज़ों से घृणा करता था। अंगरेज़ों ने किसी बहाने मिरज़ा सलीम को इलाहाबाद भेज कर वहाँ नज़रबन्द कर दिया। सम्राट-दरबार का बल अनेक आन्तरिक कारणों से पहले ही क्षीण हो रहा था। सम्राट ने इसके बाद अपने एक दूसरे बेटे मिरज़ा नीली को युवराज बनाने का प्रयत्न किया। अंगरेज़ों ने इसका भी विरोध किया। सन् १८३७ में सम्राट अकबरशाह की मृत्यु हुई और अन्त में सम्राट बहादुरशाह अपने पिता के सिंहासन पर बैठा।

जनरल लेक ने सम्राट शाहआलम को जो 'इक़रारनामा' लिख कर दिया था वह अभी तक पूरा न किया गया था। सम्राट अकबरशाह ने उस इक़रारनामे की शर्तों को पूरा कराना चाहा, किन्तु उसे भी सफलता न हो सकी। इस पर अकबरशाह ने राजा राम मोहन राय को अपना एलची नियुक्त करके इङ्गलिस्तान भेजा। वहाँ पर भी राजा राममोहन राय की किसी ने न सुनी और इङ्गलिस्तान के शासकों ने कम्पनी की मुहर लगे हुए 'इक़रारनामे' को क़दर रही काग़ज़ से अधिक न की। इस बात की ख़बर जब दिल्ली पहुँची तो वहाँ के

लोगों को अंगरेजों के रहते दिल्ली और दिल्ली के सम्राट-कुल के भविष्य के सम्बन्ध में तरह तरह की गहरी शङ्काएँ होने लगीं ।

सम्राट बहादुरशाह ने भी 'इकरारनामे' की एक शर्त के अनु-

सार अपने खर्च की रकम को बढ़वाना चाहा ।

सम्राट बहादुर-
शाह और अंगरेज

इस बीच दिल्ली और उसके पास के इलाके
के ऊपर कम्पनी का पञ्जा कसता जा रहा था,

और वह दिल्ली सम्राट, जो कुछ समय पहले समस्त भारत के खजानों का मालिक समझा जाता था, अब अपने सहस्रों कुटुम्बियों और आश्रितों सहित बड़ी आर्थिक कठिनाई के साथ दिल्ली के किले के अन्दर दिन बिता रहा था । सम्राट को उत्तर मिला कि यदि आप अपने और अपने वंशजों के समस्त रहे सहे अधिकार विधिवत् कम्पनी को सौंप दें तो खर्च की रकम बढ़ा दी जायगी । बहादुरशाह ने स्वीकार न किया । दिल्ली के अन्दर अंगरेजों के विरुद्ध असन्तोष के बढ़ने का यह तीसरा जबरदस्त कारण हुआ ।

प्रत्येक ईद को, नौरोज़ को और सम्राट की साल गिरह के दिन

सम्राट की नज़रें
बन्द

गवर्नर जनरल और कमाण्डर-इन-चीफ़ दोनों
सम्राट के दरबार में हाज़िर होकर या रेजिडेण्ट
द्वारा सम्राट के सामने नज़रें पेश किया करते थे ।

सन् १८३७ में बहादुरशाह के तख्त पर बैठने के समय भी ये नज़रें पेश की गई थीं । किन्तु इसके कुछ वर्ष बाद लॉर्ड एलेनब्रु ने गवर्नर जनरल बनते ही इन नज़रों का पेश किया जाना बन्द कर दिया । यह नज़र का बन्द किया जाना पूर्वोक्त असन्तोष का चौथा

कारण गिना जा सकता है। इसी तरह की और भी अनेक बातों में अंगरेज़ों ने पद पद पर दिल्ली सम्राट का अपमान करना शुरू कर दिया।

सन् १८३६ में सम्राट बहादुरशाह के पुत्र युवराज दाराबख्त की मृत्यु हुई। सम्राट उसके बाद बेगम जीनत महल के पुत्र शाहजादे जवाँबख्त को युवराज नियुक्त करना चाहता था। सन् ५७ में सांबित हो गया कि जीनतमहल की योग्यता और सङ्गठन शक्ति दोनों असाधारण थीं और जवाँबख्त एक होनहार और खुददार युवक था। अंगरेज़ जीनतमहल और उसके पुत्र दोनों के विरुद्ध थे। रेज़िडेण्ट और गवर्नर जनरल के उस समय के पत्रों से जाहिर है कि वह भविष्य के लिए हिन्दोस्तान के 'बादशाह' की उपाधि को हो तोड़ देने की चिन्ता में थे। गवर्नर जनरल ने गुप्त साजिश द्वारा बहादुरशाह के एक दूसरे पुत्र मिरज़ा फ़ख़रु से एक अहदनामा लिखवा लिया, जिसमें एक शर्त यह थी कि यदि मुझे युवराज बनवा दिया गया तो तख्त पर बैठते ही मैं, दिल्ली का लाल क़िला छोड़ कर, जहाँ अंगरेज़ कहेंगे वहाँ जाकर रहने लगूँगा। बहादुरशाह को जब इसका पता चला तो उसने एतराज किया। फिर भी कहा जाता है कि बहादुरशाह की इच्छा के विरुद्ध मिरज़ा फ़ख़रु ही के युवराज नियत होने का दिल्ली में पलान कर दिया। यह समय लॉर्ड डलहौज़ी का समय था। राजधानी के अन्दर अंगरेज़ों के विरुद्ध गहरे असन्तोष का यह पाँचवा कारण हुआ।

जवाँबख्त को
युवराज बनाने का
प्रश्न

सन् १८५४ में मिरज़ा फ़ख़र की भी मृत्यु हो गई। रेज़िडेण्ट टॉमस मेटकॉफ़ बहादुरशाह के दरबार में मिलने गया। बहादुरशाह के उस समय नौ बेटे थे, जिनमें सब से होनहार और होशियार मिरज़ा जवाँबरुत समझा जाता था। बहादुरशाह ने एक पत्र रेज़िडेण्ट को दिया जिसमें लिखा था कि जवाँबरुत को युवराज बनाया जाय। इस पत्र के साथ एक अलग पत्र था, जिस पर बाक़ी आठों शहजादों के दस्तख़त थे और यह लिखा था कि हम सब जवाँबरुत के युवराज बनाए जाने में खुश हैं और यही चाहते हैं।

इस पर अंगरेजों ने इन आठ शहजादों में से एक मिरज़ा कोयाश को फिर अपनी ओर फोड़ा। मिरज़ा कोयाश के ग़वर्नर जनरल के नाम एक गुप्त पत्र लिखाया गया। इस अवसर पर ग़वर्नर जनरल ने रेज़िडेण्ट को लिखा :—

“सम्राट के ऊपरी वैभव और ऐश्वर्य के अनेक भूषण उतर चुके हैं, जिससे उस वैभव की पहली सी चमक दमक नहीं रही, और सम्राट के वे अधिकार, जिन पर तैमूर के कुल वालों को घमण्ड था, एक दूसरे के बाद छिन चुके हैं, इसलिए बहादुरशाह के मरने के बाद क़लम के एक डोबे में ‘बादशाह’ की उपाधि का अन्त कर देना कुछ भी कठिन नहीं है। बादशाह की नज़र, जो ग़वर्नर जनरल और कमाण्डर-इन-चीफ़ देते थे, बन्द हुई। कम्पनी का सिक्का जो बादशाह के नाम से ढाला जाता था वह भी बन्द कर दिया गया। ग़वर्नर जनरल की मोहर में जो पहले “बादशाह का

फ़िदवी ख़ास” (बादशाह का विशेष नौकर) ये शब्द रहते थे वे निकाल दिए गए । और हिन्दोस्तानी रईसों को मनाही कर दी गई कि वे भी अपनी मोहरों में बादशाह के प्रति ऐसे शब्दों का उपयोग न करें । इन सब बातों के बाद अब गवरमेण्ट ने फ़ैसला कर लिया है कि दिखावे की अब कोई बात भी ऐसी बाज़ी न रखी जाय जिससे हमारी गवरमेण्ट बादशाह के अधीन मालूम हो । इस लिए दिल्ली के ‘बादशाह’ की उपाधि एक ऐसी उपाधि है जिसका रहने देना या न रहने देना गवरमेण्ट की इच्छा पर निर्भर है ।”*

गवरनर जनरल ने शहज़ादे जवाँबरुत के विरुद्ध मिरज़ा कोयाश को युवराज स्वीकार किया । सम्राट को इसकी सूचना दे दी गई, और मिरज़ा कोयाश से ये तीन शर्तें कर ली गई—(१) तुम्हें ‘बादशाह’ के स्थान पर केवल ‘शहज़ादा’ कहा जाया करेगा (२) तुम्हें दिल्ली का क़िला ख़ाली करना होगा और (३) एक लाख मासिक के स्थान पर तुम्हें १५ हजार रुपए मासिक खर्च के लिए मिला करेंगे ।

इस समाचार को पाते ही सम्राट बहादुरशाह और दिल्ली निवासियों के दिलों में क्रोध की आग भड़क उठी । यह छुठा और अन्तिम कारण था जिसने दिल्ली वालों को विद्रोह के लिए कटिबद्ध कर दिया, और वे जिस तरह हो, अंगरेजों के पंजे से देश को आज़ाद करने के उपाय सोचने लगे । यह घटना सन् १८५६ की थी । इसके अगले वर्ष हो भारत में इस ओर से उस ओर तक आग लगी हुई दिखाई दी ।

* ख़ाजा हसन निज़ामी कृत “देहली की जाँकनी”

विषय का दूसरा मुख्य कारण था अवध के नवाब और अवध की प्रजा के ऊपर कम्पनी के अत्याचार। विषय
 अवध के साथ
 अत्याचार
 से केवल एक वर्ष पहले बिना किसी बहाने के अवध की समस्त सल्तनत के अंगरेजी राज में मिला लिए जाने और नवाब वाजिदअली शाह के निर्वासित कर कलकत्ते भेजे जाने का जिक्र पिछले अध्याय में किया जा चुका है। लिखा जा चुका है कि किस प्रकार कम्पनी की सेना ने ज़बरदस्ती लखनऊ पर कब्ज़ा किया, महल को लूटा और बेगमों का अपमान किया। अवध के मुसलमान नवाब के अधीन अधिकांश बड़े बड़े ज़मींदार और ताल्लुकेदार हिन्दू थे। इन असंख्य ज़मींदारों और ताल्लुकेदारों की पैतृक ज़मींदारियाँ बिना किसी कारण छीन ली गईं और उनमें से अनेक को दरबदर घूमने पर विवश किया गया। इतिहास लेखक के लिखता है कि बहुत कम पुराने ज़मींदार या ताल्लुकेदार इस अन्याय से बच सके। इतिहास से पता चलता है कि अवध के सहस्रों ग्रामों के लाखों किसान नवाब वाजिदअली शाह और उसके कुटुम्बियों की इस विपत्ति का हाल सुन कर रो पड़ते थे और सहस्रों ग्राम निवासी अपने गृह विहीन ज़मींदारों और ताल्लुकेदारों से मिल कर उनके साथ सहानुभूति प्रकट करते थे। नवाब से लेकर छोटे से छोटे किसान तक सब कम्पनी की नई अमलदारी से दुखी थे। कम्पनी की फ़ौज के अधिकांश हिन्दोस्तानी सिपाही अवध ही से लिए जाते थे, इसलिए अवध निवासियों के साथ लॉर्ड डलहौजी के अत्याचारों ने समस्त

अवध और अंगरेजी फ़ौज दोनों के अन्दर गहरे असन्तोष के बीज बो दिए ।

तीसरा मुख्य कारण लॉर्ड डलहौजी की व्यापक अपहरण नीति थी । एक दूसरे के बाद सतारा, पञ्जाब, भाँसी, डलहौजी की अपहरण नीति नागपुर, पगू, सिक्किम, सम्बलपुर इत्यादि रियासतों के अपहरण का ज़िक्र पिछले अध्यायों में किया जा चुका है । इन भारतीय रियासतों को आम तौर पर जिस प्रकार कम्पनी के राज में मिलाया जाता था और उसका जो नतीजा होता था उसके विषय में मद्रास कौन्सिल का सदस्य जॉन सलीवन लिखता है—

“जब किसी देशी रियासत का अन्त किया जाता है, तो वहाँ के नरेश को हटा कर एक अंगरेज़ उसकी जगह नियुक्त कर दिया जाता है । उस अंगरेज़ को कमिश्नर कहा जाता है । तीन या चार दर्जन खानदानी देशी दरबारियों और मन्त्रियों के स्थान पर कमिश्नर के तीन वा चार सलाहकार नियुक्त हो जाते हैं । प्रत्येक देशी नरेश जिन सहस्रों सैनिकों का पालन करता है उनकी जगह हमारी सेना के चन्द सौ सिपाही नियुक्त कर दिए जाते हैं । वह पुराना छोटा सा दरबार लोप हो जाता है, वहाँ का व्यापार ढीला पड़ जाता है, राजधानी वीरान हो जाती है, लोग निर्धन हो जाते हैं, अंगरेज़ फलते फूलते हैं और स्पञ्ज की तरह गङ्गा के किनारे से धन खींच कर उसे टेम्स के किनारे जाकर निचोड़ देते हैं ।”*

* “Upon the extermination of a native state, an Englishman takes the place of the sovereign under the name of Commissioner; three or four of his associates displace as many dozen of the native official aristocracy, while

इन रियासतों के अपहरण का जिक्र करते हुए इतिहास लेखक लडलो लिखता है —

“निस्सन्देह यदि इस तरह के हालात में जिन नरेशों की रियासतें अंगरेज़ी राज में मिला ली गईं उनके पक्ष में अंगरेज़ों के विरुद्ध भारतवासियों के भाव न भड़क उठते तो भारतवासियों को मनुष्यत्व से गिरा हुआ कहा जाता। निस्सन्देह एक भी स्त्री ऐसी न होगी जिसे इन रियासतों के अपहरण ने हमारा शत्रु न बना दिया हो, एक भी बच्चा ऐसा न होगा जिसे हमारे इन कार्यों के कारण फ़िरङ्गी राज के विरुद्ध आरम्भ से घृणा की शिक्षा न दी जाती हो।”❧

निस्सन्देह सन् १८५७ तक भारतवासी ‘मनुष्यत्व से इतने गिरे हुए’ न थे।

लॉर्ड डलहौज़ी के उस ‘इनाम कमीशन’ का जिक्र भी पिछले अध्याय में किया जा चुका है कि जिसने १० वर्ष के अन्दर भारत की २१ हजार प्राचीन ज़मींदारियाँ ज़ब्त कर लीं और समस्त भारत के अन्दर सहस्रों पुराने घरानों को बरबाद कर दिया।

some hundreds of our troops take the place of the many thousands that every native chief supports. The little court disappears, trade languishes, the capital decays, the people are impoverished, the Englishman flourishes, and acts like a sponge, drawing up riches from the banks of the Ganges, and squeezing them down upon the banks of the Thames.”—*A plea for the Princes of India*, by John Sullivan, Member of the Madras Council, p. 67.

* “Surely, the natives of India must be less than men if their feelings could not be moved under such circumstances in favour of the victims of annexation, and against the annexer. Surely there was not a woman whom such annexations did not tend to make our enemy, not a child whom they did not tend to train up in hatred to the *Firangee* rule.”—Ludlow's *Thoughts on the Policy of the Crown*, pp. 35, 36.

निस्सन्देह इन काररवाइयों ने देश भर के अन्दर लाखों भारत-वासियों को अंगरेजों की ओर से दुखी और बेज़ार कर दिया था।

चौथा कारण पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र सुप्रसिद्ध नाना साहब के साथ कम्पनी का अन्याय था। सन् १८५१ में अन्तिम पेशवा बाजीराव की मृत्यु हुई। बाजीराव के राज के बदले में कम्पनी ने सन् १८१८ में उसे “उसके, उसके कुटुम्बियों और उसके आश्रितों के पोषण के लिए” आठ लाख रुपए सालाना देते रहने का वादा किया था। सन् १८२७ में बाजीराव ने नाना धुन्धपन्त को गोद लिया। नाना की आयु उस समय तीन वर्ष की थी। कानपुर के पास बिठूर में पेशवा के साथ उस समय लगभग आठ हजार पुरुष, स्त्री और बच्चे रहा करते थे। इन सबका पोषण इसी आठ लाख रुपए सालाना की पेनशन से होता था। बाजीराव के मरते ही गवरनर जनरल डलहौज़ी ने इस पेनशन को बन्द कर दिया। बाजीराव की मृत्यु के पहले की पेनशन के ६२ हजार रुपए कम्पनी की ओर बाकी थे। डलहौज़ी ने इसे भी देने से इनकार किया। नाना साहब को यह भी नोटिस दे दिया गया कि बिठूर की जागोर भी तुमसे जिस समय चाहें छीन ली जायगी।

समस्त अंगरेज़ इतिहास लेखक स्वीकार करते हैं कि इससे पूर्व युवक नाना साहब का व्यवहार अंगरेज़ों के प्रति बहुत ही अच्छा था। सर जॉन के लिखता है कि नाना—

“शान्त स्वभाव और आडम्बर रहित युवक था, उसमें कोई भी बुरी

आदत नहीं थी और वह अंगरेज़ कमिश्नर की सलाह मानने के लिए सदा तैयार रहता था।”*

कानपुर के समस्त अंगरेज़ और उनकी मेमें नाना साहब के महल में जाकर ठहरती रहती थीं। नाना उनकी नाना की खूब खातिर तवाज़ो करता था और चलते मेहमों नबाज़ी समय कीमती दुशाले और आभूषण उनकी भेंट करता रहता था। नाना के हाथी, घोड़े और गाड़ियाँ सदा अंगरेज़ों की सेवा के लिए खड़ी रहती थीं। फिर भी लॉर्ड डलहौज़ी ने बाजीराव के मरते ही नाना साहब की पेनशन को बन्द कर दिया। नाना ने अपने खर्च, कठिनाइयों और कम्पनी की सन्धियों को दर्शाते हुए डलहौज़ी के पास प्रार्थना पत्र भेजा कि पेनशन जारी रखी जाय। नाना ने इङ्गलिस्तान के शासकों से अपील की और अपना एक योग्य वकील अज़ीमुल्लाँ खाँ को इस कार्य के लिए विलायत भेजा। किन्तु वहाँ पर भी नाना के साथ किसी ने न्याय न किया। सर जॉन के, चार्ल्स बॉल, ट्रेवेलियन और मार्टिन चारों प्रसिद्ध अङ्गरेज़ इतिहास लेखक स्वीकार करते हैं कि न्याय नाना के पक्ष में था। परिणाम यह हुआ कि उसी समय से युवक नाना साहब के चित्त में अंगरेज़ों की ओर से घृणा उत्पन्न हो गई और वह अपने को और अपने देश को अंगरेज़ों के पंजे से छुड़ाने की तदबीरें सोचने लगा।

* “(Quiet, unostentatious young man, not at all addicted to any extravagant habits, and invariably showing a ready disposition to attend to the advice of the British Commissioner.”—*History of the Sepoy War* by Sir John Kaye, vol. i, p. 101.

विप्लव का पाँचवाँ कारण था भारतवासियों को ईसाई बनाने की आकांक्षा और विशेष कर हिन्दोस्तानी सेनाओं में अंगरेज़ अफ़सरों का ईसाई मत प्रचार। सन् ५७ के बहुत पहले से अनेक बड़े बड़े अंगरेज़ नीतिज्ञों को भारतवासियों के ईसाई हो जाने में ही अपने राज की स्थिरता दिखाई देती थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अध्यक्ष मिस्टर मैङ्गल्स ने सन् १८५७ में पार्लिमेण्ट के अन्दर कहा था :—

“परमात्मा ने हिन्दोस्तान का विशाल साम्राज्य इङ्गलिस्तान को सौंपा है, इसलिए ताकि हिन्दोस्तान के एक सिरे से दूसरे सिरे तक ईसा मसीह का विजयी झण्डा फहराने लगे। हममें से हर एक को अपनी पूरी शक्ति इस काम में लगा देनी चाहिए, ताकि समस्त भारत को ईसाई बनाने के महान कार्य में देश भर के अन्दर कहीं पर भी किसी कारण ज़रा भी ढील न होने पाए।”*

यह वाक्य ब्रिटिश भारतीय राजनीति की दृष्टि से उस समय के सब से अधिक ज़िम्मेदार अंगरेज़ नीतिज्ञ का है। उसी समय के निकट एक दूसरे विद्वान अंगरेज़ रेवरेण्ड कैनेडी ने लिखा :—

“हम पर कुछ भी आपत्तियाँ क्यों न आएँ जब तक भारत में हमारा

* “Providence has entrusted the extensive Empire of Hindustan to England in order that the banner of Christ should wave triumphant from one end of India to the other. Every one must exert all his strength that there may be no dilatoriness on any account in continuing in the country the grand work of making all India Christian.”—Mr. Mangles, Chairman of the Directors of the East India Company, in the House of Commons. 1857.

साम्राज्य कायम है तब तक हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारा मुख्य कार्य उस देश में ईसाई मत को फैलाना है। जब तक रास कुमारी से लेकर हिमालय तक सारा हिन्दोस्तान ईसा के मत को ग्रहण न कर ले और हिन्दू और मुसलमान धर्मों की निन्दा न करने लगे तब तक हमें लगातार प्रयत्न करते रहना चाहिए। इस कार्य के लिए हम जितने भी प्रयत्न कर सकें, हमें करने चाहिए और हमारे हाथों में जितने अधिकार और जितनी सत्ता है, उसका इसी के लिए उपयोग करना चाहिए।”*

इसी तरह के और भी वाक्य उस समय के अनेक अंगरेज़ नीतिज्ञों, शासकों और विद्वानों के उद्धृत किए जा सकते हैं। यही विचार लॉर्ड मैकाले के लेखों में पाया जाता है और यही एक दर्जे तक ब्रिटिश भारतीय शिक्षा प्रणाली की जड़ में मौजूद है।

कारण स्पष्ट है। अंगरेज़ नीतिज्ञ इस बात को समझते थे कि किसी जाति को देर तक पराधीन रखने के लिए धार्मिक भावों पर उसमें किसी प्रकार का राष्ट्रीय अभिमान या आघात अपनी श्रेष्ठता या अपने प्राचीनत्व की आन का विचार नहीं रहने देना चाहिए; और कम से कम उस समय भारतवासियों को सब से अधिक अभिमान अपने धर्म का था, धर्म ही

* “Whatever misfortunes come on us, as long as our Empire in India continues, so long let us not forget that our chief work is the propagation of Christianity in the land until Hindostan, from Cape Comorin to the Himalayas, embraces the religion of Christ and until it condemns the Hindoo and the Moslem religions, our efforts must continue persistently. For this work, we must make all the efforts we can and use all power and all the authority in our hands; . . .”—Rev. Kennedy, M. A.

उनकी मुख्य आन थी; इसलिए भारतवासियों को धर्मच्युत कर देना उनके राष्ट्रीय अभिमान और हौसलों को एक दीर्घ काल के लिए अन्त कर देना था। अनन्त काल तक उन्हें विदेशी राज के भक्त और उसकी विनीत प्रजा बनाए रखने का यही सब से अच्छा उपाय हो सकता था।

मद्रास के गवर्नर की हैसियत से लॉर्ड विलियम बेरिट्ज़ ने जिस प्रकार अपने प्रान्त और विशेष कर वहाँ की सेना के अन्दर ईसाई मत प्रचार को सहायता और उत्तेजना दी उसी का परिणाम सन् १८०६ की वेलोर के सिपाहियों की बगावत थी, जिसका जिक्र ऊपर एक अध्याय में किया जा चुका है। गवर्नर जनरल होने के बाद भी लॉर्ड बेरिट्ज़ की यह नीति इसी प्रकार जारी रही। सन् १८३२ में एक नया क़ानून पास किया गया जिसका मतलब यह था कि जो भारतवासी ईसाई हो जायँ, उनका अपनी पैतृक सम्पत्ति पर पूर्ववत् अधिकार बना रहे। अंगरेजी राज के स्थापन होने के साथ साथ असंख्य प्राचीन मन्दिरों और मस्जिदों की माफ़ी की जाग़ोरें छिन्न गईं। कैदियों के लिए जेल खाने में अपने धर्म का पालन कर सकना असम्भव कर दिया गया। लॉर्ड डलहौज़ी ने भारतवासियों की गोद लेने की प्राचीन धार्मिक प्रथा को नाजायज़ करार दिया, और भी अनेक इस तरह के कार्य किए गए जो भारतवासियों के धार्मिक नियमों और उनके धार्मिक रस्म रिवाज के स्पष्ट विरुद्ध थे। स्वयं लॉर्ड कैनिङ्ग ने

लाखों रुपए ईसाई मत प्रचारकों में वितरण किए । भारतीय खजाने से पादरी बिशपों और आर्क बिशपों को बड़ी बड़ी तनखाहें मिलने लगीं । दफ्तरों के अन्दर अनेक अंगरेज अफसर अपने भारतीय मातहतों पर ईसाई होने के लिए जोर देने लगे ।

अनेक अंगरेज ईसाई पादरी अपनी वक्तृताओं और पत्रिकाओं में हिन्दू और मुसलमान धर्मों की घोर निन्दा करने लगे और दोनों धर्मों के पूज्य पुरुषों के लिए अनुचित शब्दों का उपयोग करने लगे ।

२२ मार्च सन् १८३२ को पार्लिमेण्ट की सिलेक्ट कमेटी के सामने गवाही देते हुए कप्तान टो० मैकेन ने बयान किया—

“ X X X बहुत से योग्य भारतीय मुसलमानों ने मुझसे बयान किया है कि गवरमेण्ट ईसाई पादरियों के साथ बड़ी रिश्तायतें करती है और ये पादरी लोग उनके धार्मिक रिवाजों की गलतियों तक में निन्दा करने में हृद को पहुँच जाते हैं । इनमें से एक पादरी हिन्दू मुसलमान जनता को व्याख्यान देते हुए कह रहा था—‘तुम लोग मोहम्मद के ज़रिए अपने पापों की माफ़ी की आशा करते हो, किन्तु मोहम्मद इस समय दोज़ख में है और यदि तुम लोग मोहम्मद के उसूलों पर विश्वास करते रहोगे तो तुम सब भी दोज़ख जाओगे । ’”*

ईसाई पादरियों के विरुद्ध इस तरह की शिकायतें उन दिनों बहुत आम थीं ।

* Evidence by Captain T. Macan, before the Commons Committee, 22nd March, 1832.

सन् १८४६ में पञ्जाब पर कम्पनी का कब्ज़ा हुआ। उसके बाद पञ्जाब को एक आदर्श ईसाई प्रान्त बनाने के लिए विशेष कोशिशें की गईं। सर हेनरी लॉरेन्स, सर जॉन लॉरेन्स, सर रॉबर्ट मॉण्टगूमरी, डॉनेल्ड मेकलिश्रॉड, करनल एडवर्ड्स इत्यादि पञ्जाब के प्रसिद्ध अंगरेज़ शासक सब उसी राय के थे। इन में से अनेक की राय यह थी कि पञ्जाब में शिक्षा का सारा कार्य ईसाई पादरियों के हाथों में दे दिया जाय, सरकार की ओर से ईसाई, मदरसों को धन की पूरी सहायता दी जाय और अंगरेज़ सरकार अपने स्कूल बन्द कर दे। गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौज़ी और कम्पनी के डाइरेक्टर भी इन लोगों के साथ सहमत थे। इनमें से कुछ की राय यह भी थी कि सरकारी स्कूलों और कॉलेजों में इज़ील और ईसाई मत की शिक्षा दी जाया करे, अंगरेज़ सरकार हिन्दू धर्म और इस्लाम को किसी तरह की सहायता, उत्तेजना या स्वीकृति न दे, किसी सरकारी महकमें में किसी भी हिन्दू या मुसलमान त्योहार की छुट्टी न दी जाय, अपने न्यायालयों में अंगरेज़ सरकार हिन्दू या मुसलिम धर्मशास्त्रों और धार्मिक रिवाजों को कोई स्थान न दे, हिन्दुओं या मुसलमानों के धार्मिक कीर्तन बन्द कर दिए जायँ, इत्यादि।*

ज़ाहिर है कि भारत की विचित्र परिस्थिति में उस समय के

* *Memorandum on The Elimination of all Un-Christian Principles from the Government of British India*, by Sir Herbert Edwards.

शासकों की यह नीति इस खुले रूप में देर तक न चल सकी; किन्तु ईसाई धर्म प्रचार के पक्ष में प्रयत्न बराबर जारी रहे । धीरे धीरे इन धर्मोन्मत्त शासकों का ध्यान हिन्दोस्तानी सिपाहियों की ओर गया । इतिहास लेखक नॉलेन लिखता है कि अंगरेज़ सरकार सिपाहियों के धार्मिक भावों की अवहेलना करने लगी और बात बात में उनके धार्मिक नियमों आदिक का उल्लङ्घन किया जाने लगा । यहाँ तक कि कम्पनी की सेना के अनेक अंगरेज़ अफ़सर खुले तौर पर अपने सिपाहियों का धर्म परिवर्तन करने के कार्य में लग गए । बङ्गाल की पैदल सेना के एक अंगरेज़ कमाण्डर ने अपनी सरकारी रिपोर्ट में लिखा है कि “मैं लगातार २८ वर्ष से भारतीय सिपाहियों को ईसाई बनाने की नीति पर अमल करता रहा हूँ और ग़ैर ईसाइयों की आत्माओं को शैतान से बचाना मेरे फ़ौजी कर्तव्य का एक अङ्ग रहा है ।” “कॉजेज़ ऑफ़ दी इण्डियन रिवोल्ट” नामक पत्रिका का भारतीय रचयिता लिखता है—

“सन् १८५७ के शुरू में हिन्दोस्तानी सेना के बहुत से करनल सेना को ईसाई बनाने के अत्यन्त घोर तथा दुष्कर कार्य में लगे हुए पाए गए । उसके बाद यह पता चला कि इन जोशीले अफ़सरों में से अनेक x x x न रोज़ी के झयाल से फ़ौज में भरती हुए थे, न इसलिए भरती हुए थे कि फ़ौज का कार्य उनकी प्रकृति के अत्यन्त अनुकूल था, बल्कि उनका केवल मात्र और एक मात्र उद्देश्य यही था कि इस ज़रिये से लोगों को ईसाई बनाया जाय । फ़ौज को उन्होंने ख़ास तौर पर इसलिए चुना क्योंकि शान्ति के दिनों में

फ़ौज के अन्दर सिपाहियों और अफ़सरों दोनों का हृदय दरजे की फ़ुरसत रहती है, और वहाँ पर बिना खर्च, परिश्रम इत्यादि के या बिना गाँव गाँव भटकने के हर तरफ़ बहुत बड़ी संख्या में ग़ैर ईसाई मिल सकते हैं। X X X इन लोगों ने हिन्दू और मुसलमान अफ़सरों और सिपाहियों में प्रचार करना और उनमें ईसाई पुस्तकों के अनुवाद और पत्रिकाएँ बाँटना शुरू किया। शुरू में सिपाहियों ने कभी घृणा के साथ और कभी उदासीनता के साथ यह सब बरदाश्त कर लिया। किन्तु जब इन लोगों का कार्य बराबर जारी रहा, जब इनके ईसाई बनाने के प्रयत्न दिन प्रति दिन अधिकाधिक गहरे और क्लेशकर होते गए, तो दोनों धर्मों के सिपाही चौंक उठे। X X X इस अरसे में ये विचित्र अफ़सर जिन्हें 'मिशनरी करनल' और 'पादरी लेफ्टेनेण्ट' कहा जाने लगा था, चुप न बैठे। सिपाहियों की सहनशीलता से इनका साहस और बढ़ गया और वे पहले की अपेक्षा और अधिक जोश दिखलाने लगे। हिन्दू धर्म और इस्लाम की वह पहले से अधिक ज़ोरदार शब्दों में निन्दा करने लगे। पहले से अधिक जोश के साथ वे इन अविश्वासी लोगों पर ज़ोर देने लगे कि अपने तैंतीस करोड़ कुरूप देवी देवताओं को छोड़ कर उनकी जगह एक सच्चे परमात्मा की, उसके बेटे ईसा के रूप में पूजा करो। मोहम्मद और राम को अभी तक वे केवल ऐसे वैसे मनुष्य कहा करते थे, अब वे उन्हें बड़े दगाबाज़ और पक्के धूर्त बतलाने लगे। X X X धीरे धीरे इन धर्म प्रचारक करनलों ने सिपाहियों को रिशवतें दे देकर उन्हें ईसाई बनाना शुरू किया, और ईसाई बनने वालों को तरक्की तथा दूसरे इनामों का भी लालच दिया। इस नापाक काम में उन्होंने निर्लज्जता के साथ अपने अफ़सरी के प्रभाव का उपयोग किया। सिपाहियों ने एतराज़ किया, उनके

यूरोपियन अफसरों ने वादा किया कि हर सिपाही को, जो अपना धर्म छोड़ देगा हवलदार बना दिया जायगा, हर हवलदार को सूबेदार मेजर बना दिया जायगा, इत्यादि। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय सिपाहियों में बहुत बड़ा असन्तोष फैलने लगा।”❀

* “ At the beginning of the present year (1857) a great many colonels in the India army were detected in a task not less monstrous and arduous than that of Christianizing it. It has afterwards transpired that some of these earnest . . . worthies . . . entered the army ; not as a means of subsistence, not as the theatre of exertion most congenial to their temperament, but solely and wholly for the purpose of conversion. The army was specially selected, as in times of peace it affords the utmost leisure to both soldiers and commanders. And as there heathens may be found in great abundance on all sides, without the trouble and expense, and other et ceteras, or scampering from village to village. . . . they began preaching and distributing tracts and translations among the Hindoo and Mohammedan officers and soldiers. In the beginning they were tolerated, sometimes with disgust, and sometimes with indifference. When, however, the thing continued, when the evangelizing endeavours became more serious and troublesome day by day, the Sepoys of either persuasion felt alarmed . . . In the meantime, the ‘ Missionary Colonels,’ and ‘ Padre Lieutenants ’ as these curious Militaries were called, were not inactive. Emboldened by the toleration of the Sepoys, they grew more violent than ever. They were louder in their denunciations of Hinduism and Islam. They were warmer in their exhortations to the unbelievers, to substitute the worship of the one true God in his son Jesus, or the thirty three millions of their hideous deities, Mohammed and Rama, hitherto mere so-so beings, turned sublime imposters and unmitigated black-guards . . . By and by the proselytizing Colonels tempted the Sepoys to Christianity with bribes and offered promotions and other rewards to converts. They unblushingly used their influence as officers in this unholy affair. The Sepoys protested, and their European officers promised to make every Sepoy that forsook his religion a Havildar, every Havildar, a Subedar Major, and so on ! Great discontent was the consequence. ”—*Causes of the Indian Revolt*, by A Hindoo of Bengal, Dated

विप्लव के ठीक बाद पूर्वोक्त पत्रिका लन्दन से प्रकाशित हुई । इसके बाद इस भारतीय क्रान्ति और उसके कारणों के ऊपर असंख्य पुस्तकें, पत्रिकाएँ और लेख इङ्गलिस्तान और भारत में प्रकाशित हुए ; किन्तु किसी लेखक को भी पूर्वोक्त पत्रिका के गम्भीर इलज़ामों को असत्य कहने का साहस न हो सका ।

इसी पत्रिका का अंगरेज़ सम्पादक मैलकम लुइन, जो मद्रास सुप्रीम कोर्ट का जज और मद्रास कौन्सिल का सदस्य रह चुका था, अपने तजरुबे से भारत-वासियों के साथ उस समय के अंगरेज़ शासकों के सलूक को वर्णन करते हुए भूमिका में लिखता है—

“समाज के सदस्यों की हैसियत से हम दानों, अर्थात् अंगरेज़ और हिन्दोस्तानी एक दूसरे से अनभिज्ञ हैं, हमारा एक दूसरे से वही सम्बन्ध रहा है जों कि मालिकों और गुलामों में होता है । हमने हर एक ऐसी चीज़ पर अपना अधिकार जमा लिया है जिससे कि देशवासियों का जीवन सुखमय हो सकता था, प्रत्येक ऐसी वस्तु जो कि देशवासियों को समाज में उभार सकती थी या मनुष्य की हैसियत से उन्हें ऊँचा कर सकती थी, हमने उनसे छीन ली है । हमने उन्हें जाति भ्रष्ट कर दिया है । उनके उत्तराधिकार के नियमों को हमने रद्द कर दिया है, उनकी विवाह की संस्थाओं को हमने बदल दिया है । उनके धर्म के पवित्रतम रिवाजों को हमने अवहेलना की है । उनके मन्दिरों की जायदादें हमने ज़ब्त कर ली हैं । अपने सरकारी उल्लेखों

में हमने उन्हें काफ़िर (हीदन) कह कर कलङ्कित किया है । उनके देशी नरेशों के राज हमने छीन लिए हैं और उनके अमीरों और रईसों की जायदादें ज़ब्त कर ली हैं । अपनी लूट खसोट से हमने देश को बरबाद कर दिया है, और लोगों को सता सता कर उनसे मालगुजारी वसूल की है । हमने संसार के सबसे प्राचीन उच्च कुलों को निर्मूल कर देने और उन्हें गिरा कर पैरिया बना देने का प्रयत्न किया है ।”❀

इसके बाद भारतवासियों को ईसाई बनाने के प्रयत्न के
अनौचित्य और भारतीय धर्म और भारतीय
भारतीय धर्मों की सभ्यता की श्रेष्ठता को वर्णन करते हुए मैलकम
श्रेष्ठता
लुइन लिखता है :—

“ X X X नहीं, यदि वृक्ष की परख उसके फलों से की जाती है, यदि इङ्गलिस्तान और भारत के अलग अलग सदाचारों को वहाँ के धर्मों की कसौटी मान लिया जाय, तो भारत का सर मुक़ाबले में ऊँचा रहेगा ।”†

* “ We are ignorant of each other, as members of society ; the bond of union has been that of Spartan and Helot. Grasping everything that could render life desirable, we have denied to the people of the country all that could raise them in society, all that could elevate them as men ; we have insulted their caste ; we have abrogated their laws of inheritance, we have changed their marriage institutions, we have ignored the most sacred rites of their religion ; we have delivered up their pagoda-property to confiscation ; we have branded them in official records as ‘ heathens ’ ; we have seized the possessions of their native princes, and confiscated the estates of their nobles ; we have unsettled the country by our exactions, and collected the revenue by means of torture ; we have sought to uproot the most ancient aristocracy of the world, and to degrade it to the condition of pariahs.

† “ . . . Nay, if a tree be known by its fruits, if the moral of England

अपने भारतीय सिपाहियों के साथ कम्पनी और कम्पनी के
 सैनिकों के प्रति न था । सामान, वेतन, रहने के मकान इत्यादि
 सामान्य व्यवहार के विषय में सिपाहियों की ओर से अनेक
 शिकायतें बार बार की जा चुकी थीं, किन्तु उन पर यथोचित
 ध्यान कभी न दिया गया था । परिणाम यह हुआ कि हिन्दोस्तानी
 सिपाहियों के दिल अंगरेजों की ओर से भीतर ही भीतर असन्तोष
 और क्रोध से भर गए । सन् १८५७ की क्रान्ति का यह पाँचवाँ और
 एक तरह सबसे ज़बरदस्त कारण था ।

पूर्वोक्त पाँचों कारणों ने मिलकर समस्त भारत के अन्दर
 अंगरेजी राज के विरुद्ध हर श्रेणी के लोगों में
 चिनगारी की ज़बरदस्त स्फोटक सामग्री जमा कर रखी
 प्रतीक्षा थी । केवल किसी ऐसे योग्य नेता की आव-
 श्यकता थी जो इस सामग्री से लाभ उठा कर समस्त देश को
 स्वाधीनता के एक महान संग्राम के लिए तैयार कर सके और सौ
 वर्ष से जमे हुए विदेशी शासन को उखाड़ कर फेंक सके; या कोई
 अकस्मात् चिनगारी इस मामले पर पड़ कर देश में एक भयङ्कर
 आग लगा दे, परिणाम फिर चाहे कुछ भी क्यों न हो ।

सन् १८५७ की क्रान्ति वास्तव में भारत के हिन्दू और मुसलमान

and of India are to be held as the tests of their respective creeds, India would not loose by the comparison. "—Malcolm Lewin in the Preface to *Causes of Indian Revolt*.

नरेशों और भारतीय जनता की ओर से देश को विदेशियों की राजनैतिक अधीनता से मुक्त कराने का एक क्रान्ति का सच्चा रूप महान और व्यापक प्रयत्न था ।

लन्दन 'टाइम्स' का विशेष प्रतिनिधि सर विलियम हॉवर्ड रसल, जो सन् ५७ की क्रान्ति के समय भारत में मौजूद था, उस विप्लव के विषय में लिखता है—

“वह ऐसा युद्ध था जिसमें लोग अपने धर्म के नाम पर, अपनी क्रीम के नाम पर, बदला लेने के लिए और अपनी आशाओं को पूरा करने के लिए उठे थे । उस युद्ध में समस्त राष्ट्र ने अपने ऊपर से विदेशियों के जुए को फेंक कर उसकी जगह देशी नरेशों की पूर्ण सत्ता और देशी धर्मों का पूर्ण अधिकार फिर से कायम करने का सङ्कल्प कर लिया था ।”*

इस राष्ट्रीय प्रयत्न की तह में एक उतनी ही गहरी योजना और उतना ही व्यापक और गुप्त सङ्गठन भी था ।
क्रान्ति की योजना जहाँ तक मालूम हो सकता है, इस विशाल
का सूत्रपात योजना का सूत्रपात दोनों में से किसी एक
स्थान पर हुआ—कानपुर के निकट बिठूर में या इङ्गलिस्तान की राजधानी लन्दन में ।

अन्तिम पेशवा बाजीराव का दत्तक पुत्र नाना साहब धुन्धपन्त

* “ . . . we had a war of religion, a war of race, and a war of revenge, of hope, of national determination to shake off the yoke of a stranger and to reestablish the full power of native Chiefs and the full sway of native religions.”—*My Diary in India in the Year 1858-59*, by Sir William Howard Russell, p. 164.

क्रान्ति के मुख्यतम नेताओं में से था । ऊपर लिखा जा चुका है कि नाना साहब ने अपनी पेनशन के विषय में अपील करने के लिए अजीमुल्ला खाँ को इङ्गलिस्तान भेजा था । यह अजीमुल्ला नाना का विश्वस्त सलाहकार और क्रान्ति का दूसरा मुख्य नेता था । अजीमुल्ला अत्यन्त योग्य नीतिज्ञ था । अंगरेजी और फ़्रान्सीसी दोनों भाषाओं का वह पूर्ण परिङित था । विलायत में वह हिन्दोस्तानी वेश में ही रहता था । देखने में वह अत्यन्त सुन्दर था । लन्दन के उच्च समाज के लोगों में उसका आचार व्यवहार इतना आकर्षक रहा कि लिखा है कि उच्चतम श्रेणी के अंगरेजी समाज की अनेक स्त्रियाँ उस पर मुग्ध हो गईं । फिर भी अजीमुल्ला को अपने मुख्य उद्देश में सफलता प्राप्त न हो सकी । अर्थात् नाना की पेनशन के विषय में इङ्गलिस्तान के नीतिज्ञों या शासकों ने उसकी एक न सुनी ।

ठोक उन्हीं दिनों सतारा के पदच्युत राजा को ओर से अपील करने के लिए रङ्गो बापू जी नामक एक मराठा नीतिज्ञ भी इङ्गलिस्तान गया हुआ था । रङ्गो बापू जी को भी अपने कार्य में सफलता न हो सकी । लन्दन में अजीमुल्ला और रङ्गो बापू जी की भेंट हुई । सम्भव है कि सन् ५७ की क्रान्ति की योजना का सूत्रपात भारत से अजीमुल्ला के चलने से पहले बिठूर हो में हो चुका हो । किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि रङ्गो बापू जी और अजीमुल्ला खाँ

अजीमुल्ला और
रङ्गो बापू जी की
लन्दन में सलाहें

ने लन्दन के कमरों में बैठ कर बहुत दरजे तक इस राष्ट्रीय योजना को रङ्ग और रूप दिया। उसके बाद रङ्गो बापू जी दक्खिन के नरेशों को इस योजना के पक्ष में करने के उद्देश से सतारा वापस आया और चतुर अजीमुल्ला खाँ यूरोप के अन्दर अंगरेजों के बल और स्थिति को समझने के लिए और भारत के भावी स्वाधीनता संग्राम में अन्य राष्ट्रों की सहायता या सहानुभूति प्राप्त करने के लिए यूरोप के विविध देशों में भ्रमण करने लगा।

अन्य देशों में होते हुए अजीमुल्ला खाँ टर्की की राजधानी
 यूरोप के अन्य
 देशों में
 अजीमुल्ला खाँ
 कुस्तुनतुनिया पहुँचा। उन दिनों रूस और
 इङ्गलिस्तान के बीच युद्ध जारी था। अजीमुल्ला
 खाँ ने सुना कि हाल में सेबस्तेपोल की लड़ाई में
 रूस ने अंगरेजों को हरा दिया। अजीमुल्ला खाँ

रूस पहुँचा। कई अंगरेज इतिहास लेखकों ने यह शङ्का प्रकट की है कि अजीमुल्ला खाँ नाना साहब की ओर से अंगरेजों के विरुद्ध रूस के साथ सन्धि करने के लिए रूस गया था। रूस में प्रसिद्ध अंगरेज विद्वान रसल के साथ, जो लन्दन के अखबार 'टाइम्स' का सम्बाददाता था, अजीमुल्ला खाँ की मुलाकात हुई। एक दिन रसल के साथ बैठ कर अजीमुल्ला खाँ बड़े शौक के साथ दिन भर अंगरेजों और रूसियों की लड़ाई देखता रहा। रसल ने लिखा है कि रूसी तोप का एक गोला अजीमुल्ला के ठीक पैर के पास आकर फूटा, किन्तु अजीमुल्ला अपनी जगह से बाल भर भी न हिला। मालूम नहीं कि रूस के बाद अजीमुल्ला और कहाँ कहाँ गया।

किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अज़ीमुल्ला खाँ ने इतालिया, रूस, टर्की, मिश्र इत्यादि देशों की सहानुभूति अपने भावी स्वाधीनता युद्ध की ओर करने की कोशिश की। लॉर्ड रॉबर्ट्स ने अपनी पुस्तक “फ़ॉरटी इयर्स-इन-इण्डिया” में लिखा है कि उसने अज़ीमुल्ला के कई पत्र इस सम्बन्ध में टर्की के सुलतान और उमरपाशा के नाम देखे, जिनमें भारत के अन्दर अंगरेज़ों के अत्याचारों का वर्णन था।

यह मालूम नहीं कि अज़ीमुल्ला खाँ को अपने इन प्रयत्नों में कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई, किन्तु दो बातें गैरीबॉलडी और भारतीय क्रान्ति ध्यान में रखने योग्य हैं। एक यह कि क्रान्ति के दिनों में भारत के अन्दर यह एक आम अफ़वाह उड़ी हुई थी कि नाना साहब ने अंगरेज़ों के विरुद्ध रूस के ज़ार के साथ कुछ सन्धि कर ली है। दूसरी यह कि जिन दिनों भारत में विद्रोह जारी था उन दिनों इतालिया का प्रसिद्ध देशभक्त सेनापति गैरीबॉलडी भारतवासियों की सहायता के लिए अपने देश से सेना और सामान लाने की तैयारी कर रहा था। इतालिया की आन्तरिक कठिनाइयों और विद्रोहों के कारण गैरीबॉलडी को जल्दी वहाँ से चलने का अवकाश न मिल सका; और जिस समय गैरीबॉलडी अपने यहाँ के जहाज़ों में सेना और सामान भर कर भारतीय विद्रोहकारियों की सहायता के लिए अपने देश से चलने को तैयार हुआ, उसी समय उसे मालूम हुआ कि भारत का विद्रोह शान्त हो चुका। गैरीबॉलडी ने बड़े दुख के साथ अपनी सेना को जहाज़ों से उतार लिया।

यूरोप और एशिया के अन्य देशों में भ्रमण करने के बाद
 अजीमुल्ला खाँ भारत लौटा। अब एक ओर रङ्गो
 बिठूर में क्रान्ति
 की योजना
 बापू जी सतारा में बैठा हुआ दक्खिन के नरेशों
 और वहाँ के लोगों को तैयार कर रहा था और
 दूसरी ओर अजीमुल्ला खाँ और नाना साहब बिठूर में बैठे हुए
 आगामी क्रान्ति के नक्शे को पूरा कर रहे थे।

क्रान्ति की योजना करने वालों का मुख्य विचार यह था कि
 भारत के समस्त हिन्दू और मुसलमान बड़े सम्राट बहादुरशाह के
 झण्डे के नीचे मिल कर अंगरेजों को देश से बाहर निकाल दें और
 फिर सम्राट ही के झण्डे के नीचे अपने देश के सुशासन का नए
 सिरे से प्रबन्ध करें। इसके लिए एक विशाल और गुप्त सङ्गठन की
 आवश्यकता थी; और सङ्गठन के बाद इस बात की भी आवश्यकता
 थी कि समस्त भारत में एक साथ एक दिन अंगरेजों के विरुद्ध
 विद्रोह खड़ा कर दिया जाय।

इस विशाल गुप्त सङ्गठन की नींव मालूम होता है कि बिठूर
 ही में रखी गई। सङ्गठन इतना विशाल होते
 गुप्त संगठन और
 तैयारी
 हुए भी इतना सम्पूर्ण, सुन्दर और सुव्यवस्थित
 था और उसे अंगरेजों जैसी जागरूक कौम से
 बरसों इतनी अच्छी तरह गुप्त रक्खा गया कि इस विषय में अनेक
 अंगरेज इतिहास लेखकों तक ने विभव के प्रवर्तकों और सञ्चालकों
 का योग्यता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। अधिकतर अंगरेजों ही
 की पुस्तकों से हमें इस सङ्गठन के विषय में जो कुछ मालूम हो

सकता है, उससे पता चलता है कि सन् १८५६ से कुछ पहले नाना साहब ने बिठूर से बैठे हुए भारत भर में चारों ओर अपने गुप्त दूत और प्रचारक भेजने शुरू कर दिए। नाना के विशेष दूत दिल्ली से लेकर मैसूर तक समस्त भारतीय नरेशों के दरबारों में पहुँचे, और उसके गुप्त प्रचारक कम्पनी की समस्त देशी फौजों तथा जनता को अपनी ओर करने के लिए निकल पड़े। जो गुप्त पत्र नाना ने इस समय भारतीय नरेशों को लिखे उनमें उसने दिखलाया कि किस प्रकार अंगरेज एक एक देशी रियासत को हड़प कर समस्त भारत को पराधीन करने के प्रयत्नों में लगे हुए हैं। कुछ समय बाद अंगरेजों ने नाना के एक दूत को पकड़ा जो मैसूर दरबार के नाम नाना का पत्र लेकर गया था। इसी दूत से अंगरेजों को पता लगा कि इस प्रकार के कितने ही पत्र नाना अनेक नरेशों को भेज चुका था। इतिहास लेखक सर जॉन के लिखता है—

“महीनों से बल्कि वर्षों से ये लोग समस्त देश के ऊपर अपनी साजिशों का जाल फैला रहे थे। एक देशी दरबार से दूसरे दरबार तक, विशाल भारतीय महाद्वीप के एक सिरे से दूसरे सिरे तक, नाना साहब के दूत पत्र लेकर घूम चुके थे, इन पत्रों में होशियारी के साथ और शायद रहस्यपूर्ण शब्दों में भिन्न भिन्न जातियों और भिन्न भिन्न धर्मों के नरेशों और सरदारों को सलाह दी गई थी और उन्हें आमन्त्रित किया गया था कि आप लोग आगामी युद्ध में भाग लें।”*

* “For months, for years indeed, they had been spreading their network of intrigues all over the country. For one native court to another,

इस राष्ट्रीय योजना को फूलने फलने के लिए सबसे अच्छा स्थान दिल्ली के लाल किले में मिला, जिसके कारण ऊपर वर्णन किए जा चुके हैं। सम्राट बहादुरशाह, उसकी योग्य बेगम जीनत-महल और उनके सलाहकारों ने देश और नाना का पूरा साथ देने का निश्चय कर लिया। लिखा है कि इस विषय में दिल्ली के सम्राट और ईरान के शाह के बीच भी कुछ पत्र व्यवहार हुआ। दिल्ली के नगर में भी गुप्त सभाएँ होने लगीं और तदबीरें सोची जाने लगीं।

इसके बाद ही अवध के अंगरेजी राज में मिलाए जाने का समय आया। सर जॉन के लिखता है कि इस अवध और क्रान्ति एक घटना से नाना को बहुत बड़ी सहायता मिली। सर जॉन के शब्द हैं—

“अंगरेजों के इस अन्तिम राज-अपहरण का इतना प्रबल प्रभाव पड़ा कि लोग एक दूसरे से पूछने लगे कि अब कौन सुरक्षित रह सकता है ! यदि अंगरेज सरकार ने अवध के नवाब जैसे अपने वफ़ादार दोस्त और मददगार का राज छीन लिया जिसने कि आवश्यकता के समय अंगरेजों को मदद दी थी तो अंगरेजों के साथ वफ़ादारी करने से क्या लाभ ? कहा जाता है कि जो राजा और नवाब उस समय तक (विप्लव से) पीछे हट रहे थे वे अब आगे बढ़ने लगे और नाना साहब को अपने पत्रों का यथेच्छ उत्तर मिलने लगा।”

from one extremity to another of the great continent of India, the agents of the Nana Saheb had passed with overtures and invitations discreetly, perhaps mysteriously, worded to princes and chiefs of different races and religions.”

—Kaye's *Indian Mutiny*, vol. i, p. 24.

लखनऊ का निर्वासित नवाब वाजिदअली शाह, उसका होशियार वज़ीर अली नकी खाँ, अवध के समस्त ताल्लुकेदार, ज़मींदार और वहाँ की समस्त प्रजा अब इस राष्ट्रीय विद्रोह की सफलता पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देने के लिए तैयार होगई ।

वाजिदअली शाह की बेगम हज़रत महल और वज़ीर अली-नकी खाँ दोनों की गणना क्रान्ति के मुख्य प्रवर्तकों में की जाती है । वज़ीर अली नकी खाँ ने कलकत्ते से बैठ कर मुसलमान फ़कीरों और हिन्दू साधुओं के रूप में अपने गुप्त दूत उत्तरीय भारत की तमाम देशी फ़ौजों में भेजने शुरू किए और उन फ़ौजों के भारतीय अफ़सरों के साथ गुप्त पत्र व्यवहार प्रारम्भ किया । बेगम हज़रत महल ने अवध के तमाम रईसों और जनता को राष्ट्रीय विद्रोह के लिए तैयार करना शुरू किया । इतिहास लेखक के लिखता है कि अली नकी खाँ के निमन्त्रण पर हज़ारों हिन्दू सिपाहियों और उनके अफ़सरों ने गङ्गाजल लेकर और मुसलमानों ने कुरान हाथ में लेकर राष्ट्रीय संग्राम में भाग लेने और अंगरेज़ों को देश से बाहर निकालने की शपथ खाई ।

इस विशाल सङ्गठन के लिए धन की कमी न थी । सहस्रों रईसों और साहूकारों ने अपनी थैलियाँ राष्ट्रीय क्रान्ति में धन की सहायता नेताओं के कदमों पर रख दीं । बैरकपुर से पेशावर तक और लखनऊ से सतारा तक हज़ारों राष्ट्रीय फ़कीर और सन्यासी घूम घूम कर एक एक ग्राम और एक एक पलटन में स्वाधीनता के युद्ध का प्रचार करने लगे ।

सहस्रों मौलवी और सहस्रों परिणत विप्लव की सफलता के लिए जगह जगह ईश्वर से प्रार्थनाएँ करने लगे ।

विप्लव के इस समय पाँच मुख्य केन्द्र थे—दिल्ली, बिठूर, लखनऊ, कलकत्ता और सतारा । निस्सन्देह क्रान्ति के केन्द्र जिस शीघ्रता और वेग के साथ समस्त भारत और विशेषकर उत्तरीय भारत में विप्लव का प्रचार किया गया वह अत्यन्त आश्चर्यजनक था । तारीफ़ यह कि अंगरेजों को अन्त समय तक इस तैयारी का कुछ भी ज्ञान न हो सका ।

सन् १८५७ के इस गुप्त सङ्गठन के विषय में एक अंगरेज़ लेखक जैकब लिखता है—

आश्चर्यजनक
गुप्त संगठन

“जिस आश्चर्यजनक गुप्त ढंग से यह समस्त षड्यन्त्र चलाया गया, जितनी दूरदर्शिता के साथ योजनाएँ की गईं, जिस सावधानी के साथ इस संगठन के विविध समूह एक दूसरे के साथ काम करते थे, एक समूह का दूसरे समूह के साथ सम्बन्ध रखने वाले लोगों का किसी को पता न चलता था, और इन लोगों को केवल इतनी ही सूचना दी जाती थी जितनी उनके कार्य के लिए आवश्यक होती थी, इन सब बातों का बयान कर सकना कठिन है । और ये लोग एक दूसरे के साथ आश्चर्यजनक वफ़ादारी का व्यवहार करते थे ।”*

* “ But it is difficult to describe the wonderful secrecy with which the whole conspiracy was conducted and the forethought supplying the schemes, and the caution with which each group of conspirators worked apart, concealing the connecting links, and instructing them with just sufficient information for the purpose in view. And all this was equalled only by the

इसका एक कारण यह भी था कि अधिकांश अंगरेज़ी थानों में पुलिस, अनेक अन्य सरकारी मुलाज़िम और अंगरेज़ों के बावर्ची और भिश्ती तक इस राष्ट्रीय योजना में शामिल थे। कहीं कहीं अंगरेज़ों ने किसी प्रचारक को पकड़ भी लिया। एक अंगरेज़ इतिहास लेखक लिखता है कि एक बार मेरठ छावनी के निकट कोई फ़कीर ठहरा हुआ क्रान्ति का प्रचार कर रहा था। अंगरेज़ों ने उसे बाहर निकाल दिया। वह फ़कीर अपने हाथी पर बैठ कर पास के गाँव में चला गया और वहाँ से अपना काम करता रहा।* इन राजनैतिक फ़कीरों को प्रायः सवारी के लिए हाथी और रक्षा के लिए सशस्त्र सिपाही मिले हुए थे। यहाँ तक कि काशी, प्रयाग और हरिद्वार में अंगरेज़ी राज के नाश के लिए खुली प्रार्थनाएँ होने लगीं और शहस्रों यात्री भावी क्रान्ति में भाग लेने का सङ्कल्प उठाने लगे। तमाशों, पवाड़ों, लावनियों, कठपुतलियों, नाटकों आदिक से भी विप्लव के संचालकों ने पूरा लाभ उठाया।† इस प्रकार का व्यापक प्रचार कम या अधिक एक साल से ऊपर तक जारी रहा।

दिल्ली दरबार के राजकवि ने एक राष्ट्रीय गान तैयार किया जो देश भर में स्थान स्थान पर गाया जाने लगा।

fidelity with which they adhered to each other."—*Western India*, by Sir George Le Grand Jacob, K. C. S. I., C. B.

* *The Meerut Narrative*.

† *Trevelyan's Cawnpore*.

धीरे धीरे संगठन के केन्द्रों की संख्या बढ़ने लगी । इन केन्द्रों के बीच गुप्त पत्र व्यवहार जारी हो गया । जगह जगह क्रान्ति के एलान प्रकाशित होने लगे, जिनमें लोगों को देश और धर्म के नाम पर शहीद होने के लिए आमन्त्रित किया गया । इस प्रकार का एलान सन् १८५७ के प्रारम्भ में मद्रास में भी लगा हुआ पाया गया । जगह जगह गुप्त सभाएँ होने लगीं, जिनमें एक एक समय दस दस हजार आदमी भाग लेते थे । पत्र-व्यवहार के लिए गुप्त लिपियाँ तैयार हो गईं ।*

अन्त में इस गुप्त संगठन के अनेक केन्द्रों को एक सूत्र में बांधने और देश भर में क्रान्ति का दिन नियत करने के लिए मार्च सन् १८५७ के प्रारम्भ में नाना साहब और अज़ीमुल्ला खाँ तीर्थ यात्रा के बहाने बिठूर से निकले । नाना साहब का भाई बाला साहब भी उनके साथ था । सब से पहले ये लोग दिल्ली पहुँचे, ताल क़िले के दीवान खास में सम्राट बहादुरशाह, बेगम ज़ीनत महल और दिल्ली के मुख्य मुख्य नेताओं के साथ इन लोगों की गुप्त मन्त्रणायें हुईं । इसके बाद नाना अम्बाले गया । अन्य अनेक स्थानों में चक्कर लगाने के बाद १८ अप्रैल को नाना और उसके साथी लखनऊ पहुँचे । लखनऊ में नाना का बड़े समारोह के साथ जुलूस निकाला गया । नाना जहाँ जाता था वहाँ के अंगरेज़ अफ़सरों से मिल कर उन्हें तरह तरह के बहाने करके अपनी ओर से निःशङ्क कर देने के

* Innes' Sepoy Revolt, p. 55.

पूरे प्रयत्न करता रहता था। इसके बाद कालपी इत्यादि होते हुए नाना अप्रैल के अन्त में बिठूर वापस आ गया। रसल लिखता है कि अपनी इस यात्रा में नाना और अज़ीमुल्ला रास्ते की समस्त अंगरेज़ी छावनियों में होते जाते थे।

विप्लव के उन सहस्रों प्रचारकों में, जिन्होंने घूम घूम कर जन सामान्य के हृदयों को अपनी ओर किया, सबसे क्रांति का मुख्य प्रचारक अहमद-शाह मुख्य नाम फैजाबाद के एक ज़मींदार मौलवी अहमदशाह का है। लखनऊ और आगरे के शहरों में दस दस हजार आदमी मौलवी अहमदशाह का व्याख्यान सुनने के लिए जमा होते थे। हिन्दू और मुसलमान अपनी सौ वर्ष की पराधीनता की कहानी सुन कर मौलवी अहमदशाह के व्याख्यानों से यह शपथ खाकर उठते थे कि हम लोग आगामी स्वाधीनता के संग्राम में अपने प्राणों की बाज़ी लगा देंगे। मौलवी अहमदशाह का वृत्तान्त आगे चल कर दिया जायगा।

सन् ५७ के इस अद्भुत संगठन का वर्णन समाप्त करने से पहले दो और चीज़ों को बयान करना आवश्यक है। क्रांति के चिन्ह कमल और चपाती विप्लव के नेताओं ने अपने संगठन के दो मुख्य चिन्ह नियत किए—एक कमल का फूल और दूसरा चपाती। कमल का फूल उन समस्त पलटनों में, जो इस संगठन में शामिल थीं, घुमाया जाता था। किसी एक पलटन का सिपाही फूल लेकर दूसरी पलटन में जाता था। उस पलटन भर में हाथों हाथ वह फूल सब के हाथों से निकलता था। जिसके हाथ

में वह सब से श्रान्त में आता था उसका कर्त्तव्य होता था कि वह अपने पास की दूसरी पलटन तक उस फूल को पहुँचा दे। इसका गुप्त अर्थ यह लिया जाता था कि उस पलटन के सब सिपाही विद्रोह में भाग लेने के लिए तैयार हैं। इस प्रकार के सहस्रों कमल पेशावर से बैरकपुर तक विविध पलटनों के अन्दर घुमाए गए।

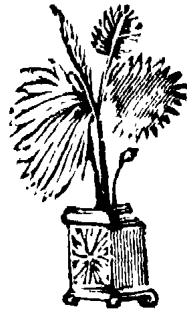
चपाती (रोटी) एक गाँव का चौकीदार दूसरे गाँव के चौकीदार के पास ले जाता था। उस चौकीदार का कर्त्तव्य होता था कि वह उस चपाती में से थोड़ी सी स्वयं खाकर शेष गाँव के दूसरे लोगों को लिखा दे और फिर गोहूँ या दूसरे आटे की उसी तरह की चपातियाँ बनवा कर वह अपने पास के गाँव तक पहुँचा दे। इसका अर्थ यह होता था कि उस गाँव की जनता राष्ट्रीय विद्रोह में भाग लेने के लिए तैयार है। चमत्कार सा मालूम होता है कि चन्द महोने के अन्दर ये अलौकिक चपातियाँ भारत जैसे विशाल देश में इस सिरे से उस सिरे तक लाखों ग्रामों के अन्दर पहुँच गईं। निस्सन्देह सिपाहियों के लिए रक्तवर्ण कमल और जनता के लिए रोटी, दोनों चिन्ह गम्भीर और अर्थसूचक थे।

नाना की इस यात्रा में ही रविवार ३१ मई सन् १८५७ का दिन रविवार ३१ मई, समस्त भारत में एक साथ विद्रोह करने के लिए सन् १८५७ नियत कर दिया गया।* किन्तु इस तिथि की

* "From the available evidence I am quite convinced that the 31st of May 1857, had been decided on as the date for simultaneous rising."—J. C. Wilson's *Official Narrative*, and White's *Complete History of the Great Sepoy War*, p. 17.

सूचना प्रत्येक केन्द्र के केवल मुख्य मुख्य नेताओं को और प्रत्येक पलटन के तीन तीन अफसरों को दी गई। शेष का कर्तव्य केवल अपने नेताओं की आज्ञा पर कार्य करना था।

विविध देशी पलटनों के बीच भी इस समय खूब पत्र व्यवहार हो रहा था। इस प्रकार के एक पत्र में, जो पलटनों के बीच में पत्र व्यवहार अंगरेजों के हाथों में पड़ा, लिखा था—“भाइयो, हम स्वयं विदेशियों की तलवार अपने शरीर के अन्दर घोप रहे हैं। यदि हम खड़े हो जायँ तो सफलता निश्चित है। कलकत्ते से पेशावर तक सारा मैदान हमारा होगा।” इतिहास लेखक के लिखता है कि सिपाही लोग रात को अपनी गुप्त सभाएँ किया करते थे जिनमें बोलने वालों के मुँह पर नकाब पड़ा होता था।



पैंतालीसवाँ अध्याय



चरबी के कारतूस और क्रान्ति का प्रारम्भ

किसी भी विप्लव या क्रान्ति के सफल होने के लिए एक आवश्यक शर्त यह है कि विप्लव सब स्थानों पर दमदम की घटना नियत समय पर और नियत ढङ्ग से हो। जनवरी सन् १८५७ में कलकत्ते के पास दमदम नामक ग्राम में अकस्मात् एक छोटी सी घटना हुई जिसने सन् ५७ की क्रान्ति के विषय में यह बात पूरी न होने दी।

सन् १८५३ में एक नई किस्म के कारतूस कम्पनी ने अपनी भारतीय सेना के लिए प्रचलित किए। भारत में कई जगह पर इन कारतूसों के बनने के लिए कारखाने खोले गए। इससे पहले के कारतूस सिपाहियों को हाथों से तोड़ने पड़ते थे, किन्तु नए कारतूस को दाँत से काटना पड़ता था। आरम्भ में केवल एक दो

पलटनों में उन्हें प्रचलित किया गया। भारतीय सिपाहियों ने अज्ञान के कारण कई जगह नए कारतूसों को दाँत से काटना स्वीकार कर लिया। धीरे धीरे नए कारतूसों का इस्तेमाल बढ़ाया गया।

बैरकपुर के पास इन कारतूसों के बनने के लिए एक कारखाना खोला गया। एक दिन दमदम का एक ब्राह्मण सिपाही पानी का लोटा हाथ में लिए बारग की ओर जा रहा था। अकस्मात् एक मेहतर ने आकर पानी पीने के लिए सिपाही से लोटा माँगा। सिपाही ने हिन्दू प्रथा के अनुसार लोटा देने से इनकार किया। इस पर मेहतर ने कहा—“तुम अब जात पाँत का घमण्ड न करो ! क्या तुम्हें मालूम नहीं कि शीघ्र ही तुम्हें अपने दाँतों से गाय का मांस और सुअर की चरबी काटनी पड़ेगी ? जो नए कारतूस बन रहे हैं उनमें जान बूझ कर ये दोनों चीज़ें लगाई जा रही हैं।” ब्राह्मण सिपाही इसे सुनते ही क्रोध से भर कर छावनी में गया। जब दूसरे सिपाहियों ने यह समाचार सुना तो वे भी क्रोध से लाल होगए। वे सोचने लगे कि अंगरेज़ सरकार इस प्रकार जान बूझ कर हमें धर्म भ्रष्ट करना चाहती है। उन्होंने अपने अंगरेज़ अफ़सरों से पूछा। अफ़सरों ने उन्हें स्पष्ट उत्तर दिया कि यह अफ़वाह बिल्कुल झूठी है और नए कारतूसों में इस तरह की कोई चीज़ नहीं है। सिपाहियों को विश्वास न हुआ, उन्होंने बैरकपुर के कारखाने में काम करने वाले छोटी जाति के हिन्दोस्तानी मज़दूरों से पता लगाया। उन्हें पता लगा कि वास्तव में नए कारतूसों के अन्दर दोनों चीज़ें, जो हिन्दू और मुसलमान धर्मों में निषिद्ध हैं, लगाई

जाती हैं। इस प्रकार अपनी तसल्ली करने के बाद बैरकपुर के सिपाहियों ने यह खबर सारे हिन्दोस्तान में फैला दी। लिखा है कि इसके दो महीने के अन्दर बैरकपुर से पेशावर और महाराष्ट्र तक हजारों पत्र इस विषय के भेजे गए और नए कारतूसों का समाचार बिजली के समान भारत के एक एक हिन्दोस्तानी सिपाही के कानों तक पहुँच गया। प्रत्येक हिन्दू और मुसलमान सिपाही अब अंगरेजों से इस अन्याय का बदला लेने के लिए बेचैन होगया, किन्तु सिपाहियों के नेताओं ने उन्हें ३१ मई तक रोके रखने का हर तरह प्रयत्न किया।

अब हमें यह देखना होगा कि नए कारतूसों में गाय और सुअर की चरबी का उपयोग किया जाना कहाँ तक सच था। आज कल प्रायः समस्त अंगरेज इतिहास लेखक और विशेष कर वे अंगरेज और हिन्दोस्तानी लेखक, जो सरकारी स्कूलों के लिए पाठ्य पुस्तकें लिखते हैं, इस अफवाह को भूठा बताते हैं और उस पर विश्वास करने वाले सिपाहियों का पागल कहते हैं। सन् १८५७ में गवर्नर जनरल लॉर्ड कैनिङ्ग से लेकर छोटे से छोटे अंगरेज अफसर तक सबने गम्भीरता के साथ यह प्लान किया और सिपाहियों को विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया कि कारतूसों में चरबी का किस्सा बिल्कुल भूठा है और बदमाश लोगों ने फौज को बरबाद करने के लिए फैलाया है। किन्तु सर जॉन के जो सन् ५७ की क्रान्ति का सबसे अधिक प्रामाणिक इतिहास लेखक माना जाता है, लिखता है:—

“इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस चिकने मसाले के बनाने में गाय की चरबी का उपयोग किया गया था।”^७

सर जॉन के यह भी लिखता है कि दिसम्बर सन् १८५३ में करनल टकर ने बहुत साफ़ शब्दों में इस बात को लिखा था कि नए कारतूसों में गाय और सुअर दोनों की चरबी लगाई जाती थी। दमदम के कारखाने में जिस ठेकेदार को कारतूसों के लिए चरबी का ठेका दिया गया था उससे ठेके के कागज़ में यह साफ़ शब्दों में लिखा लिया गया था कि “मैं गाय की चरबी लाकर दूँगा” और चरबी का भाव चार आने से रक्खा गया था। लॉर्ड रॉबर्ट्स ने, जो इस क्रान्ति के समय भारत में मौजूद था, लिखा है—

“मिस्टर फ़ॉरेस्ट ने भारत सरकार के कागज़ों की हाल में जाँच की है, उस जाँच से साबित है कि कारतूसों के तैयार करने में जिस चिकने मसाले का उपयोग किया जाता था वह मसाला वास्तव में दोनों निषिद्ध पदार्थों अर्थात् गाय की चरबी और सुअर की चरबी को मिला कर बनाया जाता था, और इन कारतूसों के बनाने में सिपाहियों के धार्मिक भावों की ओर इतनी बेपरवाही दिखाई जाती थी कि जिसका विश्वास नहीं होता।”^८

* “There is no question that beef fat was used in the composition of this tallow.”—Kaye's *Indian Mutiny*, vol. i, p. 381.

† “The recent researches of Mr. Forrest in the records of the Government of India prove that the lubricating mixture used in preparing the cartridges was actually composed of the objectionable ingredients, cows' fat and lard and that incredible disregard of the soldier's religious prejudices was displayed in the manufacture of these cartridges.”—*Forty Years in India* by Lord Roberts, p. 431.

इस पर प्रसिद्ध इतिहास लेखक विलियम लैकी लिखता है :—

“यह एक लज्जाजनक और भयङ्कर सच्चाई है कि जिस बात का सिपाहियों को विश्वास था, वह बिलकुल सच थी।”*

और आगे चल कर लैकी लिखता है :—

“इस घटना पर फिर से दृष्टि डालते हुए अंगरेज़ लेखकों को लज्जा के साथ स्वीकार करना चाहिए कि भारतीय सिपाहियों ने जिन बातों के कारण बगावत की उनसे ज़्यादा ज़बरदस्त बातें कभी किसी बगावत को जायज़ करार देने के लिए और हो ही नहीं सकतीं।”

सिपाहियों में इस असन्तोष के फैलने के थोड़े ही दिनों बाद कम्पनी सरकार की ओर से एक एलान प्रकाशित हुआ कि एक भी इस तरह का कारतूस फौज में नहीं भेजा गया। किन्तु हाल ही में साढ़े बाईस हजार कारतूस अम्बाला डीपो से और चौदह हजार कारतूस सियालकोट डीपो से अर्थात् केवल दो डीपो से साढ़े छत्तीस हजार कारतूस भारतीय फौज में भेजे जा चुके थे। कई पलटनों में अंगरेज़ अफ़सरों ने देशी सिपाहियों को धमकाना शुरू किया कि तुम्हें नए कारतूसों का उपयोग करना पड़ेगा। एक दो जगह सिपाहियों ने जिद्द की तो सारी रेजिमेण्ट को कड़ी सज़ा दी गई।

* “It is a shameful and terrible truth that as far as the fact was concerned, the Sepoys were perfectly right in their belief . . . but in looking back upon it, English writers must acknowledge with humiliation that, if mutiny is ever justifiable, no stronger justification could be given than that of the Sepoy troops.”— *The Map of Life*, by W. E. H. Lecky, pp. 103, 104.

इस प्रकार इन गाय और सुअर की चरबी से सने हुए कार-
तूसों ने उस समय की हिन्दोस्तानी फौज के
क्रान्ति की चिनगारी अन्दर स्फोटक मसाले के ऊपर चिनगारी का
का काम काम किया ।

कोई कोई अंगरेज इतिहास लेखक कारतूसों के मामले को ही
क्रान्ति का एक मात्र या मुख्य कारण बतलाते हैं । इन लोगों के
उत्तर में हम केवल दो तीन प्रामाणिक अंगरेज इतिहास लेखकों
की ही राय नीचे उद्धृत करते हैं । जस्टिन मैकार्थी लिखता है :—

“सच यह है कि हिन्दोस्तान के उत्तरीय और उत्तर पश्चिमी प्रान्तों के
अधिकांश भाग में देशी क्रौमें अंगरेजी सत्ता के विरुद्ध खड़ी हो गई X X X
चरबी की कारतूसों का झगड़ा केवल इस तरह की एक चिनगारी थी जो
अकस्मात् इस समस्त स्फोटक मसाले में आ पड़ी । X X X वह एक राष्ट्रीय
और धार्मिक युद्ध था !”*

एक दूसरा इतिहास लेखक मैडले लिखता है :—

“किन्तु वास्तव में ज़मीन के नीचे ही नीचे जो स्फोटक मसाला अनेक
कारणों से बहुत दिनों से तैयार हो रहा था, उस पर चरबी लगे हुए कारतूसों
ने केवल दियासलाई का काम किया ।”*

* “The fact was that throughout the greater part of the northern and north-western provinces of the Indian peninsula, there was a rebellion of the native races against the English power. . . . The quarrel about the greased cartridges was but the chance spark flung in among all the combustible material . . . a national and religious war !”—*History of Our own Times*, by Justin Mc Carthy, vol. iii.

* “But, in fact, the greased cartridge was merely the match that

चार्ल्स बॉल ने अपने विप्लव के इतिहास में लिखा है कि डिज-रेली, जो बाद में इंगलिस्तान का प्रधान मन्त्री हुआ, कहा करता था कि कोई भी मनुष्य कारतूसों को विप्लव का वास्तविक कारण नहीं मानता ।

एक इतिहास लेखक लिखता है कि जिन कारतूसों पर भारतीय सिपाही एतराज करते थे, उन्हीं को उनमें से अनेक ने बेखटके क्रान्ति के दिनों में अंगरेजों के विरुद्ध इस्तेमाल किया ।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि इन नए कारतूसों के कारण क्रान्ति नियत समय से पहले प्रारम्भ हो गई । सन् ५७ बैरकपुर से क्रान्ति की क्रान्ति का श्रीगणेश एक प्रकार बैरकपुर से का श्रीगणेश हुआ । फरवरी सन् ५७ में बैरकपुर की १६ नम्बर पलटन को नए कारतूस उपयोग करने के लिए दिए गए । सिपाहियों ने उन कारतूसों का उपयोग करने से साफ़ इनकार कर दिया । बङ्गाल भर में उस समय कोई गोरी पलटन न थी । इसलिए अंगरेज अफसरों ने फ़ौरन् बरमा से एक गोरी पलटन मँगवा कर १६ नम्बर पलटन से हथियार रखा लेने और सिपाहियों को बरखास्त कर देने का इरादा कर लिया । सिपाहियों को जब इस बात का पता चला तो उनमें से कुछ ने चुपचाप हथियार रख देने के बजाय तुरन्त क्रान्ति प्रारम्भ कर देने का विचार किया । उनके हिन्दोस्तानी अफसरों ने उन्हें ३१ मई तक रुके रहने की सलाह

exploded the mine which had, owing to a variety of causes, been for a long time preparing."—Medley's *A Year's Campaigning in India from March, 1857 to March, 1858*.

दी। किन्तु १६ नम्बर पलटन का एक नौजवान सिपाही मङ्गल पाँडे अपने आपको न रोक सका।

२६ मार्च १८५७ को पलटन परेड के मैदान में बुलाई गई।

जिस समय पलटन आकर खड़ी हुई मङ्गल पाँडे
मंगल पाँडे तुरन्त अपनी भरी हुई बन्दूक लेकर सामने कूद पड़ा और चिल्ला कर शेष सिपाहियों को अंगरेजों के विरुद्ध धर्म युद्ध प्रारम्भ करने के लिए आमन्त्रित करने लगा। एक अंगरेज अफसर सारजेण्ट मेजर ह्यूसन ने जब यह देखा तो उसने सिपाहियों को आज्ञा दी कि मङ्गल पाँडे को गिरफ्तार कर लो, किन्तु कोई सिपाही आज्ञा पालन के लिए आगे न बढ़ा। इतने में मङ्गल पाँडे ने अपनी बन्दूक की एक गोली से तुरन्त सारजेण्ट मेजर ह्यूसन को वहीं पर ढेर कर दिया। इस पर एक दूसरा अफसर लेफ्टिनेण्ट वाघ अपने घोड़े पर आगे लपका। उसका घोड़ा अभी कुछ दूर ही था कि पाँडे ने एक दूसरी गोली से घोड़े और सवार दोनों को ज़मीन पर गिरा दिया। मङ्गल पाँडे ने तीसरी बार अपनी बन्दूक भरने का इरादा किया। लेफ्टिनेण्ट वाघ ने उठ कर और आगे बढ़ कर पाँडे पर अपनी पिस्तौल चलाई पर पाँडे बच गया। पाँडे ने अब फौरन अपनी तलवार निकाल कर इस दूसरे अंगरेज अफसर को भी वहीं पर समाप्त कर दिया। थोड़ी देर बाद करनल व्हीलर ने आकर सिपाहियों को हुकुम दिया कि मङ्गल पाँडे को गिरफ्तार कर लो, सिपाहियों ने इनकार कर दिया। करनल धवरा कर जनरल के बँगले पर गया। जनरल हीयरसे समाचार

पाकर कुछ गोरे सिपाहियों सहित पाँडे की ओर बढ़ा। मङ्गल पाँडे ने यह देखकर स्वयं अपनी छाती पर गोली चलाई। वह ज़ख्मी होकर गिर पड़ा और गिरफ्तार कर लिया गया।

मङ्गल पाँडे का कोर्ट मार्शल हुआ, उसे फाँसी की सज़ा दी गई। ८ अप्रैल का दिन फाँसी के लिये नियत किया गया। किन्तु बैरकपुर भर में कोई मेहतर तक मङ्गल पाँडे को फाँसी देने के लिए राजी न हुआ। अन्त में कलकत्ते से चार आदमी इस काम के लिए बुलाए गए और ८ तारीख के सबेरे मङ्गल पाँडे को फाँसी दे दी गई।

चार्ल्स बॉल और लॉर्ड रॉबर्ट्स दोनों लिखते हैं कि उसी दिन से सन् १८५७-५८ के समस्त क्रान्तिकारी सिपाहियों को 'पाँडे' के नाम से पुकारा जाने लगा।*

मङ्गल पाँडे की फाँसी के बाद अंगरेजों को पता चला कि १६ नम्बर और ३४ नम्बर की देशी पलटने विप्लव के लिए गुप्त मन्त्रणाएँ कर रही हैं। तुरन्त इन दोनों पलटनों से हथियार रखा कर सिपाहियों को बरखास्त कर दिया गया। ३४ नम्बर के सूबेदार को इस अपराध में कि उसके यहाँ गुप्त सभाएँ हुआ करती थीं, फाँसी दे दी गई। फिर भी इन दोनों पलटनों के नेताओं ने

* "The name has become a recognized distinction for the rebellious Sepoys throughout India."—Charles Ball. "This name was the origin of the Sepoys generally being called 'Pandaye.'"—*Forty-one Years in India*, by Lord Roberts.

क्रान्ति के सञ्चालकों की आज्ञा का ध्यान रखते हुए ३१ मई से पहले विद्रोह की कोई कार्रवाई नहीं की। शीघ्र यह समाचार भी समस्त उत्तरीय भारत में फैल गया। यह बात तय हो चुकी थी कि क्रान्ति प्रारम्भ करने से पहले हर जगह अंगरेजों के बंगलों और बारगों में आग लगा दी जाय। अप्रैल के महीने में लखनऊ, मेरठ और अम्बाले में अनेक अंगरेजों के मकान जला दिए गए। अफसरों ने इन आकस्मिक घटनाओं के अपराधियों का पता लगाने का भरसक प्रयत्न किया। किन्तु पुलिस भी क्रान्तिकारियों के साथ मिली हुई थी, इसलिए कुछ पता न चल सका।

इसके बाद मई का महीना आया। ६ मई सन् १८५७ को मेरठ में परीक्षा के तौर पर ६० हिन्दोस्तानी सवारों की एक कम्पनी को नए चरबी लगे कारतूस दिए गए। सवारों से उन्हें दाँत से काटने के लिए कहा गया। ६० में से ८५ सवारों ने साफ़ इनकार कर दिया। इन सिपाहियों का कोर्ट मार्शल हुआ। आज्ञा न मानने के अपराध में उन सबको आठ आठ और दस दस साल की सख्त कैद की सज़ा दी गई। ६ मई को सबेरे इन ८५ सिपाहियों को परेड पर लाकर खड़ा किया गया। उनके सामने गोरी फ़ौज और तोपखाना था। छावनी के शेष समस्त हिन्दोस्तानी सिपाहियों को भी यह दृश्य दिखाने के लिए परेड पर बुला लिया गया। ८५ अपराधियों से उनकी वर्दियाँ उतरवा ली गईं, और वहीं परेड पर खड़े खड़े उनके हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ डाल दी गईं। उनसे कहा

गया कि तुम्हें दस दस साल की सज़ा दी गई है। इसके बाद बेड़ियाँ पड़े हुए उन्हें जेलखाने की ओर भेजा गया। उनके साथ के सहस्रों हिन्दोस्तानी सिपाही, जो उन्हें बिलकुल निर्दोष मानते थे, भीतर ही भीतर दुख और क्रोध से बेताब होगए, किन्तु उन्हें अभी तीन सप्ताह और शान्त रहने की आज्ञा थी। वे अपने क्रोध को पोकर बारगों की ओर वापस आगए।*

यह घटना सुबह की थी। शाम को मेरठ के ये हिन्दोस्तानी सिपाही शहर में घूमने के लिए गए। लिखा है कि शहर की स्त्रियों ने स्थान स्थान पर उन्हें यह कह कर लाच्छुना दी—“छिः ! तुम्हारे भाई जेलखाने में हैं और तुम यहाँ बाज़ार में मक्खियाँ मार रहे हो ! तुम्हारे जीने पर धिक्कार है।”†

सिपाहियों ने अभी तक काफी धैर्य से काम लिया था। अब मेरठ की स्त्रियों के शब्द उनके दिलों में चुभ गए। रात को बारगों में गुप्त सभाएँ हुईं। निश्चय हुआ कि ३१ मई तक चुप बैठना असम्भव है।

६ मई की ही रात को सिपाहियों ने दिल्ली के नेताओं को खबर भेज दी कि हम कल या परसों तक दिल्ली पहुँच जायँगे। आप लोग तैयार रहें।*

अगले दिन १० मई को इतवार था। मेरठ शहर के अन्दर

* Kaye's *History of the Sepoy War*, book iv, chap. ii.

† J. C. Wilson's *Official Narrative*.

* *The Red Pamphlet*, by G. B. Mallison.

नगर निवासी तथा शहस्रों सशस्त्र ग्राम निवासी बाहर से आ आकर एकत्रित हो रहे थे। उधर छावनी में ज़ोरों की मेरठ में क्रान्ति का तैयारी जारी थी। सबसे पहले कुछ सवार पहला दिन जेलखाने की ओर गए। जेलर भी क्रान्तिकारियों के साथ मिले हुए थे। जेलखाने की दीवारें गिरा दी गईं। समस्त कैदियों की बेड़ियाँ काट दी गईं। हिन्दू और मुसलमान, पैदल, सवार और तोपखाने के सिपाही इधर उधर मेरठ के तमाम अंगरेज़ों का खात्मा करने के लिए दौड़ पड़े। अनेक अंगरेज़ मारे गए। बँगलों, दफ्तरों और होटलों को आग लगा दी गई। 'दीन ! दीन !' 'हर हर महादेव !' और 'मारो फिरङ्गी को !' की आवाज़ें चारों ओर शहर और छावनी में गूँजने लगीं। नियत योजना के अनुसार तार काट दिए गए और रेलवे लाइन पर क्रान्तिकारियों का पहरा होगया। जो अंगरेज़ बचे उनमें से कुछ अस्तबलों और नालियों में छिप गए और शेष ने अपने हिन्दोस्तानी नौकरों के घरों में पनाह ली। चूँकि शहर और छावनी दोनों में बगावत की आग लगी हुई थी, इसलिए जो थोड़ी सी अंगरेज़ी सेना मेरठ में मौजूद थी वह भी कर्त्तव्य-विमूढ़ होगई। अनेक अंगरेज़, स्त्रियाँ और बच्चे बँगलों के अन्दर जल कर ख़त्म होगए।

१० तारीख़ ही की रात को मेरठ के सैनिक दिल्ली की ओर रवाना होगए।

मालसेन, व्हाइट और विलसन ये तीनों इतिहास लेखक स्वीकार करते हैं कि मेरठ में क्रान्ति का समय से पहले प्रारम्भ हो जाना

अंगरेजों के लिए बरकत और भारतीय क्रान्तिकारियों के लिए
 हानिकर साबित हुआ। मालेसन स्पष्ट लिखता
 क्रान्तिकारियों का है कि यदि पूर्व निश्चय के अनुसार एक साथ
 दिल्ली में प्रवेश एक तारीख को ही समस्त भारत में स्वाधीनता
 का संग्राम का युद्ध होता, तो भारत में एक भी अंगरेज ज़िन्दा न
 बचता और भारत में अंगरेजी राज का उसी समय अन्त होगया
 होता।*

जे० सी० विलसन लिखता है कि वास्तव में मेरठ शहर की
 स्त्रियों ने वहाँ के सिपाहियों को समय से पहले भड़का कर अंगरेजी
 राज को गारत होने से बचा लिया।† फिर भी मेरठ में बगावत
 शुरू होते ही भारत में इस सिरे से उस सिरे तक एक प्रचण्ड
 आग भड़क उठी। दो हजार सशस्त्र हिन्दोस्तानी सवार मेरठ से
 चल कर ११ मई को आठ बजे सबेरे दिल्ली पहुँच गए। दिल्ली के
 नेताओं को उनके आने का पहले से पता था; किन्तु अंगरेजों को
 इसका गुमान तक न था। दिल्ली में कम्पनी की फौज का अंगरेज
 अफसर करनल रिपले समाचार पाते ही ५४ नम्बर की देशी पलटन
 को जमा करके मेरठ के विद्रोहियों का मुकाबला करने के लिए
 बढ़ा। आमना सामना होते ही जिस समय मेरठ के सवारों ने
 'अंगरेजी राज की जय!' और 'सम्राट बहादुरशाह की जय!'
 बोली, दिल्ली के सिपाही तुरन्त बजाय हमला करने के, आगे बढ़

* Malleson, vol. v.

† J. C. Wilson's *Official Narrative*.

कर अपने मेरठ के भाइयों के साथ गले मिलने लगे। करनल रिपले घबरा गया और तुरन्त वहीं पर मार डाला गया। दिल्ली की सेना के सब अंगरेज़ अफ़सर मार डाले गए। संयुक्त सेना ने काशमीरी दरवाज़े से दिल्ली में प्रवेश किया। दरियागञ्ज के तमाम अंगरेज़ी बँगले जला दिए गए। दिल्ली के क़िले पर तुरन्त क्रान्तिकारियों का कब्ज़ा हो गया। सम्राट बहादुरशाह और बेगम जीनतमहल ने सोचा कि अब ३१ मई तक ठहरे रहना मूर्खता होगी।

इतने में मेरठ की पैदल सेना और तोपखाना भी दिल्ली पहुँच गया। मेरठ के तोपखाने ने लाल क़िले में घुसते ही सम्राट बहादुर शाह के नाम पर २१ तोपों की सलामी दी। चार्ल्स बॉल लिखता है कि सेना के भारतीय अफ़सरों ने सम्राट बहादुरशाह को जाकर सलाम किया और मेरठ का सब हाल कह सुनाया। इन अफ़सरों में हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल थे। मेटकॉफ़ लिखता है कि सम्राट ने उनसे कहा कि—“मेरे पास कोई खज़ाना नहीं है, मैं आप लोगों को तनखाहें कहाँ से दूँगा।” सिपाहियों ने उत्तर दिया—“हम लोग हिन्दोस्तान भर के अंगरेज़ी खज़ाने ला लाकर आपके क़दमों पर डाल देंगे।” बूढ़े सम्राट ने स्वाधीनता संग्राम का नेतृत्व स्वोकार कर लिया और समस्त क़िला सम्राट की जयध्वनि से गूँज उठा !

दिल्ली के सहस्रां नगरनिवासी क्रान्तिकारियों के साथ मिल गए। जो अंगरेज़ जहाँ मिला उस वहाँ समाप्त कर दिया गया। लिखा है कि जिस समय मेरठ की फ़ौज दिल्ली पहुँची तो दिल्ली के



दिल्ली का अन्तिम सम्राट बहादुर शाह और बेगम ज़ीनत महल
दिल्ली के शाही चित्रकार के बनाए हुए हाथी-दंत के ऊपर दो चित्र—उस समय की भारतीय चित्रकला
के दो सुन्दर नमूने । मॉडर्न रिव्यू, दिसम्बर १९११ से]

सहस्रों मुसलमान उनके चारों तरफ जमा हो गए और दिल्ली के हिन्दू बाशिन्दे स्थान स्थान पर अपनी लुटियों में मेरठ से आए हुए सिपाहियों को ओलों और बत्ताशों का शरबत पिलाने लगे। दिल्ली के अंगरेज़ी बैङ्क पर कब्ज़ा कर लिया गया और अन्य अंगरेज़ी इमारतों को मिसमार कर दिया गया।

“दिल्ली के अन्दर उस समय कोई गोरी पलटन न थी। क़िले के पास अंगरेज़ों का एक बहुत बड़ा मैगज़ीन दिल्ली का मैगज़ीन था, जिसमें करीब नौ लाख कारतूस, दस हजार बन्दूक और बहुत सा गोला बारूद था। क्रान्तिकारी सेना मैगज़ीन की ओर बढ़ी। उन्होंने दिल्ली सम्राट के नाम पर मैगज़ीन के अंगरेज़ अफ़सर लैफ़्टिनेण्ट विलोबी को सन्देश भेजा कि मैगज़ीन हमारे हवाले कर दो। विलोबी ने इनकार किया। मैगज़ीन के भीतर नौ अंगरेज़ और कुछ हिन्दोस्तानी थे। हिन्दोस्तानियों ने जब लाल क़िले के ऊपर सम्राट बहादुरशाह का हरा और सुनहरा झण्डा फहराते हुए देखा, वे अपने भाइयों से आ मिले। यह हरा झण्डा ही सन् १८५७-५८ की क्रान्ति में समस्त भारत के अन्दर क्रान्तिकारियों का युद्ध का झण्डा था। नौ अंगरेज़ों ने कुछ देर वीरता के साथ शत्रु का मुक़ाबला किया। अन्त में मैगज़ीन को बचा सकना असम्भव देख उन्होंने उसमें आग लगा दी। लिखा है कि मैगज़ीन के उड़ने पर एक हजार तोपों के साथ छूटने का सा शब्द हुआ, जिससे सारी दिल्ली के मकान हिल गए। नौ अंगरेज़ वीर उसी आग के अन्दर समाप्त होगए, और उसी के साथ २५

हिन्दोस्तानी सिपाही और आस पास की गलियों में करीब ३०० और नगर निवासी टुकड़े टुकड़े होकर उड़ गए। बन्दूकें सब क्रान्तिकारियों के हाथ आईं और प्रत्येक सिपाही को चार चार बन्दूकें मिल गईं। छावनो के अन्दर सब अंगरेज अफसर मार डाले गए। शहर के अन्दर अंगरेजों का कत्ले आम ११ मई से १६ मई तक जारी रहा। इस बीच सैकड़ों अंगरेज जान बचा कर दिल्ली से भाग निकले। अनेक ने अपने मुँह काले कर लिए और हिन्दोस्तानी फकीरों के से कपड़े पहन लिए। अनेक गरमी से और मार्ग की कठिनाई से मर गए और अनेक को आस पास के गाँव वालों ने खत्म कर दिया। कुछ को रहमदिल ग्राम वालों ने आश्रय दिया और अपने यहाँ छिपा लिया।

१६ मई सन् १८५७ को भारत की प्राचीन राजधानी दिल्ली पूरी तरह कम्पनी के हाथों से आज़ाद हो गई दिल्ली की स्वाधीनता और सम्राट बहादुरशाह फिर से दिल्ली का क्रियात्मक सम्राट गिना जाने लगा। निस्सन्देह शेष भारत पर इसका बहुत ज़बरदस्त प्रभाव पड़ा। नाना साहब और क्रान्ति के अन्य नेताओं ने बहादुरशाह ही के नाम पर समस्त भारत के नरेशों, सैनिकों और प्रजा को अंगरेजों के विरुद्ध युद्ध के लिए आह्वान किया था। बहादुरशाह का झण्डा ही उस समय भारत भर के क्रान्तिकारियों का झण्डा था।

यह एक बात ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि मेरठ, दिल्ली और उसके आस पास के ग्रामों में उन दिनों एक एक अंगरेज को चुन

चुन कर मारा गया फिर भी एक भी अंगरेज़ स्त्री का अपमान, क्रान्तिकारियों की ओर से नहीं किया गया। इसके प्रमाण में हम केवल कम्पनी की खुफिया पुलिस के प्रधान अफसर आनरेबुल सर विलियम स्योर के० सी० एस० आई० का बयान नीचे देते हैं। वह लिखता है कि—

“चाहे और कितना भी अत्याचार और रक्तपात क्यों न हुआ हो, जो किस्से अंगरेज़ स्त्रियों की बेइज़्जती के फैल गए थे वे सब, जहाँ तक मैंने देखा और जाँच की, बिल्कुल निराधार थे।”

अलीगढ़ की स्वाधीनता

दिल्ली की स्वाधीनता की खबर बिजली की तरह सारे देश में फैल गई। अनेक स्थानों के नेता यह निश्चय न कर पाए कि हमें अपने यहाँ तुरन्त क्रान्ति शुरू कर देना चाहिए या नियत तिथि का इन्तज़ार करना चाहिए; फिर भी ११ मई से लेकर ३१ मई तक समस्त उत्तरी भारत में जगह जगह क्रान्ति की ज्वाला भड़क उठी। कम्पनी की ६ नम्बर पैदल पलटन अलीगढ़, मैनपुरी, इटावा और बुलन्दशहर में बँटी हुई थी। मई के शुरू में एक ब्राह्मण प्रचारक बुलन्दशहर की छावनी में सिपाहियों को क्रान्ति का उपदेश देने के लिए पहुँचा। पलटन के तीन सिपाहियों ने मुखबिरी करके उस ब्राह्मण को पकड़वा दिया। पलटन का मुख्य स्थान अलीगढ़ था;

* “However much of cruelty and bloodshed there was, the tales which gained currency of dishonour to ladies were, so far as my observation and enquiries went, devoid of any satisfactory proof”—Hon Sir Wm. Muir. K. C. S. I.; Head of the Intelligence Dept.

उस ब्राह्मण को फाँसी के लिए अलीगढ़ लाया गया। २० मई की शाम को समस्त देशी सिपाहियों के सामने उस फाँसी पर लटका दिया गया। ब्राह्मण को फाँसी पर लटका हुआ देख कर सिपाहियों का खून खौलने लगा। लिखा है कि तुरन्त एक सिपाही कतार से निकल कर अपनी तलवार से उसके शरीर की ओर इशारा करके चिल्लाने लगा—“भाइयो ! यह शहीद हमारे लिए रक्त का स्नान कर रहा है !” सिपाहियों के लिए अब ३१ तारीख का इन्तज़ार कर सकना असम्भव था। तुरन्त समस्त ६ नम्बर पलटन बिगड़ खड़ी हुई, किन्तु इस पलटन के सिपाहियों ने शान्ति के साथ अपने अंगरेज़ अफ़सरों से कहा कि यदि आप लोग अपनी जान बचाना चाहते हैं तो तुरन्त अलीगढ़ छोड़ दीजिए। उसी समय अलीगढ़ के समस्त अंगरेज़ अपनी स्त्रियों और बच्चों सहित अलीगढ़ से चल दिए और २० तारीख की आधी रात से पहले स्वाधीनता का हरा झण्डा अलीगढ़ के ऊपर फहराने लगा। सिपाही बहुत सा खज़ाना और अस्त्र शस्त्र लेकर दिल्ली की ओर रवाना होगए।

अलीगढ़ का यह समाचार २२ तारीख को मैनपुरी पहुँचा।

उसी दिन वहाँ के सिपाही भी बिगड़ खड़े हुए।

मैनपुरी की
स्वाधीनता

इन लोगों ने भी तमाम अंगरेज़ों की जान बख़्श दी और ठीक अलीगढ़ के सिपाहियों के समान

गोला बारूद और शस्त्र ऊँटों पर लाद कर २३ मई को राजधानी की ओर रवाना होगये। स्वाधीनता का झण्डा मैनपुरी के ऊपर भी फहराने लगा।

यही हालत इटावे की हुई। इटावे के कलेक्टर मि० ह्यूम ने
 पुलिस और जनता से मदद चाही। किन्तु इन
 इटावे की
 स्वाधीनता
 दोनों ने खुले क्रान्तिकारियों का साथ दिया।
 असिस्टेंट मैजिस्ट्रेट डेनियल लड़ाई में मारा

गया। २३ मई को हिन्दोस्तानी सिपाहियों ने खजाने पर कब्ज़ा
 कर लिया, जेलखाने को तोड़ दिया, अंगरेजों को अपने बच्चों और
 स्त्रियों समेत भाग जाने का मौका दिया। लिखा है कि ह्यूम साहब
 एक भारतीय स्त्री का रूप धारण करके इटावे से निकल भागे।*
 शहर में स्वाधीनता का ढिंढोरा पीट दिया गया। इस प्रकार ६
 नम्बर पलटन के समस्त सिपाही अलीगढ़, बुलन्दशहर, मैनपुरी,
 इटावा और आस पास के इलाके को स्वाधीन करके कम्पनी के
 खजाने पर कब्ज़ा करते हुए, अंगरेजों की जान बख़शते हुए, रसद
 और हथियार साथ लेकर दिल्ली की ओर चल दिए। इन नगरों
 के शासन का प्रबन्ध नगर निवासियों को सौंप दिया गया।

अजमेर के निकट नसीराबाद में कम्पनी की एक पलटन देशी
 पैदल की, एक कम्पनी गोरों की और कुछ
 नसीराबाद में
 क्रान्ति
 तोपखाना रहा करता था। मेरठ के सिपाही इस
 समय दूर दूर तक फैल गए थे जिनमें से कुछ
 नसीराबाद में भी पहुँचे। २८ मई को वहाँ की हिन्दोस्तानी सेना
 बिगड़ी। गोरों की कम्पनी से उनका संग्राम हुआ। कुछ अंगरेज
 मारे गए और शेष जान बचा कर भाग गये। देशी सिपाहियों के

* The Red Pamphlet, Part ii, p. 70.

नेता दिल्ली सम्राट के नाम पर नगर के शासन का प्रबन्ध करके, खज़ाना, हथियार और कई हज़ार सिपाहियों को साथ लेकर दिल्ली की ओर चल दिए।

रुहेलखण्ड का प्रान्त कुछ दिन पूर्व ही रुहेला पठानों के स्वाधीन शासन में रह चुका था। बरेली वहाँ की राजधानी थी। अन्तिम रुहेला नवाब का वंशज खानबहादुर खाँ इस समय कम्पनी के अधीन जज़ी के पद पर नियुक्त था। यह खानबहादुर खाँ ही रुहेलखण्ड में क्रान्ति का मुख्य नेता था।

बरेली में कम्पनी की ओर से ८ नम्बर देशी सवार, १८ और ६८ नम्बर पैदल पलटनें और कुछ तोपखाना रहता था। जनरल सिबल्ड वहाँ का सेनापति था। मेरठ की क्रान्ति की ख़बर १४ मई को बरेली पहुँची। मेरठ की क्रान्ति के बाद ही अंगरेज़ कमाण्डर-इन-चीफ़ ने हिन्दोस्तान भर की सेनाओं में इस बात का एलान करा दिया था कि नये कारतूस बन्द कर दिए गए और सब सिपाही पुराने कारतूसों का ही उपयोग करें, किन्तु क्रान्ति पर इसका अब कोई असर न हो सकता था। देहली से निम्न-लिखित पत्र रुहेलखण्ड की पलटनों के नाम पहुँचा—

“दिल्ली की सेना के सेनापति की ओर से बरेली और मुरादाबाद की पलटनों के सेनापतियों के नाम, हार्दिक आलिङ्गन ! भाइयो ! दिल्ली में अंगरेज़ों के साथ जङ्ग हो रही है। खुदा की दुआ से हमने अंगरेज़ों को ज़ा

पहली शिकस्त दी है उससे वे इतने घबरा गए हैं जितने किसी दूसरे मौके पर दस शिकस्तों से भी न घबराते। बेशुमार हिन्दोस्तानी बहादुर दिल्ली में आ आकर जमा हो रहे हैं। ऐसे मौके पर अगर आप वहाँ पर खाना खा रहे हैं तो हाथ यहाँ आकर धोइए। शाहों का बादशाह, जहाँपनाह, हमारा दिल्ली का शाहन्शाह आपका इस्तक्रबाल करेगा और आपकी खिदमत का सिला देगा। हमारे कान इस तरह से आपकी ओर लगे हुए हैं जिस तरह रोज़ेदारों के कान अज्ञान देने वाले की पुकार की ओर लगे रहते हैं। हम आपकी तोपों की आवाज़ सुनने के लिए बेचैन हैं। हमारी आँखें आपके दीदार की प्यासी उसी तरह सड़क पर जगी हुई हैं जिस तरह क्रासिद की आँखें लगी रहती हैं। आइए ! आपका फ़र्ज़ है कि फ़ौरन् आइए। हमारा घर आपका घर है ! भाइयो ! आइए, बिना आपकी आमद की बहार के गुलाब में फूल नहीं आ सकते ! बिना बारिश के कली नहीं खिल सकती ! बिना दूध के बच्चा नहीं जी सकता !”*

फिर भी बरेली के नेता ख़ानबहादुर ख़ाँ ने पूर्व योजना के अनुसार ३१ मई तक प्रतीक्षा करने का निश्चय किया। ख़ानबहादुर ख़ाँ और बरेली की समस्त देशी पलटनों का व्यवहार अंगरेज़ों के साथ इतना सुन्दर रहा कि अंगरेज़ों का अन्त समय तक उनकी वफ़ादारी में सन्देह न होने पाया।

ठीक ३१ मई को सबेरे सब से पहले कप्तान ब्राउनलो का बँगला

* *Narrative of the Indian Revolt*, p. 33.

जलाया गया । ठीक ग्यारह बजे दोपहर को अचानक एक तोप छुटी ।

बरेली में
स्वाधीनता का
झण्डा

यही क्रान्ति के शुरू होने का चिन्ह था । बरेली

का संगठन बड़ा अच्छा था । ६८ नम्बर पलटन

ने अंगरेज़ों के बँगलों में आग लगाना और अंग-

रेज़ों को मारना शुरू कर दिया । अंगरेज़ नैनीताल

की ओर भागने लगे । जनरल सिबल्ड और अनेक अन्य अफ़सर

मारे गए । केवल ३२ अंगरेज़ जान बचा कर नैनीताल पहुँचे । ६

घण्टे के अन्दर बरेली के ऊपर स्वाधीनता का हरा झण्डा फहराने

लगा । जिस समय अंगरेज़ी झण्डा उतार कर उसकी जगह हरा

झण्डा लगाया गया उसी समय तोपखाने के सूबेदार बख़्त खाँ ने

विप्लवकारी सेनाओं का प्रधान सेनापतित्व ग्रहण किया । इतिहास

लेखक चार्ल्स बॉल लिखता है कि बख़्त खाँ ने सिपाहियों को

उपदेश दिया कि स्वाधीनता प्राप्त करने के बाद तुम्हें शान्ति और

न्याय का व्यवहार करना चाहिए । समस्त प्रजा ने ख़ानबहादुर खाँ

को सम्राट की ओर से रुहेलखण्ड का सूबेदार स्वीकार किया ।

उसी दिन सूर्यास्त से पहले पहले ख़ानबहादुर खाँ की ओर से एक

दूत सम्राट को रुहेलखण्ड की स्वाधीनता की सूचना देने के लिए

दिल्ली की ओर रवाना हो गया ।

बरेली से ४७ मील दूर शाहजहाँपुर में २८ नम्बर पैदल पलटन

थी । ठीक बरेली ही के समान शाहजहाँपुर भी

शाहजहाँपुर की
स्वाधीनता

इस पलटन के प्रयत्नों द्वारा ३१ मई की शाम तक

स्वाधीन हो गया ।

बरेली के दूसरी ओर मुरादाबाद है। वहाँ पर २६ नम्बर देशी
 पलटन थी। १८ मई को अंगरेज़ अफ़सरों को
 मुरादाबाद की स्वाधीनता पता चला कि मेरठ के कुछ क्रान्तिकारी सिपाही
 मुरादाबाद के निकट आकर ठहरे हुए हैं।
 रात के समय २६ नम्बर के सिपाहियों को मेरठ के सिपाहियों
 पर हमला करने का हुकुम मिला। सिपाहियों ने उन पर हमला
 किया। लड़ाई के बाद इन सिपाहियों ने अपने अफ़सरों को
 इत्तला दी कि सिवाय एक के बाकी सब मेरठ वाले भाग गए।
 कुछ दिनों बाद पता चला कि ये सब मेरठ के सिपाही
 मुरादाबाद के सिपाहियों के साथ बारगों में आये और रात
 को खाने पीने और बातचीत के बाद वहीं आनन्द के साथ रात
 बिताई।

३१ मई को सबेरे २६ नम्बर पलटन के सब सिपाही परेड पर
 जमा हुए। उन्होंने अपने अंगरेज़ अफ़सरों को नोटिस दिया कि—
 “कम्पनी का राज समाप्त हो गया। आप सब लोग दो घण्टे के
 अन्दर मुरादाबाद छोड़ दीजिए, नहीं तो आप सब को मार डाला
 जायगा।” मुरादाबाद की पुलिस और जनता भी क्रान्ति के पक्ष
 में थी। कुछ अंगरेज़ जिनमें वहाँ के जज, कलेक्टर और सिविल
 सर्जन भी शामिल थे, अपने बाल बच्चों को लेकर मुरादाबाद से
 भाग निकले। मुरादाबाद का कमिश्नर पॉवेल और उसके कुछ
 अंगरेज़ साथी मुसलमान हो गए। उनकी जानें बख़्श दी गईं।
 सिपाहियों ने ख़ज़ाने और तमाम सरकारी माल पर कब्ज़ा कर

लिया। सूर्यास्त से पहले पहले मुरादाबाद के ऊपर भी हरा झण्डा फहराने लगा।

बरेली, शाहजहाँपुर और मुरादाबाद के अतिरिक्त रुहेलखण्ड में एक और बड़ा शहर बदायूँ है। पहली जून की शाम को बदायूँ में क्रान्ति प्रारम्भ हुई।

बदायूँ की
स्वाधीनता

सिपाहियों, मुख्य मुख्य नगर निवासियों और पुलिस ने मिल कर ढिंढोरा पिटवा दिया कि अंगरेजी राज का अन्त हो गया और सूबेदार खानबहादुर खाँ का शासन शुरू हो गया। बदायूँ के अंगरेज जंगलों में भाग गए। उनमें से अनेक बड़े कष्टों के साथ जंगलों में मरे। इस प्रकार समस्त रुहेलखण्ड दो दिन के अन्दर कम्पनी के शासन से निकल गया। खानबहादुर खाँ ने एक नई फौज बना कर सारे रुहेलखण्ड में शान्ति और सुशासन स्थापित किया। अधिकांश महकमों के हिन्दोस्तानी मुलाजिम पूर्ववत् बहाल रखे गए और लगान दिल्ली के सम्राट के नाम पर वसूल किया जाने लगा। खानबहादुर खाँ ने अपने हाथ से रुहेलखण्ड की स्वाधीनता का सब हाल लिख कर सम्राट को भेजा।

एक प्लान लिख कर उसने तमाम रुहेलखण्ड में बँटवाया, जिसके मुख्य वाक्य ये थे—

खान बहादुर खाँ
का प्लान

“हिन्दोस्तान के रहने वाले ! स्वराज्य का पाक दिन, जिसका बहुत अरसे से इन्तज़ार था, आ पहुँचा है ! आप लोग इसे मंजूर करेंगे या इससे इनकार करेंगे ? आप इस ज़बरदस्त मौक़े से फ़ायदा उठाएँगे या इसे हाथ से जाने देंगे ? हिन्दू और मुसलमान

भाइयो ! आप सब को मालूम होना चाहिए कि अगर ये अंगरेज़ हिन्दोस्तान में रह गए तो हम सब को क्रल कर देंगे और आप लोगों के मज़हब को मिटा देंगे ! हिन्दोस्तान के बाशिन्दे इतने दिनों तक अंगरेज़ों के धोखे में आते रहे, और अपनी ही तलवारों से अपने गले काटते रहे हैं । इसलिए अब हमें मुल्क फ़रोशी के अपने इस गुनाह का प्रायश्चित्त करना चाहिए ! अंगरेज़ अब भी अपनी पुरानी दगाबाज़ी से काम लेंगे । वे हिन्दुओं को मुसलमानों के खिलाफ़ और मुसलमानों को हिन्दुओं के खिलाफ़ उभारने की कोशिश करेंगे । लेकिन हिन्दू भाइयो ! उनके फ़रेब में न पड़ना । हमें अपने होशियार हिन्दू भाइयों को यह बताने की ज़रूरत नहीं है कि अंगरेज़ कभी अपने वादे पूरे नहीं करते । ये लोग चाल और दगाबाज़ी में ताक़ हैं ! ये हमेशा से सिवाय अपने मज़हब के और सब मज़हबों को दुनियाँ से मिटाने की कोशिश करते रहे हैं । क्या उन्होंने गोद लिए हुए बच्चों के हक़ नहीं छीन लिए हैं ? क्या उन्होंने हमारे राजाओं के राज और मुल्क नहीं हड़प लिए हैं ? नागपुर का राज किसने ले लिया ? लखनऊ की बादशाहत किसने छीन ली ? हिन्दू और मुसलमान दोनों का पैरों तले किसने रौंदा ? मुसलमानों ! अगर तुम कुरान की इज़्ज़त करते हो तो और हिन्दुओ ! अगर तुम गो माता की इज़्ज़त करते हो तो, अब अपने छोटे छोटे तफ़्की को भूल जाओ और इस पाक जङ्ग में शामिल हो जाओ ! लड़ाई के मैदान में कूद कर एक झण्डे के नीचे लड़ो और खून की नदियों से अंगरेज़ों का नाम हिन्दोस्तान से धो डालो ! X X X गाय का मारा जाना बन्द कर दिया जाय । इस पाक जङ्ग में जो आदमी खुद लड़ेगा या जो धन से लड़ने वालों की मदद करेगा, दोनों

भारत में अंगरेजी राज

को इस लोक में और परलोक में दोनों जगह निजात मिलेगी ! लेकिन अगर कोई इस मुत्की जङ्ग की मुखालफत करेगा तो वह अपने सर पर कुल्हाड़ी मारेगा और खुदकुशी के गुनाह का जिम्मेवार होगा !”

बरेली, शाहजहाँपुर, मुरादाबाद और बदायूँ से कम्पनी की समस्त हिन्दोस्तानी सेना कम्पनी के खज़ानों, बख्त खाँ दिल्ली की ओर तोपों और अन्य हथियारों सहित बख्त खाँ के नेतृत्व में राजधानी दिल्ली की ओर रवाना हो गई। खानबहादुर खाँ और बख्त खाँ दोनों की गिनती उस विश्व के सब से अधिक योग्य नेताओं में की जाती है।

रुहेलखण्ड के बाद हमें लखनऊ और कानपुर को कुछ देर के लिए बीच में छोड़ कर बनारस और इलाहाबाद की ओर दृष्टि डालनी होगी।

बनारस में कम्पनी की ३७ नवम्बर पैदल पलटन, एक लुधियाने की सिख पलटन और एक सवार पलटन थीं। वहाँ का तोपखाना गोरों के हाथों में था। आगरे से कलकत्ते तक उस समय केवल दानापुर में एक पूरी गोरी रेजिमेण्ट मौजूद थी। अर्थात् यदि एक साथ सब जगह स्वाधीनता की लड़ाई शुरू होती तो अंगरेजों के लिए कम से कम उत्तरी भारत में ठहर सकना सर्वथा असम्भव था।

३१ मई को बनारस की बारगों में आग लगी। ३ जून को गारखपुर और आजमगढ़ के खज़ानों से सात लाख रुपए नकद

बनारस के लिए आ रहे थे। उसी दिन रात को १७ नम्बर पलटन ने, जो आजमगढ़ में थी, विप्लव प्रारम्भ कर दिया। केवल दो को छोड़ कर शेष सब अंगरेजों की उन्होंने जान बख्श दी। यहाँ तक कि उनके और उनके बाल बच्चों के बनारस जाने के लिए गाड़ियों तक का प्रबन्ध कर दिया। किन्तु सात लाख के उस खजाने पर, कम्पनी के गोले बारूद पर और जेलखाने, दफ्तरों इत्यादि पर क्रान्तिकारियों ने कब्जा कर लिया। आजमगढ़ की पुलिस ने सिपाहियों का पूरा साथ दिया। आजमगढ़ के नगर पर उसी रात को हरा भण्डा फहराने लगा।

इस समय तक गवर्नर जनरल लॉर्ड कैनिङ्ग ने मेरठ के विद्रोह और दिल्ली की स्वाधीनता का समाचार पाते जनरल कील ही बम्बई, मद्रास और रङ्गून से मँगा कर बहुत सी गोरी सेना बङ्गाल में जमा कर ली। ठीक उन दिनों ईरान के साथ अंगरेजों का युद्ध समाप्त हुआ था, और चीन के ऊपर अङ्गरेज हमला करने वाले थे। भारत के विप्लव के कारण अङ्गरेजों को चीन पर हमला करने का विचार छोड़ देना पड़ा। एक विशाल गोरी सेना ईरान से चीन की ओर जा रही थी। लॉर्ड कैनिङ्ग ने इस समस्त सेना को भारत में रोक लिया। इसमें से बहुत सी सेना लेकर सुप्रसिद्ध जनरल नील बनारस पहुँचा। बनारस के अङ्गरेजों की हिम्मत बँध गई। ४ जून को आजमगढ़ का समाचार बनारस पहुँचा। उसी दिन तीसरे पहर बनारस के अंगरेज अफ़सरों ने देशी सिपाहियों से हथियार रखा लेने का निश्चय किया।

परेड के मैदान में जिस समय देशी सिपाहियों को हथियार रख देने की आज्ञा दी गई, वे बजाय हथियार रख देने के मैगजीन पर और अंगरेज अफसरों के साथ का एक मात्र अवसर पर टूट पड़े। तुरन्त सिख पलटन उनके मुकाबले के लिए आ खड़ी हुई। अभी लड़ाई शुरू ही हुई थी कि अंगरेजी तोपखाने ने आकर सब पर गोले बरसने शुरू किए। यद्यपि सिख अंगरेजों का साथ दे रहे थे, फिर भी उस समय की घबराहट में तोपखाने के अंगरेज अफसर हिन्दू और सिखों में तमीज़ न कर सके। उन्होंने दोनों पर गोले बरसाने शुरू किए। विवश होकर सिखों को विप्लवकारियों का साथ देना पड़ा। सन् ५७-५८ के तमाम विप्लव में शायद यही एक मात्र अवसर था जब कि सिख सेना ने हिन्दू और मुसलमानों का साथ दिया।

बनारस की जनता विप्लवकारियों के साथ थी। किन्तु सिखों ने, वहाँ के कई रईसों ने और राजा चेतसिंह के वंशज बनारस के उपाधिधारी राजा ने उस समय अंगरेजों को पूरी सहायता दी। विप्लवकारी नगर छोड़ कर इधर उधर फैल गए।

५ जून को जौनपुर में विप्लव प्रारम्भ हुआ, कई अंगरेज मारे गए। शेष को नगर छोड़ने की आज्ञा दे दी गई। विप्लवकारियों ने खजाने पर कब्ज़ा कर लिया। जौनपुर के बचे हुए अंगरेज किश्तियों में बैठ कर बनारस की ओर चल दिए।

अपने अपने नगरों को स्वाधीन करने के बाद आजमगढ़ और जौनपुर दोनों जगह के सिपाही फैजाबाद की ओर चल दिए। दोनों नगरों के ऊपर हरा झण्डा फहराने लगा। यद्यपि बनारस नगर पर कम्पनी का कब्जा रहा, फिर भी आस पास का अधिकांश इलाका विसवकारियों के कब्जे में आ गया। जगह जगह अंगरेजों के नियुक्त किए हुए नए जमींदारों को हटा कर पुराने पैतृक जमींदार उनकी जगह नियुक्त कर दिए गए। जगह जगह अंगरेजी अदालतों, अंगरेजी जेलों और अंगरेजी दफ्तरों का खात्मा हो गया। तार काट डाले गए, रेलें उखाड़ कर फेंक दी गईं, गाँव गाँव में हरा झण्डा लिए हुए स्वयं सेवक पहरा देने लगे।

बनारस के प्रान्त भर में क्रान्तिकारियों ने एक भी अंगरेज स्त्री को नहीं मारा और जिन अंगरेजों ने हथियार रख दिए उन्हें शान्ति के साथ स्वयं गाड़ियों में बैठा कर नगर से चले जाने की इजाजत दे दी।

क्रान्तिकारियों और अंगरेजों दोनों की दृष्टि से इलाहाबाद का नगर बनारस की अपेक्षा कहीं अधिक महत्व का था। कलकत्ते से पश्चिमोत्तर प्रदेशों को जाने वाली सब सड़कें इलाहाबाद में मिलती थीं। इलाहाबाद का किला भारत के जबरदस्त किलों में से था। उसमें गोले बारूद और अस्त्र शस्त्रों का एक बहुत बड़ा संग्रह था। लिखा है कि प्रयाग के पण्डे आस पास की हिन्दू जनता के अन्दर स्वाधीनता के युद्ध का प्रचार करने में बहुत बड़ा भाग ले रहे थे। मुसलमानों में हिन्दुओं

की अपेक्षा भी कहीं अधिक जोश था। चार्ल्स बॉल लिखता है कि अंगरेज़ सरकार के अधिकांश बड़े और छोटे देशी मुलाज़िम इस संगठन में शामिल थे।

जिस समय मेरठ का समाचार इलाहाबाद पहुँचा, इलाहाबाद में एक भी अंगरेज़ सिपाही न था, वहाँ ६ नम्बर देशी पलटन, करीब २०० सिख सिपाही और मुठ्ठी भर अंगरेज़ अफ़सर थे। अवध से देशी सवारों की एक पलटन और बुला ली गई।

इलाहाबाद शहर
पर क्रान्तिकारियों
का कब्ज़ा

६ नम्बर पलटन ने अपने अंगरेज़ अफ़सरों को इतनी सुन्दरता के साथ बहकाए रक्खा कि अफ़सरों को अन्त समय तक उन पर सन्देह न हो पाया। दिल्ली का समाचार पाकर उन्होंने अपने अफ़सरों से कहा—“आप हमें दिल्ली भेज दीजिए, हम विद्रोहियों के टुकड़े टुकड़े कर डालेंगे।” इस पर गवर्नर जनरल लॉर्ड कैनिङ्ग तक ने ६ नम्बर पलटन को शाबासी दी। लिखा है कि ६ जून को जब उनके अंगरेज़ अफ़सर बाग़ों में उनसे मिलने के लिए गए तो कुछ सिपाहियों ने अपनी खैरखाही दर्शाने के लिए लपक कर उन्हें छाती से लगाया और उनके दोनों गालों को चूमा। किन्तु वही रात उनके विप्लव के लिए नियत थी। ६ नम्बर की बाग़ों क़िले से बाहर थीं। जिस वक्त अंगरेज़ अफ़सर खाना खा रहे थे, सिपाहियों की बिगुल बजी। अनेक अंगरेज़ मारे गए। शेष क़िले में जाकर छिप गए। अंगरेज़ों ने सवार पलटन को अपनी मदद के बुलाया। सवार जमा हुए। किन्तु बजाय क्रान्तिकारियों पर हमला करने के बे

मैदान में पहुँचते ही उनके साथ मिल गए। दोनों पलटनों के अधिकांश अफसर मारे गए। अंगरेजों के बँगलों को आग लगा दी गई।

सिख पलटन इस समय किले के अन्दर थी। यदि किले के सिख उस समय विद्रोहकारियों का साथ दे जाते तो आध घण्टे के अन्दर इलाहाबाद का किला और उसके अन्दर का तमाम सामान विद्रोहकारियों के हाथों में आ जाता। किन्तु ठीक उस संकट के समय सिखों ने अंगरेजों का साथ दिया। अंगरेजी भण्डा इलाहाबाद के किले पर फहराता रहा।

शहर के लोगों ने विद्रोहकारी सिपाहियों का पूरा साथ दिया। अंगरेजों के सब मकान जला दिए गए। अंगरेजों के सब मकान जला दिए गए। जेलखाने के कैदी रिहा कर दिए गए। खजाने पर कब्ज़ा कर लिया गया, रेल और तार तोड़ डाले गए। इलाहाबाद के खजाने में क्रान्तिकारियों को करीब तीस लाख रुपए मिले। ७ तारीख की शाम को शहर और छावनी में हरे भण्डे का जुलूस निकाला गया। नगर निवासियों और सिपाहियों ने भण्डे को सलामी दी। शहर की कोतवाली के ऊपर हरा भण्डा फहराने लगा।

इलाहाबाद के आस पास के सैकड़ों गाँवों में हिन्दू और मुसलमान रैयत और ज़मींदार सब ने मिल कर अंगरेजी राज के खात्मे का प्लान कर दिया और इलाहाबाद के समान एक एक गाँव के ऊपर

यदि सिख
क्रान्तिकारियों का
साथ देते

कोतवाली के ऊपर
स्वाधीनता का
भण्डा

हरे भण्डे का
जुलूस

हरा भण्डा फहराने लगा। जगह जगह अंगरेज़ों के नियुक्त किए हुए नए ज़मींदार हटा दिए गए और पुराने खानदानी ज़मींदार उनकी जगह नियुक्त कर दिए गए। लिखा है कि नगर के अन्दर दस दस बारह बारह बरस के लड़के हरे भण्डे हाथों में लेकर जुलूस बना कर निकलने लगे। इतिहास लेखक सर जॉन के लिखता है—

“न केवल गंगा के पार के इलाकों में ही, बल्कि गंगा और जमना के बीच के इलाके में भी देहाती जनता बिगड़ खड़ी हुई। X X X शीघ्र ही हिन्दू अथवा मुसलमान एक भी मनुष्य न बचा जो हमारे विरुद्ध न हो गया हो।”❀

इलाहाबाद के स्वाधीन होने के बाद दो चार दिन थोड़ी बहुत अराजकता रही। उसके बाद शहर के लोगों और आस पास के कुछ ज़मींदारों ने मिल कर मौलवी लियाक़तअली नामक एक योग्य मनुष्य को सम्राट बहादुरशाह की ओर से इलाहाबाद के इलाके का सूबेदार नियुक्त किया। लियाक़तअली एक असाधारण योग्यता का मनुष्य था। उसके चरित्र की पवित्रता के कारण सब लोग उसका आदर करते थे। उसने खुसरो बाग़ को अपना केन्द्र बनाया, शहर में पूरी शान्ति स्थापन कर दी और दिल्ली सम्राट को बराबर अपने यहाँ के हालात की सूचना देता रहा। इसके बाद मौलवी लियाक़त

* “For not only in the districts beyond the Ganges but in those lying between the two rivers, the rural population had risen . . . and, soon there was scarcely a man of either faith who was not arrayed against us.”—Kaye's *Indian Mutiny*, vol. ii, page 195.

अलो ने क़िले पर क़ब्ज़ा करने का प्रयत्न किया। क़िले के भीतर के सिखों को उसने स्वाधीनता के युद्ध में भाग लेने के लिए निमन्त्रित किया। किन्तु सिखों पर इसका कोई असर न हुआ।

यद्यपि विप्लवकारियों के सब से अधिक महत्वपूर्ण कृत्यों को बयान करना अभी बाक़ी है, फिर भी इस समय से ही अंगरेज़ों की ओर से प्रतिकार की आग भड़कनी शुरू हो गई।



छयालीसवाँ अध्याय

— . —

प्रतिकार का प्रारम्भ

लॉर्ड कैनिङ्ग एक विशाल सेना सहित, जिसमें अधिकांश गोरे,
कुछ सिख और कुछ मद्रासी थे, जनरल नील
जनरल नील की
दमन योजना को बनारस की ओर रवाना कर चुका था।
बनारस का नगर अंगरेजों के हाथों में था।

जनरल नील के बनारस पहुँचते ही पहले नगर में बड़ी बड़ी
गिरफ्तारियाँ हुईं। इसके बाद जनरल नील ने आस पास के इलाक़े
को फिर से विजय करने के लिए अंगरेजों और सिख सिपाहियों के
कई अलग अलग दस्ते बनाए। इस अवसर पर जनरल नील की
आज्ञा से उसकी सेना ने हिन्दीस्तानी प्रजा के ऊपर जो भयङ्कर
अत्याचार किए उन्हें हम अंगरेज इतिहास लेखकों ही की पुस्तकों
से लेकर इस स्थान पर दे रहे हैं।

जनरल नील के सिपाही एक एक गाँव में घुसते थे। जितने
 मनुष्य उन्हें मार्ग में मिलते थे उन्हें वे बिना
 कहीं तरह की
 फाँसी किसी तमीज़ के तलवार के घाट उतार देते थे
 या गोली से उड़ा देते थे और या फाँसी पर
 लटका देते थे। स्थान स्थान पर फाँसी के तख्ते खड़े किये गये
 जिन पर चौबीस चौबीस घण्टे बराबर काम जारी रहता था। जब
 इनसे भी काम न चला तो अंगरेज़ अफ़सरों ने दरख्तों की शाखों
 से फाँसी का काम लेना शुरू किया। जिस मनुष्य को फाँसी देनी
 होती थी उसे प्रायः हाथी पर बैठाया जाता था। हाथी को किसी
 ऊँची डाल के पास ले जाया जाता था। उस मनुष्य की गरदन
 रस्सी से डाल के साथ बांध दी जाती थी। फिर हाथी को हटा
 लिया जाता था और लटकती हुई लाश को उसी जगह छोड़ दिया
 जाता था।*

के और मॉलेसन ने अपने विप्लव के इतिहास में लिखा है कि
 जो लोग फाँसी पर लटकाए जाते थे, उनके हाथों
 नरसंहार और
 अग्निकांड और पैरों को विनोद की गरज़ से अंगरेज़ी के
 अङ्कों आठ और नौ (8 & 9) की शकल में
 बांध दिया जाता था।† जब ये उपाय भी काफी दिखाई न दिए
 तो अंगरेज़ अफ़सरों ने गाँव के गाँव जलाने शुरू कर दिये। गाँव
 के बाहर तोपें लगा दी जाती थीं और समस्त पुरुषों, स्त्रियों, बच्चों

* *Narrative of the Indian Revolt*, p. 69.

† Kaye and Malleeson's *History of the Indian Mutiny*, vol. ii, p. 177.

और पशुओं समेत गाँव को आग लगा दी जाती थी। अनेक अंगरेज़ अफ़सरों ने बड़े गर्व के साथ इन हृदय विदारक दृश्यों को अपने पत्रों में बयान किया है। आग इतनी होशियारी से लगाई जाती थी कि एक भी गाँव वाला न बच सके। चार्ल्स बॉल लिखता है कि माताएँ अपने दुधमुँहे बच्चों समेत और अगणित बड़े पुरुष और स्त्रियाँ जो अपनी जगह से हिल न सकते थे, बिछौनों के अन्दर जला कर खाक कर दिए गए।*

एक अंगरेज़ अपने एक पत्र में लिखता है—“हमने एक बड़े गाँव को आग लगाई जिसमें लोग भरे हुए थे। हमने उन्हें घेर लिया और जब वे आग की लपटों में से निकल कर भागने लगे तो हमने उन्हें गोलियों से उड़ा दिया !”†

अनेक स्थानों पर विस्रवकारियों ने अंगरेज़ मर्द, औरत और बच्चों की जानें बर्ख़ा दीं। असंख्य ग्रामों में लोगों ने भागे हुए अंगरेज़ों को अपने घरों में आश्रय दिया। किन्तु कम्पनी के पूरे इतिहास में अंगरेज़ कौम के अन्दर वीरोचित गुणों का सदा अभाव ही मिला है। जनरल नील की सेना ने भी दोषी, निर्दोष, बालक, वृद्ध, या स्त्री पुरुष का कोई ख़याल नहीं किया।

* Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. i, pp. 243-44.

† “We set fire to a large village which was full of them. We surrounded them, and when they came rushing out of the flames, we shot them !”—Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. i, pp. 243-44.

जनरल नील के अत्याचारों के विषय में एक अंगरेज़ इतिहास-लेखक लज्जित होकर लिखता है—

“अच्छा यह है कि जनरल नील के प्रतिकार के विषय में कुछ लिखा ही न जाय !”❀

इतिहास लेखक सर जॉन के लिखता है—

“फ़ौजी और सिविल दोनों तरह के अंगरेज़ अफ़सर अपनी अपनी ख़ूनी अदालतें लगा रहे थे, अथवा बिना किसी तरह के मुक़दमे का होंग रचे और बिना मर्द, औरत या छोटे बड़े का विचार किए भारतवासियों का संहार कर रहे थे। इसके बाद ख़ून की प्यास और भी अधिक भड़की। भारत के गवर्नर जनरल ने जो पत्र इङ्गलिस्तान भेजे उनमें हमारी ब्रिटिश पार्लिमेण्ट के कागज़ों में यह बात दर्ज है कि ‘बूढ़ी औरतों और बच्चों का उसी तरह बध किया गया है जिस प्रकार उन लोगों का जो विप्लव के दोषी थे।’ इन लोगों को सोच समझ कर फाँसी नहीं दी गई, बल्कि उन्हें उनके गाँव के अन्दर जला कर मार डाला गया, शायद कहीं कहीं उन्हें इत्तफ़ाक़िया गोली से भी उड़ा दिया गया। अंगरेज़ों को गर्व के साथ यह कहते हुए अथवा पत्रों में लिखते हुए भी सङ्कोच न हुआ कि हमने एक भी हिन्दोस्तानी को नहीं छोड़ा और काले हिन्दोस्तानियों को गोलियों से उड़ाने में हमें बड़ा विनोद और आश्चर्यजनक आनन्द अनुभव होता था। एक पुस्तक में जिसका बड़े बड़े अंगरेज़ अफ़सरों ने समर्थन किया है, लिखा है सड़कों के चौरस्तों पर और बाज़ारों में जो लाशें टँगी हुई थीं, उनको उतारने में सूर्योदय से सूर्यास्त तक मुरदे होने वाली आठ आठ गाड़ियाँ बराबर तीन तीन महीने

* “It is better not to write anything about General Neill's revenge !”

तक लगी रहीं, और इस प्रकार [एक स्थान पर] छै हजार मनुष्यों को झटपट खत्म कर परलोक भेज दिया गया। X X X जब कोई अंगरेज़ यह पढ़ता है कि किसी काले रङ्ग के बदमाश ने किसी मिस्टर चैम्बर्स या किसी मिस जेनिङ्स को काट डाला तो क्रोध के मारे उसका दम घुटने लगता है, किन्तु भारतवासियों के इतिहासों में अथवा यदि इतिहास न हुए तो उनके परम्परागत वृत्तान्तों में हमारी कौम के विरुद्ध यह स्मरण रहेगा कि भारत की माताएँ, पत्नियाँ और बच्चे, जिनके नामों से हम इतनी अच्छी तरह परिचित नहीं हैं, अङ्गरेजों के प्रतिकार की पहली बाढ़ के निर्दयता के साथ शिकार हुए।”

* “Soldiers and civilians alike were holding Bloody Assizes, or slaying Natives without any assize at all, regardless of sex or age. Afterwards the thirst for blood grew stronger still. It is on the records of our British Parliament, in papers sent home by the Governor-General of India in Council that ‘the aged women, and children, are sacrificed, as well as those guilty of rebellion.’ They were not deliberately hanged, but burnt to death in their villages, perhaps now and then accident by shot. Englishmen did not hesitate to boast or to record their boasting in writing, that they had spared no one, and that peppering away at niggers was very pleasant pastime, enjoyed amazingly. And it has been stated, in a book patronised by official authorities, that ‘for three months eight dead carts daily went their rounds from sunrise to sunset to take down the corpses which hung at the cross-roads and market places’ and that six thousand beings had been thus ‘summarily disposed off and launched into eternity.’ . . . An Englishman is almost suffocated with indignation when he reads that Mr. Chambers or Miss Jennings was nacked to death by a dusky ruffian, but in Native histories or, history being wanting, in Native legends and traditions, it may be recorded against our people, that mothers and wives and children, with less familer names, fell miserable victims to the first swoop of English vengeance. . . .”—Kaye’s *History of the Sepoy War*, vol. ii.

यह दशा कुछ थोड़े बहुत ग्रामों की ही नहीं की गई। जनरल नील ने अपनी फौज को अनेक दस्तों में बाँट दिया था। एक एक दस्ते में कई कई अफसर होते थे। इनमें से एक अफसर अपने केवल एक दिन के कृत्य को अभिमान के साथ वर्णन करते हुए अपने किसी अंगरेज़ मित्र को लिखता है—

“किन्तु आप यह जान कर सन्तुष्ट होंगे कि मैंने बीस ग्रामों को ज़मीन से मिला कर बराबर कर दिया।”

बनारस से जनरल नील अपनी विजयी संना सहित इलाहाबाद की ओर बढ़ा। मार्ग में उसने बनारस से इलाहाबाद तक सहस्रों ही ग्रामों को ग्राम निवासियों सहित जला कर खाक कर दिया।

११ जून को जनरल नील इलाहाबाद पहुँचा। यदि इससे पूर्व किले के अन्दर के सिख सिपाही विद्रोहकारियों से मिल गए होते और किले के अन्दर की असंख्य बन्दूकें और युद्ध की अन्य सामग्री विद्रोहकारियों के हाथों में आ गई होती, तो जनरल नील के लिए इलाहाबाद फिर से विजय कर सकना शायद असम्भव होता। लिखा है कि नील दूर से यह देख कर चकित रह गया कि इलाहाबाद के किले पर अभी तक अंगरेज़ी झण्डा फहरा रहा है। इस पर भी वह इलाहाबाद जैसे किले के लिए किसी भारतवासी का एतबार न कर सकता था। उसने आते ही किले के भीतर के सिख सिपाहियों को पास के गाँव जलाने के लिए बाहर भेज दिया और किला गोरे सिपाहियों के सुपुर्द कर दिया। सिखों

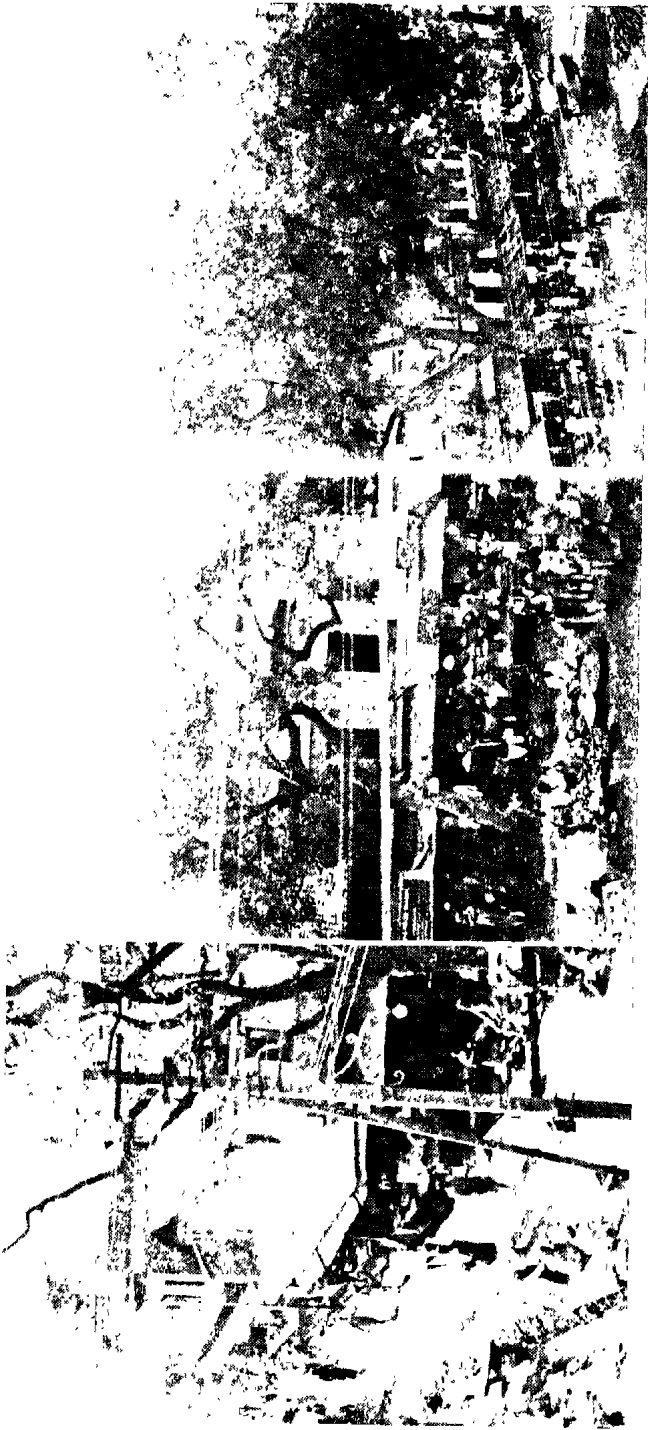
इलाहाबाद
निवासियों से
बदला

ने सहर्ष नील की आज्ञा का पालन किया। किला और किले के सामान की सहायता से अंगरेजों ने १७ जून को खुसरो बाग पर हमला किया। दिन भर खूब घमासान संग्राम हुआ। क्रान्ति-कारियों ने बड़ी वीरता के साथ सामना किया। किन्तु अन्त में मौलवी लियाक़तअली ने देख लिया कि नील की विशाल सेना के मुकाबले में उनका ठहर सकना असम्भव था, इसके अतिरिक्त लियाक़तअली के पास उस समय तीस लाख का भारी खज़ाना था, जिसे वह शत्रु के हाथ में पड़ने देना न चाहता था। इसलिए लियाक़तअली अपने साथियों और खज़ाने सहित १७ जून की रात को कानपुर की ओर निकल गया। कानपुर के समर्पण के बाद लियाक़तअली दक्खिन की ओर गया। वहीं से गिरफ़्तार करके उसे अण्डमन भेज दिया गया। वहाँ कई वर्ष तक निर्वासन भुगतने के बाद मौलवी लियाक़त अली की मृत्यु हुई। इस समय इलाहाबाद से १५ मील पश्चिम महगाँव में, जहाँ कि लियाक़तअली का जन्म स्थान था, उनकी एक कन्या अब तक जीवित है।

१८ जून को रात को अंगरेजों ने सिखों की मदद से इलाहाबाद के नगर में प्रवेश किया।

छोटे छोटे बालकों
को फाँसी

इस अवसर पर इलाहाबाद के नगर निवासियों से नील और उसके आदमियों ने जिस भयङ्कर रूप में बदला चुकाया उसका कुछ अनुमान इस एक घटना से लगाया जा सकता है कि अनेक छोटे छोटे लड़कों को केवल इस अपराध में फाँसी पर लटका दिया गया कि वे हरे भण्डे



चौक इलाहाबाद के सात नीम के वृक्षों में से चार; जिन पर सन् ५७ में लगभग २०० निर्दोष
नगरनिवासियों को फाँसी पर लटका दिया गया
[“भारत में अंगरेजी राज” के लिए विशेष फोटो]

हाथ में लेकर ढोल बजाते हुए जुलूस की शकल में शहर की गलियों में घूम रहे थे ।*

लन्दन 'टाइम्स' के सम्वाददाता सर विलियम रसल से कमाण्डर-इन-चीफ़ सर कॉलिन कैम्पबेल ने ऋण दाताओं को फाँसी कहा था कि उन दिनों इलाहाबाद का एक अंगरेज़ सौदागर विद्रोहियों का पता लगाने के लिए स्पेशल कमिश्नर नियुक्त किया गया । वह अनेक हिन्दोस्तानी व्यापारियों का कर्जदार था । सबसे पहला काम उसने यह किया कि अपने सब ऋणदाताओं को पकड़ कर फाँसी दे दी ।†

इलाहाबाद के चौक के अन्दर उन सात नीम के वृक्षों में से अभी तक तीन मौजूद हैं, जिनकी शाखों पर, चन्द दिन के अन्दर, कहा जाता है कि करीब आठ सौ निर्दोष नगर निवासियों को फाँसी दे दी गई । इस फाँसी के ढङ्ग को बयान करते हुए हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान पण्डित बालकृष्ण भट्ट, जिनकी आयु सन् ५७ में करीब १५ वर्ष की थी, कहा करते थे कि अहियापुर मुहल्ले का एक मनुष्य समाचार सुनकर फाँसियाँ देखने के लिए चौक में पहुँचा । जो अंगरेज़ फाँसी दिलवा रहा था उसने पूछा—तुम क्यों खड़े हो ? उसने उत्तर दिया—सुना था यहाँ फाँसियाँ लग रही हैं,

* Kaye's *Indian Mutiny*, Book v, chapter, ii.

† Sir W. H. Russell's private letter to John Delane, Editor of the *London Times*, written from Lucknow.

इसलिये केवल देखने आया था। साहब ने आज्ञा दी, इसे भी फाँसी दे दो। तुरन्त वह निर्दोष और चकित दर्शक एक नीम पर लटका दिया गया। जो काम सात नीम के वृक्षों पर चौक में हो रहा था वही उस समय सैकड़ों अन्य नीम और आम के वृक्षों पर इलाहाबाद और उसके आस पास के इलाके में किया जा रहा था।

नगर के कुछ लोगों ने बचने के लिए किशतियों में बैठ कर नगर से भाग जाना चाहा। किन्तु किले के नीचे तोपें किशतियों पर गोलाबारी लगी हुई थीं और अंगरेजी सेना किनारे पर मौजूद थी। किशतियों में भागते हुए लोगों पर किनारे से गोलियों और गोलों की बौछार की गई और उन्हें वहीं समाप्त कर दिया गया।

इलाहाबाद के अपने एक दिन के कृत्यों को बयान करते हुए एक अंगरेज अफसर लिखता है—

फाँसी के तरीके

“एक यात्रा में मुझे अद्भुत आनन्द आया। हम लोग एक तोप लेकर एक स्टीमर पर चढ़ गए। सिख और गोरे सिपाही शहर की तरफ बढ़े। हमारी किशती ऊपर को चलती जाती थी और हम अपनी तोप से दाएँ और बाएँ गोले फेंकते जाते थे। यहाँ तक कि हम विद्रांही ग्रामों में पहुँचे। किनारे पर जाकर हमने अपनी बन्दूकों से गोलियाँ बरसानी शुरू कीं। मेरी पुरानी दो नली बन्दूक ने कई काले आदमियों को गिरा दिया। मैं बदला लेने का इतना प्यासा था कि हमने दाएँ और बाएँ गावों में आग लगानी शुरू की। लपटें आसमान तक पहुँचीं और चारों ओर फैल गईं। हवा ने उन्हें फैलने में मदद दी, जिससे मालूम होता था कि दगाबाज़



क्रिश्चियॉ में बैठ कर इलाहाबाद से भागते हुए हिन्दोस्तानियों पर अंगरेजी सेना का गोलें बरसाना

[From "History of the Indian Mutiny" by Charles Ball.]

बदमाशों से बदला लेने का दिन आ गया है। हर रोज़ हम लोग विद्रोही आर्मों को जलाने और मिटा देने के लिए निकलते थे और हमने बदला ले लिया है। × × × लोगों की जान हमारे हाथों में है और मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि हम किसी को नहीं छोड़ते। × × × अपराधी को एक गाड़ी के ऊपर बैठा कर किसी दरखून के नीचे ले जाया जाता है। उसकी गर्दन में रस्सी का फन्दा डाल दिया जाता है। फिर गाड़ी हटा ली जाती है और वह लटका हुआ रह जाता है।”*

इलाहाबाद के इस सर्वव्यापी संहार से माताएँ या बच्चे, बूढ़े या अनाहज कोई न बच सके। इतिहास लेखक
इलाहाबाद में
भयंकर संहार
होम्स दुख के साथ लिखता है—
“बूढ़े आदमियों ने हमें कोई नुकसान न पहुँचाया था;
असहाय स्त्रियों से जिनकी गोद में दूध पीते बच्चे थे, हमने उसी तरह
बदला लिया जिस तरह बुरे से बुरे अपराधियों से।”†

* “One trip I enjoyed amazingly; we got on board a steamer with a gun, while the Sikhs and the fusiliers marched up to the city. We steamed up throwing shots right and left till we got up to the bad places, when we went on the shore and peppered away with our guns, my old double-barrel bringing down several niggers. So thirsty for vengeance I was. We fired the places right and left and the flames shot up to the heavens as they spread, fanned by the breeze, showing that the day of vengeance had fallen on the treacherous villains. Everyday, we had expeditions to burn and destroy disaffected villages and we have taken our revenge. . . . We have the power of life in our hands and, I assure you, we spare not. . . . The condemned culprit is placed under a tree; with a rope round his neck, on the top of carriage, and when it is pulled off he swings.”—Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. i, p. 257.

† “Old men had done us no harm; helpless women, with suckling

जिस स्थान का जिक्र चार्ल्स बॉल के पूर्वोक्त उद्धरण में किया गया है, केवल उस एक स्थान के विषय में इतिहास लेखक के स्वीकार करता है कि वहाँ पर छै हजार भारत वासियों का संहार किया गया। निस्सन्देह अकेले इलाहाबाद के इलाके में नील ने इतने भारत वासियों का संहार किया जितने अंगरेज पुरुष, स्त्रियों और बच्चों का समस्त भारत के अन्दर भी सन् ५७-५८ भर में विप्लव कारियों ने नहीं किया।

सर जॉर्ज कैम्पबेल लिखता है—

“और मैं जानता हूँ कि इलाहाबाद में बिलकुल बिना किसी तमीज के क़त्लेआम किया गया था। X X X और इसके बाद नील ने वे काम किए जो क़त्लेआम से भी अधिक मालूम होते थे, उसने लोगों को जान बूझ कर इस तरह की यातनाएँ दे देकर मारा जिस तरह की यातनाएँ, जहाँ तक हमें सुबूत मिले हैं, भारतवासियों ने कभी किसी को नहीं दीं।”*

बनारस के समान इलाहाबाद के नगर पर भी अंगरेजों का फिर से क़ब्ज़ा हो गया। यद्यपि जनरल नील और उसके साथियों ने इलाहाबाद निवासियों से बदला चुकाने में कोई कसर नहीं की, फिर

infants at their breasts, felt the weight of our vengeance no less than the vilest malefactors.”—Holmes' *Sepoy War*. pp. 229-30.

* “ . . . and I know that at Allahabad there were far too whole-sale executions. . . . And afterwards Neill did things almost more than the massacre, putting to death with deliberate torture, in a way that has never been proved against the natives.”—Sir George Campbell, Provisional Civil Commissioner in the Mutiny, as quoted in *The Other Side of the Medal*, by Edward Thompson, p 81.

भी चार्ल्स बॉल लिखता है कि शहर और आस पास के गाँव के लोगों ने अंगरेजों का इतना पूरा बहिष्कार कर रक्खा था कि अपने मुर्दे और जख्मियों को ढोने के लिए उन्हें डोलिये या मजदूर तक नहीं मिल रहे थे। कोई गाँव वाला उन्हें रसद देने के लिए तैयार न होता था। चार्ल्स बॉल लिखता है कि जो कोई अंगरेजों का काम करता था, देहाती उसके हाथ और नाक काट डालते थे या उसे मार डालते थे। इसके ऊपर जून की गरमी। नतीजा यह हुआ कि अंगरेजी कैम्प में हैजे की बीमारी शुरू होगई।

अब हम इलाहाबाद से हट कर सन् ५७ की राष्ट्रीय योजना के उद्भव स्थान कानपुर की ओर आते हैं। नाना कानपुर और साहब, उसके दो भाई बाला साहब और बाबा नाना साहब साहब, नाना साहब का भतीजा राव साहब और चतुर अजीमुल्ला खाँ कानपुर में क्रान्ति के मुख्य नेता थे। इनके अतिरिक्त प्रसिद्ध मराठा सेनापति तात्या टोपे भी, जिसके अद्भुत पराक्रम का वर्णन आगे चल कर किया जायगा, उस समय बिठूर के दरबार में मौजूद था। सर ह्यू व्हीलर कानपुर की अंगरेजी सेना का सेनापति था। व्हीलर के अधीन तीन हजार देशी सिपाही और लगभग एक सौ अंगरेज सिपाही थे। दिल्ली की स्वाधीनता का समाचार नाना साहब को १५ मई को मिला और सर ह्यू व्हीलर को १८ मई को। इस पर एक अंगरेज लेखक लिखता है—

“निस्सन्देह विप्लव के अत्यन्त आश्चर्यजनक पहलुओं में से एक यह रहा है कि भारतवासियों को दूर दूर के स्थानों की समस्त महत्वपूर्ण घटनाओं

की सूचना अत्यन्त शीघ्र और असन्दिग्ध रूप में मिलती रहती है। ख़बर ले जाने वाले मुख्यकर हरकारे होते हैं जो असाधारण वेग के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान सन्देश ले जाते हैं।”*

दिल्ली की ख़बर के आते ही कानपुर शहर में हिन्दू और मुसलमानों के बड़े बड़े जलसे होने लगे। छावनी शहर में जलसे में सिपाहियों की गुप्त सभाएँ होने लगीं। स्कूलों, बाज़ारों और सार्वजनिक स्थानों में आगामी स्वाधीनता संग्राम की चरचा होने लगी। फिर भी नाना साहब ने ३१ मई तक चुप रहने का निश्चय किया, और सर ह्यू व्हीलर ने गङ्गा के दक्खिन में एक नया स्थान घेर कर क़िलेबन्दी शुरू की, ताकि आवश्यकता के समय कानपुर के अंगरेज़ उसमें आश्रय ले सकें।

लखनऊ से कुछ आर सेना व्हीलर की सहायता के लिए पहुँच गई। आश्चर्य की बात यह है कि उस समय नाना पर अंगरेज़ों का विश्वास तक भी अंगरेज़ों को नाना साहब पर पूर्ण विश्वास था। व्हीलर ने नाना साहब को सन्देशा भेजा कि आप आकर कानपुर की रक्षा करने में अंगरेज़ों की मदद दीजिये। २२ मई सन् १८५७ को नाना साहब ने कुछ सेना और दो तोपों सहित बिठूर से निकल कर कानपुर नगर में प्रवेश किया। व्हीलर ने कम्पनी का ख़ज़ाना नाना साहब को सौंप दिया। नाना ने अपने दो सौ सिपाही ख़ज़ाने पर पहरा देने के लिये नियुक्त कर दिए।

* *Narrative of the Indian Revolt*, p. 33.

कम्पनी की देशी सेना के दो मुख्य नेता थे, सूबेदार टीकासिंह और सूबेदार शम्सुद्दीन खाँ। नाना साहब के दो मुख्य विश्वस्त सहायक ज्वालाप्रसाद और मोहम्मदअली थे। इन चारों और नाना साहब और अज़ीमुल्ला खाँ में प्रायः किश्तियों में बैठकर गङ्गा के ऊपर दो दो घण्टे गुप्त मन्त्रणाएँ हुआ करती थीं। सर ह्यू व्हीलर ने कम्पनी का मैगज़ीन भी नाना साहब की रक्षा में छोड़ दिया।

कानपुर के अन्दर उस समय अंगरेज़ इतना डरे हुए थे कि २४ मई को रमज़ान के बाद की ईद थी। उसी अंगरेज़ों में भय दिन मलका विक्टोरिया की साल गिरह थी। साल गिरह के उपलक्ष में सदा तोपों की सलामी दी जाती थी। किन्तु २४ मई सन् १८५७ को कानपुर में इसलिए कोई तोप नहीं छोड़ी गई कि उससे हिन्दोस्तानी सिपाही न भड़क उठें। एक अंगरेज़ अफ़सर लिखता है कि जिस समय विश्व की कोई भूठी अफ़वाह भी नगर में उड़ जाती थी, तुरन्त शहर के सब अंगरेज़ भाग कर अपने बाल बच्चों समेत जनरल व्हीलर के नए क़िले में जाकर जमा हो जाते थे।

४ जून की आधी रात को अचानक कानपुर की छावनी में तीन फ़ायर हुए। सिपाहियों को क्रान्ति प्रारम्भ करने के लिए यही पूर्व निश्चित सूचना थी। सबसे आगे सूबेदार टीकासिंह घोड़े पर लपका। उसके पीछे पीछे सैकड़ों सवार और हजारों पैदल मैदान में निकल आए। पूर्व निश्चय के अनुसार कुछ ने अंगरेज़ी इमारतों को आग लगा

कानपुर की
स्वाधीनता

दी, कुछ दूसरों को सूचना देने के लिए गए और कुछ ने जगह जगह से अंगरेजी भण्डों को गिरा कर उनकी जगह हरे भण्डे पहना दिए। नवाबगञ्ज में नाना का खेमा था। नाना के सिपाही क्रान्तिकारियों के साथ मिल गए। ५ जून को सुबह तक अंगरेजी खजाना और मेगज़ीन दोनों क्रान्तिकारियों के हाथों में आ गए। भारतीय सेना और नगर निवासियों ने मिल कर दिल्ली सम्राट के अधीन नाना साहब को अपना राजा चुना। फौज के लिए अफसर और नगर के लिए शासक भी उसी समय चुने गए। ५ जून ही को हाथी के ऊपर दिल्ली सम्राट के भण्डे का जुलूस बड़े समारोह के साथ शहर तथा छावनी में निकाला गया।

नगर निवासियों ने बड़े हर्ष के साथ नाना की समस्त आज्ञाओं का पालन किया।

६ जून को सबेरे नाना ने जनरल व्हीलर को चेतावनी दी कि आज आप क़िला हमारे सुपुर्द कर दीजिए, अंगरेज़ी क़िले का अन्यथा शाम को क़िले पर हमला किया मोहासरा जायगा। उसी दिन शाम को क्रान्तिकारी सेना ने अंगरेज़ी क़िले का मोहासरा शुरू कर दिया। कानपुर के प्रायः समस्त अंगरेज़ स्त्री, पुरुष और बच्चे उस समय इस क़िले के अन्दर मौजूद थे।

नोटिस देने के बाद जो अंगरेज़ किसी कारण क़िले से बाहर रह गए या कानपुर शहर में मौजूद थे उन्हें मार डाला गया। नाना के साथ तोपों की कमी न थी। नाना की तोपों ने अब

कानपुर के क़िले के अन्दर गोले बरसाने शुरू किए। क़िले के अन्दर अंगरेज़ इतनी तेज़ी के साथ मरने लगे कि लिखा है, उन्हें दफ़न करना तक कठिन हो गया। क़िले के अन्दर केवल एक कुआँ था। नाना की सेना ने उस पर इस ढङ्ग से गोले बरसाए कि अनेक अंगरेज़ पुरुष और स्त्री पानी न मिलने के कारण तड़पने लगे। २१ दिन तक यह गोलाबारी जारी रही। अनेक लोग जो गोलों से न मरे, पेचिस, बुखार और हैज़े का शिकार हुए। क़िले की दीवारों पर से कम्पनी की तोपें भी साहस और धैर्य के साथ अपना कार्य करती रहीं। विप्लवकारियों के पहरों के कारण अंगरेज़ों के लिए कोई सन्देश बाहर भेज सकना अत्यन्त कठिन हो गया। फिर भी कम्पनी का एक वफ़ादार हिन्दोस्तानी नौकर जनरल व्हीलर का सन्देश लेकर लखनऊ पहुँचा। यह सन्देश एक पत्ती के पारों के नीचे बँधा हुआ था। भाषा कुछ अंगरेज़ी, कुछ लातीनी और कुछ फ़्रान्सीसी मिली हुई थी। पत्र का शब्दार्थ केवल यह था—

“ Help ! Help !! Help !!! Send us help or we are dying ! If we get help, we will come and save Lucknow ! ”

“मदद ! मदद !! मदद !!! हमें मदद भेजो, नहीं तो हम मर रहे हैं ! हमें मदद मिल जाय तो हम आकर लखनऊ को बचा लेंगे ! ”

इस से क़िले के अंगरेज़ों की स्थिति का ख़ासा पता चलता है। दूसरी ओर नाना के गुप्तचर बड़ी सुन्दरता के साथ अंगरेज़ी क़िले के अन्दर की ख़बरें नाना को ला लाकर देते थे।

जब कि अंगरेज़ी कैम्प की यह हालत थी, नाना के पास चारों ओर के ज़मींदारों की ओर से धन और जन नाना की सहायता दोनों की सहायता धड़ाधड़ चली आ रही थी। नाना और उसके साथियों का उत्साह बढ़ा हुआ था। नाना के अधीन इस समय करीब चार हजार सेना थी।

कानपुर की हिन्दू और मुसलमान स्त्रियाँ उस समय अपने घरों से निकल निकल कर गोला बारूद इधर उधर ले जाने, सैनिकों को भोजन पहुँचाने और ठीक अंगरेज़ी क़िले की दीवार के नीचे तोपचियों को मदद देने का काम कर रही थीं।

क्रान्ति में कानपुर
की स्त्रियों
का भाग

इन सब स्त्रियों में उस समय कानपुर की एक वेश्या अज़ीज़न का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। एक इतिहास लेखक लिखता है कि यह अज़ीज़न हथियार बाँधे हुए घोड़े पर चढ़ी हुई बिजली की तरह शहर की गलियों और छावनी में दौड़ती फिरती थी। कभी वह गलियों के अन्दर थके हुए और घायल सिपाहियों को दूध और मिठाई बाँटती थी, और कभी अंगरेज़ी क़िले की ठीक दीवार के नीचे लड़ने वालों के हौसले बढ़ाती थी।

ठीक उस समय जब कि अंगरेज़ी क़िले का मोहासरा जारी था, नाना ने शहर के शासन का पूरा प्रबन्ध किया। नाना का शासन प्रबन्ध शहर के प्रमुख लोगों को जमा करके उनके बहुमत से हुलाससिंह नामक एक मनुष्य को मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया। फ़ौज को रसद पहुँचाने का काम

मुल्ला नामक एक मनुष्य के सुपुर्द कर दिया गया। दीवानी के मुकदमों के लिए ज्वालाप्रसाद, अजीमुल्ला खाँ और बाबा साहब की एक अदालत कायम की गई। इतिहास लेखक टॉमसन लिखता है कि अपराधियों को कड़े दण्ड दिए जाते थे और नगर में पूरी तरह अमन चैन था।*

१८ जून और २३ जून को दो गहरे संग्राम हुए। अन्त में कोई चारा न देख २५ जून सन् १८५७ को जनरल अंगरेजी किले पर वहीलर ने अपने किले के ऊपर सुलह का सफेद सुलह का झण्डा भण्डा गाड़ दिया। तुरन्त नाना साहब ने लड़ाई बन्द कर दी। इसके साथ ही नाना ने एक पत्र जनरल वहीलर के पास भेजा जिसमें लिखा था :—

“मलका विक्टोरिया की प्रजा के नाम—जिन लोगों का डलहौजी की नीति के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहा है, और जो हथियार रख देने और आत्म समर्पण कर देने के लिए तैयार हैं उन्हें सुरक्षित इलाहाबाद पहुँचा दिया जायगा।”

२६ तारीख को दोनों ओर के प्रतिनिधियों में बात चीत हुई। इस बातचीत के सम्बन्ध में यह एक बात ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि अजीमुल्ला खाँ अंगरेजी भाषा का विद्वान था फिर भी ज्योंही अंगरेज प्रतिनिधि ने अंगरेजी में बात चीत प्रारम्भ की, अजीमुल्ला ने पतराज किया। उसने अंगरेज प्रतिनिधियों को विवश किया

* *The Story of Cawnpore*, by M. Thompson.

कि सारी बातचीत हिन्दोस्तानी में की जाय; और हिन्दोस्तानी में ही बात चीत हुई ।

अन्त में क़िले के अन्दर के सब अंगरेजों ने अपने आपको नाना के सुपुर्द कर दिया । क़िला, तोपखाना और भीतर के तमाम अस्त्र शस्त्र और खजाना नाना के हवाले कर दिया गया । नाना की तरफ़ से वादा किया गया कि सब अङ्गरेजों को किश्तियों में बैठाकर और मार्ग के लिए रसद देकर इलाहाबाद भेज दिया जायगा ।

उसी रात को चालीस किश्तियों का इन्तज़ाम कर दिया गया ।

उनमें रसद का सामान रख दिया गया । २७ सतीचौरा घाट तारीख़ को सबेरे अङ्गरेजी भण्डा क़िले पर से उतार दिया गया । सम्राट बहादुरशाह का

भण्डा उसकी जगह फहराने लगा और सब अङ्गरेजों को हाथियों और पालकियों में बैठा कर क़िले से डेढ़ मील दूर सतीचौरा घाट पर पहुँचा दिया गया ।

किन्तु इस बीच इलाहाबाद और उसके आस पास के इलाक़े से असंख्य मनुष्य जिनके घर द्वार, सम्बन्धियों और बाल बच्चों को जनरल नील के सिपाहियों ने जला कर खाक कर दिया था, कानपुर नगर में आ आकर एकत्रित हो रहे थे । इन लोगों के बयानों और इलाहाबाद में कम्पनी की सेना के अत्याचारों को सुन सुन कर कानपुर की जनता और वहाँ के देशी सिपाहियों का क्रोध भड़क रहा था । २७ जून को सबेरे दस बजे किश्तियाँ सतीचौरा

घाट से चलने वाली थीं। नाना उस समय अपने महल में था। घाट पर सिपाहियों और जनता की भीड़ थी। कहा जाता है कि क्रोध से उन्मत्त सिपाहियों में से किसी एक ने पहले करनल ईवर्ट पर हमला किया। तुरन्त मार काट शुरू हो गई, करीब करीब समस्त अंगरेज इतिहास लेखक स्वीकार करते हैं कि ज्योंही नाना को इसका समाचार मिला, उसने तुरन्त आज्ञा भेजी कि—“अङ्गरेज पुरुषों को मारो, किन्तु बच्चों और स्त्रियों को कोई हानि न पहुँचाओ!”* नाना की आज्ञा के पहुँचते ही १२५ अंगरेज स्त्रियाँ और बच्चे कैद करके सौदाकोठी पहुँचा दिए गए। अङ्गरेज पुरुषों को लाइन बाँध कर सतीचौरा घाट पर खड़ा किया गया। उनमें से एक ने जो शायद पादरी था, प्रार्थना की कि मरने से पहले मुझे इजाजत दी जाय कि मैं अपने भाइयों को इञ्जील में से कुछ ईश्वर प्रार्थना पढ़ कर सुना दूँ। उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली गई।† जब वह ईश्वर प्रार्थना कर चुका तो हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने समस्त अंगरेजों के सर तलवार से कलम कर दिए। अंगरेज पुरुषों में से केवल चार एक किशती में बैठकर भाग निकले। इस प्रकार ७ जून को कानपुर के अन्दर, जो करीब एक हजार अंगरेज थे, उनमें से २७ जून की शाम को केवल चार आदमी अपनी फुरती से और १२५ स्त्रियाँ और बच्चे नाना की उदारता से जिन्दा बचे।

* Forrest's *State Papers*, also Kaye and Malleeson's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 258.

† Kaye and Malleeson's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 263.

इसमें सन्देह नहीं सतीचौरा घाट का हत्याकाण्ड किसी तरह भी जायज़ नहीं कहा जा सकता। निःशस्त्र लोगों पर वार करना युद्ध के सदाचार में भी क्षमत्व नहीं है। इसके अतिरिक्त नाना ने इन लोगों से प्राणदान का वादा कर लिया था। दूसरी ओर हमें यह स्मरण रखना होगा कि सतीचौरा घाट के अत्याचार की जिम्मेदारी एक दर्जे तक जनरल नील और उसके साथियों के उन कहीं अधिक वीभत्स अत्याचारों पर है, जिन्होंने कानपुर के हिन्दोस्तानी सिपाहियों के मस्तकों को ठिकाने रहने नहीं दिया।

नाना ने कैदी अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों के साथ जिस प्रकार का व्यवहार किया उसके विषय में अनेक भूठी अफ़वाहें उन दिनों इंगलिस्तान और भारत में उड़ाई गईं। हम इन अफ़वाहों को दोहराना उचित नहीं समझते। इतना कह देना काफी है कि बाद में अंगरेज़ों ही का एक कमीशन इन इलज़ामों की जाँच करने के लिए नियुक्त हुआ। इस कमीशन ने पूरी जाँच के बाद फैसला दिया कि पूर्वोक्त तमाम अफ़वाहें बिल्कुल भूठी थीं।”*

जस्टिन मैकार्थी इन अफ़वाहों के विषय में लिखता है—

“लोगों की क्रोधाग्नि को इस तरह की अफ़वाहें उड़ा उड़ा कर भड़काया गया कि आम तौर पर स्त्रियों की बेइज़्जती की गई और निर्दयता के साथ उनके अंग भंग किए गए। सौभाग्यवश ये अफ़वाहें झूठी थीं x x x सच

* Muir's Report and Wilson's Report. Also Kaye and Malleson's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 267.

यह है कि सिवाय उनसे नाज पिसवाने के और किसी तरह का भी अपमान अंगरेज़ स्त्रियों का नहीं किया गया। X X X सामान्य अर्थों में किसी स्त्री पर अत्याचार नहीं किया गया। न किसी अंगरेज़ स्त्री के कपड़े उतारे गए, न किसी की बेइज़्जती की गई और न जान बूझ कर किसी को अंग भंग किया गया।”*

इतना ही नहीं, सतीचौरा घाट के हत्याकाण्ड की शुरु की गड़बड़ में कुछ हिन्दोस्तानी सिपाही चार अंगरेज़ स्त्रियों को पकड़ कर ले गए थे। समाचार पाते ही नाना ने तुरन्त उन सिपाहियों को कड़ा दण्ड दिया और चारों अंगरेज़ स्त्रियों को उनसे वापस ले लिया।†

कैदी स्त्रियों और बच्चों के साथ नाना का व्यवहार अत्यन्त उदार था। उन्हें खाने के लिए चपाती और गोश्त दिया जाता था। कोई कड़ी मेहनत उनसे न ली जाती थी। बच्चों को दूध मिलता था और दिन में तीन तीन बार उन्हें हवा खाने के लिए बाहर आने की इजाज़त थी। स्वयं जनरल नील अपनी रिपोर्ट में लिखता है—

“शुरु में उन्हें बुरा खाना दिया गया, किन्तु बाद में उन्हें अच्छा खाना

* “The elementary passions of manhood were inflamed by the stories, happily not true, of the wholesale dishonour and barbarous mutilation of women As a matter of fact, no indignities, other than that of the compulsory corn grinding, were put upon the English ladies. . . . There were no outrages, in the common acceptance of the term, upon women. No English women were stripped or dishonoured, or purposely mutilated.”
—*History of Our Own Times*, vol. iii, by Justin Mc Carthy.

† Sir George Trevelyan's *Cawnpore*. p. 299.

दिया जाने लगा, साफ़ कपड़े मिलने लगे और खिदमत के लिए नौकर दे दिए गए।”*

इनमें से केवल कुछ स्त्रियों को अपने खाने भर के लिए थोड़ा सा आटा पीसना पड़ता था।

अब हम इन अंगरेज़ कैदियों से हट कर कानपुर के शेष वृत्तान्त की ओर आते हैं।

२८ जून सन् १८५७ को कानपुर नगर, छावनी और आस पास के इलाके पर से अंगरेजी राज के समस्त चिन्ह मिटाने के पश्चात् नाना साहब ने एक बड़ा दरबार किया। छै पलटन पैदल, दो पलटन सवार, अनेक ज़मींदार और असंख्य जनता इस दरबार में उपस्थित थी। सब से पहले सम्राट बहादुरशाह के नाम पर १०१ तोपों की सलामी हुई। इसके बाद २१ तोपों की सलामी नाना साहब की हुई। नाना साहब ने सिपाहियों और जनता को धन्यवाद दिया। एक लाख रुपए बतौर इनाम के फ़ौज में बाँटे गए। दरबार के बाद नाना साहब कानपुर से बिठूर गया। बिठूर में पहली जुलाई सन् १८५७ को नाना साहब धुन्धपन्त विधिवत् पेशवा की गद्दी पर बैठा। इस प्रकार सन् १८५७ के विद्रोह में क्षण भर के लिए पेशवा की मृतप्राय सत्ता फिर से जीवन लाभ करती हुई दिखाई देने लगी।

* “At first they were badly fed but afterwards they got better food and clean clothing and servants to wait upon.”—General Neill's Report.



नाना साहब

उस चित्र से जो नवाब-अवध के चित्रकार मि० बीची ने सन् १८५०
में बिहूर जाकर खींचा था ।

[From A Narrative of the Indian Revolt, London 1858.]

एक पिछले अध्याय में लिखा जा चुका है कि किस प्रकार लार्ड डलहौज़ी ने राजा गंगाधर राव के दत्तक पुत्र भाँसी और रानी लक्ष्मीबाई बालक दामोदर राव के उत्तराधिकार को नाजायज़ कह कर भाँसी की रियासत को ज़बरदस्ती कम्पनी के राज में मिला लिया था।

गंगाधरराव की मृत्यु के बाद १३ मार्च सन् १८५४ को भाँसी की रियासत के कम्पनी के राज में मिलाए जाने का एलान प्रकाशित हुआ। समस्त प्रजा में इससे घोर असन्तोष उत्पन्न हो गया। विधवा रानी लक्ष्मीबाई ने, जिसकी आयु उस समय केवल १८ वर्ष की थी और जिसने अपने बालक पुत्र की ओर से आश्चर्यजनक योग्यता के साथ राज का सारा कार्य सँभाल लिया था, एतराज़ किया। किन्तु कोई सुनाई न हो सकी। इतना ही नहीं, राजा गंगाधरराव मरते समय करीब साढ़े चार लाख रुपए के जवाहरात और ढाई लाख रुपए नक़द छोड़ गया था। लार्ड डलहौज़ी ने इस समस्त सम्पत्ति को ज़बरदस्ती छीन कर यह कह कर कम्पनी के खज़ाने में जमा कर लिया कि जब दामोदरराव बालिग़ होगा तो यह धन उसे दे दिया जायगा। डलहौज़ी ने स्पष्ट लिखा कि दत्तक पुत्र को बालिग़ होने पर पिता की इस निजी सम्पत्ति को प्राप्त करने का अधिकार होगा, किन्तु गद्दी का कभी नहीं।❀

रानी लक्ष्मीबाई को इस समस्त सम्पत्ति और राज के बदले

में पाँच हजार रुपए मासिक पेनशन देने का वादा किया गया ।

रानी लक्ष्मीबाई
पर आरोप

रानी ने तिरस्कार के साथ अस्वीकार किया ।
विधवा रानी के साथ एक इससे भी कहीं
अधिक अन्याय किया गया । इतिहास लेखक

सर जॉन के लिखता है—

“उस पर दोषारोपण किए गए, क्योंकि हम लोगों में यह एक रिवाज है कि X X X पहले किसी देशी नरेश का राज ले लेते हैं और फिर पदच्युत नरेश या उसके उत्तराधिकारी की झूठी बुराईयाँ करने लगते हैं । कहा गया कि रानी लक्ष्मीबाई केवल बच्ची हैं और दूसरों के प्रभाव में रहती हैं । यह भी कहा गया कि रानी को नशे का व्यसन है । यह बात कि रानी केवल बच्ची नहीं हैं उसकी बातचीत से पूरी तरह साबित है; और उसके नशा करने की बात बिल्कुल झूठी कल्पना मालूम होती है ।”*

निस्सन्देह किसी भी मनुष्य के साथ और विशेषकर किसी स्त्री के साथ इससे बढ़ कर अन्याय नहीं किया जा सकता । रानी लक्ष्मीबाई के व्यक्तिगत चरित्र के विषय में हम केवल एक विद्वान् अंगरेज की राय और उद्धृत करते हैं, जो उस समय लक्ष्मीबाई के रहन सहन

* “ Evil things were said of her, for it is a custom among us to take a Native ruler's kingdom and then to revile the deposed ruler or his would be successor. It was alleged that the Rani was a mere child under the influence of others, and that she was much given to intemperance. That she was not a mere child was demonstrated by her conversation; and her intemperance seems to be a myth. ”—Sir John Kaye's *History of the Sepoy War*, vol. iii, pp. 361-62.

इत्यादि से पूरी तरह परिचित था। मेजर मैलकम ने १६ मार्च सन् १८५५ को गवरनर जनरल के नाम एक सरकारी पत्र में लिखा —“रानी का चरित्र अत्यन्त उच्च है और भाँसी में हर मनुष्य उसे अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखता है।”*

उस समय के समस्त इतिहास में साबित है कि लक्ष्मीबाई वास्तव में अत्यन्त सुचरित्र, योग्य, वीर और असाधारण बुद्धि की स्त्री थी।† युद्धविद्या में वह अत्यन्त निपुण थी। उसके माता पिता बिठूर में पेशवा के दरबार में रहा करते थे। लिखा है कि बिठूर के दरबार में कुमारी लक्ष्मीबाई अत्यन्त सर्वप्रिय थी। छोटी आयु में ही वह निशानेबाज़ी और शस्त्रों के उपयोग में अत्यन्त निपुण हो गई थी। सान वर्ष की अल्पावस्था में वह घोड़े की बड़ी दक्ष सवार थी और प्रायः नाना साहब और उसके भाइयों के साथ शिकार के लिए जाया करती थी।

वीर लक्ष्मीबाई भाँसी की गद्दी के इस अपमान और भाँसी की प्रजा के साथ इस अन्याय को सहन न कर सकी। सन् ५७ के स्वाधीनता संग्राम की वह एक मुख्यतम नेत्री थी। पूर्व निश्चय के अनुसार ४ जून सन् १८५७ को भाँसी में क्रान्ति प्रारम्भ हुई। कम्पनी की सेना सन् १८५४ के एलान के बाद ही भाँसी पहुँच

* “... bears a very high character and is much respected by every one at Jhansi.”—*Jhansi Papers*, p. 28.

† D. B. Parasnis' *Life of Lakshmi Bai*.

चुकी थी और कम्पनी का राज कायम हो चुका था। ४ जून को सब से पहले १२ नं० देशी पलटन के हवलदार गुरुबख्श सिंह ने क़िले के मैगज़ीन और खज़ाने पर क़ब्ज़ा कर लिया। उसके बाद रानी लक्ष्मीबाई ने महल से निकल कर शस्त्र धारण कर स्वयं क्रान्तिकारी सेना का सेनापतित्व ग्रहण किया। उस समय लक्ष्मीबाई की आयु केवल २१ वर्ष की थी। ७ जून को रिसालदार काले खाँ और तहसीलदार मोहम्मदहुसैन ने रानी की ओर से क़िले पर हमला किया। क़िले के अन्दर की हिन्दोस्तानी सेना ने भी साथ दिया। ८ जून को कहा जाता है कि रिसालदार काले खाँ की आज्ञा से क़िले के अन्दर के ६७ अंगरेज़, जिनमें पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे शामिल थे, क़त्ल कर दिए गये। इतिहास लेखक सर जॉन के लिखता है कि इस हत्याकाण्ड से रानी लक्ष्मीबाई का कोई सम्बन्ध न था, न उसका कोई आदमी मौके पर मौजूद था और न उसने इसकी इजाज़त दी थी।* अन्त में उसी दिन भाँसी पर से कम्पनी का राज हटा दिया गया। बालक दामोदर के वली की हैसियत से रानी लक्ष्मीबाई फिर से भाँसी की गद्दी पर बैठी। कम्पनी के भण्डे की जगह दिल्ली सम्राट की पताका भाँसी के क़िले पर फहराने लगी। सारी रियासत में ढिंढोरा पिटवा दिया गया — “ख़ल्क़ खुदा का, मुल्क बादशाह (अर्थात् दिल्ली के बादशाह) का, हुकुम रानी लक्ष्मीबाई का।”

सन् ५७-५८ के सबसे अधिक भयङ्कर संग्राम अवध की भूमि

* *History of the Sepoy War*, by Sir John Kaye, vol. ii, p. 369.

पर लड़े गए। अवध की सल्तनत के अंगरेज़ी राज में मिलाए जाने और अवध निवासियों के दुखों और शिकायतों का वर्णन एक पिछले अध्याय में किया जा चुका है। अवध के ज़मींदारों, वहाँ की पुलिस, वहाँ की फ़ौज और करीब करीब समस्त जनता ने स्वाधीनता के उस महायुद्ध की सफलता पर अपना सर्वस्व लगा दिया था। वास्तव में क्रान्ति की तैयारी कहीं भी इतनी अच्छी न थी जितनी अवध में। हजारों मौलवी और हजारों पण्डित एक एक बारग और एक एक गाँव में आगामी युद्ध के लिए लोगों को तैयार करते फिरते थे।

सर हेनरी लॉरेन्स अवध का चीफ़ कमिश्नर था। लखनऊ छावनी के कुछ सिपाही मङ्गल पाँडे की फाँसी सात नम्बर पलटन के बाद अपने आपको न रोक सके। मई के अख़्त विहीन प्रारम्भ में वहाँ पर अंगरेज़ों के कुछ मकान जला दिए गए। चार्ल्स बॉल लिखता है कि ३ मई को सात नम्बर पलटन के सात उच्छृङ्खल सिपाही लेफ़्टिनेण्ट मीकम के ख़ेमे में पहुँचे और कहने लगे—“हमें आपसे कोई ज़ाती भगड़ा नहीं, किन्तु आप फिरङ्गी हैं इसलिए हम आपको मार डालेंगे!” भयभीत किन्तु चतुर लेफ़्टिनेण्ट ने उनसे दया की प्रार्थना की और कहा—“मुझ एक ग़रीब आदमी को मारने से आपको क्या लाभ होगा, आपकी शत्रुता तो इस राज से है।” सिपाहियों ने दया में आकर उसे छोड़ दिया, किन्तु यह समाचार तुरन्त सर हेनरी लॉरेन्स

तक पहुँचा। उसने एक चाल से सात नम्बर पलटन के हथियार रखा लिए।

१२ मई को सर हेनरी लॉरेन्स ने एक बहुत बड़ा दरबार किया, जिसमें उसने हिन्दोस्तानी ज़बान में एक ज़ोर-हेनरी लॉरेन्स का दरबार दार वक्तृता दी। इस वक्तृता में उसने हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों को कम्पनी सरकार की वफ़ादारी का महत्व दर्शाया। उसने मुसलमान सिपाहियों से कहा कि पञ्जाब में महाराजा रणजीतसिंह ने इसलाम धर्म की कितनी तौहीन की थी, और हिन्दुओं को याद दिलाया कि सम्राट औरङ्गज़ेब ने हिन्दू धर्म पर किस तरह कुठार चलाया था, और दोनों को बतलाया कि केवल अंगरेज़ ही एक दूसरे से तुम्हारी रक्षा कर सकते हैं। इसके बाद उसने अपने ख़ैरखाह सिपाहियों को दुशाले, तलवारें और पगड़ियाँ इनाम में दीं। किन्तु इन सब बातों का प्रभाव और अधिक बुरा हुआ। हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों को और पूरी तरह दिखाई दे गया कि अंगरेज़ किस प्रकार हमें पुराने भगड़ों की याद दिला कर और एक दूसरे से लड़ाकर दोनों को पराधीन बनाए रखना चाहते हैं।

१३ मई को मेरठ के विप्लव का समाचार लखनऊ पहुँचा। १४ मई को दिल्ली की स्वाधीनता की ख़बर आई। लॉरेन्स की क़िलेबन्दी सर हेनरी लॉरेन्स ने अब लखनऊ शहर के निकट दो स्थानों में ख़ास तौर पर क़िलेबन्दी शुरू कर दी, ताकि आवश्यकता के समय लखनऊ के अंगरेज़ इनमें

आश्रय ले सकें—एक मच्छीभवन और दूसरे रेजिडेन्सी। लखनऊ की समस्त अंगरेज़ स्त्रियाँ और बच्चे इन स्थानों में पहुंचा दिए गए और समस्त अंगरेज़ पुरुषों को फौजी क़वायद सीखने का हुक़म हो गया।

अवध की सरहद नैपाल से मिली हुई है। सर हेनरी लॉरेन्स ने विशेष दूत भेज कर नैपाल दरबार के प्रधान मन्त्री सेनापति जङ्गबहादुर से प्रार्थना की कि आप इस आपत्ति में सेना से अंगरेज़ों की सहायता कीजिये।

ठोक ३० मई की रात को ६ बजे छावनी की तोप छुटी। क्रान्ति के प्रारम्भ होने का यही चिह्न नियत था। सबसे पहले ७१ नम्बर पलटन की बन्दूकों की आवाज़ सुनाई दी। अंगरेज़ों के बँगले जला दिए गए। जो अंगरेज़ मिला, मार डाला गया। ३१ मई को सवेरे हेनरी लॉरेन्स ने कुछ गोरी सेना और ७ नम्बर देशी सवार पलटन साथ लेकर विप्लवकारियों पर हमला किया। उस समय तक ७ नम्बर पलटन अंगरेज़ों की ओर थी, किन्तु मार्ग ही में इस पलटन ने भी कम्पनी का झण्डा फेंक कर हरा झण्डा हाथ में ले लिया। लॉरेन्स को उन्हें छोड़ कर अपने थोड़े से अंगरेज़ सिपाहियों सहित रेजिडेन्सी में आकर शरण लेनी पड़ी। ३१ मई की शाम तक ४८ और ७१ नम्बर पैदल और ७ नम्बर सवार और अन्य देशी पलटनों में भी स्वाधीनता का हरा झण्डा फहराने लगा।

लखनऊ से करीब ५० मील उत्तर-पश्चिम में सीतापुर है। वहाँ
 पर कम्पनी की तीन देशी पलटनें थीं। ३ जून
 सीतापुर की
 स्वाधीनता को इन पलटनों ने कम्पनी का झण्डा फेंक कर

हरा झण्डा हाथ में ले लिया। उन्होंने ख़ज़ाने
 पर कब्ज़ा कर लिया और जो अंगरेज़ मिला उसे मार डाला। कहा
 जाता है कि २४ अंगरेज़ सीतापुर में मारे गए और कुछ ने आस
 पास के ज़मींदारों के यहाँ जाकर पनाह ली।

सीतापुर को स्वाधीन करने के बाद वहाँ के सिपाही फ़रुखा-
 बाद पहुंचे। कम्पनी ने फ़रुखाबाद के नवाब
 फ़रुखाबाद की
 स्वाधीनता तफ़ज़ज़लहुसेन खाँ को गद्दी से उतार दिया

था। फ़रुखाबाद के क़िले में बहुत से अंगरेज़ों
 ने पनाह ले रखी थी। एक खासे ज़बरदस्त संग्राम के बाद
 क्रान्तिकारियों ने फ़रुखाबाद के क़िले पर कब्ज़ा कर लिया, वहाँ
 के समस्त अंगरेज़ों को मार डाला और पदच्युत नवाब को फिर से
 वहाँ की गद्दी पर बैठा दिया। पहली जुलाई तक फ़रुखाबाद की
 रियासत में एक भी अंगरेज़ बाक़ी न था।

मोहम्मदी, मालन, बहरायच, गोंडा, सिकरोरा, मेलापुर
 इत्यादि आस पास के समस्त इलाक़े १० जून
 अवध की
 स्वाधीनता सन् ५७ तक पूरी तरह आज़ाद हो गए। स्थान
 स्थान पर अनेक अंगरेज़ मारे गए, अनेक भाग

निकले, और कुछ को आस पास के ज़मींदारों ने अपने यहाँ
 शरण दी।

यह बात खास तौर पर ध्यान देने योग्य है कि अवध के जिन जमींदारों और ताल्लुकेदारों ने इस अवसर पर स्वाधीनता के संग्राम में खुले भाग लिया, उनमें से अनेक ने अपने महलों के अन्दर अंगरेजों अफसरों और बच्चों को पनाह देने में बड़ी उदारता दिखाई। इस समय के बचे हुए अनेक अंगरेजों के पत्रों और रिपोर्टों में इसका जिक्र आता है।

अवध के पूर्वी भाग में फैजाबाद का नगर सब से मुख्य था। सर हेनरी लॉरेन्स ने स्वीकार किया है कि फैजाबाद जिले के ताल्लुकेदारों के साथ अंगरेजों ने भारी अन्याय किया था। कुछ की पूरी जागीरें जब्त कर ली गई थीं और कुछ के आधे गाँव छीन लिए गए थे।* मौलवी अहमदशाह, जिसका कुछ परिचय हम ऊपर दे आए हैं, इन्हीं पदच्युत ताल्लुकेदारों में से था। अवध की सत्तनत के छिनने के समय से मौलवी अहमदशाह ने अपना सारा समय इस स्वाधीनता महायुद्ध की तैयारी में लगा रक्खा था। फैजाबाद से लखनऊ और आगरे तक वह बराबर दौरे करता रहता था। क्रान्ति पर उसने अनेक वक्तृताएँ दीं और अनेक पत्रिकाएँ लिखीं। अंगरेजों को जब इसका पता चला, उन्होंने मौलवी अहमदशाह की गिरफ्तारी की आज्ञा दी। अवध की पुलिस ने उसे गिरफ्तार करने से इनकार किया इसलिए फौज भेजनी पड़ी। अहमदशाह पर बगावत का मुकदमा कायम किया गया। उसे फाँसी का हुकुम

सुना दिया गया, और फाँसी की तारीख तक के लिए फ़ैज़ाबाद जेल में बन्द कर दिया गया।

मौलवी अहमदशाह की गिरफ्तारी ने फ़ैज़ाबाद के इलाके भर में आग लगा दी। फ़ैज़ाबाद के शहर में उस समय दो पैदल पलटन, कुछ सवार और कुछ तोपखाना था। तुरन्त फ़ैज़ाबाद के सिपाहियों

फ़ैज़ाबाद की
स्वाधीनता

और जनता ने मिल कर आज़ादी का झण्डा खड़ा कर दिया। परेड के ऊपर देशी सिपाहियों ने अपने अंगरेज़ अफ़सरों से साफ़ कह दिया कि इस समय के बाद हम केवल अपने हिन्दोस्तानी अफ़सरों की आज्ञा मानेंगे। सूबेदार दलीपसिंह ने फ़ौरन् आगे बढ़ कर तमाम अंगरेज़ अफ़सरों को कैद कर लिया। जेलखाने की दीवारें तोड़ दी गईं। मौलवी अहमदशाह की बेड़ियाँ काट डाली गईं। फ़ैज़ाबाद के समस्त सिपाहियों और जनता ने मौलवी अहमदशाह को अपना नेता चुना। मौलवी अहमदशाह ने फ़ैज़ाबाद के सारे अंगरेज़ों को लिख भेजा कि आप सब लोग फ़ौरन् फ़ैज़ाबाद छोड़ दीजिए। उसने सब अंगरेज़ों को किश्तियों में बैठा कर फ़ैज़ाबाद से रवाना कर दिया। उन्हें मार्ग के लिए खाने पीने का सामान और कुछ सफ़र खर्च तक दे दिया गया। फ़ैज़ाबाद शहर में शान्ति कायम कर दी गई। ६ जून को सुबह शहर और आस पास के इलाके में एलान कर दिया गया कि कम्पनी की हुक्मत खत्म हो गई और वाजिदअली शाह की हुक्मत फिर से कायम हो गई।

शाहगञ्ज के ताल्लुकदार राजा मानसिंह को इससे पूर्व
 फ़ैजाबाद की अहिंसारमक क्रान्ति मालगुजारी के कुछ भगड़े में अंगरेज़ कैद कर
 चुके थे। मानसिंह इस समय विप्लव के नेताओं
 में से था; फिर भी उसने विप्लव के अन्य नेताओं
 की इजाज़त से २६ अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों
 को अपने क़िले के अन्दर अन्त तक सुरक्षित रक्खा। मौलवी
 अहमदशाह की आज्ञा के अनुसार ख़ास फ़ैजाबाद के शहर में एक
 भी अंगरेज़ नहीं मारा गया।

फ़ैजाबाद के बाद ६ जून को सुलतानपुर और १० जून को
 सुलतानपुर की स्वाधीनता सालोनी में स्वाधीनता का झण्डा फहराने लगा।
 सालोनी के ज़मींदार सरदार रुस्तमशाह और
 काला के राजा हनुमन्तसिंह दोनों ने प्रतिज्ञा
 कर ली थी कि बिना अंगरेज़ी राज को हिन्दोस्तान से निकाले
 विश्राम न लेंगे। फिर भी इन दोनों भारतीय नरेशों ने आश्रित
 अंगरेज़ों और उनके बाल बच्चों के साथ असाधारण उदारता का
 व्यवहार किया।

राजा हनुमन्तसिंह के विषय में इतिहास लेखक मॉलेसन
 लिखता है—

राजा हनुमन्तसिंह “इस उदार राजपूत की अधिकांश जागीर अंगरेज़ों
 की नई लगान पद्धति के कारण छीनी जा चुकी थी। वह इस अन्याय और
 अपमान को बहुत महसूस करता था। फिर भी वह स्वभाव से इतना उदार
 था कि जिस क्रौम ने उसको क़रीब क़रीब बरबाद कर दिया था उस क्रौम के

भागो हुए अफ़सरों के साथ वह वैसा ही बरताव करता था जैसा किसी भी दुखित मनुष्य के साथ । उसने मुसीबत में उनकी सहायता की, उसने उन्हें उनके स्थानों तक सुरक्षित पहुँचा दिया । किन्तु जब बिदा होते समय कप्तान बैरो ने राजा हनुमन्तसिंह से कहा कि—‘मुझे आशा है, आप इस विप्लव के शान्त करने में अंगरेजों को मदद देंगे’ तो राजा हनुमन्तसिंह सीधा खड़ा हो गया और बोला—‘साहब, तुम्हारे मुल्क के लोग हमारे मुल्क में घुस आए और उन्होंने हमारे बादशाह (वाजिदअली शाह) को निकाल दिया । तुमने अपने अफ़सरों को ज़िलों में भेजा ताकि वे पुराने रईसों और ज़मींदारों के पट्टों की जाँच करें । एक बार मैं तुमने मुझसे वे सब ज़मीनें छीन लीं जो अनन्त काल से मेरे कुटुम्ब में चली आती थीं । मैंने सह लिया । अचानक तुम पर आक्रमण आई, तुमने मुझे बरबाद किया था और तुम मेरे ही पास आए । मैंने तुम्हें बचा दिया । किन्तु अब—अब मैं अपनी सेना जमा करके लखनऊ जा रहा हूँ और तुम्हें मुल्क से बाहर निकालने की कोशिश करूँगा ।’ ”

इतिहास से पता चलता है कि उस समय अवध के अन्दर अनेक ही हिन्दू और मुसलमान हनुमन्तसिंह मौजूद थे, जिनमें जितना ज़बरदस्त स्वाधीनता का प्रेम था उतनी ही ज़बरदस्त वीरोचित उदारता भी थी ।

सारांश यह कि ३१ मई और १० जून के बीच केवल लखनऊ शहर के एक भाग को छोड़ कर समस्त अवध अंगरेजी राज के चंगुल से निकल गया । प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता फ़ॉरेस्ट लिखता है—

अवध निवासियों
की उदारता

* Malleon's *Indian Mutiny*, vol. iii, p. 273. (footnote).

“इस प्रकार दस दिन के अन्दर अवध से अंगरेज़ी राज स्वप्न की तरह मिट गया। उसका कोई अवशेष तक बाक़ी न रहा। फ़ौज ने हमारे विरुद्ध विद्रोह किया। जनता ने पराधीनता की बेड़ियाँ तोड़ कर फेंक दीं, किन्तु उनमें से किसी ने बदला नहीं लिया, किसी ने अन्याय नहीं किया। एक दो अपवादों को छोड़ कर शेष समस्त वीर और विद्रोही जनता ने भागते हुए अंगरेज़ों के साथ स्पष्ट दयालुता का व्यवहार किया। अवधनिवासियों के जिन शासकों (अर्थात् अंगरेज़ों) ने अपनी सत्ता के दिनों में, अत्यन्त अच्छी (?) नीयत से अनेक लोगों के साथ घोर अन्याय किया था उन शासकों का जब पतन हो गया तो अवधनिवासियों ने उनके साथ अपने व्यवहार में उच्च श्रेणी की उदारता और दयालुता बरती। अवध निवासियों के ये गुण साफ़ चमकते हुए दिखाई दे रहे थे।”*

लॉर्ड डलहौज़ी का बयान है कि वाजिदअली शाह के अत्याचारों से अवध की प्रजा दुखी थी ! किन्तु जिस प्रकार वाजिदअली शाह की सर्व प्रियता सन् ५७ में समस्त अवध के ज़मींदारों, जागीरदारों, राजाओं, सिपाहियों, किसानों, सौदागरों, सारांश यह कि समस्त हिन्दू और मुसलमानों ने मिल कर वाजिद

* “ Thus in the course of ten days, the English administration in Oudh vanished like a dream and left not a wreck behind. The troops mutinied, the people threw off their allegiance. But there was no revenge, no cruelty. The brave and turbulent population, with a few exceptions, treated the fugitives of the ruling race with marked kindness, and the high courtesy and chivalry of the people of Oudh was conspicuous in their dealings with their fallen masters who, in the days of their power, had, from the best (?) of motives, inflicted on many of them a grave wrong”—Sir George W. Forrest's *State Papers*, vol. ii, p. 37.

अली शाह को फिर से अवध के सिंहासन पर बैठाने के लिए दस दिन के अन्दर अंगरेजी राज को उखाड़ कर फेंक दिया, उससे वाजिदअली शाह के शासन की सर्व प्रियता और कम्पनी के शासन की अप्रियता दोनों का साफ पता चल जाता है। अवध के अन्दर उस समय एक गाँव भी ऐसा न बचा होगा जिसने कम्पनी के झण्डे को फाड़ कर न फेंक दिया हो।

अवध के विविध भागों से ज़मींदारों के सिपाही और स्वयं सेवक
लखनऊ शहर
की स्थिति सहस्रों की संख्या में अब लखनऊ में बेगम हज़रत
महल के झण्डे के नीचे आ आकर जमा होने
लगे। अवध निवासियों की इस आज़ादी की

लड़ाई में बेगम हज़रत महल के अधीन अवध की अनेक स्त्रियां तक मरदाना वेष पहन कर हथियार बांध कर अपने अलग दल बना कर लड़ रही थीं। * लखनऊ शहर का एक भाग अभी तक अंगरेजों के हाथों में था। दो पलटन सिखों की, एक पलटन गोरों की और कुछ तोपखाना इस समय लॉरेन्स के पास था। कानपुर के अंगरेजी क़िले का मोहासरा उस समय जारी था। कानपुर में अंगरेजों के हारने का समाचार २८ जून को लखनऊ पहुँचा। लखनऊ के क्रान्तिकारियों ने अंगरेजों पर हमला करने के लिए चिनहट नामक स्थान पर चढ़ाई की। कानपुर की पराजय का समाचार सुन कर सर हेनरी लॉरेन्स की हिम्मत टूटी हुई थी। २६ जून को लोहे के पुल के पास कम्पनी की सेना जमा हुई। एक अत्यन्त

* *Narrative of the Indian Revolt.* George Vickers. 1858.

घमासान संग्राम हुआ। अन्त में हार कर सर हेनरी लॉरेन्स को पीछे हटना पड़ा। अंगरेजों की तीन तोपें मैदान में रह गईं। सर हेनरी लॉरेन्स को लौट कर रेज़िडेन्सी में आश्रय लेना पड़ा। इसके बाद क्रान्तिकारियों ने मच्छीभवन और रेज़िडेन्सी दोनों को घेर लिया। अंगरेजों ने मच्छीभवन के “मैगज़ीन” को आग लगा दी। मच्छीभवन भी क्रान्तिकारियों के हाथों में आ गया।”

लखनऊ के अन्दर समस्त अंगरेजी सत्ता अब रेज़िडेन्सी के मकान में कैद हो गई। उसमें करीब एक हजार अंगरेज और आठ सौ हिन्दोस्तानी थे। अस्त्र शस्त्र और रसद का सामान काफी था। क्रान्तिकारियों ने चारों ओर से रेज़िडेन्सी को घेरे रक्खा। लखनऊ के शेष नगर और समस्त अवध पर वाजिदअली शाह के पुत्र शाहज़ादे बिरजिस क़द्व की ओर से बेगम हज़रत महल का शासन कायम हो गया।

मॉलेसन लिखता है—

“समस्त अवध ने हमारे विरुद्ध हथियार उठा लिए थे। न केवल बाज़ाब्ता फ़ौज ही, बल्कि पदच्युत नवाब की फ़ौज के साथ हजार आदमी, ज़मींदार, उनके सिपाही, ढाई सौ क़िले—जिनमें से बहुतों पर भारी तोपें लगी हुई थीं—सब के सब हमारे विरुद्ध खड़े हो गए। इन लोगों ने कम्पनी के शासन को अपने नवाबों के शासन के साथ तोल कर देख लिया था और करीब करीब एक मत से यह फ़ैसला कर दिया था कि उनके अपने नवाबों

का शासन कम्पनी के शासन से बेहतर था । जो पेन्शनर हमारी सेना में काम कर चुके थे उन तक ने साफ़ साफ़ हमारे राज के विरुद्ध फ़ैसला दे दिया था और उनमें से प्रत्येक विप्लव में शामिल था ।”*

* *Red Pamphlet*, by G. B. Malleson.





सम्राट् बहादुर शाह

[सन् १८४४ के एक चित्र से]

‘Two Native Narratives of the Mutiny in Delhi’,
by Charles. T. Metcalf.]

सैंतालीसवाँ अध्याय

दिल्ली, पञ्जाब और बीच की घटनाएँ

किन्तु सन् ५७ की महान् क्रान्ति की योजना करने वालों के लक्ष्य की दृष्टि से समस्त महायुद्ध का मर्मस्थान दिल्ली का महत्व उस समय दिल्ली था। सम्राट बहादुरशाह के नाम पर क्रान्ति प्रारम्भ हुई थी। सम्राट बहादुरशाह ही क्रान्तिकारियों की आशाओं का मुख्य केन्द्र था और बहुत दरजे तक दिल्ली की सफलता पर भारत की स्वाधीनता निर्भर थी। इसीलिए भारत भर के अंगरेजों और क्रान्तिकारियों दोनों की नज़रें दिल्ली पर लगी हुई थीं। समस्त भारत से सेनाएँ दिल्ली में आ आकर जमा हो रही थीं और स्थान स्थान से कम्पनी के खजाने ला लाकर सम्राट बहादुरशाह के कदमों पर रख देती थीं। इसी प्रकार अंगरेजों ने भी दिल्ली को फिर से विजय करने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा

रक्खी थी। किन्तु दिल्ली के महत्वपूर्ण संग्रामों को वर्णन करने से पहले हमें दिल्ली के उत्तर पश्चिम में पञ्जाब की ओर एक दृष्टि डालनी होगी; विशेष कर क्योंकि उस ओर से ही अंगरेजों ने दिल्ली पर हमला किया।

लॉर्ड कैनिङ्ग ने मेरठ और दिल्ली के अशुभ समाचार पाते ही एक ओर मद्रास, कलकत्ता, रङ्गून इत्यादि से लॉर्ड कैनिङ्ग की फौज जमा करके जनरल नील के अधीन बनारस तैयारी और एलान और इलाहाबाद की ओर भेजी और दूसरी ओर कमाण्डर-इन-चीफ़ ऐनसन को, जो उस समय शिमले में था, पञ्जाब से सेना जमा करके तुरन्त दिल्ली पर चढ़ाई करने और दिल्ली फिर से विजय करने की आज्ञा दी। इसी समय लॉर्ड कैनिङ्ग ने भारतीय सिपाहियों को सान्त्वना देने के लिए समस्त भारत में एक एलान प्रकाशित करवाया, जिसका सार यह था कि कम्पनी सरकार का विचार न कभी किसी के धर्म में हस्तक्षेप करने का था और न है, सिपाही यदि चाहें तो अपने कारतूस स्वयं बना सकते हैं और जिन लोगों ने कम्पनी का नमक खाया है उनके लिए विलसव में भाग लेना पाप है इत्यादि। किन्तु इस तरह के एलानों का अब क्या प्रभाव हो सकता था।

जनरल ऐनसन को दिल्ली फिर से विजय करने के लिए सेना केवल पञ्जाब से मिल सकती थी। यदि पञ्जाब यदि पञ्जाब क्रान्ति ने उस समय क्रान्ति का उसी प्रकार साथ दिया का साथ देता होता जिस प्रकार अवध और रुहेलखण्ड ने, तो

अंगरेजों के लिए दिल्ली या भारत को फिर से विजय कर सकना सर्वथा असम्भव होता। पञ्जाब का चीफ कमिश्नर सर जॉन लॉरेन्स इस बात को अच्छी तरह समझता था। इसलिए पञ्जाब को और विशेषकर सिखों को उस सङ्कट के समय अंगरेज सरकार का भक्त बनाए रखने के लिए सर जॉन लॉरेन्स ने जो जो उपाय किए वे अत्यन्त महत्वपूर्ण थे।

सिखों को यह समझाया गया कि मुसलमान बादशाह तुम्हारे धर्म पर किस तरह हमले करते रहे हैं और किस सिखों को भड़काना प्रकार औरङ्गजेब ने दिल्ली के अन्दर गुरु तेगबहादुर का सर कलम करवा दिया था। सिखों को बताया गया कि अब तुम्हें अंगरेजों की सहायता से अपने धर्म के शत्रुओं से बदला लेने और दिल्ली के नगर को ज़मीन से मिला देने का मौका मिला है। इतना ही नहीं, वरन् बूढ़े सम्राट बहादुरशाह के नाम से एक जाली एलान उन दिनों जगह जगह दीवारों पर लगा हुआ दिखाई दिया, जिसमें लिखा था कि बहादुरशाह का पहला फ़रमान यह है कि सब सिखों को मार डाला जाय। इतिहास लेखक मेटकाँफ़ लिखता है कि जिस समय यह झूठा एलान प्रकाशित किया गया, ठीक उसी समय बूढ़ा बहादुरशाह हाथी पर बैठ कर दिल्ली की गलियों में अपने मुख से यह एलान करता फिर रहा था कि यह युद्ध केवल फ़िरङ्गियों के साथ है और किसी भी भारतवासी को किसी तरह की हानि न पहुँचाई जाय।

सर जॉन लॉरेन्स की इन चालों का यथेष्ट प्रभाव पड़ा। सम्राट

बहादुरशाह और विस्रव के अन्य नेताओं ने सिखों और सिख राजाओं को अपनी ओर करने के भरसक प्रयत्न सिख सरदारों की सुस्ती और कायरता किए, किन्तु उन्हें सफलता न हो सकी । बहादुरशाह ने अपना एक विशेष दूत ताजुद्दीन पटियाला, नाभा और भींद के राजाओं तथा अन्य सिख सरदारों के पास भेजा । सिख राजाओं से मिलने के बाद ताजुद्दीन ने सम्राट को एक पत्र लिखा, जिसके कुछ वाक्य ये थे :—

“पञ्जाब के सिख सरदार सब सुस्त और कायर हैं । बहुत कम आशा है कि वे क्रान्तिकारियों का साथ दें । ये लोग फ़िरङ्गियों के हाथों के खिलौने बने हुए हैं । मैं स्वयं इन लोगों से एकान्त में मिला । मैंने उनसे बातचीत की और उनके सामने अपना कलेजा पानी कर दिया । मैंने उनसे कहा, ‘आप लोग फ़िरङ्गियों का साथ क्यों देते हैं और मुल्क की आज़ादी के साथ विश्वासघात क्यों करते हैं ? क्या स्वराज में आप इससे अच्छे न रहेंगे ? इसलिए कम से कम अपने फ़ायदे के लिए ही आपको दिल्ली के बादशाह का साथ देना चाहिए !’ इस पर उन्होंने जवाब दिया, ‘देखिए, हम सब मौक़े के इन्तज़ार में हैं । ज्योंही हमें सम्राट का हुकुम मिलेगा हम एक दिन के अन्दर इन काफ़िरो को मार डालेंगे ।’ × × × किन्तु मेरा ख़याल है कि उन पर बिलकुल एतबार नहीं किया जा सकता ।”

कुछ दिनों बाद चन्द सवार सम्राट का सन्देशा लेकर इन सिख राजाओं के पास पहुँचे । इस बीच लॉर्ड कैनिङ्ग और सर जॉन लॉरेन्स के तीर भी सिख राजाओं के दिलों और दिमागों पर चल चुके थे ।

सिख राजाओं ने दिल्ली सम्राट के सन्देशों का तिरस्कार किया और पत्र लाने वाले सवारों को मरवा डाला ।

पञ्जाब की प्रजा को अपनी ओर रखने के लिए सर जॉन लॉरेन्स ने एक और छोटा सा उपाय यह किया कि उसने शुरू ही में पञ्जाब भर में ६ फी सदी पर कम्पनी के नाम से कर्ज लेना शुरू किया । इसके दो नतीजे हुए । एक यह रकम बढ़े सङ्कट के समय कम्पनी के काम आई और दूसरे यह कि पञ्जाब के जिन हजारों साहूकारों ने कम्पनी को कर्ज दिया उन्हें कम्पनी के शासन के बने रहने ही में अपना हित दिखाई देने लगा ।

लखनऊ के क्रान्तिकारी नेताओं का कुछ पत्र व्यवहार उस समय काबुल के अमीर दोस्तमोहम्मद खाँ के साथ जारी था । मालूम नहीं अफ़ग़ानिस्तान में उसके मुकाबले के लिए अंगरेजों ने क्या क्या किया, किन्तु सरहद की मुसलमान कौमों को अपनी ओर रखने के लिए सर जॉन लॉरेन्स ने खूब धन व्यय किया और उनमें प्रचार करने के लिए अनेक मुल्ला नौकर रखे ।

पञ्जाब के अन्दर सिख और गोरी पलटनों के अतिरिक्त हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों की भी अनेक पलटनें थीं । ये लोग राष्ट्रीय क्रान्ति में भाग लेने की कसमें खा चुके थे । इनके अतिरिक्त पञ्जाब के अनेक नगरों की साधारण हिन्दू और मुसलमान

हिन्दोस्तानी
पलटनों से हथियार
रखाया जाना

जनता भी विप्लव के साथ पूरी सहानुभूति रखती थी। इसलिए अब हमें यह देखना होगा कि इन सब के प्रयत्नों को विफल करने के लिए अंगरेज़ अफ़सरों ने क्या क्या उपाय किए और उनमें उन्हें कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई।

पञ्जाब की सब से बड़ी छावनी उन दिनों लाहौर के निकट मियाँमीर में थी। मियाँमीर में हिन्दोस्तानी रॉबर्ट मॉण्टगुमरी सिपाही गोरे सिपाहियों से ठीक चौगुने थे। पञ्जाब की हिन्दोस्तानी सेना ने यह तय कर रक्खा था कि सब से पहले मियाँमीर के सिपाही लाहौर के क़िले पर चढ़ाई करके उस पर क़ब्ज़ा कर लें, और फिर पेशावर, अमृतसर, फ़िलौर और जालन्धर की पलटनें एक साथ क्रान्ति प्रारम्भ कर दें। मियाँमीर की पलटनें रॉबर्ट मॉण्टगुमरी के अधीन थीं। मेरठ का समाचार पाते ही मॉण्टगुमरी सावधान हो गया। उसे अपने एक गुप्तचर द्वारा सूचना मिली कि मियाँमीर के सिपाही भी क्रान्ति के लिए तैयार हैं। तुरन्त १३ मई को सवेरे मॉण्टगुमरी ने करीब एक हजार हिन्दोस्तानी सिपाहियों को परेड पर जमा किया। गोरे सवार तोपखाने सहित उनके चारों ओर खड़े कर दिए गए। सिपाहियों से हथियार रख देने के लिए कहा गया, सिपाहियों ने और कोई चारा न देख, तुरन्त हथियार रख दिए। उसके बाद वे चुपचाप अपनी बारगों में चले आए।

उसी समय एक पलटन गोरों की लाहौर के क़िले में भेजी गई, जिसने वहाँ पहुँच कर वहाँ के तोपखाने की मदद से क़िले के अन्दर

के देशी सिपाहियों से हथियार रखा लिए, उन्हें किले से बाहर बारगों में भेज दिया और लाहौर के किले पर स्वयं कब्ज़ा कर लिया।

निस्सन्देह मॉण्टगुमरी के ठीक समय के साहस और उसकी फुरती ने पंजाब की कम्पनी के हाथों से निकल जाने से बचा लिया और समस्त क्रान्ति की भावी प्रगति पर बहुत बड़ा प्रभाव डाला।

सर जॉन लॉरेन्स लिखता है :—

“यदि पञ्जाब चला जाता तो हम अवश्य बरबाद हो जाते। उत्तरी प्रान्तों तक सहायता पहुँच सकने से बहुत पहले पहले समस्त अंगरेजों की हड्डियाँ धूप में पकी सूखती होतीं। इङ्गलिस्तान कभी उस आफ़त से न पनप सकता था और न एशिया में फिर से अपनी सत्ता को कायम कर सकता था।”*

फ़ीरोज़पुर में कम्पनी का एक बहुत बड़ा मैगज़ीन था। १३ मई को यह देखने के लिए कि वहाँ के सिपाहियों के भाव क्या हैं, अंगरेजों ने उन्हें परेड पर बुलाया। सिपाहियों का व्यवहार इतना सुन्दर रहा कि अंगरेज़ अफ़सरों का सन्देह उन पर से जाता रहा। किन्तु उसी दिन चन्द घण्टे बाद फ़ीरोज़पुर के सिपाहियों ने क्रान्ति शुरू

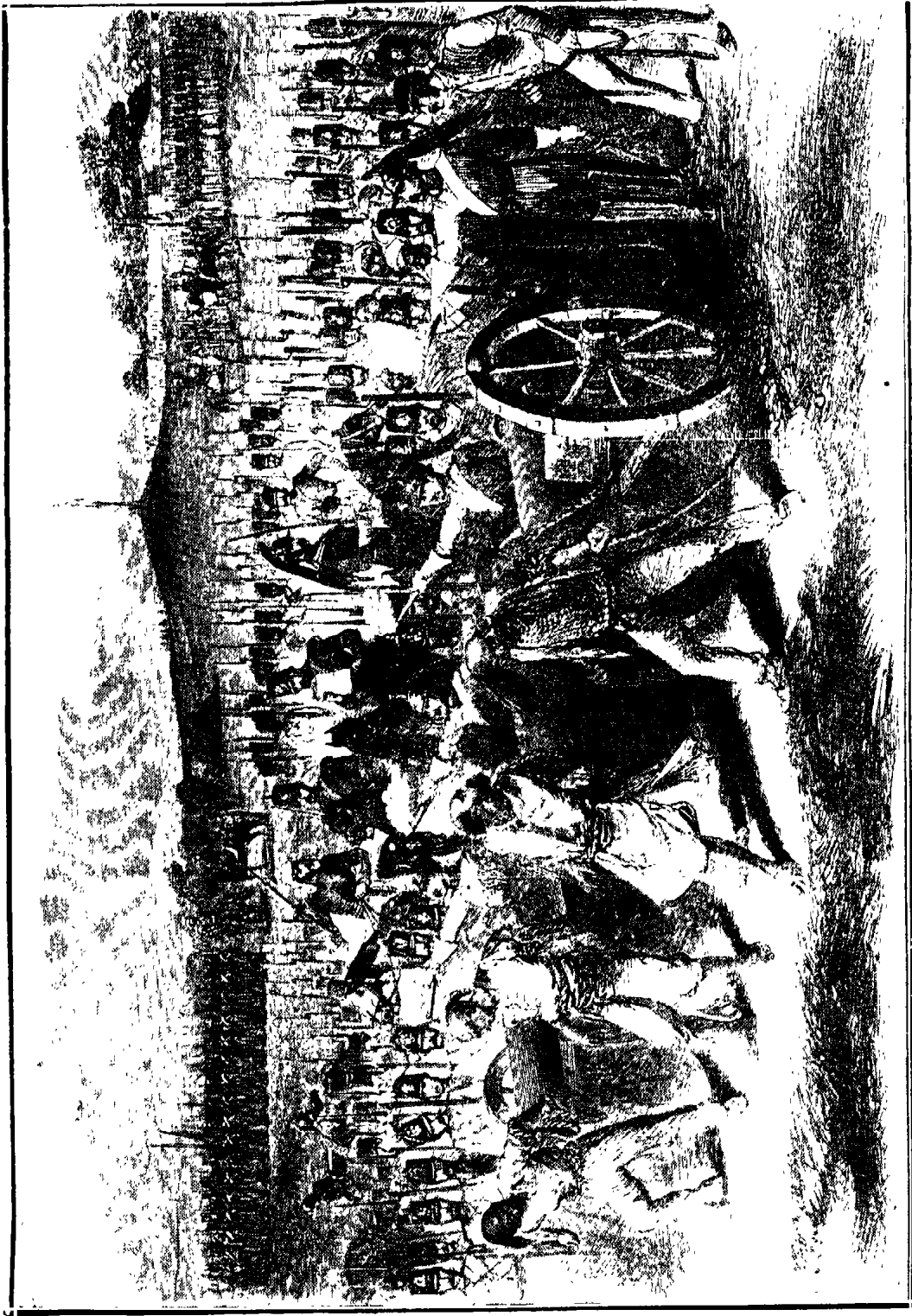
* “Had the Punjab gone, we must have been ruined. Long before reinforcements could have reached the upper provinces, the bones of all Englishmen would have been bleaching in the sun. England could never have recovered from the calamity and retrieved her power in the East.”—*Life of Lord Lawrence*, vol. ii, p. 335.

कर दी। अंगरेज़ों ने मैगज़ीन को आग लगा दी। नगरनिवासियों ने क्रान्ति में पूरा साथ दिया। अंगरेज़ों के मकान जला डाले गए। जो अंगरेज़ मिला, मार डाला गया। इसके बाद वहाँ की भारतीय सेना दिल्ली की ओर रवाना हो गई। गोरी पलटन ने कुछ दूर तक उसका पीछा किया, किन्तु अन्त में उसे असफल फ़ीरोज़पुर लौट आना पड़ा।

पेशावर के विषय में कहा जाता है कि वहाँ पर २४, २७, और ५१ नम्बर पैदल और ५ नम्बर सवार, इन चार पेशावर की देशी पलटनें देशी पलटनों ने २२ मई सन् १८५७ को क्रान्ति प्रारम्भ करने का निश्चय कर रक्खा था। ये चारों पलटनें पेशावर के आस पास अलग अलग छावनियों में थीं। मियाँमीर का समाचार पाते ही पेशावर के अंगरेज़ अफ़सरों ने भेलम में आस पास की गोरी सेना को और अपनी विश्वासपात्र हिन्दोस्तानी पलटनों को जमा किया। २२ मई को प्रातःकाल कुछ गोरी सेना और कुछ तोपें चारों स्थानों पर भेज दी गईं और चारों पूर्वोक्त पलटनों को केवल सन्देह पर घेर कर उनसे हथियार रखा लिए गए।

इन निःशस्त्र सिपाहियों को अपनी बारगों में रहने की आज्ञा दी गई। लिखा है कि २२ तारीख़ की रात को उनमें से कुछ ने नगर की ओर जाना चाहा। डर था कि नगर में या आस पास विस्रव खड़ा न हो जाय। उन्हें रोक दिया गया और तुरन्त

फांसी और तोप
के मुंह से उड़ाया
जाना



जून १८५७ में बगावत के सन्देह पर हिन्दोस्तानी सिपाहियों का तोप के मुंह से उड़ाया जाना।

From "A Vindictive of the Indian Mutiny" London 1859

उनमें से १३ या १४ को इसलिए फाँसी पर लटका दिया गया ताकि दूसरों को सबक मिले।* बारगों के बाहर तोपें लगा दी गईं। फिर उनमें से किसी को भी बाहर निकलने का साहस न हो सका। फिर भी बाद में इनमें से अनेक को फाँसी दी गई और अनेक को तोप के मुँह से बाँध कर उड़ा दिया गया।

पेशावर के निकट होती मरदान में ५५ नम्बर पैदल पलटन थी। इस पलटन के कर्नल स्पाँटिश बुड को करनल स्पाँटिश बुड की आत्महत्या पूरा विश्वास था कि मेरी पलटन विद्रोह न करेगी। पञ्जाब के अन्य अंगरेजों ने आग्रह किया कि इस पलटन से भी हथियार रखा लिए जायँ। कर्नल ने इसका विरोध किया। पञ्जाब सरकार ने हथियार रखा लेने के पक्ष में फैसला दिया। इस पर कहा जाता है कि कर्नल स्पाँटिश बुड ने अपने कमरे में जाकर आत्महत्या कर ली।

पेशावर से गोरी सेना और तोपें इस पलटन से हथियार रखा लेने के लिए भेजी गईं। ५५ नम्बर के कुछ होती मरदान की सिपाहियों ने यह समाचार पाते ही होती सेना का नाश मरदान के किले से निकल कर भागना चाहा, किन्तु कम्पनी की सेना ने, जो उनसे संख्या में अधिक थी और जिसके पास भारी तोपें थीं, उन्हें घेर लिया। १५० को उसी स्थान पर मार डाला गया, कुछ भाग निकले और शेष गिरफ्तार कर लिए गए। लिखा है कि “५५ नम्बर पलटन के कैदियों के साथ

* *Narrative of the Indian Revolt*, p. 35.

अधिक भयङ्कर व्यवहार किया गया, ताकि दूसरों को शिक्षा हो। उनका कोर्ट मार्शल हुआ, उन्हें दण्ड दिया गया और उनमें से हर तीसरे मनुष्य को तोप के मुँह से उड़ाने के लिए चुन लिया गया।”*

एक अंगरेज़ अफ़सर, जो इन लोगों के तोप से उड़ाए जाने के समय उपस्थित था, उस दृश्य को वर्णन करते वीभत्स दृश्य हुए लिखता है—

“उस दिन की परेड का दृश्य विचित्र था। परेड पर लगभग नौ हज़ार सिपाही थे × × × एक चौरस मैदान के तीन ओर फ़ौज खड़ी कर दी गई। चौथी ओर दस तोपें थीं। × × × पहले दस क़ैदी तोपों के मुँह से बाँध दिए गए। इसके बाद तोपखाने के अफ़सर ने अपनी तलवार हिलाई, तुरन्त तोपों की गरज सुनाई दी और धुएँ के ऊपर हाथ, पैर और सिर चारों ओर हवा में उड़ते हुए दिखाई देने लगे। यह दृश्य चार बार दोहराया गया। हर बार समस्त सेना में से एक ज़ोर की गूँज सुनाई देती थी जो दृश्य की वीभत्सता के कारण लोगों के हृदयों से निकलती थी। उस समय से हर सप्ताह में एक या दो बार उसी तरह के प्राणदण्ड की परेड होती रहती है और हमें उसकी इतनी आदत हो गई है कि अब हम पर उसका कोई असर नहीं होता × × ×।”†

* “Of the prisoners of the 55th a more awful example was made. They were tried, condemned, and every third man was selected to be blown away from guns.”—Ibid, p. 36.

† “That parade was a strange scene. There were about nine thousand men on parade; . . . The troops were drawn up on three sides of a square, the fourth side being occupied by ten guns. . . . The first ten of the prisoners were then lashed to the guns, the artillery officer waved his sword,



१० जून सन् १८५७ को पेशावर में हिन्दोस्तानी सिपाहियों का तोप के मुंह से उड़ाया जाना
 “तोपों की आवाज़ के साथ साथ धुँ से ऊपर चारों ओर दोंगें, हाथ और सिर उड़ते हुए दिखाई देते थे”
 —एक अंगरेज़ साक्षी ।

[From the “History of Indian Mutiny”, by Charles Ball.]

इतिहास लेखक के लिखता है कि ५५ नम्बर पलटन के अधिकांश सिपाहियों की निर्दोषता को करनल निकल्सन और सर जॉन लॉरेन्स दोनों ने अपने पत्रों में स्वीकार किया है। फिर भी इस पलटन के छिपे और भागे हुए सिपाही जून और जुलाई के महीनों में बराबर दूर दूर से पकड़ कर लाए जाते थे और इसी प्रकार तोप के मुंह से उड़ाए जाते थे। कभी कभी और भी अधिक वीभत्स तरीकों से उनके प्राण लिए जाते थे।*

विषय के सन्देह पर उन दिनों लोगों का तापों के मुंह से उड़ाया जाना एक साधारण बात थी, जो अनेक स्थानों पर और अनेक बार दोहराई गई।

सन्देह ही पर १० नम्बर सवार पलटन के हथियार रखा लिए गए। इन सब सवारों के घोड़े उनके अपने थे।
 दस नम्बर पलटन की सिन्धु में जल समाधि
 ये घोड़े ज़ब्त कर लिए गए और आठ हजार नक़द रुपए भी, जो सवारों के पास निकले ले लिए गए। लिखा है कि घोड़ों को बेच कर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के खज़ाने में पचास हजार रुपए जमा किए गए।
 सिपाहियों को ज़बरदस्ती किश्तियों में बैठा कर सिन्धु नदी में

you heard the roar of the guns, and above the smoke you saw legs, arms, and heads,—flying in all directions. There were four of these salvoes, and at each a sort of buzz went through the whole mass of the troops, a sort of murmur of horror. Since that time we have had execution parades once or twice a week, and such is the force of habit we now think little of them."—Ibid, p. 36.

* Kaye and Malleeson's *History of the Indian Mutiny*, book vi chap. iv.

कहीं पर भेज दिया गया। मालूम नहीं, उनका अन्त क्या हुआ। एक अंगरेज़ अफ़सर, जो उस समय मौजूद था, लिखता है—“मुझे आशा है कि वहाँ पर उनमें से हर एक माता के पुत्र को तेज़ धार में डूबने का मौका मिल जायगा।”†

पेशावर और उसके पास के इलाक़े में क्रान्तिकारियों को या क्रान्ति के सन्देह पर लोगों को भयङ्कर क्रूर यातनाएँ यातनाएँ दे देकर मारा गया, जिनके विषय में इतिहास लेखक के लिखता है—

“यद्यपि मेरे पास बहुत से पत्र मौजूद हैं जिनमें यह बयान किया गया है कि हमारे अफ़सरों ने किस तरह की वीभत्स और क्रूर यातनाएँ लोगों को पहुँचाई, फिर भी मैं उनके विषय में एक शब्द भी नहीं लिखता, ताकि यह विषय ही अब संसार के सामने न रहे।”*

अब हम पेशावर से हटकर जालन्धर दोआब की ओर आते हैं। जालन्धर, फ़िलौर और लुधियाने की देशी जालन्धर, फ़िलौर और लुधियाना पलटनें चुपचाप, किन्तु दृढ़ता के साथ विद्रोह की तैयारी कर रही थीं। ६ जून को अचानक जालन्धर को फ़ौज ने आधी रात को क्रान्ति का ऐलान किया। ग़ोरो सेना जालन्धर में मौजूद थी, किन्तु देशी

† “... where I expect every mother's son will have a chance of being drowned in the rapids.”—Narrative, p. 38.

* “Though I have plenty of letters with me describing the terrible and cruel tortures committed by our officers, I do not write a word about it, so that this subject should be no longer before the world!”—Kaye's *Sepoy War*, book vi, chap. iv.

फ़ौज इस तरह अचानक बिगड़ी कि गोरी सेना कर्तव्यविमूढ़ हो गई। जालन्धर के सिपाहियों ने वहाँ के अंगरेजों के संहार करने में अपना समय नष्ट नहीं किया। वे तुरन्त दिल्ली की ओर चल दिए।

जालन्धर के सिपाहियों ने अपने में से एक सवार फ़िलौर के सिपाहियों को सूचना देने के लिए भेजा। उसी समय फ़िलौर की देशी पलटन भी बिगड़ खड़ी हुई। इसके बाद जालन्धर के सिपाही फ़िलौर पहुँच गए। दोनों जगह की पलटन एक दूसरे से मिली और फिर दिल्ली की ओर बढ़ चलीं। मार्ग में सतलज नदी थी। जिसके उस पार लुधियाने का नगर था। लुधियाने के अङ्गरेज अफ़सरों को जालन्धर और फ़िलौर के विद्रोह का पता लगने से पहले ही वहाँ के देशी सिपाहियों को इसकी सूचना मिल गई। लुधियाने के अङ्गरेज अफ़सरों ने सतलज के ऊपर का किश्तियों का पुल तोड़ दिया। गोरी और सिख पलटन और महाराजा नाभा की कुछ पलटन सतलज नदी के ऊपर फ़िलौर से आने वाली क्रान्तिकारी सेना को रोकने के लिए जमा हो गईं। क्रान्तिकारियों को जब इसका पता चला तो उन्होंने रात्रि के समय चुपचाप चार मील ऊपर से सतलज को पार करना चाहा। किन्तु अभी उनमें से कुछ ही पार पहुँच पाए थे कि अंगरेजों और सिखों ने उन पर तोपों के गोले बरसाने शुरू कर दिए। रात के करीब दस बजे थे, चाँद के निकलने में अभी दो घण्टे बाकी थे। अंधेरे में क्रान्तिकारियों को यह भी पता न चलता था कि शत्रु की सेना किस ओर है। उनकी तोपें भी अभी नदी को पार न कर पाई थीं, फिर भी

उसी हालत में वे दो घण्टे शत्रु का मुकाबला करते रहे। इतने में किसी सिपाही की एक गोली अंगरेजी सेना के कमाण्डर विलियम्स की छाती में जाकर लगी। वह वहीं पर ढेर हो गया। इसके बाद सुबह तक घमासान संग्राम होता रहा। अन्त में सिखों और अंगरेजों को पीछे हट जाना पड़ा।

विजयी क्रान्तिकारियों ने दोपहर के समय लुधियाने में प्रवेश किया। लुधियाने का नगर पञ्जाब में क्रान्ति का एक विशेष केन्द्र था। नगर भर में उस दिन सर्वत्र क्रान्ति थी। जेलखाना तोड़ दिया गया, अंगरेजी मकान जला दिए गए, सरकारी खजाने पर कब्ज़ा कर लिया गया। इसके पश्चात् जालन्धर, फ़िलौर और लुधियाने की सेना मिल कर स्वाधीनता के उस युद्ध में भाग लेने के लिए दिल्ली की ओर रवाना हो गई।

सन् ५७ की क्रान्ति में पञ्जाब की ओर से यही मुख्य सहायता थी।

पञ्जाब के शासकों को उस समय सबसे अधिक सन्देह पूरबी प्रान्तों के रहने वालों पर था, जिन्हें पञ्जाब में 'हिन्दोस्तानियों' कहते हैं। इसलिए विप्लव के शुरू के दिनों में पञ्जाब के अनेक शहरों और ग्रामों से सहस्रों निर्दोष और प्रतिष्ठित 'हिन्दोस्तानियों' को ज़बरदस्ती पञ्जाब से निर्वासित कर सतलज के इस पार भेज दिया गया। इसके बाद पञ्जाब के अंगरेजों के लिए अपने यहाँ की गोरी और सिख सेनाओं को दिल्ली विजय करने के लिए भेजना और भी आसान हो गया।

अब हम फिर क्रान्ति के प्रधान केन्द्र दिल्ली की ओर आते हैं ।
 हम ऊपर लिख चुके हैं कि लॉर्ड कैनिङ्ग ने दिल्ली
 एनसन के साथ हिन्दोस्तानी जनता का असहयोग
 का समाचार पाते ही कमाण्डर-इन-चीफ़ जनरल
 एनसन को आज्ञा दी कि तुम फ़ौरन दिल्ली पर
 चढ़ाई करके दिल्ली फिर से विजय करो ।

जनरल एनसन शिमले से अम्बाले पहुँचा । अम्बाले पहुँच कर
 उसने दिल्ली पर चढ़ाई करने की तैयारी शुरू की । इस कार्य में
 एनसन को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा और बड़ी देर
 लगी । कारण यह था कि अम्बाले और उसके आस पास का कोई
 हिन्दोस्तानी अंगरेजों को किसी तरह की सहायता देने के लिए
 तैयार न था । एनसन को न गाड़ियाँ मिलती थीं और न मज़दूर,
 न रसद मिलती थी और न चारा । इतिहास लेखक के लिखता है—

हर श्रेणी के भारतवासी हमसे दूर रहे । ये लोग खामोश बैठे हुए इस
 बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि परिस्थिति किस ओर को मुड़ती है । पूँजी
 पतियों से लेकर कुलियों तक सब एक समान हमें सहायता देने में सङ्कोच
 करते थे, क्योंकि उन्हें सन्देह था कि कदाचित् हमारी सत्ता एक दिन के अन्दर
 उखड़ कर फ़िक जाय ।”❀

एक दूसरी कठिनाई एनसन के सामने और थी । अम्बाले और
 दिल्ली के बीच में पञ्जाब की तीन प्रमुख रियासतें
 सिखराजाओं का पटियाला, नाभा और भींद के इलाक़े पड़ते थे ।
 देशद्रोह यदि ये तीनों रियासतें उस समय देश का साथ

दे जातीं तो इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता कि अंगरेजों के लिए दिल्ली फिर से विजय कर सकना सर्वथा असम्भव होता और भारत को भूमि से अंगरेजी राज की जड़ें उस समय वास्तव में निकल कर फिक गई होतीं। यदि पटियाला, नाभा और भींद तटस्थ भी रहते तो भी परिणाम अंगरेजी राज के लिए शायद इतना ही अहितकर होता। किन्तु जनरल ऐनसन और अंगरेजी राज दोनों के सौभाग्य से इन तीनों रियासतों ने उस समय भारतीय क्रान्तिकारियों के विरुद्ध अंगरेजों को धन, जन और माल तीनों की भरपूर सहायता दी। सर जॉन लॉरेन्स और उसके साथियों की नीतिज्ञता के कारण ऐनसन को अपने साथ के लिए पञ्जाब से पर्याप्त अंगरेजी सेना भी मिल गई।

अम्बाले से दिल्ली का रास्ता अब जनरल ऐनसन के लिए साफ हो गया और दिल्ली के क्रान्तिकारियों को पञ्जाब से और अधिक सहायता मिल सकना असम्भव हो गया।

पटियाले के राजा ने अपनी सेना और तोपखाना भेज कर थानेश्वर की रक्षा की। भींद के राजा ने पानीपत की रक्षा का भार अपने हाथ में लिया।

इसके बाद कमाण्डर-इन-चीफ़ ऐनसन अंगरेजी और सिख सेना सहित, जिसमें बहुत सी सेना इन्हीं तीन रियासतों की थी, २५ मई को अम्बाले से दिल्ली की ओर रवाना हुआ। तथापि जनरल ऐनसन का हृदय उस विकट परिस्थिति में भीतर से

कमाण्डर-इन-
चीफ़ ऐनसन की
मृत्यु

घबरा रहा था। मार्ग में २७ मई को हैजे से करनाल में उसकी मृत्यु होगई। सर हेनरी बरनार्ड उसकी जगह कमाण्डर-इन-चीफ़ नियुक्त हुआ।

अम्बाले से दिल्ली तक की यात्रा में अंगरेजी फ़ौज ने जो जो अकथनीय अत्याचार किए, वे किसी अंश में अंगरेजी सेना के जनरल नील के अत्याचारों से कम अमानुषिक अनसुने अत्याचार न थे। मार्ग में असंख्य ऐसे लोगों को, जो पञ्जाब से दिल्ली की ओर जा रहे थे, इस सन्देह में कि वे दिल्ली के क्रान्तिकारियों की सहायता के लिए जा रहे हैं, पकड़ पकड़ कर मार डाला गया। इन लोगों का मारना भी क्षम्य करार दिया जा सकता था। किन्तु एक अंगरेज़ अफ़सर जो उस यात्रा में सेना के साथ था, लिखता है कि अम्बाले से दिल्ली तक मार्ग की जनता के ऊपर अंगरेजी सत्ता का दबदबा फिर से कायम करने के लिये सैकड़ों ग्रामों में हजारों ही निर्दोष ग्रामनिवासी अत्यन्त तीव्र यातनाएँ दे देकर मार डाले गए; उनके सरो से एक एक कर बाल उखाड़े जाते थे, उनके शरीरों को सड़कों से बाँधा जाता था और सब से अन्त में, किन्तु मृत्यु से पहले, भालों और सड़कों के जरिये इन हिन्दू ग्राम निवासियों के मुँह में गाय का मांस ठूस दिया जाता था।*

एक ओर उन्हें ये यातनाएँ दी जाती थीं और दूसरी ओर उनकी आँखों के सामने फाँसियाँ तैयार की जाती थीं। फाँसियाँ

* *History of the Siege of Delhi*, by an Officer who served there.

तैयार हो जाने पर उन्हें इस अधमरी अवस्था में उन फाँसियों पर लटका दिया जाता था।

इनमें से अधिकांश ग्राम निवासियों ने कभी भी अंगरेज़ी राज के विरुद्ध शस्त्र न उठाये थे। इसलिये इन्हें दण्ड देने से पहले तमाशे के लिए एक फ़ौजी अदालत का स्वांग बैठाई जाती थी। जो फ़ौजी अफ़सर जज नियुक्त होते थे वे अपनी नियुक्ति से पहले इस बात की शपथ लेते थे कि हम एक भी कैदी को फाँसी से न बचने देंगे।[॥] इसके बाद ग्राम वासियों की क़तारें दूर तक उनके सामने खड़ी कर दी जाती थीं और तुरन्त फ़ैसला सुना दिया जाता था।

मेरठ की गोरी सेना, जो १० मई को कर्त्तव्य विमूढ़ होगई थी, अब जनरल बरनार्ड की सेना के साथ मिलने के लिए मेरठ से बढ़ी। इन दोनों के मेल से पहले दिल्ली की कान्तिकारी सेना ने आगे बढ़ कर हिन्दन नदी के ऊपर ३० मई सन् १८५७ को मेरठ की अंगरेज़ी सेना पर हमला किया। संग्राम में कान्तिकारी सेना का बाईं ओर का भाग कुछ कमज़ोर पड़ गया। उस ओर उनकी पाँच तोप थीं; अंगरेज़ी सेना ने उन तोपों पर क़ब्ज़ा करना चाहा। कान्तिकारी सेना उस ओर से हट चुकी थी, केवल एक सिपाही तोपों के बीच में छिपा हुआ रह गया था। ठीक उसी समय जब कि कई अंगरेज़ अफ़सर और सिपाही तोपों पर क़ब्ज़ा करने पहुँचे, इस भारतीय

सिपाही ने चुपके से मैगज़ीन में आग लगा दी। कई अंगरेज़ उस भारतीय सिपाही के साथ साथ वहीं पर जल कर खाक हो गए। इतिहास लेखक के इस अज्ञात सिपाही की सूझ और उसकी वीरता की प्रशंसा करते हुए लिखता है—

“इससे हमें यह शिक्षा मिली कि विद्रोहियों में इस प्रकार के वीर और साहसी लोग मौजूद थे जो राष्ट्रीय हित के लिए तरसून प्राण देने को तैयार थे।” *

दिल्ली की सेना उस दिन पीछे लौट गई। अगले दिन ३१ मई को वह मेरठ की सेना का मुकाबला करने के लिए फिर नगर से निकली। दोनों ओर से गोलेबारी होने लगी। लिखा है कि उस दिन अंगरेज़ों की ओर बहुत अधिक जानें गईं। शाम को दिल्ली की सेना अंगरेज़ी सेना को एक बार तितर बितर करके फिर दिल्ली की ओर वापस चली गई।

अगले दिन १ जून को मेजर रीड के अधीन एक गोरखा सेना मेरठ की अंगरेज़ी सेना की सहायता के लिए मौके पर पहुँच गई। अम्बाले से जनरल बरनार्ड के अधीन अंगरेज़ और सिख सेना भी ७ जून को इस सेना से आ मिली। दिल्ली के मोहासरे के लिए

* “It taught us that, among the mutineers, there were brave and desperate men who were ready to court instant death for the sake of the national cause !”—Kaye's *History of the Sepoy War*, vol. ii, p. 138.

बहुत सा सामान महाराजः नाभा की ओर से इन लोगों के पास पहुंचा। इसके बाद यह विशाल संयुक्त सेना दिल्ली के निकट अलीपुर तक पहुँच गई।

दिल्ली की सेना फिर एक बार इस सेना के मुकाबले के लिए निकली। बुन्देलों की सराय के निकट ८ जून सन् १८५७ को सुबह से शाम तक एक भीषण संग्राम हुआ। क्रान्तिकारी सेना का सेनापति उस समय सम्राट बहादुरशाह का एक पुत्र मिरजा मुग़ल था, जिसने शायद जीवन में कभी भी लड़ाई का मैदान न देखा था। दूसरी ओर योग्य से योग्य सेनापति, और सिखों और गोरखों की सहायता। सायङ्काल तक दिल्ली की सेना को फिर नगर के अन्दर लौट आना पड़ा। उनकी कई तोपें शत्रु के हाथ आ गईं और कम्पनी की सेना दिल्ली की दीवार के नीचे पहुँच गई।

दिल्ली नगर के अन्दर उस समय एक विचित्र उत्साह था। प्रान्त प्रान्त से पलटनें और खज़ाना आकर दिल्ली में जमा हो रहा था। स्थान स्थान से सम्राट बहादुरशाह के नाम वफ़ादारी के पत्र आ रहे थे। नगर के अन्दर बारूद बनाने और अस्त्र शस्त्र ढालने के लिए अनेक कारख़ाने खुल गए थे, जिनमें अनेक तोपें रोज़ाना ढलती थीं और हजारों मन बारूद तैयार होती थी। सम्राट बहादुरशाह का एक खादिम ज़हीर अपनी पुस्तक

दिल्ली के
भीतर अदम्य
उत्साह



सम्राट बहादुरशाह

| From " A Narrative of the Indian Revolt " London, 1858

‘दास्ताने ग़दर’ में लिखता है कि अकेले चूड़ीवालों के मोहल्ले के एक कारख़ाने में सात सौ मन बारूद रोज़ाना तैयार होती थी ।

सम्राट बहादुरशाह प्रायः हाथी पर बैठ कर नगर में निकला करता था और जनता तथा सिपाहियों को गोहत्या पर कड़ा दण्ड प्रोत्साहित करता रहता था । एतान किया जा चुका था कि जो मनुष्य गोहत्या के अपराध का भागी होगा उसके हाथ काट लिए जायँगे या उसे गोली से उड़ा दिया जायगा । वास्तव में गोहत्या के विषय में इस प्रकार की आज्ञा सम्राट बाबर के समय से चली आती थी । धर्मान्ध या अदूरदर्शी औरङ्गज़ेब तक ने इस हितकर आज्ञा पर अमल कायम रक्खा था । किन्तु दिल्ली और उसके आस पास के इलाक़े में कम्पनी का राज जमने के समय से गोरी सेना के आहार के लिए फिर से गोहत्या शुरू हो गई थी । ऊपर एक अध्याय में लिखा जा चुका है कि मथुरा और दोआब के इलाक़े में इसके कारण भयङ्कर असन्तोष उत्पन्न हो गया था । यही कारण था कि सम्राट बहादुरशाह को वास्तविक सत्ता हाथ में लेते ही फिर एक बार उस तीन सौ वर्ष की पुरानी आज्ञा को दोहराना पड़ा ।

क्रान्ति के प्रारम्भ में दिल्ली के स्वाधीन होते ही सम्राट बहादुरशाह की ओर से एक एतान समस्त सम्राट बहादुरशाह भारत में प्रकाशित किया गया, जिसके कुछ के एतान वाक्य ये थे—

“ऐ हिन्दोस्तान के फ़रज़न्दो ! अगर हम इरादा कर लें तो बात की बात

में दुश्मन का ख़ात्मा कर सकते हैं ! हम दुश्मन का नाश कर डालेंगे और अपने धर्म और अपने देश को, जो हमें जान से भी ज़्यादा प्यारे हैं, ख़तरे से बचा लेंगे ।”❀

कुछ समय बाद सम्राट की ओर से एक दूसरा एलान प्रकाशित हुआ जिसकी प्रतियाँ समस्त भारत के अन्दर, यहाँ तक कि दक्खिन के बाज़ारों और छावनियों में भी हाथों हाथ बँटती हुई पाई गई । इस एलान में लिखा था—

“तमाम हिन्दुओं और मुसलमानों के नाम—हम महज़ अपना धर्म समझ कर जनता के साथ शामिल हुए हैं । इस मौक़े पर जो कोई कायरता दिखलाएगा या भोलेपन के कारण दगाबाज़ फ़िरज़ियों के वादों पर एतबार करेगा, वह शीघ्र ही शरमिन्दा होगा और इज़्ज़लिस्तान के साथ अपनी वफ़ादारी का उसे वैसा ही इनाम मिलेगा जैसा लखनऊ के नवाबों को मिला । इसके अलावा इस बात की भी ज़रूरत है कि इस जङ्ग में तमाम हिन्दू और मुसलमान मिल कर काम करें और किसी प्रतिष्ठित नेता की हिदायतों पर चल कर इस तरह का व्यवहार करें कि जिससे अमनों आमान कायम रहे और ग़रीब लोग सन्तुष्ट रहें; और उनका अपना रुतबा और उनकी शान बढ़े । जहाँ तक मुमकिन हो सकता है, सबको चाहिए कि इस एलान की नक़ल करके किसी आम जगह पर लगा दें । × × × ”

एक और तीसरा एलान बहादुरशाह की ओर से बरेली में प्रकाशित हुआ, जिसमें लिखा था—

“हिन्दोस्तान के हिन्दुओं और मुसलमानों, उठो ! भाइयो उठो ! खुदा

ने जितनी बरकतें इन्सान को अता की हैं, उनमें सबसे क्रीमती बरकत 'आज़ादी' की है। क्या वह ज़ालिम नाकस जिसने धोखा दे देकर यह बरकत हमसे छीन ली है, हमेशा के लिए हमें उससे महकूम रख सकेगा ? क्या खुदा की मरज़ी के खिलाफ़ इस तरह का काम हमेशा जारी रह सकता है ? नहीं, नहीं ! फ़िरज़ियों ने इतने जुल्म किए हैं कि उनके गुनाहों का प्याला लबरेज़ हो चुका है। यहाँ तक कि अब हमारे पाक मज़हब को नाश करने की नापाक इवाहिश भी उनमें पैदा हो गई है ! क्या तुम अब भी ख़ामोश बैठे रहोगे ? खुदा अब यह नहीं चाहता कि तुम ख़ामोश रहो; क्योंकि उसने हिन्दू और मुसलमानों के दिलों में अंगरेज़ों को अपने मुल्क से बाहर निकालने की इवाहिश पैदा कर दी है और खुदा के फ़ज़ल और तुम लोगों की बहादुरी के प्रताप से जल्दी ही अंगरेज़ों को इतनी कामिल शिकस्त मिलेगी कि हमारे इस मुल्क हिन्दोस्तान में उनका ज़रा भी निशान न रह जायगा ! हमारी इस फ़ौज में छोटे और बड़े की तमीज़ भुला दी जायगी और सबके साथ बराबरी का बरताव किया जायगा; क्योंकि इस पाक जङ्ग में अपने धर्म की रक्षा के लिए जितने लोग तलवार खींचेंगे वे सब एक समान यश के भागी होंगे। वे सब भाई भाई हैं, उनमें छोटे बड़े का कोई भेद नहीं। इसलिए मैं फिर अपने तमाम हिन्दी भाइयों से कहता हूँ, उठो और ईश्वर के बताए हुए इस परम कर्त्तव्य को पूरा करने के लिए मैदान जङ्ग में कूद पड़ो !” ❀

❀ बहादुरशाह का यह असली एलान उर्दू में था। हमें दुख है कि हमें उसकी उर्दू प्रति नहीं मिल सकी। स्वाधीनता के इस युद्ध के सम्बन्ध के इस तरह के सब पत्रों और एलानों को अंगरेज़ों ही के अनुवादों या प्रतिलिपियों से हिन्दी में अनुवाद करना पड़ा है—लेखक।

दिल्ली का नगर पूरी तरह विद्रोहकारियों के हाथों में था ।
 कम्पनी की सेना ने बुन्देले की सराय की लड़ाई
 के बाद दिल्ली से पश्चिम में 'पहाड़ी' पर कब्ज़ा
 कर लिया । यह स्थान दिल्ली पर हमला करने
 के लिए बड़ी सुविधा का था । हमले की सलाहें
 होती रहीं, किन्तु अंगरेज सेनापतियों को हमले का साहस न हो
 सका । इस बीच दिल्ली की विद्रोहकारी सेना ने बाहर निकल कर
 अंगरेजी सेना पर बार बार हमले करना शुरू किया सब से पहले
 १२ जून को दिल्ली की सेना ने अंगरेजी सेना पर हमला किया ।
 इतिहास लेखक के लिखता है कि उस दिन के संग्राम में कम्पनी के
 हिन्दोस्तानी सिपाहियों का एक दस्ता, जिसकी वफ़ादारी पर
 अंगरेजों को पूरा विश्वास था, क्रान्तिकारियों से जा मिला ।
 अंगरेजी सेना को काफ़ी हानि पहुँचाने के बाद दिल्ली की सेना
 फिर नगर के अन्दर लौट गई ।

इसके बाद बताया इसके कि अंगरेजी सेना को दिल्ली में प्रवेश
 करने का साहस होता, प्रायः हर रोज़ भारतीय
 सेना प्रातःकाल शहर से निकल कर अंगरेजी
 सेना पर हमला करती थी, और शाम तक उन्हें
 काफ़ी नुक़सान पहुँचा कर फिर नगर में वापस
 चली आती थी । दिल्ली में उन दिनों यह एक नियम था कि जो
 नई पलटन बाहर से दिल्ली में आती थी वह अपने आने के अगले
 दिन सबेरे एक बार अंगरेजी सेना पर हमला करती थी । इन

क्रान्तिकारी
 पलटनों
 का नियम

लड़ाइयों में १७, २० और २३ जून की लड़ाइयाँ अधिक भयङ्कर थीं। जिस वीरता के साथ विप्लवकारी सेनाओं ने इन लड़ाइयों में अंगरेजों, सिखाँ और गोरखाँ की संयुक्त सेनाओं पर हमला किया, उन्हें बार बार अपनी जगह से हटा दिया और उनके अनेक अफ़सरों और सैनिकों को ख़त्म कर दिया, उस वीरता की लॉर्ड राबर्ट्स और अन्य अंगरेज़ अफ़सरों ने अपनी रिपोर्टों में मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। कमाण्डर-इन-चीफ़ बरनार्ड ने अब निश्चय कर लिया कि जब तक और अधिक सेना सहायता के लिए पञ्जाब से न आए, तब तक दिल्ली पर हमला करना और विजय प्राप्त कर सकना असम्भव है।

२३ जून प्लासी की शताब्दी का दिन था। उस दिन के हमले के लिए दिल्ली में विशेष तैयारियाँ हो रही थीं। प्लासी की शताब्दी ठीक प्रातःकाल शहरपनाह की तोपों ने अंगरेज़ी सेना के ऊपर गोले बरसाने शुरू किए। क्रान्तिकारी सेना शहर से बाहर निकली और संयुक्त ब्रिटिश सेना पर वे दूट पड़े। अत्यन्त घमासान संग्राम हुआ। उस दिन के संग्राम के विषय में मेजर रीड लिखता है—

“क़रीब १२ बजे क्रान्तिकारियों ने हमारी समस्त सेना के ऊपर एक अत्यन्त भीषण हमला किया। कोई मनुष्य उससे अच्छा न लड़ सकते थे जितना अच्छा कि क्रान्तिकारी लड़े। उन्होंने हमारी सारी पलटनों पर बार बार हमला किया और एक बार मुझे ऐसा मालूम होता था कि हम मैदान खो बैठे।”

किन्तु अंगरेजों के सौभाग्य से ठीक संकट के समय एक और नई सेना पञ्जाब से सहायता के लिए आ पहुँची। अंगरेजों की सहायता के लिए नई सेना क्रान्तिकारियों के लिए अब कार्य इतना सरल न रहा, फिर भी वे शाम तक मैदान में डटे रहे। अन्त में दोनों ओर की सेनाएँ युद्धक्षेत्र से पीछे हट गईं। वास्तव में जोड़ बराबर का रहा और दोनों सेनाओं के दिलों में एक दूसरे की वीरता के लिए आदर उत्पन्न हो गया।

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि यदि सिखों ने अंगरेजों का साथ न दिया होता और नई पञ्जाबी सेना सिखों को श्रेय समय पर सहायता के लिए न पहुँची होती, तो २३ जून सन् १८५७ को दिल्ली की फ़ौज के नीचे कम्पनी की सेना का सर्वनाश होगया होता, और फिर भारत में अंगरेजों का अपनी सत्ता कायम रख सकना लगभग असम्भव था।

२ जुलाई सन् ५७ को माहम्मद बख़्त खाँ के अधीन रुहेलखण्ड की सेना ने दिल्ली में प्रवेश किया। नगर-सेनापति बख़्त खाँ की क्रान्तिकारी सेना निवासियों और सम्राट बहादुरशाह की ओर से इस सेना का विशेष स्वागत हुआ। बख़्त खाँ ने सम्राट से भेंट की। इस बीच दिल्ली में स्थान स्थान की फ़ौजों के आने के कारण प्रबन्ध की कुछ शिथिलता दिखाई देने लगी थी। सेनापति मिरज़ा मुग़ल में सुशासन स्थापित करने की योग्यता दिखाई न देती थी। अनेक शिकायतें सम्राट के कानों तक पहुँचीं। बूढ़े सम्राट ने अपने पुत्र मिरज़ा मुग़ल को हटा कर

उसकी जगह बख्त ख़ाँ को दिल्ली की समस्त सेनाओं का प्रधान सेनापति और दिल्ली का 'गवर्नर' नियुक्त किया। बख्त ख़ाँ वास्तव में अत्यन्त योग्य और वीर था। उसने सम्राट से कहा कि यदि इसके बाद कोई शाहज़ादा भी नगर के अन्दर शासन प्रबन्ध में बाधा डालेगा, या प्रजा के साथ किसी प्रकार का अन्याय करेगा तो मैं तुरन्त उसके नाक कान कटवा डालूंगा। सम्राट ने स्वीकार कर लिया।

बख्त ख़ाँ की नियुक्ति का एलान सारे शहर में कर दिया गया।

बख्त ख़ाँ के साथ करीब चौदह हजार पैदल, दो
 बख्त ख़ाँ का शासन
 प्रबन्ध
 या तीन सवार पलटन और अनेक तोपें थीं।* वह अपनी सेना को छै महीने की तनखाहें पेशगी दे चुका था। इसके अतिरिक्त उसने चार लाख रुपए नक़द लाकर सम्राट की भेंट किए। बख्त ख़ाँ ने नगर में सुशासन स्थापित किया, आज्ञा दे दी कि कोई नगर निवासी बिना हथियार के न रहे। जिनके पास हथियार न थे उन्हें मुफ़्त हथियार दिए गए। इसके बाद यदि कोई सिपाही बिना पूरी कीमत दिए किसी से कोई वस्तु लेता था तो सिपाही का एक हाथ काट दिया जाता था। उसी दिन रात को ८ बजे महल के अन्दर सम्राट बहादुरशाह, बेगम ज़ीनतमहल, सेनापति बख्त ख़ाँ तथा अन्य मुख्य मुख्य नेताओं में सलाह हुई। ३ जुलाई को एक आम परेड हुई, जिसमें करीब बीस हजार सेना मौजूद थी।†

* 'दास्ताने ग़दर'—लेखक ज़हीर

† *Native Narratives* by Metcalfe, p. 60

इस बीच नए नए अंगरेज़ अफ़सर और अनुभवी सेनापति पञ्जाब से और अधिक सेनाएँ ला लाकर अंगरेज़ी सेना में शामिल होते गए । फिर भी प्रधान सेनापति जनरल बरनार्ड को दिल्ली की सेना पर हमला करने का साहस न हो सका । ४ जुलाई को बख़्त ख़ाँ ने अपनी सेना सहित अंगरेज़ी सेना पर हमला किया ।

कम्पनी की सेना को दिल्ली की दीवारों के नीचे पड़े हुए एक महीने से ऊपर हो चुका था । अनेक अफ़सरों के बयानों से साबित है कि अंगरेज़ों को विश्वास था कि दिल्ली पहुँचने के चन्द घण्टे बाद ही हम दिल्ली पर विजय प्राप्त कर लेंगे । किन्तु अब वह विश्वास निराशा में बदलता हुआ दिखाई दे रहा था । इस निराशा में ही ५ जुलाई सन् ५७ को जनरल बरनार्ड भी हैजे से मर गया । जनरल रोड ने उसका स्थान लिया । इस प्रकार क्रान्ति के शुरू होने से अब तक कम्पनी के दो कमाण्डर-इन-चीफ़ मर चुके थे । जनरल रोड तीसरा था, किन्तु अभी तक दिल्ली विजय न हुई थी ।

दिल्ली की सेना के हमले अंगरेज़ी सेना पर बराबर जारी रहे । ६ जुलाई को बख़्त ख़ाँ के अधीन दिल्ली की सेना ने इतना ज़बरदस्त हमला किया कि अंगरेज़ी सेना के सवारों को सामने से भाग जाना पड़ा और अंगरेज़ी तोपों के मुँह बन्द हो गए । अनेक अंगरेज़ अफ़सर मारे गए । इतिहास लेखक के लिखता है कि उस दिन की हार पर अंगरेज़ सिपाही इतने लज्जित और कुपित हुए कि उन्होंने अपने

कैम्प में जाकर अपने निर्दोष गरीब भित्तियों और अनेक काले नौकरों को मार डाला। अपने इन हिन्दोस्तानी नौकरों की बफ़ादारी, और उनकी सेवाओं का उन्होंने कुछ भी खयाल नहीं किया, क्योंकि—

“इन गोरे सिपाहियों के हृदयों में समस्त काले एशिया निवासियों के प्रति प्रचण्ड घृणा की आग भड़क रही थी।”*

१४ जुलाई के आक्रमण में अंगरेज़ों की इससे भी बुरी हालत हुई। जनरल रीड भी घबरा गया। बीमार पड़ कर और इस्तीफ़ा देकर १५ जुलाई को वह पहाड़ पर चला गया। जनरल विलसन ने उसकी जगह ली। अंगरेज़ी सेना का यह चौथा कमाण्डर-इन-चीफ़ था। दिल्ली की मीनारों के ऊपर स्वाधीनता की पताका को लहराते हुए दो महीने हो चुके थे। भारत भर में अनेक अंगरेज़ यह कहने लगे थे कि, “जो सेना दिल्ली का मोहासरा कर रही है उसका स्वयं मोहासरा हो रहा है।” यहाँ पर हम यह याद दिला देना चाहते हैं कि अंगरेज़ी सेना केवल दिल्ली की पश्चिमी दीवार के नीचे थी, शेष तीनों ओर से क्रान्ति के सहायकों और शुभ चिन्तकों के लिए आने जाने का मार्ग खुला हुआ था। अंगरेज़ी सेना में उस समय अनेक लोग सज्जोदगी के साथ यह विचार कर रहे थे कि दिल्ली विजय करने का विचार छोड़ कर अभी किसी दूसरी ओर ध्यान दिया जाय।

* Kaye and Malleeson's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 438.

अब हम फिर थोड़ी देर के लिए दिल्ली से हट कर विश्व के
 अन्य केन्द्रों की ओर दृष्टि डालते हैं। जिस प्रकार
 भारतीय नरेशों को
 अनिश्चितता
 सिखों ने कम्पनी की सहायता द्वारा उसी प्रकार
 अनेक राजपूत तथा मराठा नरेशों ने अपनी
 अनिश्चितता द्वारा भारतीय स्वाधीनता के प्रयत्नों को बहुत बड़ी
 हानि पहुँचाई।

जयाजीराव सींधिया उस समय ग्वालियर की गद्दी पर था।
 उसकी समस्त भारतीय सेना जो अत्यन्त सन्नद्ध
 ग्वालियर की स्थिति थी, राष्ट्रीय योजना में शामिल थी। १४ जून को
 ग्वालियर की सेना ने कम्पनी के विरुद्ध क्रान्ति का झण्डा खड़ा
 कर दिया। उन्होंने ग्वालियर के अङ्गरेज़ों के मकान जला दिए,
 अंगरेज़ अफसरों और नगर के अन्य अंगरेज़ों को मार डाला।
 किन्तु अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों को उन्होंने छुआ तक नहीं।* इन
 सब को उन्होंने केवल गिरफ्तार कर लिया। कुछ अंगरेज़ आगरे
 की ओर भाग निकले। ग्वालियर की समस्त रियासत से कम्पनी
 का प्रभाव और प्रभुत्व दोनों बिल्कुल मिट गए। फिर भी महाराजा
 सींधिया सङ्कोच में रहा। निस्सन्देह यदि महाराजा सींधिया उस
 समय कम्पनी के साथ मित्रता निब्राहने के स्थान पर खुले क्रान्ति-
 कारियों का साथ दे बैठता और अपनी विशाल सेना सहित, जो
 इस समय नेता न होने के कारण निकम्मी थी, दिल्ली पर चढ़ाई
 कर देता तो दिल्ली के भीतर की क्रान्तिकारी सेना और बाहर से

* Mrs. Coopland's Narrative.

सौधिया की सेना दोनों के बीच में पिस कर कम्पनी की सेना वहीं समाप्त हो गई होती, और क्रान्तिकारियों के पक्ष को भारत भर में अनन्त बल प्राप्त हो जाता ।

करीब करीब यही स्थिति इन्दौर के महाराजा होलकर की थी ।

इन्दौर और मध्य
भारत की स्थिति १ जुलाई को सआदत खाँ के अधीन इन्दौर की सेना ने इन्दौर की रेज़िडेन्सी पर हमला किया । वहाँ के सब अङ्गरेज़ों की जान बख़्श दी गई । वे

इन्दौर छोड़ कर भाग गए । किन्तु अङ्गरेज़ इतिहास लेखक भी इस बात का निश्चय नहीं कर पाते कि महाराजा होलकर की सहानुभूति अङ्गरेज़ों के साथ थी या क्रान्तिकारियों के साथ । यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस तरह के अवसरों पर, जब कि भारतीय नरेश अन्त तक अपना निश्चय न कर सके, रियासतों की सेनाओं और कम्पनी की सबसे डीयरी सेनाओं ने हर जगह देश का साथ दिया । यही स्थिति कच्छ और राजपूताने की रियासतों की थी । इतिहास लेखक मॉलेसन लिखता है कि जयपुर और जोधपुर के राजाओं ने अपनी सेनाओं को आज्ञा दी कि जाकर अङ्गरेज़ों की मदद करो, किन्तु सिपाहियों और उनके अफ़सरों ने साफ़ इनकार कर दिया ।*

यही हालत भरतपुर और अन्य कई रियासतों की भी थी ।
आगरे की स्वाधीनता ५ जुलाई को क्रान्तिकारी सेना ने आगरे पर हमला किया । आगरे में कुछ गोरी सेना मौजूद

* Malleeson's *Indian Mutiny*, vol. iii, p. 172.

थी । भरतपुर के राजा ने अपनी सेना अंगरेज़ों की सहायता के लिए भेजी । ऐन मौके पर भरतपुर की सेना ने साफ़ जवाब दे दिया कि हम अपने देशवासियों के विरुद्ध न लड़ेंगे । जनरल पॉलवेल की गोरी सेना और क्रान्तिकारियों में एक संग्राम हुआ, जिसमें दिन भर की लड़ाई के बाद गोरी सेना को हार कर पीछे हट जाना पड़ा । ६ जुलाई को आगरे के नगर के ऊपर हरा झण्डा फहराने लगा । उसी दिन वहाँ का शहर कोतवाल, समस्त पुलिस और हिन्दू और मुसलमानों ने मिल कर हरे झण्डे का एक बहुत बड़ा जुलूम निकाला और एलान कर दिया कि आज से आगरे के ऊपर अंगरेज़ी राज के स्थान पर दिल्ली के सम्राट का आधिपत्य फिर से कायम होगया ।

किन्तु इन भारतीय नरेशों की उस समय की अनिश्चितता ने निस्सन्देह विद्रोह को बहुत हानि पहुँचाई ।

अब हम फिर कानपुर और इलाहाबाद की ओर आते हैं ।
 इलाहाबाद में
 अंगरेज़ों की
 राजधानी
 इलाहाबाद के शहर और क़िले पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा फिर से हो चुका था । उत्तरी भारत में क्रान्ति को दमन करने की दृष्टि से इलाहाबाद अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था । इसलिए लॉर्ड कैनिङ्ग अब कलकत्ते से इलाहाबाद आ गया । क्रान्ति के शान्त हो जाने के समय तक के लिए उसने इलाहाबाद ही को अपनी राजधानी नियत किया ।

जिस समय कानपुर के अंगरेज़ों की मुसीबतों का समाचार



कानपुर ज़िले में अंगरेज़ी सेना के सिपाही एक गांव को आग लगा रहे हैं, गांव के लोग जानें लेकर भाग रहे हैं

From "A Narrative of the Indian Revolt", London 1858

इलाहाबाद पहुँचा, जनरल नील ने थोड़ी सी सेना इलाहाबाद की रक्षा के लिए रख कर शेष मेजर रिनाड के अंगरेजी सेना की अधीन कानपुर के अंगरेजों की सहायता के लिए कानपुर यात्रा भेज दी। यह सेना जनरल नील की स्थापित की हुई मर्यादा के अनुसार दोनों ओर के ग्रामों को आग लगाती हुई कानपुर की ओर बढ़ी।

एक दूसरा जनरल हैवलाक जून के अन्त में इलाहाबाद पहुँचा। इसी बीच कानपुर में अंगरेजों की पराजय और सतीचौरा घाट के हत्याकाण्ड का समाचार भी इलाहाबाद पहुँच गया। जनरल हैवलाक भी अब अंगरेज और सिख सेना और तोपखाने सहित कानपुर की ओर बढ़ा।

आगे चल कर हैवलाक और रिनाड की सेनाएँ मिल गईं। मार्ग के ग्रामों को ग्रामवासियों सहित जलाने का कार्यक्रम पूर्ववत् जारी रहा। कम्पनी की सेना की इस यात्रा के विषय में इतिहास लेखक सर चार्ल्स डिल्क लिखता है—

“सन् १८५७ में जो पत्र इङ्गलिस्तान पहुँचे उनमें एक ऊँचे दर्जे का अफसर, जो कानपुर की ओर अंगरेजी सेना की यात्रा में साथ था, लिखता है कि—‘मैंने आज की तारीख में खूब शिकार मारा। बागियों को उड़ा दिया।’ यह याद रखना चाहिए कि जिन लोगों को इस प्रकार फाँसी दी गई या तोप से उड़ाया गया वे सशस्त्र ‘बागी’ न थे, बल्कि गाँव के रहने वाले थे जिन्हें केवल ‘सन्देह पर’ पकड़ लिया जाता था। इस कूच में गाँव के गाँव इस क्रूरता के साथ जला डाले गए और इस क्रूरता के साथ निर्दोष ग्राम-

निवासियों का संहार किया गया कि जिसे देख कर एक बार मोहम्मद तुग़लक़ भी शरमा जाता।”*

नाना साहब ने ज्वालाप्रसाद और टीकासिंह के अधीन कुछ
सेना कम्पनी की सेना के मुकाबले के लिए भेजी।
फ़तहपुर की अग्नि १२ जुलाई को फ़तहपुर के नज़दीक दोनों सेनाओं
समाधि में एक संग्राम हुआ जिसमें कानपुर की क्रान्ति-
कारी सेना को हार कर पीछे हट जाना पड़ा। इसके बाद अंगरेज़ों
ने फ़तहपुर के नगर में प्रवेश किया।

इस बीच फ़तहपुर का नगर अपनी स्वाधीनता का एलान कर
चुका था। कुछ अंगरेज़ अफ़सर वहाँ पर मारे भी जा चुके थे।
किन्तु वहाँ के मैजिस्ट्रेट शेरर की क्रान्तिकारियों ने जान बख़्श दी
थी और उसे फ़तहपुर से जाने की इजाज़त दे दी थी। शेरर इस
समय हैवलॉक की सेना के साथ था। हैवलॉक और शेरर ने नगर
से पूरा बदला लिया। सब से पहले कम्पनी के सिपाहियों को नगर
लूटने की आज्ञा दी गई। उसके बाद लिखा है कि अंगरेज़ सेनापति
की आज्ञा से फ़तहपुर के नगर और नगरनिवासियों को उसी के
अन्दर जला कर खाक कर दिया गया।

* “ . . . letters which reached home in 1857, in which an officer in high command during the march upon Cawnpore, reported, ‘good bag to-day, polished off rebels,’ it being borne in mind that the ‘rebels’ thus hanged or blown from guns were not taken in arms, but villagers apprehended ‘on suspicion.’ During this march atrocities were committed in the burning of villages and massacre of innocent inhabitants at which Mohammad Tuglak himself would have stood ashamed,”—*Greater Britain*, by Sir Charles Dilke.

इस रोमाञ्चकारी अत्याचार की खबर नाना के कानों तक पहुँची। कानपुर के नेताओं और नगरनिवासियों का क्रोध पराकाष्ठा को पहुँच गया। नाना साहब ने स्वयं सेना लेकर आगे बढ़ने का

बीबीगढ़ का
हत्याकाण्ड

निश्चय किया। इसी समय अंगरेजों के कुछ जासूस गिरफ्तार होकर नाना के सामने पेश किए गए। इन जासूसों से पता चला कि जो अंगरेज स्त्रियाँ बीबीगढ़ की कोठी में नज़रबन्द थीं उनमें से कई नाना के विरुद्ध इलाहाबाद के अंगरेजों के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार कर रही थीं।*

अगले दिन शाम को वह घटना हुई जो क्रान्तिकारियों के नाम पर एक कलङ्क रहेगी। कहा जाता है कि कानपुर के १२५ अंगरेज कैदी स्त्रियाँ और बच्चे क़त्ल कर डाले गए, और दूसरे दिन प्रातः-काल उनकी लाशों को एक कुएँ में डाल दिया गया।

कानपुर की इस हृदय विदारक घटना के सम्बन्ध में अंगरेज इतिहास लेखक अनेक प्रकार की टीका कर चुके हैं। इसी घटना के आधार पर नाना साहब को निर्दय हत्यारा साबित करने की चेष्टा की गई है। हमें यह देख कर दुख होता है कि इतिहास की जिन पुस्तकों में, विशेषकर स्कूलों और कॉलेजों की जिन पाठ्य पुस्तकों में जनरल नील, जनरल हैवलॉक, जनरल ऐनसन, जनरल बरनार्ड

* *Narrative of the Indian Revolt*, p. 113. One of the Christian prisoners in the prison of Nana Sabeel told the same thing and an Ayah also corroborated it.

इत्यादि के भारतीय प्रजा के ऊपर घोर अमानुषिक अत्याचारों का कोई जिक्र नहीं किया जाता, उनमें कानपुर की इस बीभत्स हत्या और कानपुर के कुएँ का जिक्र अवश्य होता है। हम इस सम्बन्ध में केवल एक दो बातें कह देना आवश्यक समझते हैं।

एक यह कि जिन अंगरेजी पुस्तकों में इस घटना को वर्णन किया गया है उनमें प्रायः इस घटना के साथ कई और भी अधिक भयङ्कर और अमानुषिक बातों को जोड़ दिया गया है। उदाहरण के लिए यह कि अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों की हत्या के लिए शहर से कसाई बुलाए गए थे। हत्या से पूर्व इन लोगों को निर्दयता के साथ धीरे धीरे अंगभंग किया गया और स्त्रियों की हत्या से पहले उनकी बेइज्जती की गई, इत्यादि। इन सब रोमाञ्चकारी बातों के सम्बन्ध में हम केवल विल्व के सब से अधिक प्रामाणिक अंगरेज़ इतिहास लेखक सर जॉन के के कुछ शब्द उद्धृत करते हैं। इतिहास लेखक के लिखता है—

“उस समय के कई इतिहासों में बयान किया गया है कि इस भीषण हत्याकाण्ड के साथ कई तरह की परिष्कृत क्रूरताएँ और अकथनीय लजाजनक बातें की गई थीं। वास्तव में ये क्रूरताएँ और इस तरह की लजाजनक बातें कुछ लोगों ने क्रोध के आवेश में आकर केवल अपनी कल्पनाशक्ति से गढ़ ली थीं। अन्य लोगों ने बिना जाँच किए उन पर सहज ही में विश्वास कर लिया और बिना सोचे समझे उन्हें फैलाना शुरू कर दिया। X X X जून और जुलाई के हत्याकाण्डों के विषय में सरकारी कमीशन के सदस्यों ने हर बात की अत्यन्त परिश्रम के साथ जाँच की, और उन्होंने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों

में यह राय प्रकट की है कि किसी को भी अंग भंग नहीं किया गया और किसी की भी इज़्ज़त नहीं ली गई।”*

एक दूसरा विद्वान् अंगरेज़ लन्दन के ‘टाइम्स’ पत्र का सम्वाद-दाता सर विलियम रसल, जो विद्रोह के समय भारत में मौजूद था, कानपुर के इस हत्याकाण्ड के सम्बन्ध में लिखता है—

“अनेक जालसाज़ों और अत्यन्त नीच बदमाशों ने लगातार कोशिश करके इस मामले के साथ अनेक भीषण घटनाएँ जोड़ दीं। ये कल्पित घटनाएँ केवल इस आशा से गढ़ी गई थीं कि उनसे अंगरेज़ों के दिलों में क्रोध और बदले की प्रचण्ड इच्छा भड़क उठे। मानों केवल घृणा इस क्रोध और बदले की इच्छा को भड़काने के लिए काफी न थी।”†

दूसरी बात यह है कि एक सज्जन, जिन्हें ऐतिहासिक घटनाओं की खोज और जाँच का शौक है, इस पुस्तक के लेखक से कहते थे कि उन्होंने कानपुर क़साइयों के मोहल्ले में जाकर पूछ ताछ की तो वहाँ के बूढ़े लोगों से मालूम हुआ कि बीबीगढ़ की हत्या के लिए कम से कम क़साइयों का बुलाया जाना बिल्कुल ग़लत है।

* “The refinements of cruelty—the unutterable shame with which, in some chronicles of the day, this hideous massacre was attended, were but fictions of an excited imagination, too readily believed without enquiry, and circulated without thought. None were mutilated, none were dishonoured . . . This is stated, in the most unqualified manner, by the official functionaries, who made the most diligent enquiries into all the circumstances of the massacres in June and in July.”—Kaye and Malleson's *History of the Indian Mutiny*, p. 281.

† “ . . . the incessant efforts of a gang of forgers and utterly base scoundrels have surrounded it with horrors that have been vainly invented

कलकत्ते के ब्लैकहोल के सर्वथा भूटे किससे का वर्णन इतिहास की असंख्य पुस्तकों में पाया जाता है, और कलकत्ते में ब्लैकहोल की जगह तक बनी हुई है। इससे पता चलता है कि कानपुर में 'कुएँ' का होना ज़रूरी तौर पर यह साबित नहीं करता कि यह घटना सर्वथा सच्ची है।

इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट का एक सदस्य लेयॉर्ड इस तरह की अनेक घटनाओं की जाँच करने के लिए स्वयं उन्हीं दिनों में भारत आया। अपनी जाँच के बाद लेयॉर्ड लिखता है—

“निहायत गौर के साथ जाँच पड़ताल करने के बाद, अच्छे से अच्छे और सबसे अधिक विश्वसनीय ज़रियों से जो सूचनाएँ मुझे मिली हैं, उनसे मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि जो अनेक भयङ्कर अत्याचार कहा जाता है कि देहली, कानपुर, भौंसी तथा अन्य स्थानों पर अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों पर किए गए, वे प्रायः एक एक कर सब के सब कल्पित हैं, जिनके गढ़ने वालों को लज्जा आनी चाहिए।”*

अन्य निष्पक्ष अंगरेज़ों के इससे भी अधिक जोरदार वाक्य इस कथन के समर्थन में उद्धृत किए जा सकते हैं। ज़ाहिर है कि

“in the hope of adding to the indignation and burning desire for vengeance which hatred failed to arouse.”—Russell's *Diary*, p. 164.

* “From the information I received from the very best and most trustworthy sources, after the most careful inquiries, I am convinced that the series of horrible cruelties alleged to have been committed upon English women and children at Delhi, Cawnpore, Jhansi and elsewhere were almost without exception shameful fabrications, . . .”—Mr. Layard M. P. in *The Times*, 25th August, 1858.

बीबीगढ़ के हत्याकाण्ड की सच्चाई पर विश्वास नहीं किया जा सकता। साथ ही अभी तक यह कह सकना भी कठिन है कि इस किस्से की जड़ में सच्चाई क्या और कितनी थी। इस विषय में अभी बहुत अधिक निष्पक्ष खोज की आवश्यकता है।

हम यह भी जानते हैं कि यदि कानपुर में १२५ अंगरेज औरतों और बच्चों को निर्दोष मार डाला गया तो जनरल नील ने अपने बयान के अनुसार ही कम से कम हजारों भारतीय स्त्रियों और बच्चों को जिन्दा जला दिया। किन्तु एक अत्याचार दूसरे अत्याचार को जायज़ नहीं बना सकता। यदि बीबीगढ़ के हत्याकाण्ड में कुछ भी सच्चाई है, अगर यह घटना किसी दर्जे तक भी सच्ची है और जिस दर्जे तक भी वह सच्ची है, इसमें कोई सन्देह नहीं क्रान्तिकारियों के नाम पर यह एक बहुत बड़ा कलङ्क है।

एक प्रश्न इस सम्बन्ध में यह भी उठता है कि यदि बीबीगढ़ की हत्या का किस्सा सच है, तब भी उसके लिए नाना साहब को कहाँ तक ज़िम्मेदार ठहराया जा सकता है। सर जॉर्ज फ़ॉरेस्ट

नाना की
ज़िम्मेदारी

लिखता है—

“गवाहियों से यह साबित होता है कि जो सिपाही इन कैदियों के ऊपर पहरा दे रहे थे उन्होंने उनकी हत्या करने से इनकार कर दिया। यह गन्दा जुर्म एक वेश्या के उकसाने पर नाना की गारद के पाँच बदमाशों ने

किया ! इस क्रूर हत्या के लिए सारी कौम को अपराधी ठहराना अनुदार भी है और असत्य भी ।”*

इतिहास लेखक सर जॉर्ज कैम्पबेल लिखता है—

“कानपुर की हत्या और कुएँ के ऊपर के भयङ्कर दृश्य के पाप को कम करने वाली कोई बात कहना कठिन है, फिर भी हमें दो बातें याद रखनी चाहिए। पहली यह कि यह हत्या किसी ने पहले से तय करके नहीं की, बल्कि जिस समय हैवलॉक क्रान्तिकारियों को पीट कर चला आ रहा था उस समय क्षणिक क्रोध और निराशा के वश यह कार्य किया गया। दूसरी बात यह कि हमारी सेना के लोगों ने कानपुर की ओर बढ़ते समय जो जो अत्याचार किए उनके द्वारा हमने स्वयं लोगों को इस प्रकार के कार्य करने के लिए काफ़ी उत्तेजित कर दिया था। कुछ समय बाद इस हत्याकाण्ड के सम्बन्ध की सब परिस्थिति की बड़ी सावधानी के साथ जाँच पड़ताल की गई, और हमें कोई बात ऐसी नहीं मिली जिससे मालूम हो कि किसी ने पहले से इस हत्या का इरादा कर रखा हो या किसी ने हत्या के लिए किसी को आज्ञा दी हो × × × ।”†

* “The evidence proves that the sepoy guard placed over the prisoners refused to murder them. The foul crime was perpetrated by five ruffians of the Nana's guard at the instigation of a courtesan. It is as ungenerous as it is untrue to charge upon a nation that cruel deed.”—*History of the Indian Mutiny*, by Sir George Forrest, Introduction, p. iv.

† “It is difficult to say anything in extenuation of the Cawnpore massacre and the terrible scene at the well, and yet we must remember two things : first, that it was done, not in cold blood, but in the moment of rage and despair when Havelock had beaten the rebels and was coming in ; and second, that we had done much to provoke such things by the severities of which our people were guilty as they advanced. At a later time a careful

इससे मालूम होता है कि कानपुर में अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों की हत्या के किस्से में यदि कुछ सच भी है तो वह हैवलाक के अत्याचारों से दुखित कुछ क्रान्तिकारियों के दृष्टिकोण का परिणाम था, 'किसी ने उसके लिए किसी को आज्ञा' न दी थी, और नाना साहब को उसके लिये उत्तरदाता ठहराना ग़लत है।

१० जुलाई को जनरल हैवलाक अपनी विशाल सेना सहित कानपुर के निकट पहुँच गया। नाना साहब ने स्वयं सेना लेकर हैवलाक का मुकाबला किया। दोनों ओर की तोपों ने गोले बरसाने शुरू किए।

किन्तु अन्त में नाना साहब की सेना को हार कर पीछे हट जाना पड़ा। नाना साहब ने फिर एक बार अपने सिपाहियों को प्रोत्साहित करके आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया। एक अंगरेज़ इतिहास लेखक लिखता है कि फिर एक बार घमासान संग्राम हुआ। किन्तु अन्त में फिर हैवलाक की विशाल सेना के सामने नाना साहब की सेना को हार कर बिठूर की ओर चला जाना पड़ा।

१७ जुलाई को हैवलाक की विजयी सेना ने कानपुर के नगर में प्रवेश किया। हैवलाक का नाम अंगरेज़ी राज के इतिहास में अमर हो गया।

investigation was made into the circumstances of the massacre, and we failed to discover that there was any premeditation or direction in the matter. "—Sir George Campbell, Provisional Civil Commissioner in the Mutiny, as quoted in *The Other Side of the Medal*, by E. Thompson pp. 79, 80.

नगर में घुसने के बाद चार्ल्स बॉल लिखता है—

“जनरल हैवलॉक ने सर ह्यू व्हीलर की मृत्यु के लिए भयङ्कर बदला
चुकाना शुरू किया। हिन्दोस्तानियों के गिरोह के गिरोह
कानपुर में फाँसी पर चढ़ गए। मृत्यु के समय कुछ क्रान्तिकारियों
अंगरेजी सेना के ने जिस प्रकार चित्त की शान्ति और अपने व्यवहार
अत्याचार में आज का परिचय दिया, वह उन लोगों के सर्वथा
योग्य था जो कि किसी सिद्धान्त के नाम पर शहीद होते हैं।”*

इनमें से एक व्यक्ति को मिसाल देते हुए चार्ल्स बॉल लिखता है कि वह “बिना जरा सी भी घबराहट के ठीक इस प्रकार फाँसी के तख्ते पर चढ़ गया जिस प्रकार एक योगी अपनी समाधि में प्रवेश करता है !”†

सब से पहले गोरे और सिख सिपाहियों को नगर के लूटने की आज्ञा दी गई। उसके बाद फाँसियों का बाज़ार गर्म हुआ। लिखा है कि बीबीगढ़ में ज़मीन के ऊपर खून का एक बड़ा धब्बा था। सन्देह था कि यह खून गोरी मेमों और बच्चों का है। शहर के

* “General Havelock began to wreak a terrible vengeance for the death of Sir Hugh Wheeler. Batch upon batch of natives mounted the scaffold. The calmness of mind and nobility of demeanour which some of the revolutionaries showed at the time of death was such as would do credit to those who martyred themselves for devotion to a principle.”—Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. i, p. 388.

† “Without the least agitation, he mounted the scaffold even as a Yogi enters Samadhi !”—Ibid.

अनेक ब्राह्मणों को लाकर जिन पर 'सन्देह था' कि उन्होंने विस्रव में भाग लिया है, उन्हें उस खून को ज़बान से चाटने और फिर झाड़ू से धोकर साफ़ करने की आज्ञा दी गई। इसके बाद इन लोगों को फाँसी दे दी गई। उस समय के अंगरेज़ अफ़सर ने इस अनोखे दण्ड का कारण इस प्रकार बयान किया है—

“मैं जानता हूँ कि फ़िरज़ियों के खून को छूने और फिर उसे मेहतर की झाड़ू से साफ़ करने से एक उच्च जाति का हिन्दू अपने धर्म से पतित हो जाता है। केवल इतना ही नहीं, बल्कि चूँकि मैं यह जानता हूँ इसीलिए मैं उनसे ऐसा कराता हूँ। जब तक हम उन्हें फाँसी देने से पहले उनके समस्त धार्मिक भावों को पैरों तले न कुचलेंगे, तब तक हम पूरा बदला नहीं ले सकते, ताकि उन्हें यह सन्तोष न हो सके कि हम हिन्दू धर्म पर क़ायम रहते हुए मरे।”*

सतीचौरा घाट पर जिन अंगरेज़ों की हत्या की गई थी उन्हें कम से कम मरने से पहले इज़ील का पाठ करने की इजाज़त दे दी गई थी !

इसके थोड़े ही दिनों बाद और कुछ सेना लेकर जनरल नील आगे का कार्यक्रम कानपुर पहुँचा। हैवलॉक अब दो हजार अंगरेज़ी सेना और दस तोपों सहित २५ जुलाई को

* “I know that the act of touching Feringhi blood and washing it with a sweeper's broom degrades a high caste Hindoo from his religion. Not only this but I make them do it because I know it. We could not wreak a true revenge unless we trample all their religious instincts under foot, before we hang them, so that they may not have the satisfaction of dying as Hindoos.”—Ibid.

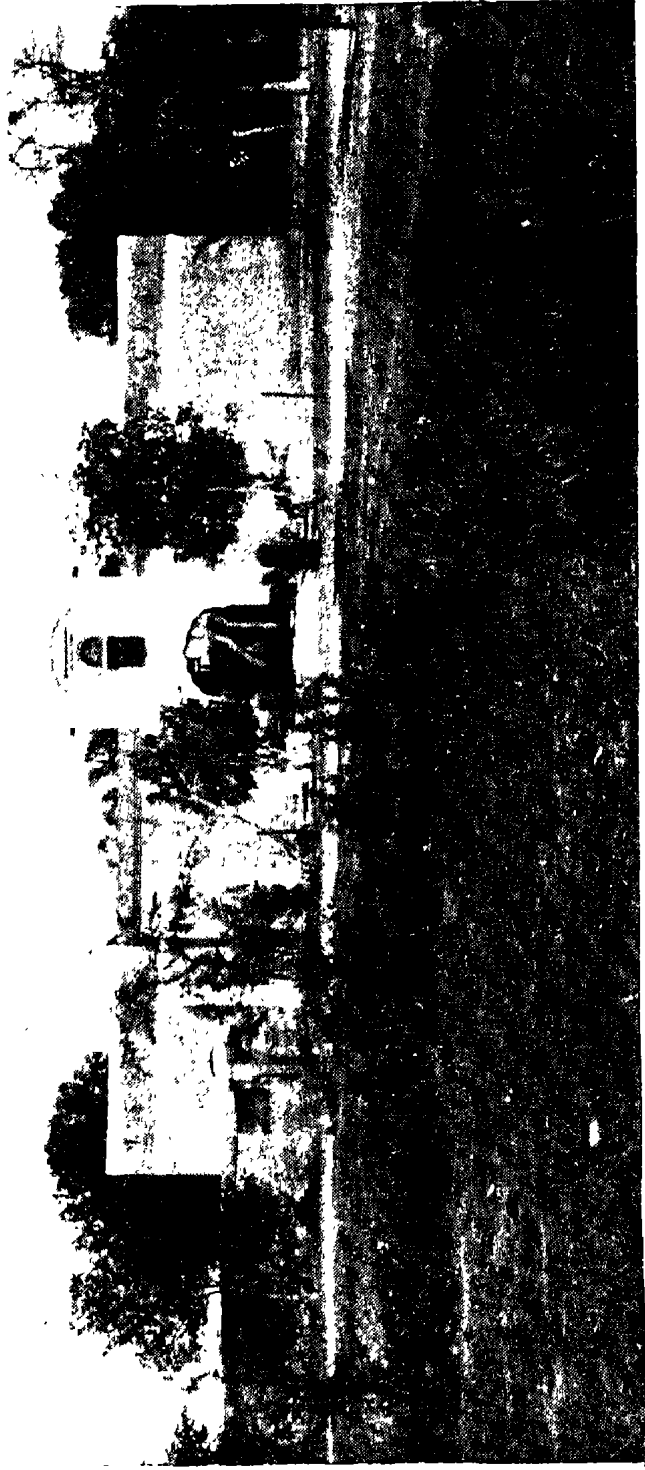
कानपुर से लखनऊ की ओर बढ़ा। जनरल नील कानपुर की रक्षा के लिए रहा।

नाना अब बिठूर छोड़ कर अपने खज़ाने और कुछ सेना सहित गङ्गा पार कर फ़तहगढ़ की ओर चला गया।

नाना और हैवलाक को कुछ देर के लिये यहीं छोड़ कर अब हम फिर राजधानी दिल्ली की ओर चलते हैं।
 पञ्जाब का ब्लैकहोल किन्तु दिल्ली के आगे के संग्रामों को वर्णन करने से पहले पञ्जाब की एक छोटी सी घटना को बयान कर देना आवश्यक है, जिससे मालूम होगा कि दिल्ली के मोहासरे के दिनों में पञ्जाबियों को “डराने और उन पर अपनी धाक कायम रखने”* के लिए पञ्जाब के अंगरेज़ शासकों ने किस किस तरह के उपाय किए।

मई के महीने में लाहौर के अन्दर चार देशी पलटनों के हथियार रखाए जा चुके थे। इन लोगों पर सिखों और गोरों का पहरा था और इन्हें छावनी से बाहर जाने की इजाज़त न थी। ३० जुलाई की रात को इनमें से २६ नम्बर पलटन के अधिकांश सिपाही छावनी से चल दिए। इन लोगों के पास न हथियार थे और न इन्होंने किसी तरह के विद्रोह में भाग लिया था। अगले दिन उन्होंने रावी पार करके निकल जाना चाहा। उन्हें रोका गया परन्तु वे रावी के

* “Overawing” and “striking terror into.”—*The Crisis in the Punjab*, pp. 151-52.



पुलिस-स्टेशन, अजनाला
[ज्ञानी हीरासिंह जी, सम्पादक 'फुलवाड़ी', अमृतसर, की कृपा द्वारा]

किनारे किनारे अमृतसर की ओर बढ़े। सर रॉबर्ट मॉण्टगुमरी ने आज्ञा दी कि उनका पीछा किया जाय। अमृतसर का डिप्टी कमिश्नर फ्रेडरिक कूपर मॉण्टगुमरी का खास आदमी था।

२६ नम्बर पलटन के ये हिन्दोस्तानी सिपाही थके हुए, भूखे और निहत्थे अमृतसर की एक तहसील अजनाले से ६ मील दूर रावी के किनारे पड़े हुए थे। अजनाला अमृतसर से १६ मील के फासले पर है। इसके बाद अजनाले में जो घटना हुई उसे फ्रेडरिक कूपर ने अपनी पुस्तक “दी क्राइसिस इन दी पञ्जाब” में बड़े अभिमान के साथ वर्णन किया है। इस घटना को हम ठीक कूपर ही के बयान के अनुसार और उसी के शब्दों में केवल थोड़े से संक्षेप के साथ नीचे बयान करते हैं।

३१ जुलाई के दोपहर को कूपर को पता चला कि ये लोग रावी के किनारे किनारे बढ़ रहे हैं। अजनाले के तहसील-
रावीतट का हत्या-
काण्ड
दार को कुछ सशस्त्र सिख सिपाहियों सहित उन्हें घेरने के लिए भेजा गया। करीब चार बजे शाम को कूपर स्वयं ८० या ९० सवारों सहित मौके पर पहुँचा। उन थके हुए और भूखे लोगों पर गोलियाँ चलाई गईं। उनकी संख्या करीब पाँच सौ के थी। इनमें से करीब डेढ़ सौ गोलियों से ज़ख्मी होकर पीछे को हटे और रावी में डूब गए। कूपर लिखता है कि भूख और थकान के सबब वे इतने निर्बल थे कि धार में ठहर न सके। रावी का जल उनके रक्त से रङ्ग गया। शेष ने पानी

में से निकल कर कुछ भागते हुए और कुछ तैरते हुए नदी के ऊपर की ओर एक मील के फासले पर एक टापू में आश्रय लिया। दो किश्तियाँ मौके पर मौजूद थीं। तीस सशस्त्र सवार इन किश्तियों में बैठ कर उन्हें गिरफ्तार करने के लिए भेजे गए। करीब साठ बन्दूकों के मुंह उन लोगों की ओर कर दिए गए। दूर से बन्दूकों को देख कर उन मुसीबतज़दा लोगों ने हाथ जोड़ कर अपनी निर्दोषता प्रकट की और प्राण दान चाहा। इसी समय उनमें से पचास के करीब नैराश्य के कारण पानी में कूद पड़े और फिर दिखाई न दिए।

शेष को गिरफ्तार कर लिया गया और थोड़े थोड़े करके किश्तियों में बैठा कर किनारे तक पहुँचा दिया गया। किनारे पर पहुँच कर उनके गलों से मालाएँ आदि काट कर फेंक दी गईं, उन्हें अलग अलग गिरोंहों में अच्छी तरह बांध दिया गया और सिख सवारों की देख रेख में धीरे धीरे अजनाले पहुँचा दिया गया। उस समय ज़ोर की बारिश हो रही थी।

आधी रात के करीब कुल २८२ सिपाही जिनमें कई अफसर भी थे, अजनाले के थाने पर पहुँच गए। कूपर ने पहले से अजनाले के थाने में इन सब को फाँसी देने के लिए रस्सियों और गोली से उड़ाने के लिए पचास सशस्त्र सिख सिपाहियों का प्रबन्ध कर रक्खा था। किन्तु बारिश के कारण यह कार्य सुबह के लिए स्थगित किया गया। ये सब लोग पुलिस के मकान में न आ सकते थे।



‘काह्याँ-दा-बुर्ज’, अजनाला

इस इमारत के एक छोटे से बुर्ज में सन् ५७ में ६६ आदमी बन्द कर दिए गए थे,

जिनमें से ४५ हवा की कमी के कारण सुबह को मरे हुए निकले ।

पास ही तहसील की नई इमारत बन कर तैयार थी। अधिकांश को सुबह तक के लिए पुलिस के थाने में बन्द कर दिया गया, और ६६ को तहसील की नई इमारत के एक छोटे से गुम्बद में बन्द कर दिया गया।

यह गुम्बद बहुत तङ्ग था। उसके दरवाज़े चारों ओर से बन्द कर दिए गए।

अगले दिन पहली अगस्त को बकरीद थी। प्रातःकाल इन
 बकरीद का
 ल्यौहार
 अभागों को दस दस करके बाहर लाया गया।
 कूपर थाने के सामने बैठा हुआ था। दस सिख
 सिपाही एक ओर बन्दूकें लिए खड़े रहते थे।

शेष चालीस उनके आस पास मदद के लिए रहते थे। सामने आते ही इन लोगों को गोली से उड़ा दिया जाता था।

इनमें से अधिकांश सिपाही हिन्दू थे। लिखा है कि उनमें से कुछ ने मरते समय सिखों को गङ्गा जी की दुहाई दमघुट कर अन्त देकर लानत मलामत की। जब थाने के कैदी खत्म होगए तो गुम्बद के कैदियों को बाहर निकाला गया। किन्तु अभी कुल २३७ सिपाही ही गोली से उड़ाए गए थे, अर्थात् गुम्बद में से केवल २१ सिपाही बाहर निकले थे कि कूपर को सूचना दी गई कि शेष कैदी गुम्बद से बाहर निकलने से इनकार करते हैं।

कूपर लिखता है कि पहले उनको दुरुस्त करने का प्रबन्ध किया गया। फिर भीतर जाकर देखा गया तो शेष ४५ सिपाहियों की

लाशें पड़ी हुई मिलीं। सम्भवतः उनमें से कुछ अभी तक सिसक रहे थे। कूपर के शब्द हैं—

“अनजाने ही हॉलवेल के ब्लैकहोल का हत्याकाण्ड फिर से दोहराया गया।”*

यहाँ पर यह दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि हॉलवेल के ब्लैकहोल का किस्सा बिल्कुल भूठा था, किन्तु कूपर का अजनाले का ब्लैकहोल एक सच्ची घटना थी !

रात को वे लोग पानी और हवा के लिए चिल्लाए होंगे; किन्तु कूपर लिखता है कि बाहर के शोर के कारण उनकी आवाज़ें सुनाई नहीं दीं !

४५ लाशें, उन लोगों की जो थकान, गरमी और हवा की कमी के कारण भीतर घुट कर मर गए, बाहर घसीट कर डाल दी गईं।

एक कठिनाई बाकी थी। इन २८२ लाशों को दफ़न करने का प्रश्न। अजनाले के थाने से लगभग सौ गज़ के अजनाले का कुआँ अन्दर एक गहरा पुराना कुआँ था। ये सब लाशें मेहतरों से घिसटवा घिसटवा कर उस कुएँ में डलवा दी गईं। शेष कुएँ को मिट्टी से भर दिया गया और उसके ऊपर मिट्टी का एक इतना ऊँचा ढेर लगा दिया गया कि एक टीला सा बन गया।

इस कुएँ के विषय में फ़्रेडरिक कूपर बड़े अभिमान के साथ लिखता है—

* “Unconsciously the tragedy of Holwell's Black Hole had been re-enacted.”—*The Crisis in the Punjab*, by Frederick Cooper.



‘काल्याँ-दा-खूह’-अजनाला

[ज्ञानी हीरासिंह जी, सम्पादक ‘फुलवाड़ी’, अमृतसर, की कृपा द्वारा]

“एक कुआँ कानपुर में है, किन्तु एक कुआँ अजनाले में भी है।”*

इस प्रकार २६ नम्बर पलटन के करीब पाँच सौ मनुष्यों को २४ घण्टे के अन्दर परलोक पहुँचा दिया गया।
तोप के मुँह से उस पलटन के जो शेष थोड़े से सिपाही लाहौर उड़ाया जाना से अथवा रावी के किनारे से इधर उधर भाग निकले थे उन सब को दो चार दिन के अन्दर गिरफ्तार कर लिया गया। और कुछ को लाहौर में और कुछ को अमृतसर में तोप के मुँह से उड़ा दिया गया।

अगले दिन चीफ़ कमिश्नर सर जॉन लॉरेन्स और जुडीशल कमिश्नर सर रॉबर्ट मॉण्टगुमरी ने समस्त घटना घातकों को इनाम का समाचार पाकर कूपर को अत्यन्त प्रशंसा के पत्र लिखे, जो कूपर की पुस्तक में छपे हुए हैं।
हिन्दू तहसीलदार और सिख घातकों को बड़ी बड़ी रकमों इनाम में दी गई।

अजनाले की भीषण घटना यदि फ्रेडरिक कूपर ने अपनी पुस्तक के अन्दर बयान न की होती तो हमें उस पर पूरा विश्वास हो सकना कठिन था। किन्तु हमने जो कुछ ऊपर वर्णन किया है, कूपर ही के शब्दों में किया है!

इस पर भी इस घटना की तसदीक़ करने के लिए हमने ‘फुलवाड़ी’ पत्र के सम्पादक ज्ञानी हीरासिंह जी को कष्ट दिया।

* “There is a well at Cawnpore, but there is also one at Ajnalah.”—
Ibid.

उन्होंने स्वयं अमृतसर से अजनाले जाकर इस घटना की तसदीक की । अजनाले का एक बूढ़ा मनुष्य बाबा जगतसिंह, जिसकी आयु स्वाधीनता के युद्ध में करीब बीस वर्ष की थी, इस समय (सितम्बर १८२८) जीवित है और पूरी तरह सचेत है । बाबा जगतसिंह ने यह समस्त घटना अपनी आँख से देखी थी । बाबा जगतसिंह का कलमबन्द बयान हमारे पास मौजूद है । उसमें और कूपर के बयान में मुख्य बातों में कोई अन्तर नहीं है । वह कुआँ भी, जिसके अन्दर २८२ लाशें फेंकी गई थीं, अभी तक मौजूद है । उसके ऊपर एक ऊँचा मट्टी का टीला है । अजनाले में इसे अभी तक 'काल्याँदा-खूह' कहते हैं । पुलिस का थाना भी, जिसके सामने सिपाहियों को मारा गया था और तहसील की वह इमारत, जिसके एक गुम्बद में ४५ सिपाही घुट कर मर गए अभी तक मौजूद है । इस गुम्बद को अभी तक वहाँ के लोग 'काल्याँ दा बुर्ज' कहते हैं । बाबा जगतसिंह का बयान है कि अजनाले के उस समय के तहसीलदार का नाम प्राणनाथ था और जो लोग कुएँ के अन्दर एक दूसरे के ऊपर डाले गए उनमें से कुछ जीवित थे और चिल्ला रहे थे । इस शोकजनक घटना से हट कर अब हम राजधानी दिल्ली की ओर आते हैं ।

दिल्ली के अन्दर इस समय कान्तिकारियों का मुख्य कार्य यह था कि वे बार बार नगर से निकल कर कभी दाएँ से और कभी बाएँ से अंगरेज़ी सेना पर हमला करते थे, अंगरेज़ी सेना को काफी

दिल्ली में
अंगरेज़ी सेना



बाबा जगतसिंह—अजनाला

[ज्ञानी हीरासिंह जी, सम्पादक 'फुलवारी', अमृतसर की कृपा द्वारा]



कप्तान जी० एफ० एटकिन्सन के हाथ का एक व्यंग चित्र जिसमें अंगरेज़ प्राइज़ एजेंट्स
दिल्ली की लूट में मकानों को खुदवा कर गड़ा हुआ धन निकाल रहे हैं।

[By courtesy of the Trustees, Victoria Memorial Museum]

नुकसान पहुँचा देते थे और फिर पीछे को हटते जाते थे। अंगरेज़ी सेना उनका पीछा करती थी। जब अंगरेज़ी सेना शहर फ़सील के ठीक नीचे आ जाती थी, फ़सील के ऊपर की तोपें उन पर इस बुरी तरह गोले बरसाती थीं कि कम्पनी के सिपाही दीवार के नीचे चनों की तरह भुनने लगते थे। इस प्रकार कई बार में कम्पनी की सेना के इतने अधिक आदमी मारे गए कि जनरल विलसन ने विवश होकर आज्ञा दे दी कि आइन्दा किसी सूरत में भी क्रान्तिकारी सेना का पीछा न किया जाय। अंगरेज़ी सेना की स्थिति इस समय काफ़ी शोचनीय थी।

जब कि एक ओर अंगरेज़ी सेना को नगर में घुसने का साहस न होता था, दूसरी ओर क्रान्तिकारी सेना को भी इस बात का साहस न हुआ कि एक बार शहर से निकल कर मैदान में डट कर अंगरेज़ी सेना को ख़त्म कर दें। कारण केवल यह था कि जब कि दिल्ली की सेना में वीरता, संख्या या सामान किसी की कमी न थी, दिल्ली के अन्दर कोई एक ऐसा योग्य और प्रभावशाली नेता न था जो प्रान्त प्रान्त की सेनाओं को सफलता के साथ अनुशासन में रख सके और उन सब को मिलाकर एक निर्णायक संग्राम के लिए आगे बढ़ा सके। सम्राट बहादुरशाह बहुत बूढ़ा था और स्वयं सेनापतित्व ग्रहण करने के असमर्थ था। शहज़ादा मिरज़ा मुग़ल अयोग्य साबित हो चुका था। सेनापति बख़्त ख़ाँ उस समय क्रान्तिकारी सेनापतियों में सब से अधिक योग्य और

क्रान्तिकारियों में
अनुशासन की
कमी

समझदार था। किन्तु वह एक सामान्य सेनापति था। वह किसी शाही घराने में पैदा न हुआ था। उच्च कुल का घमण्ड अभी तक भारतवासियों में मौजूद था। दिल्ली की अनेक सेनाओं के सेनापति छोटे मोटे नरेश या राजकुलों के लोग थे। उन लोगों पर बख्त खाँ का प्रभाव न पड़ता था। उनमें से कोई कोई बख्त खाँ के साथ ईर्ष्या भी अनुभव करने लगे थे। दिन प्रति दिन आपस की कशमकश बढ़ती गई। सम्राट बहादुरशाह ने सब को समझाने का प्रयत्न किया किन्तु सफलता न मिल सकी।

दिल्ली में उस समय योग्य और शक्तिशाली नेता की आवश्यकता थी। जयपुर, जोधपुर, सींधिया और होलकर देशी नरेशों के नाम बहादुरशाह का पत्र जैसे नरेश राष्ट्रीय क्रान्ति के साथ देने का अन्त तक निश्चय न कर सके। अन्यथा महाराजा सींधिया जैसे प्रभावशाली आदमी का एक बार दिल्ली में आकर इस कमी को पूरा कर सकना कोई कठिन कार्य न होता। वास्तव में दिल्ली के अन्दर की यह जबरदस्त कमी ही सन् ५७ के स्वाधीनता युद्ध की अन्तिम असफलता का एक मुख्य कारण हुई। दिल्ली के अन्दर एक बार करीब पचास हजार सन्नद्ध सेना थी। यदि यह विशाल सेना फ़सील के नीचे की अंगरेजी सेना को समाप्त कर विजय के उत्साह में भरी हुई एक बार शेष भारत पर फैल जाती तो निस्सन्देह इसके बाद का क्रान्ति का नक्शा बिलकुल बदल गया होता।

सम्राट बहादुरशाह इस कमी को पूरी तरह समझ रहा था।

उसने अनेक उपाय किए । किन्तु व्यर्थ ! उसने अपने बेटे मिरजा मुगल को हटा कर दिल्ली की सेनाओं का प्रधान नेतृत्व बख्त ख़ाँ को सौंप दिया । किन्तु इससे भी कार्य न चला । अन्त में सम्राट बहादुरशाह ने नीचे लिखा पत्र स्वयं अपने काँपते हुए हाथ से लिख कर जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, अलवर और अन्य अनेक राजाओं के पास भेजा—

“मेरी यह दिली ख़्वाहिश है कि जिस ज़रिए से भी और जिस क्रीमत पर भी हो सके, फ़िरङ्गियों को हिन्दोस्तान से बाहर निकाल दिया जाय । मेरी यह ज़बरदस्त ख़्वाहिश है कि तमाम हिन्दोस्तान आज़ाद हो जाय । लेकिन इस मक़सद को पूरा करने के लिए जो क्रान्तिकारी युद्ध शुरू कर दिया गया है वह उस समय तक फ़तहयाब नहीं हो सकता जिस समय तक कि कोई ऐसा शख्स जो इस तमाम तहरीक के भार को अपने ऊपर उठा सके, जो क्रौम की मुख़्तलिफ़ ताक़तों को सङ्गठित करके एक ओर लगा सके और जो अपने तर्ई तमाम क्रौम का नुमाइन्दा कह सके, मैदान में आकर इस क्रान्ति का नेतृत्व अपने हाथों में न ले ले । अंगरेज़ों के निकाल दिए जाने के बाद अपने ज़ाती फ़ायदे के लिए हिन्दोस्तान पर हुकूमत करने की मुक़दमें ज़रा भी ख़्वाहिश बाक़ी नहीं है । अगर आप सब देशी नरेश दुश्मन को निकालने की गरज़ से अपनी तलवार खींचने के लिए तैयार हों, तो मैं इस बात के लिए राज़ी हूँ कि अपने तमाम शाही अख़्तियारात और हक़ूक़ देशी नरेशों के किसी ऐसे ग़िरोह के हाथों में सौंप दूँ जिसे इस काम के लिए चुन लिया जाय ।”*

*The Autograph letter, — *Native Narratives*, by Sir T. Metcalfe, p. 226.

निस्सन्देह यह हसरत से भरा हुआ पत्र दिल्ली के अन्तिम सम्राट बहादुरशाह की समस्त भारतवर्ष के प्रति शुभेच्छा और उसकी उदारता, दोनों का दर्पण है। किन्तु सन्दिग्ध हृदय भारतीय नरेशों पर इसका यथेच्छ प्रभाव न पड़ सका।

इस बीच जनरल निकलसन के अधीन और नई सेना ने पञ्जाब से आकर कम्पनी की सेना में नई जान डाल दी। यह स्मरण रखना चाहिए कि इस समय जो कम्पनी की सेना दिल्ली के बाहर थी, उसमें अंगरेज़ों की अपेक्षा हिन्दोस्तानियों की संख्या कई गुनी थी। इन हिन्दोस्तानियों में अधिकतर सिख, गोरखे और कुछ अन्य पञ्जाबी थे।† फिर भी अगस्त के अन्त तक क्रान्तिकारी सेना बार बार कम्पनी की सेना पर हमला करती रही, किन्तु कम्पनी की सेना शहर फ़सील के निकट आने की हिम्मत न कर सकी।

२५ अगस्त को सिपहसालार बख़्त ख़ाँ ने फिर एक बार अपनी पूरी ताक़त से अंगरेज़ी सेना पर हमला किया। नीमच की सेना दिल्ली के अन्दर उस समय दो सेनाएँ मुख्य थीं। एक बरेली की और दूसरी नीमच की। क्रान्तिकारियों के दुर्भाग्य से इन दोनों सेनाओं में काफ़ी वैमनस्य और प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो गई थी। बख़्त ख़ाँ ने इन दोनों सेनाओं को मिला कर रखने का यथाशक्ति प्रयत्न किया। २५ अगस्त को ठीक उस समय

† *History of the Siege of Delhi*, by an Officer who served there.

जब कि बख्त ख़ाँ ने इन दोनों सैन्यदलों को लेकर अंगरेज़ी सेना के मुख्य स्थान नजफ़गढ़ पर हमला किया, नीमच की सेना ने बख्त ख़ाँ की आज्ञा का उल्लङ्घन किया। इन लोगों ने उस स्थान को छोड़ कर, जहाँ पर कि बख्त ख़ाँ ने उन्हें ठहरने के लिए कहा था, पास के दूसरे गाँव में डेरे जमाए। वे लोग शेष क्रान्तिकारी सेना से पृथक होगए। जनरल निकल्सन ने समाचार पाते ही पहले उन पर हमला किया और एक अत्यन्त घमासान संग्राम के बाद, जिसमें कि नीमच का एक एक सिपाही कट कर मर गया, कम्पनी की सेना ने विजय प्राप्त की। बख्त ख़ाँ को अपनी शेष सेना सहित पीछे लौट आना पड़ा।

नीमच की सेना की बहादुरी की अंगरेज़ इतिहास लेखकों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। किन्तु बिना सेनापति की अनन्य आज्ञापालन के संसार की कोई सेना भी विजय प्राप्त नहीं कर सकती। पूर्ण व्यवस्था सामरिक सफलता का सब से आवश्यक साधन है। १६ मई के बाद वह पहला दिन था कि दिल्ली के नगर के अन्दर नैराश्य की छटा दिखाई देने लगी और कम्पनी की सेना के हौसले दुगने होगए।

कम्पनी की ओर उस समय साढ़े तीन हजार अंगरेज़, पाँच हजार सिख, गोरखे और पञ्जाबी, ढाई हजार काशमीरो, और स्वयं भींद का महाराजा और उसकी सेना थी। नगर के अन्दर अव्यवस्था बढ़ती चली गई। सितम्बर के शुरू में अंगरेज़ी सेना को धीरे धीरे नगर पर आक्रमण

करने का साहस होने लगा। इतिहास लेखक फॉरेस्ट लिखता है कि कम्पनी की ओर के भारतीय सिपाही उस समय अपने प्राणों पर खेलकर असाधारण वीरता के साथ अपने सेनापतियों की आज्ञा का पालन कर रहे थे।

इस बीच कम्पनी की ओर गुप्तचरों का मोहकमा भी खासा उन्नति कर गया था। इस मोहकमे का प्रधान गुप्तचरों का हडसन था। शहर के अन्दर कई विश्वासघातक मोहकमा पैदा किए जा चुके थे, जिनमें मुख्य सम्राट बहादुरशाह का समधी मिरजा इलाहीबख्श था। मिरजा इलाहीबख्श प्रायः सदा बहादुरशाह के साथ रहता था और महल की तमाम बातों और सलाहों की खबरें मेजर हडसन तक पहुँचाता रहता था।

७ सितम्बर से कम्पनी की सेना ने नगर के अन्दर प्रवेश करने के जी तोड़ प्रयत्न शुरू कर दिए। ७ से १३ तक सितम्बर का उन्हें प्रति दिन अनेक जानें देकर पीछे हट जाना दूसरा हफ़्ता पड़ा। किन्तु इस बीच कम्पनी की तोपों के कारण शहर फ़सील में जगह जगह दरारें पड़ गई थीं। १४ सितम्बर को कम्पनी की सेना ने नगर में प्रवेश करने का अन्तिम और सबसे अधिक जोरदार प्रयत्न किया। वास्तव में उस दिन का दिल्ली का संग्राम क्रान्ति के सबसे अधिक भयङ्कर संग्रामों में से था।

प्रातःकाल जनरल विलसन ने कम्पनी की सेना को पाँच दलों में विभक्त किया। एक दल ब्रिगेडियर जनरल १४ सितम्बर का संग्राम निकलसन के अधीन, दूसरा करनल कैम्पबेल के

अधीन, तीसरा ब्रिगेडियर जोन्स के अधीन, चौथा मेजर रीड के अधीन और पाँचवाँ ब्रिगेडियर लॉङ्गफील्ड के अधीन। पहले तीन दलों ने जनरल निकल्सन के प्रधान नेतृत्व में काशमीरी दरवाजे की ओर से प्रवेश करना चाहा, चौथे दल ने मेजर रीड के अधीन काबुली दरवाजे और सब्जी मण्डी की ओर से बढ़ना चाहा। सबसे पहले सूर्योदय के थोड़ी देर बाद निकल्सन अपने दल सहित फ़सील की ओर बढ़ा। भीतर से कान्तिकारियों की तोपों ने गोले बरसाने शुरू किए। दीवार के नीचे अंगरेज़ और सिख सिपाहियों की लाशों के ढेर लग गए। फिर भी उन्हें रौंदते हुए निकल्सन और उसके कुछ साथी दीवार तक पहुँच गए। पिछले सात दिनों के प्रयत्नों में दीवार का कुछ टुकड़ा टूट चुका था। इस टुकड़े के पास सीढ़ी लगा दी गई। निकल्सन पहला अंगरेज़ वीर था, जिसने गोलियों और गोलों की बौछार के अन्दर काशमीरी दरवाजे के निकट फ़सील पर चढ़ कर विजय का बिगुल बजाया।

इसी प्रकार मरते मारते दूसरा दल एक ओर ओर से फ़सील पर चढ़ कर शहर के भीतर कूद पड़ा। तीसरा दल दिल्ली के अन्दर काशमीरी दरवाजे की ओर बढ़ा। कुछ अफ़सरों ने आगे बढ़ कर दरवाजे को बारूद से उड़ा देना चाहा। दीवारों और खिड़कियों से धुआँधार गोलियाँ बरसने लगीं। कई अंगरेज़ और देशी अफ़सर इसी प्रयत्न में मारे गए। अन्त में एक ने दरवाजे तक बारूद पहुँचा दी और

दिल्ली के अन्दर
कम्पनी की सेना
का प्रवेश

दूसरे कप्तान बरगोस ने मरते मरते फ़लीता दिखा दिया। काशमीरी दरवाज़े का एक भाग उड़ गया। करनल कैम्पबेल ने अपने दल को आगे बढ़ने की आज्ञा दी और गोलियों की बौछार में से बढ़ कर कैम्पबेल और उसके कुछ साथी काशमीरी दरवाज़े के अन्दर पहुँच गए।

चौथे दल ने मेजर रीड के अधीन काबुली दरवाज़े की ओर से बढ़ना चाहा। सब्ज़ी मण्डी के निकट दिल्ली की सेना से उनका आमना सामना हुआ। पहले ही बार में मेजर रीड घायल होकर गिर पड़ा। एक बार उसकी सेना पीछे हटी। इस पर होप ग्रॉण्ट कुछ सवारों सहित आगे बढ़ा। दोनों ओर से रक्त की नदियाँ बहने लगीं। होप ग्रॉण्ट के अधिकतर सवार हिन्दोस्तानी थे। संग्राम में दोनों पक्ष के सिपाहियों ने अपूर्व वीरता का परिचय दिया। अन्त में अंगरेज़ी सेना को फिर पीछे हट जाना पड़ा।

चौथे दल ने इस प्रकार हार खाई। शेष तीनों दलों ने निकलसन, कैम्पबेल और जोन्स के अधीन काशमीरी दरवाज़े से घुस कर शहर पर धावा किया। जिस जिस मकान या मीनार को ये लोग सर कर लेते थे उस पर तुरन्त सूचना के लिए अंगरेज़ी भण्डा गाड़ देते थे। एक एक मकान के सामने संग्राम होता जाता था। इस प्रकार लड़ते लड़ते ये तीनों दल काबुली दरवाज़े की ओर बढ़े।

बर्न बैस्टियन के पास पहुँच कर इन लोगों को एक तङ्ग गली में से निकलना पड़ा। इस गली के दोनों ओर की अमर गली खिड़कियों, छज्जों और छतों पर से गोलियों की

भयङ्कर वर्षा होने लगी। गली के अन्दर अक्षरशः रक्त की नदी बह निकली। अंगरेज़ी सेना को मजबूर होकर पीछे हट जाना पड़ा। निकल्सन यह हालत देख कर एक सच्चे वीर के समान आगे बढ़ा। यह गली करीब दो सौ गज़ लम्बी थी। किन्तु १४ सितम्बर के दिन इस गली ने जो अद्भुत कार्य कर दिखाया उसने वास्तव में इस गली को अमर कर दिया। वीर निकल्सन को भी पीछे हट जाना पड़ा। इस पर मेजर जैकब आगे बढ़ा और तुरन्त घायल होकर गिर पड़ा। निकल्सन फिर दूसरी बार आगे बढ़ा। किन्तु इस बार आगे बढ़ते ही घायल होकर ज़मीन पर गिर पड़ा। अन्त में अंगरेज़ी सेना को गली छोड़कर पीछे हट जाना पड़ा। गली लाशों से भर गई। कम्पनी की सेना को पीछे हट कर काशमीरी दरवाज़े लौट आना पड़ा।

जिस समय निकल्सन बर्न बैस्टियन की ओर बढ़ रहा था उसी समय करनल कैम्पबेल के अधीन एक दल जामे मस्जिद की लड़ाई जामे मस्जिद की ओर भेज दिया गया था। मस्जिद तक पहुँचने में इन लोगों को बहुत अधिक कठिनाई नहीं हुई। किन्तु मस्जिद में उस समय कई हजार मुसलमान जमा थे। उन्हें पता चल गया था कि अंगरेज़ मस्जिद को बारूद से उड़ाना चाहते हैं। इन सब के पास तलवारें थीं, बन्दूकें न थीं। ये सब लोग अपनी तलवार हाथ में लेकर मस्जिद से निकल पड़े। सब से पहले उन्होंने अपनी तलवारों के मियान काट कर फेंक दिए। उन्हें मस्जिद के बाहर देखते ही अंगरेज़ी

सेना ने उन पर बन्दूकों की एक बाढ़ चलाई। उनमें से दो सौ आदमियों की लाशें तुरन्त मसजिद की सीढ़ियों पर गिर पड़ीं। किन्तु शेष मुसलमान इस फुरती के साथ तलवारें हाथ में लिए आगे बढ़े कि अंगरेज़ी सेना को दोबारा बन्दूकें भरने या सँभालने तक का अवकाश न मिल सका। बन्दूकों को छोड़ कर दोनों ओर से तलवारों की लड़ाई शुरू हो गई। कैम्पबेल घायल हो गया। अंगरेज़ी सेना के इस दल को भी विवश होकर काशमीरी दरवाज़े की ओर भाग आना पड़ा। कैम्पबेल ने बाद में बयान किया कि यदि मुझे समय पर सहायता पहुंच जाती और बारूद के थैले मेरे पास आ जाते तो मैं उस दिन दिल्ली की जामे मसजिद को अवश्य उड़ा देता।

इस प्रकार १४ सितम्बर की लड़ाई खत्म हो गई। दिल्ली में अंगरेज़ी सेना के प्रवेश का यह पहला दिन था। उस दिन के संग्राम अत्यन्त भयङ्कर रहा। दोनों पक्षों ने हताहत एक एक इञ्च भूमि के लिए अपने और शत्रु दोनों के रक्त को पानी की तरह बहा दिया। अंगरेज़ों की ओर चार मुख्य सेनापतियों में से तीन घायल हो गए, जिनमें सब से वीर सेनापति निकल्सन २३ सितम्बर को अस्पताल में मरा। कम्पनी के ६६ अफ़सर और १,१०४ सिपाही उस दिन के संग्राम में मारे गए। कहा जाता है कि क्रान्तिकारियों की ओर करीब १,५०० आदमी मरे। किन्तु चार महीने के मोहासरे के बाद दिल्ली की दीवार के अन्दर कम्पनी की सेना ने प्रवेश कर लिया।

इसके बाद के दिल्ली के संग्रामों को इतने विस्तार के साथ वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। क्रान्तिकारियों की ओर अव्यवस्था बढ़ने लगी। कुछ सेना तुरन्त दिल्ली छोड़ कर चल दी और कुछ १५ सितम्बर से २४ सितम्बर तक दिल्ली की एक एक चप्पा भूमि के लिए शत्रु के साथ संग्राम करती रही। इन संग्रामों में कम्पनी की सेना के करीब चार हजार मनुष्य मारे गए। क्रान्तिकारियों के हताहतों की संख्या इससे कुछ अधिक बताई जाती है।

धीरे धीरे तीन चौथाई नगर कम्पनी के कब्जे में आ गया। इस पर १६ सितम्बर की रात को बख्त ख़ाँ सम्राट को बख्त ख़ाँ का आश्वासन सम्राट बहादुरशाह से भेंट करने के लिए गया। उसने सम्राट को हिम्मत दिलाई और कहा कि—

। हाथ से निकल जाने पर भी हमारा कुछ अधिक नहीं बिगड़ा, तमाम मुल्क में आग लगी हुई है, आप अंगरेजों से हार स्वीकार न कीजिए, आप मेरे साथ दिल्ली से निकल चलिए, कई अन्य स्थान सामरिक दृष्टि से दिल्ली की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हैं, इनमें से किसी पर भी जम कर हमें युद्ध जारी रखना चाहिए। मुझे विश्वास है कि अन्त में हमारी विजय होगी।”

सम्राट बहादुरशाह बख्त ख़ाँ की बात पर करीब करीब राजी हो गया, और उसे अगले दिन सबेरे फिर मिलने के लिए बुलाया। दूसरी ओर अंगरेजों ने अपने गुप्त सहायक मिरजा इलाहीबख्श पर इस बात का जोर दिया कि तुम किसी प्रकार बादशाह को

दिल्ली से बाहर जाने से रोक लो । इस कार्य के लिए मिरज़ा इलाही बख़्श से बहुत बड़े इनाम का वादा किया गया । चुनाँचे आज तक मिरज़ा इलाहीबख़्श के वंशजों को बारह सौ रुपए माहवार पेनशन मिलती है ।

बख़्त ख़ाँ के चले जाने के बाद मिरज़ा इलाहीबख़्श ने सम्राट को समझाया कि :—

बख़्त ख़ाँ और
मिरज़ा इलाहीबख़्श “विप्लव के सफल होने की अब कोई आशा नहीं हो सकती, बख़्त ख़ाँ के साथ जाने में आपको सिवाय कष्टों और हानि के कुछ न मिलेगा, और यदि आप यहाँ रह जायँगे तो मैं वादा करता हूँ कि अंगरेज़ों से मिल कर सब बातों की सफ़ाई करा दूँगा, आप और आपके कुटुम्बियों पर किसी तरह की आँच न आने पाएगी ।”

अगले दिन सवेरे बहादुरशाह हुमायूँ के मक़बरे में गया । बख़्त ख़ाँ को वहीं पर मिलने के लिए बुलाया गया । मक़बरे के पूर्व की ओर जमना की रेतो में बख़्त ख़ाँ की फ़ौज पड़ी हुई थी । पूर्व की ओर के दरवाज़े से ही बख़्त ख़ाँ बहादुरशाह से मिलने के लिए मक़बरे में आया । बख़्त ख़ाँ ने बहादुरशाह को फिर समझाया । लिखा है कि बख़्त ख़ाँ बहादुरशाह को अपने साथ ले जाना चाहता था, बहादुरशाह बख़्त ख़ाँ के साथ जाना चाहता था, और मिरज़ा इलाहीबख़्श बहादुरशाह को रोक लेने के दाँव पेच खेल रहा था । अन्त में मिरज़ा इलाही बख़्श ने जब देखा कि और कोई चाल नहीं चल सकती तो उसने बख़्त ख़ाँ पर यह इलज़ाम लगाया कि बख़्त ख़ाँ चूँकि पठान है वह मुग़लों से अपनी क़ौम

का पुराना बदला चुकाना चाहता है और छल से बहादुरशाह को फँसाना चाहता है। इस पर बात यहाँ तक बढ़ी कि निर्दोष बख्त खाँ ने मिरजा इलाहीबख्श पर तलवार खींच ली। किन्तु स्वयं बहादुरशाह ने उसका हाथ रोक लिया। निस्सन्देह मिरजा इलाही बख्श का कोई न कोई तीर नेक, किन्तु बूढ़े तथा निर्बल बहादुरशाह पर अवश्य चल गया। अन्त में बहादुरशाह ने बख्त खाँ से ये शब्द कहे :—

“बहादुर ! मुझे तेरी हर बात का यत्नीन है और मैं तेरी हर राय को दिल से पसन्द करता हूँ। मगर जिस्म की क़ूबत ने जवाब दे दिया है। इसलिए मैं अपना मामला तक्रदीर के हवाले करता हूँ। मुझको मेरे हाल पर छोड़ दो और बिस्मिल्लाह करो ! यहाँ से जाओ और कुछ काम करके दिखाओ ! मैं नहीं, मेरे खानदान में से नहीं, न सही, तुम या और कोई हिन्दोस्तान की लाज रखे ! हमारी फ़िक्र न करो, अपने फ़र्ज को अज़ाम दो।”❀

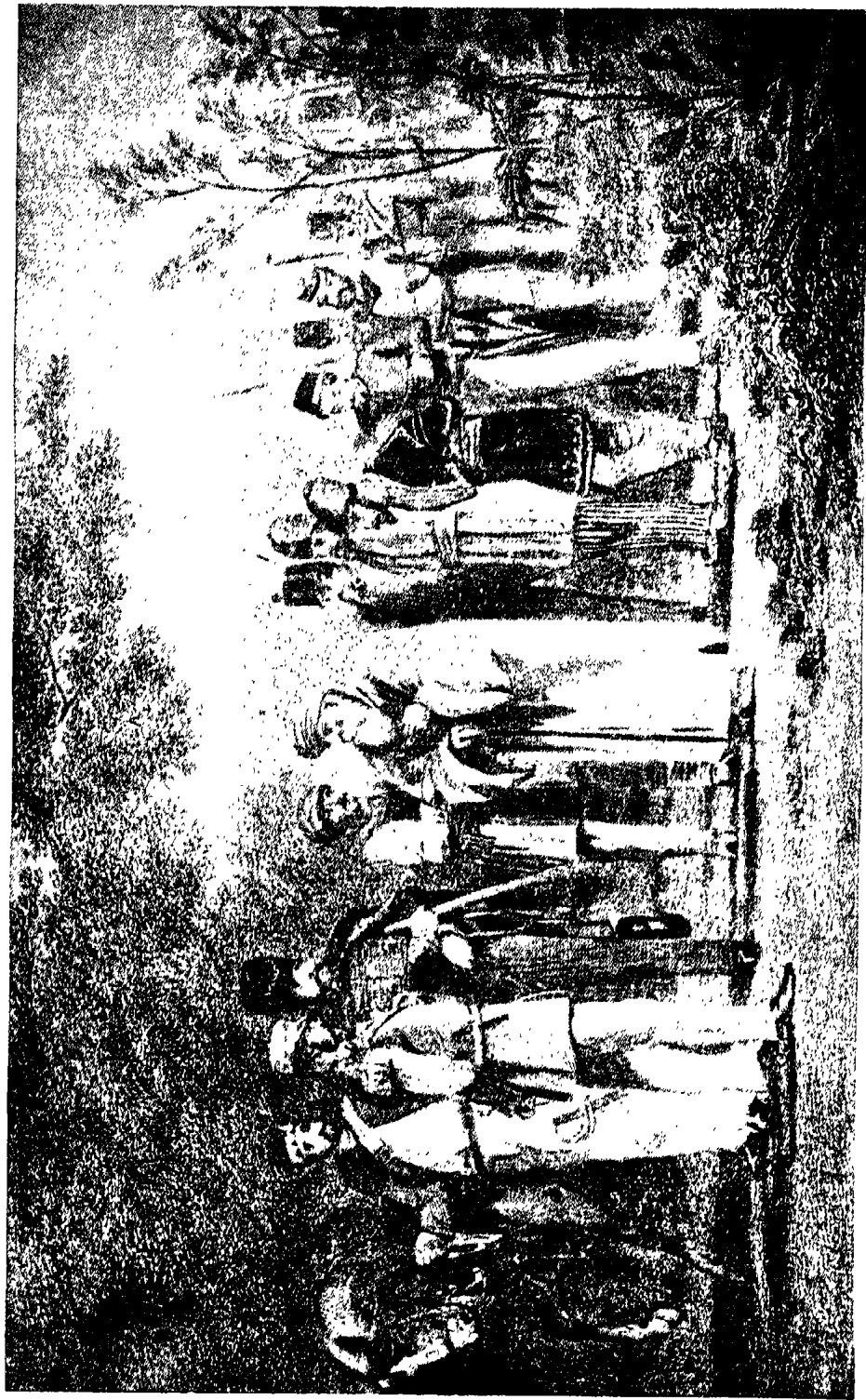
दिल्ली के समस्त स्वतन्त्रता संग्राम का यदि मुकुट बहादुरशाह था और हाथ पैर हज़ारों हिन्दू और मुसलमान वीर सिपाही थे, तो उस संग्राम का दिल और दिमाग़ बख्त खाँ था। बहादुरशाह के इस उत्तर से बख्त खाँ का दिल टुकड़े टुकड़े हो गया। वह गरदन नीची करके मक़बरे के पूर्वी दरवाज़े से बाहर निकल आया।

बख्त खाँ की
निराशा

दूसरी ओर विश्वासघातक मिरज़ा इलाहीबख्श ने पश्चिमी दरवाज़े से बाहर निकल कर तुरन्त अंगरेज़ों को सूचना दी कि इसी समय चुपके से पश्चिमी दरवाज़े पर आकर बहादुरशाह को गिरफ्तार कर लिया जाय। तुरन्त कप्तान हडसन पचास सवार लेकर मक़बरे के पश्चिमी दरवाज़े पर पहुँच गया। लिखा है कि जिस समय बहादुरशाह को मालूम हुआ कि हडसन मुझे गिरफ्तार करने आया है, उसने एक बार मिरज़ा इलाहीबख्श की ओर घूर कर देखा और कहा—“तुमने मुझको बख़्त खाँ के साथ जाने से रोका × × ×।” इलाहीबख्श सर झुकाए चुपचाप खड़ा रहा। यह भी लिखा है कि बहादुरशाह ने फिर इरादा किया कि किसी को भेज कर बख़्त खाँ को बुलाया जाय, किन्तु समय हाथ से निकल चुका था।

सम्राट बहादुरशाह, बेगम ज़ीनतमहल और शहजादे जवाँबख़्त को चुपचाप पूर्वी दरवाज़े से गिरफ्तार करके नगर पर पूरा क़ब्ज़ा लाल क़िले में लाकर कैद कर दिया गया, और दिल्ली का नगर १३४ दिन के कठिन परिश्रम के बाद फिर से पूरी तरह अंगरेज़ों के क़ब्ज़े में आ गया।

इसके बाद बख़्त खाँ अपनी समस्त सेना सहित जमना को पार कर किसी ओर निकल गया और आज बख़्त खाँ का अन्त तक किसी को उसका या उसकी सेना का पता न चल सका।



सम्राट बहादुरशाह की गिरफ्तारी

[From an old steel engraving. The Modern Review, December 1911]

जनरल विलसन और कप्तान हडसन की राय थी कि सम्राट बहादुरशाह को तुरन्त मार डाला जाय। किन्तु अभी तक अधिकांश विप्लवकारी भारत अंगरेजों के बश में न आया था। इसलिए अन्य अनेक अंगरेज अफसरों की राय इसके विरुद्ध थी। अन्त में बहादुरशाह को केवल कैद कर दिया गया।

सम्राट बहादुरशाह की गिरफ्तारी के बाद बहादुरशाह के दो और बेटे मिरजा मुगल और मिरजा अख्जर शहजादों की हत्या सुलतान और एक पोता मिरजा अबूबकर हुमायूँ के मकबरे में बाकी रह गए थे। कुछ अंगरेज इतिहास लेखकों का बयान है कि इन लोगों ने विप्लव के शुरू के दिनों में अंगरेज औरतों और बच्चों की हत्या में भाग लिया था। मिरजा इलाहीबख्श ने हडसन को सूचना दी कि ये लोग अभी तक मकबरे में मौजूद हैं। हडसन तुरन्त फिर मकबरे की ओर लौटा। तीनों शहजादों को कैद कर लिया गया। मिरजा इलाहीबख्श ने शहजादों को समझा कर इस कार्य में पूरी मदद दी। शहजादों को रथों में सवार करा कर हडसन अपने सवारों, मिरजा इलाहीबख्श और उसके दो मुसाहिबों सहित शहर की ओर चला। जब शहर एक मील रह गया तो हडसन ने रथों को ठहराया, तीनों शहजादों को रथों से उतरने के लिए कहा, उनके कपड़े उतरवाए और फिर अचानक अपने एक सिपाही के हाथ से बन्दूक लेकर उन तीनों को तीन फायर में वहीं पर खत्म कर दिया! गोलियाँ तीनों शहजादों की छाती में लगीं और वे “हाय दगा।” कह कर वहीं ठण्डे होगए। मिरजा इलाही

बख्श ने तीनों शहजादों से वादा कर लिया था कि मैं जनरल विलसन से तुम्हारी जान बख्शवा दूँगा !

शहजादों के सिर काट कर सम्राट बहादुरशाह के सामने लाए गए । सिरों को पेश करते हुए हडसन ने बहादुर शहजादों के कटे
हए सर शाह से कहा :—

“कम्पनी की ओर से यह आपकी नज़र है जो सरसों से बन्द थी ।”

ख्वाजा हसन निज़ामी ने लिखा है कि सम्राट बहादुरशाह ने जवान बेटों और जवान पोते के कटे हुए सिर देखे तो आश्चर्यजनक धैर्य के साथ देख कर मुंह फेर लिया और कहा :—

“अलहम्दोलिल्लाह ! तैमूर की औलाद ऐसी ही सुर्व रु होकर बाप के सामने आया करती थी !”

इसके बाद शहजादों के सिर खूनी दरवाज़े के सामने लाकर लटका दिए गए और धड़ कोतवाली के सामने टाँग दिए गए । अगले दिन इन तीनों लाशों को जमना में फिंकवा दिया गया ।

शहजादों की हत्या के सम्बन्ध में एक और इससे भी कहीं अधिक भयङ्कर रिवायत दिल्ली में मशहूर थी । हडसन ने शहजादों
का खून पिया वह रिवायत यह है कि एक तो ये शहजादे जिन्हें हडसन ने इस प्रकार धोखा देकर मारा, चार थे ।

* अर्थ—खुदा की तारीफ़ है ! तैमूर की औलाद इसी प्रकार मुख उज्ज्वल करके बाप के सामने आया करती थी !



बेगम ज़ीनत महल
असली फ़ोटो जो सन् ५७ के विद्रोह के बाद कैदी हालत में
लिया गया था ।

/ [From 'Two Native Narratives of the Mutiny in Delhi',
1858, pp. 15-16.]

इनमें एक शहज़ादा अब्दुल्ला भी था। दूसरी मुख्य बात यह है कि हडसन ने शहज़ादों को मार कर तुरन्त अपने चुल्लू में भरकर उनका गरम गरम खून पिया और पीकर यह कहा कि यदि मैं इनका खून न पीता तो पागल हो जाता।

यह रिवायत किसी अंगरेज़ी इतिहास में नहीं मिलती। किन्तु ख्वाज़ा हसन निज़ामी ने इसे अपनी उर्दू पुस्तक “देहली की जाँकनी” में दर्ज किया है। ख्वाज़ा साहब का दावा है कि यह घटना बिल्कुल सच्ची है। ख्वाज़ा हसन निज़ामी का बयान है—
“मैंने दिल्ली के सैकड़ों लोगों के मुँह से इस बात को सुना और इसके अलावा मिरज़ा इलाहीबख्श के उन दो खास मुसाहिबों में से एक ने, जो मौक़े पर मौजूद थे और जिन्होंने इस घटना को अपनी आँखों से देखा था, खुद मेरे पिता से आकर यह तमाम वाक़या सुनाया।”*

अब हमारे लिए केवल कम्पनी के कब्ज़े के बाद दिल्ली निवासियों के ऊपर कम्पनी की सेना के अत्याचारों घायलों की हत्या को संक्षेप में वर्णन करना बाक़ी रह गया है।

इन अत्याचारों के विषय में लॉर्ड एलफ़िन्सटन ने सर जॉन लॉरेन्स को लिखा :—

“मोहासरो के ख़त्म होने के बाद से हमारी सेना ने जो अत्याचार किए हैं उन्हें सुन कर हृदय फटने लगता है। बिना मित्र या शत्रु में भेद किए ये

* “देहली की जाँकनी”—लेखक ख्वाज़ा हसन निज़ामी। पृष्ठ ५२-५३

लोग सबसे एकसा बदला ले रहे हैं। लूट में तो वास्तव में हम नादिरशाह से भी बढ़ गए !”*

मोहासरे के दिनों में क़िले के छत्ते में बीमार और घायल सिपाहियों का एक अस्पताल था। कम्पनी की सेना जिस समय क़िले के अन्दर घुसी, जितने घायल और बीमार अस्पताल के अन्दर दिखाई दिए उन सबको उसने अपनी गोलियों से सदा के लिए रोगमुक्त कर दिया। इसी प्रकार और भी अनेक जगह, जहाँ घायल और बीमार पाए गए, क़त्ल कर दिए गए।†

मॉण्टगुमरी मार्टिन लिखता है :—

“जिस समय हमारी सेना ने शहर में प्रवेश किया दिल्ली के बाशिन्दों तो जितने नगर निवासी शहर की दीवारों के अन्दर का क़त्लेश्राम पाए गए उन्हें उसी जगह सज़्जीनों से मार डाला गया ; आप समझ सकते हैं कि उनकी संख्या कितनी अधिक रही होगी, जब मैं आपको यह बताऊँ कि एक एक मकान में चालीस चालीस और पचास पचास आदमी छिपे हुए थे। ये लोग विद्रोही न थे, बल्कि शहर के बाशिन्दे थे, जिन्हें हमारी दयालुता और क्षमाशीलता पर विश्वास था। मुझे खुशी है कि उनका अम दूर हो गया।”‡

* “After the siege was over, the outrages committed by our army are simply heart-rending. A wholesale vengeance is being taken without distinction of friend and foe. As regards the looting, we have indeed surpassed Nadirshah !—*Life of Lord Lawrence*, vol. ii, p. 262.

† “तारीख़ हिन्द”—लेखक शम्शुल उलमा मुंशी ज़काउल्ला ख़ाँ। पृष्ठ ६४६

‡ “All the city people found within the walls when our troops entered were bayoneted on the spot ; and the number was considerable, as you may



उस समय के एक अंगरेज़ कप्तान जी० एफ० एटकिन्सन के हाथ का खाका जिसमें कप्तान
हडसन द्वारा शहजादों की हत्या का दृश्य दिखाया गया है

[By the courtesy of the Trustees, Victoria Memorial, Calcutta]

इसके बाद एक दूसरा अंगरेज़ इतिहास लेखक लिखता है :—

“दिल्ली के बाशिन्दों के क़त्लेआम का खुले एलान कर दिया गया, यद्यपि हम जानते थे कि उनमें से बहुत से हमारी विजय चाहते हैं।”*

इस भयङ्कर हत्याकाण्ड के दिनों में केवल एक दिन के दृश्य को बयान करते हुए लॉर्ड राबर्ट्स लिखता है :—
एक दिन का दृश्य

“हम सुबह को लाहौरी दरवाज़े से चाँदनी चौक गए, तो हमें शहर वास्तव में मुरदों का शहर नज़र आता था। कोई आवाज़ सिवाय हमारे घोड़ों की टापों के सुनाई नहीं देती थी। कोई जीवित मनुष्य नज़र नहीं आया। सब ओर मुरदों का बिछौना बिछा हुआ था, जिनमें से कुछ मरने से पहले पड़े सिसक रहे थे।

“हम चलते हुए बहुत धीरे धीरे बात करते थे, इस डर से कि कहीं हमारी आवाज़ से मुरदे न चौंक पड़ें। X X X एक ओर मुरदों की लाशों को कुत्ते खा रहे थे और दूसरी ओर लाशों के आस पास गिद्ध जमा थे जो उनके मांस को नोच नोच कर स्वाद से खा रहे थे और हमारे चलने की आवाज़ से उड़ उड़ कर थोड़ी दूर जा बैठते थे X X X ।

“सारांश यह कि इन मुरदों की हालत बयान नहीं हो सकती। जिस प्रकार हमें इनके देखने से डर लगता था उसी प्रकार हमारे घोड़े इन्हें देख

suppose, when I tell you that in some houses forty or fifty persons were hiding. These were not mutineers, but residents of the city, who trusted to our well-known mild rule for pardon. I am glad to say they were disappointed.”—Letter in the *Bombay Telegraph*, by Montgomery Martin.

* “A general massacre of the inhabitants of Delhi, a large number of whom were known to wish us success, was openly proclaimed.”—The Chaplain's *Narrative of the Siege of Delhi*, quoted by Kaye.

कर डर से बिदकते और हिनहिनाते थे । लाशें पड़ी सदती थीं । उनके सड़ने से हवा में बीमार करने वाली दुर्गन्ध फैल रही थी ।”*

हसन निज़ामी लिखता है कि इस क़त्लेआम में पुरुष, स्त्री अथवा छोटे बड़े की कोई तमीज़ न की जाती थी ।

इनमें से अनेक लोगों को तरह तरह की यातनाएँ दे देकर मारा गया ।

यातनाएँ दे देकर
हत्या
लेटिफ़नेएट माजेएडी ने अपनी आँखों देखी
एक घटना बयान की है कि सिखों और गोरों ने
मिल कर एक घायल मनुष्य के चेहरे को पहले अपनी सज़ीनों से
बार बार बीँधा और फिर धीमी आँच के ऊपर उसे ज़िन्दा
भून दिया :—

“उसका मांस चटका, लपटों में काला होगया और जलते हुए मांस की
भयङ्कर दुर्गन्ध ने ऊपर उठ कर हवा को विषैला बना दिया ।”†

टाइम्स पत्र के सम्वाददाता सर विलियम रसल ने लिखा
है कि :—

‘मैंने इस शव्स की जली हुई हड्डियों कई दिन बाद मैदान में पड़ी
हुई देखी ।’‡

* *Forty-one Years in India*, by Lord Roberts, as quoted by Hasan Nizami in *Delhi-ki-Jankani*, pp. 66, 67.

† “ . . . the horrible smell of his burning flesh as it cracked and blackened in the flames, rising up and poisoning the air. ”—Lieut. Majendie, *Up Among the Pandies*, p. 187.

‡ *My Diary in India in the year 1858-59*, vol. i, p. 301-2.

मॉबरे टॉमसन ने सर हेनरी कॉटन से कहा था कि दिल्ली में कुछ मुसलमानों को नङ्गा करके, ज़मीन से बांधकर, सिर से पाँच तक जलते हुए ताँबे के टुकड़ों से अच्छी तरह दाग दिया गया था !*

इन लोगों को मारने से पहले कभी कभी उनको धर्मभ्रष्ट करने की घृणित क्रिया भी की जाती थी । एक अंगरेज़ धर्मभ्रष्ट करने के बाद हत्या पादरी की विधवा ने लिखा है कि बहुत से लोगों को पकड़ कर पहले उनसे सज़्जों के बल गिरजा में भाड़ू दिलवाई गई और फिर सबको फाँसी दे दी गई ।† रसल लिखता है कि कभी कभी :—

“मुसलमानों को मारने से पहले उन्हें सुअर की खालों में सी दिया जाता था, उन पर सुअर की चरबी मल दी जाती थी और फिर उनके शरीर जला दिए जाते थे, और हिन्दुओं को ज़बरदस्ती धर्मभ्रष्ट किया जाता था ।”‡

इन रोमाञ्चकारी घटनाओं के सम्बन्ध में अधिक उद्धरण देना अत्यन्त खेदकर है । परिणाम यह हुआ कि एक दिल्ली वीरान और सुनसान बार समस्त दिल्ली खाली और वीरान होगई, बल्कि उन इने गिने घरानों को छोड़ कर जिनसे कम्पनी की सेना को सहायता मिल रही थी, शेष समस्त नगर

* *Indian and Home Memories*, by Sir Henry Cotton, p. 143.

† *A Lady's Escape from Gwalior*, p. 243.

‡ “ . . . sewing Mohammedans in pig-skins, smearing them with pork-fat before execution and burning their bodies, and forcing Hindoos to defile themselves. . . . ”—*Russell's Diary*, vol. ii, p. 43.

निवासियों को, जो क़त्ल या फाँसी से बच सके ज़बरदस्ती शहर से बाहर निकाल दिया गया। इतिहास लेखक होम्स लिखता है :—

“दिल्ली के बाशिन्दों ने विप्लवकारियों के अपराधों का कई गुना प्रायश्चित्त कर डाला। दसों हजार मर्द, औरत और बच्चे बिना घरबार के इधर उधर के इलाक़े में घूम रहे थे, जिन्होंने कि कोई अपराध न किया था। अपना जां कुछ माल असबाब वे नगर में पीछे छाँड़ गए थे उससे वे सदा के लिए हाथ धाँ चुके थे; क्योंकि सिपाहियों ने गली गली और घर घर जाकर हर क़ीमती चीज़ को खोज कर निकाल लिया था, और जो कुछ सामान वे उठा कर न ले जा सके उसे उन्होंने टुकड़े टुकड़े कर डाला।”❀

शहर पर क़ब्ज़ा करने के बाद तीन दिन तक कम्पनी की सेना के सब सिपाहियों को नगर की लूट माफ़ रही।

‘प्राइज़ एजन्सी’ उसके बाद ‘प्राइज़ एजन्सी’ नाम से एक सरकारी मोहकमा खोल दिया गया, जिसका काम यह था कि शहर के तमाम घरों के हर तरह के माल असबाब को एक जगह जमा करके उस नीलाम करे या गोदामों में रखे और रुपया फ़ौज को तकसीम कर दे। इस मोहकमे ने मकानों के अन्दर किताबें, बरतन, चारपाई, चक्री, गड़ा हुआ माल दौलत, यहाँ तक कि मकानों के

* “The people of Delhi had expiated, many times over, the crimes of the mutineers. Tens of thousands of men, and women, and children, were wandering, for no crime, homeless over the country. What they had left behind was lost to them for ever; for the soldiers, going from house to house and from street to street, ferreted out every article of value, and smashed to pieces whatever they could not carry away.”—Holmes' *A History of the Indian Mutiny*, p. 386.

किवाड़ और उनके अन्दर का लोहा और पीतल तक, कोई चीज़ नहीं छोड़ी।

ख्वाजा हसन निजामी ने लिखा है :—

“करनल बर्न को शहर का फ़ौजी गवर्नर नियुक्त किया गया। उसने एक दस्ता फ़ौज का इस काम के लिए नियुक्त किया कि जहाँ कहीं आबादी पाओ, मर्द, औरत और बच्चों को घरों के असबाब सहित गिरफ्तार करके ले आओ। आगे आगे मर्द असबाब के गट्टर सर पर रखे हुए, पीछे पीछे उनकी औरतें रोती हुई, पैदल और बच्चों को साथ लिए हुए। जिन औरतों को कभी पैदल चलने की आदत न थी वे ठोकरें खा खा कर गिरती थीं, बच्चे गोद से गिरे जाते थे और सिपाही क्रूरता के साथ उन्हें आगे चलने के लिए धक्के देते थे।

“जब ये लोग करनल बर्न के सामने पेश होते तो हुकुम दिया जाता कि असबाब में जितनी कीमती चीज़ें हैं, उन्हें ढूँढ़ कर ज़ब्त कर लो, व्यर्थ चीज़ें वापस दे दो। यह हो चुकने पर दूसरा हुकुम यह दिया जाता कि इनको सिपाहियों की देख रेख में लाहौरी दरवाज़े तक ले जाओ और शहर से बाहर निकाल दो। ऐसा ही किया जाता और वे लोग लाहौरी दरवाज़े के बाहर धक्के देकर निकाल दिए जाते।

“दिल्ली शहर के बाहर इस प्रकार हज़ारों मर्द, औरतें और बच्चे असहाय, नङ्गे पाँव, नङ्गे सर, भूखे प्यासे फिर रहे थे। X X X सैकड़ों बच्चे भूख भूख चिल्लाते हुए माताओं की गोद में मर गए। सैकड़ों माताएँ छांटे बच्चों का दुख न देख सकने के कारण उन्हें अकेला छोड़ कर कुएँ में डूब मरीं।

“नगर के अन्दर हज़ारों औरतें ऐसी थीं कि जिस समय उन्होंने सुना

कि कम्पनी की फौज आती है तो बेइज़्जती और मुसीबतों से बचने के लिए कुश्नों में गिरने लगीं और इतनी अधिक गिरीं कि डूबने को पानी न रहा। अनेक कुएँ औरतों की लाशों से भर गए।

“सेना के एक अफसर का बयान है कि—‘हमने इस प्रकार की सैकड़ों औरतों को कुश्नों से निकाला जो लाशों के ढेर के कारण डूबी न थीं और ज़िन्दा पड़ी थीं या बैठी थीं। जिस समय हमने उन्हें निकालना चाहा वे चीखने लगीं कि—खुदा के लिए हमको हाथ न लगाओ और गोली से मार डालो, हम शरीफ़ बहू बेटियाँ हैं, हमारी इज़्जत ख़राब न करो।’ × × ×”

दिल्ली की स्त्रियों का यह डर, कि कहीं हमारी इज़्जत पर हमला न किया जाय, बेबुनियाद न था।

“फ़राशख़ाने के किसी कुएँ में दो औरतें ज़िन्दा निकाली गईं। एक जवान, किन्तु अन्धी और दूसरी बुढ़िया। बुढ़िया ने बयान किया कि मेरे एक ही बेटा था, उसे घर में घुस कर क़त्ल कर दिया गया, जब वह क़त्ल किया जा रहा था, कुछ सिपाहियों ने उसकी अन्धी बहिन के सतीत्व पर हमला करना चाहा, किन्तु वह अपने घर के कुएँ से परिचित थी, दौड़ कर उसमें गिर पड़ी, उसके साथ ही मैं भी कुएँ में कूद पड़ी। हम दोनों पानी में गोते खा रहे थे कि किसी ने अन्दर आकर हमें निकाल लिया।”

“दिल्ली में ऐसे भी लोग थे जिनके घर की स्त्रियों की आबरू पर जिस समय हमला होने लगा तो उन्होंने अपने हाथ से अपनी बहुओं और अपनी बेटियों को क़त्ल कर दिया और फिर स्वयं आत्महत्या कर ली !”*

दिल्ली निवासियों के धार्मिक भावों को जिस प्रकार आघात पहुँचाया गया उसके विषय में ख्वाजा हसन निज़ामी लिखता है—

मन्दिरों और
मसजिदों की
बेइज़्जती

“अंगरेज़ी सेना के मुसलमान सिपाही हिन्दुओं के मन्दिरों में घुस गए और उनको ख़राब कर डाला और हिन्दू सिपाहियों ने मसजिदों का ख़राब किया। दिल्ली की बड़ी ज़ामे मसजिद में सिख सिपाहियों की बाराग बनाई गई। पाख़ाने और पिशाब खाने भी इसी के अन्दर थे। मीनारों के नीचे हल्ले पकाए जाते थे और सुन्नर भी काट कर पकाए जाते थे। अंगरेज़ों के साथ के कुत्ते अन्दर पड़े फिरते थे। एक मसजिद ज़ीनतुलमसाजिद को गोरों का मिसकौट घर बनाया गया और नवाब हामिदअली ख़ाँ की मशहूर मसजिद में गधे बाँधे जाते थे। क़िले के नीचे एक बड़ी आलीशान मसजिद अकबराबादी थी जो गिरा कर बिलकुल ज़मीन के बराबर कर दी गई। इसी तरह और बहुत सी छोटी छोटी मसजिदों का ख़ात्मा हुआ।”*

फिर नए सिरे से दिल्ली आबाद हुई। पहले कुछ हिन्दुओं से भारी जुर्माने ले लेकर उन्हें मोहल्लों में बसने की इजाज़त दी गई। उसके बाद मार्च सन् १८५८ में मुसलमानों को पास ले लेकर नगर में बसने की इजाज़त मिली। फिर भी सन् १८५६ तक मुसलमानों के ख़ास मकान सरकारी ज़ब्त में थे और मुसलमान लोग शहर के अन्दर बिना किसी अफ़सर के पास के चल फिर न सकते थे।

दिल्ली का हाल खत्म करने से पहले अब केवल एक चीज़ को
 बयान करना और बाकी है। वह यह कि दिल्ली
 के राजकुल का अर्थात् सम्राट बाबर और सम्राट
 अकबर के वंशजों का किस प्रकार अन्त हुआ।

क्रान्ति के शुरू में दिल्ली के लाल किले के अन्दर सम्राट बहादुरशाह के कुटुम्बियों की एक बहुत बड़ी संख्या थी। इनमें से अनेक शहजादों को पकड़ कर फाँसी पर लटका दिया गया। उदाहरण के लिए शहजादे मिरजा कैसर को, जो सम्राट शाहआलम का एक बेटा था और इतना बूढ़ा था कि क्रान्ति में कोई हिस्सा लेना उसके लिए असम्भव था, फाँसी दे दी गई। शहजादे मिरजा मोहम्मद-शाह को, जो सम्राट अकबरशाह का पोता था और आजीवन गठिया का रोगी रहने के कारण सीधा खड़ा तक न हो सकता था, इसी प्रकार फाँसी पर लटका दिया गया। कुछ शहजादों को जेलखाने में रक्खा गया, उनसे चक्कियाँ पिसवाई गईं। जब वे अपना काम पूरा न कर सकते, उन पर कोड़ों की मार पड़ती थी। यहाँ तक कि वे बेचारे थोड़े ही दिनों में मार खा खाकर जीवन की कैद से मुक्त हो गए। बहादुरशाह का एक बेटा मिरजा कोयाश एक दिन दिल्ली के पास के जङ्गल में घोड़े पर सवार खड़ा दिखाई दिया, सर पर टोपी न थी और चेहरे पर धूल पड़ी हुई थी, हडसन उसकी तलाश में घूम रहा था, उसके बाद आज तक पता न चला कि मिरजा कोयाश का क्या हुआ। अनेक शहजादे और शहजादियाँ दिल्ली से बाहर दरबदर घूमते फिरते थे। बहादुरशाह की एक बेटी

सम्राट बहादुर शाह मृत्यु शय्या पर
एक असली क्रोडो से जो रंगून में मृत्यु से पहले लिया गया
[ख्वाजा हसन निज़ामी कृत "देहली की जौकनी"]

राबेया बेगम ने रोटियों से मोहताज होकर दिल्ली के एक हुसेनी बावरची से शादी कर ली। बहादुरशाह की एक दूसरी बेटी फ़ातमा सुल्तान ईसाई पादरियों के एक जनाने स्कूल में नौकरी करने लगी। जो शहज़ादियाँ अपने घरों में बैठ कर हजारों रुपये की ख़ैरात करती थीं वे चन्द महीने के अन्दर दरबदर भीख माँगती दिखाई देने लगीं।

सम्राट बहादुरशाह, बेगम ज़ीनतमहल और शहज़ादे जवाँबख्त को कैद करके रङ्गून भेज दिया गया। रङ्गून में सम्राट का निर्वासन और अन्त अंगरेज़ों की कैद के अन्दर सन् १८६३ में सम्राट बहादुरशाह की मृत्यु हुई और उसके साथ साथ दिल्ली के राजकुल का अन्तिम चिन्ह संसार से मिट गया।



अड़तालीसवाँ अध्याय

अवध और बिहार

अब हम लखनऊ की ओर आते हैं। वास्तव में सन् ५७-५८ के
स्वाधीनता युद्ध में वीरता और बलिदान की
बेगम हज़रत
महल दृष्टि से लखनऊ का पद दिल्ली से कहीं ऊँचा
रहा। दिल्ली के पतन के छै महीने बाद तक अवध
और लखनऊ में स्वाधीनता का झण्डा फहराता रहा।

चिनहट की विजय के बाद अवध की प्रजा ने कैदी नवाब
वाजिदअली शाह के पुत्र बिरजीस क़दर को लखनऊ के सिंहासन
पर बैठा दिया और चूँकि नवाब बिरजीस क़दर अभी नाबालिग
था इसलिए शासन की बाग बिरजीस क़दर की माँ हज़रतमहल
के हाथों में सौंप दी गई। अवध के सब ज़मींदारों और प्रजा ने बड़े
हर्ष के साथ बेगम हज़रतमहल को अपना अधिराज स्वीकार कर
लिया।

बेगम हज़रतमहल की प्रशंसा करते हुए रसल लिखता है—

“बेगम में बड़ी पराक्रमशीलता और योग्यता दिखाई देती है।

× × × बेगम ने हमारे साथ अनरवत युद्ध का एलान कर दिया है। इन रानियों और बेगमों की पराक्रमशीलता का देख कर मालूम होता है कि ज़नानखानों के अन्दर रह कर भी ये काफ़ी अधिक क्रियात्मक मानसिक शक्ति अपने अन्दर पैदा कर लेती हैं।”^{४४}

बेगम ने सबसे पहले नवाब बिरजीस क़दर की ओर से अवध की स्वाधीनता का शुभ सन्देश अनेक उपहारों सहित सम्राट बहादुरशाह की सेवा में दिल्ली भेजा, इसके बाद उसने राजा बालकृष्ण सिंह को अपना प्रधान मन्त्री नियुक्त किया और उस कठिन समय में राज के समस्त मोहकमों की नये सिरे से व्यवस्था कर एक बार समस्त अवध में शान्ति और सुशासन स्थापित कर दिया।

ऊपर लिखा जा चुका है कि अवध के अंगरेज़ और वहाँ का अंगरेज़ी राज उस समय लखनऊ की रेज़िडेन्सी के अन्दर कैद किया जा चुका था। रेज़िडेन्सी के बाहर समस्त अवध में कम्पनी की सत्ता का कोई चिह्न बाक़ी न रहा था। रेज़िडेन्सी का मोहासरा जारी था।

२० जुलाई सन् १८५७ को लखनऊ की क्रान्तिकारी सेना ने

* “The Begum exhibits great energy and ability. . . . The Begum declares undying war against us. It appears from the energetic characters of these Ranees and Begums that they acquire in their Zenanas and Harems a considerable amount of actual mental power”—Russell's *Diary*, p. 275.

रेज़िडेन्सी के ऊपर हमले करने शुरू किए। कई दिन तक दोनों ओर से खूब गोलेबारी होती रही। कई बार रेज़िडेन्सी के ऊपर का अंगरेज़ी भण्डा टूट कर गिर पड़ा, किन्तु हर बार नया भण्डा उसकी जगह लगा दिया गया। रेज़िडेन्सी के अन्दर सिख सिपाही अंगरेज़ों की जी तोड़ सहायता कर रहे थे। बाहर के भारतीय सैनिकों ने सिखों को अनेक बार समझा कर अपनी ओर करने का प्रयत्न किया, किन्तु व्यर्थ।

इन्हीं संग्रामों में एक दिन अवध का अङ्गरेज़ चीफ़ कमिश्नर सर हेनरी लॉरेन्स, जो पञ्जाब के चीफ़ कमिश्नर सर जॉन लॉरेन्स का भाई था, क्रान्तिकारियों की गोली का शिकार हुआ। मेजर बैङ्क्स ने तुरन्त उसका स्थान ग्रहण किया। चन्द दिन के बाद मेजर बैङ्क्स को भी एक गोली लगी और वह भी ख़त्म हो गया। ब्रिगेडियर इङ्गलिस ने अब उसका स्थान लिया। इसी बीच लिखा है कि क्रान्तिकारियों ने रेज़िडेन्सी की दीवार के कई हिस्से उड़ा दिए। भीतर के कई मकान भी क्रान्तिकारियों के गोलों से गिर कर ढेर हो गए।

रेज़िडेन्सी के अन्दर के अंगरेज़ों की हालत ख़ासी नैराश्यपूर्ण थी। उन्होंने मदद के लिए बार बार अपने गुप्त दूत कानपुर भेजे, जिनमें से कई दूत गिरफ़्तार कर लिए गए। २५ जुलाई को ब्रिगेडियर इङ्गलिस को सूचना मिली कि जनरल हैवलॉक मदद के लिए कानपुर से रवाना हो चुका है और पाँच या छै दिन के अन्दर लखनऊ पहुँच जायगा। किन्तु पाँच छै दिन के बाद हैवलॉक के

आने के स्थान पर क्रान्तिकारियों ने फिर एक बार रेज़िडेन्सी पर जोरदार हमला किया। रेज़िडेन्सी की दीवार का एक बहुत बड़ा टुकड़ा गिर पड़ा। दीवार के ऊपर सङ्गीनों और तलवारों की लड़ाई शुरू होगई। लिखा है कि उस दिन क्रान्तिकारियों ने कई अंगरेज़ सिपाहियों को सङ्गीनें तक छीन लीं। किन्तु अन्त में क्रान्तिकारी फिर नगर की ओर लौट आए।

इसके बाद १८ अगस्त को क्रान्तिकारियों ने रेज़िडेन्सी पर तीसरी बार हमला किया। अभी तक हैवलॉक और उसकी सेना का कहीं पता न था। इतने में ब्रिगेडियर इङ्गलिस को हैवलॉक का एक पत्र मिला जिसमें लिखा था—“मैं अभी कम से कम २५ दिन और लखनऊ नहीं पहुँच सकता।” रेज़िडेन्सी के अंगरेज़ों की घबराहट हद को पहुँच गई। रसद का सामान इतना कम हो गया कि सब को आधा पेट खाना दिया जाने लगा।

फिर भी लखनऊ के क्रान्तिकारी इस बीच रेज़िडेन्सी पर पूर्ण विजय प्राप्त कर वहाँ के समस्त अंगरेज़ों को कैद या ख़त्म न कर सके। इसका मुख्य कारण या तो यह था कि दिल्ली के समान लखनऊ में भी एक योग्य और प्रभावशाली सेनापति की कमी थी, या उन्हें शायद यह अनुमान था कि अंगरेज़ रसद की कमी और गोलों की आग से घबरा कर स्वयं आत्मसमर्पण कर देंगे। दूसरी ओर अंगरेज़ हैवलॉक और उसकी सेना के लिए आतुर हो रहे थे। इसलिए अब हम लखनऊ की रेज़िडेन्सी को छोड़ कर जनरल हैवलॉक की ओर आते हैं।

२६ जुलाई सन् ५७ को हैवलॉक ने कानपुर से निकल कर गङ्गा को पार किया। वह उस समय लखनऊ के जनरल हैवलॉक की लखनऊ यात्रा अंगरेजों को सहायता पहुँचाने के लिए आतुर था। कानपुर से लखनऊ का फासला ४५ मील से कम है। हैवलॉक को पूरा विश्वास था कि मैं दो चार दिन के अन्दर ही लखनऊ पहुँच जाऊँगा। उसके साथ डेढ़ हजार फौज और तेरह तोपें थीं।

किन्तु ज्योंही गङ्गा को पार कर हैवलॉक ने अवध की भूमि में प्रवेश किया, उसे मालूम हुआ कि लखनऊ तक पहुँच सकना इतना सरल नहीं है! अवध की एक एक चम्पा ज़मीन में स्वाधीनता की आग दहक रही थी। एक एक ज़मींदार ने अपने अधीन सौ सौ, दो दो सौ या अधिक मनुष्य जमा करके हैवलॉक को रोकने का निश्चय कर लिया। मार्ग में प्रत्येक ग्राम के ऊपर स्वाधीनता का हरा झण्डा फहरा रहा था। हैवलॉक को पहली लड़ाई उन्नाव में लड़नी पड़ी। वहाँ से ज्यों त्यों कर हैवलॉक आगे बढ़ा। दूसरा संग्राम बशीरतगञ्ज में हुआ। ये दोनों संग्राम २६ जुलाई ही को लड़े गए। हैवलॉक की सेना का छूठा हिस्सा इन लड़ाइयों में ख़त्म हो गया। ३० जुलाई को हैवलॉक को बशीरतगञ्ज से पीछे हट कर अपनी सेना सहित मङ्गलवार में आकर ठहरना पड़ा।

दूसरी ओर नाना साहब को जब यह पता चला कि हैवलॉक लखनऊ की ओर जा रहा है, उसने फिर एक बार कानपुर पर

हमले की तैयारी शुरू की। हैवलॉक को मजबूर होकर ४ अगस्त तक मङ्गलवार में ठहरे रहना पड़ा।

इसके बाद हैवलॉक फिर लखनऊ की ओर बढ़ा। बशीरतगञ्ज में ही उसे फिर कान्तिकारियों से मोरचा लेना पड़ा। इस दिन के संग्राम में हैवलॉक के तीन सौ आदमी मारे गए। उसके डेढ़ हजार सिपाहियों में से अब केवल साढ़े आठ सौ बाकी रह गए थे। विवश होकर हैवलॉक को फिर दूसरी बार गङ्गा की ओर पीछे लौट आना पड़ा।

अवध की ग्रामीण जनता के इस वीर पराक्रम को देख कर इतिहास लेखक इन्स लिखता है—

“कम से कम अवधनिवासियों के संग्राम को हमें स्वाधीनता का युद्ध मानना पड़ेगा।”❀

११ अगस्त को हैवलॉक तीसरी बार बशीरतगञ्ज की ओर बढ़ा। तीसरी बार उसे ग्रामीण अवधनिवासियों के साथ मोरचा लेना पड़ा और तीसरी बार जनरल हैवलॉक को पीछे हट कर मङ्गलवार में रुकना पड़ा।

इस बीच नाना साहब को सागर, ग्वालियर इत्यादि से काफी सहायता पहुँच चुकी थी। नाना ने फिर एक नाना के मनसूबे बार किसी दूसरे स्थान से गङ्गा को पार कर कानपुर पर हमला किया। जनरल नोल कानपुर में था। उसके

* “At least the struggle of the Oudhians must be characterised as a War of Independence.”—Innes' *Sepoy Revolt*.

पास नाना के मुकाबले के लिए काफी सेना न थी। उसने तुरन्त हैवलाँक को सूचना दी। हैवलाँक के लिए अब लखनऊ की ओर बढ़ सकना असम्भव हो गया। १२ अगस्त को दोबारा गङ्गा पार कर हैवलाँक को कानपुर लौट आना पड़ा।

हैवलाँक के गङ्गा पार करते ही अवधनिवासियों के हौसले दुगुने होगए। इतिहास लेखक इन्स लिखता है—

अवधनिवासियों
के हौसले

“अवध से हमारी सेना के लौट आने का परिणाम वह हुआ जिसका हैवलाँक को निस्सन्देह अनुमान तक न था। ताल्लुकेदारों ने खुले तौर पर इसका मतलब यह लिया कि अंगरेजों ने अवध का प्रदेश खाली कर दिया। अब उन्होंने लखनऊ दरबार को बाज़ाबता अपनी क्रियारमक सरकार स्वीकार कर लिया और यद्यपि वे उस सरकार की सहायता के लिए स्वयं लखनऊ नहीं पहुँचे, फिर भी लखनऊ दरबार की जिन आज्ञाओं को अभी तक उन्होंने नहीं माना था उन आज्ञाओं का अब उन्होंने पालन करना शुरू कर दिया। लखनऊ दरबार ने जितने जितने सैन्यदल इन लोगों से माँगे थे वे अब इन्होंने युद्ध के लिए लखनऊ भेज दिए।”*

वास्तव में यह आश्चर्यजनक प्रभाव उन्नाव और बशीरतगञ्ज के ग्राम निवासियों की वीरता का परिणाम था।

कानपुर पहुँचते ही हैवलाँक को सूचना मिली कि नाना साहब ने बिठूर पर फिर कब्ज़ा कर लिया है। १७ अगस्त को हैवलाँक ने नाना की सेना पर चढ़ाई की। एक घमासान संग्राम के बाद दोनों ओर

हैवलाँक की
घबराहट

की सेनाओं को पीछे हट जाना पड़ा। हैवलॉक को अब पता चला कि नाना ने एक अधिक विशाल सेना जमना के किनारे कालपी में जमा कर रक्खी है। यदि हैवलॉक लखनऊ की ओर बढ़ता तो नाना फिर तुरन्त आकर कानपुर पर फिर से कब्ज़ा कर लेता। घबरा कर जनरल हैवलॉक ने कलकत्ते सन्देशा भेजा—

“हम लोग एक भयङ्कर सङ्कट में हैं। यदि और अधिक सेना सहायता के लिए न पहुँची, तो अङ्गरेज़ी सेना को लखनऊ का विचार छोड़ कर इलाहाबाद लौट आना पड़ेगा। इस भयङ्कर आपत्ति का और कोई इलाज नहीं।”

नाना अभी कालपी में तैयारी कर ही रहा था कि हैवलॉक के सन्देशे पर चार सप्ताह के अन्दर सर जेम्स नई अंगरेज़ी सेना ऊटरम और अधिक सेना लेकर हैवलॉक की सहायता के लिए १५ सितम्बर को कलकत्ते से कानपुर पहुँच गया।

कुछ सेना अब कानपुर की रक्षा के लिए छोड़ दी गई। शेष सेना ने २० सितम्बर को फिर एक बार कानपुर हैवलॉक की दूसरी से लखनऊ के लिए प्रस्थान किया। जनरल लखनऊ यात्रा हैवलॉक ने सबसे पहले २५ जुलाई को लखनऊ जाने के लिए गङ्गा को पार किया था। दो महीने तक उसे आगे बढ़ने में सफलता न हो सकी और बार बार कानपुर लौट आना पड़ा। किन्तु २५ जुलाई की अंगरेज़ी सेना और २० सितम्बर की

* “We are in a terrible fix. If new reinforcements do not arrive, the British army can not escape the terrible fate of abandoning Lucknow and retreating to Allahabad.”—Havelock's message to Calcutta.

अंगरेजी सेना में बहुत बड़ा अन्तर था। नील, ऊटरम, कूपर और आयर जैसे चार चार अनुभवी सेनापति इस समय हैवलॉक की मदद के लिए मौजूद थे। ढाई हजार अंगरेज, एक रेजिमेण्ट सिखों की और बढ़िया तोपें हैवलॉक के साथ थीं।

दूसरी ओर अवध के कई सरहदी ताल्लुकेदारों ने, इस बीच इस विश्वास पर कि कम्पनी की सेना ने सदा के लिए अवध का प्रदेश छोड़ दिया, अपने अपने सैन्यदल लखनऊ भेज दिए थे। फिर भी उन्नाव, बशीरतगञ्ज इत्यादि स्थानों पर अवध के ग्रामवासियों ने पूर्ववत् एक एक चप्पा ज़मीन पर कम्पनी की सेना का विरोध किया। किन्तु अकेले ग्रामवासी, जिनके पास शस्त्रों की भी कमी थी, कम्पनी की इस विशाल और सुसन्नद्ध सेना का कहाँ तक मुकाबला कर सकते थे। समस्त मार्ग विरोधी ज़मींदारों और ग्रामनिवासियों की लाशों से पट गया। जिस गाँव के ऊपर हरा झण्डा फहराता हुआ दिखाई दिया उसे जला कर खाक कर दिया गया। मार्ग की नदियाँ दोनों ओर के रक्त से रँग गईं। अन्त में ज्यों त्यों कर मार्ग चीरते हुए २३ सितम्बर को कम्पनी की सेना लखनऊ के निकट आलमबाग नामक स्थान पर पहुँच गई।

आलमबाग में क्रान्तिकारियों को एक पलटन ठहरी हुई थी।

आलमबाग का
संग्राम

दिन भर और रात भर और अगले दिन खूब घमासान संग्राम हुआ। ठीक इस समय दिल्ली के पतन की खबर लखनऊ पहुँची, जिससे अंगरेजी सेना के हौसले और अधिक बढ़ गए।

२५ सितम्बर का प्रातःकाल हुआ। अंगरेजी सेना ने आलम-बाग से हट कर कुछ चक्कर से रेज़िडेन्सी की ओर बढ़ना चाहा। लखनऊ की सेना ने मुड़ कर उन पर गोले बरसाने शुरू किए, फिर भी अंगरेजी सेना गोलों की इस बाछार में से वीरता के साथ निकलती हुई चारबाग के पुल तक आ पहुँची। पुल के उस पार लखनऊ का शहर था। स्वभावतः चारबाग के पुल के ऊपर और अधिक भयङ्कर संग्राम हुआ। क्रान्तिकारियों की सेना पुल के ऊपर और दूसरी ओर थी। दोनों ओर से ज़ोरों के साथ गोले बरसने लगे। दोनों ओर के हताहतों की संख्या काफ़ी ऊँची पहुँच गई। जनरल हैवलॉक का एक पुत्र भी इस समय वीरता के साथ लड़ रहा था। अंगरेजों की ओर जानों का नुक़सान बहुत अधिक हुआ, फिर भी अन्त में अंगरेजी सेना अपनी और विपक्षी की लाशों के ऊपर से पुल को पार कर गई। दूसरी ओर भी एक एक क़दम पर संग्राम जारी रहा। इन्हीं में से एक स्थान खास बाज़ार में किसी क्रान्तिकारी की गोली जनरल नील की गरदन में आकर लगी और जनरल नील वहीं पर ढेर हो गया। जनरल नील की मृत्यु अंगरेजी सेना के लिए एक बहुत बड़ा दुर्भाग्य था, किन्तु अन्त में अंगरेजी सेना बढ़ते बढ़ते रेज़िडेन्सी के अन्दर पहुँच गई।

रेज़िडेन्सी के अन्दर एक बार अंगरेजों के हर्ष की कोई सीमा न थी। ८७ दिन के लगातार मोहासरे में रेज़िडेन्सी के अन्दर सात सौ आदमी मर चुके थे। उस समय वहाँ करीब पाँच सौ अंगरेज और चार सौ हिन्दोस्तानी मौजूद थे, जिनमें से अनेक

घायल थे। हैवलॉक की सेना में, जो कानपुर से चली थी, रेज़िडेन्सी पहुँचने से पहले ७२२ आदमी मारे जा चुके थे। फिर भी लखनऊ रेज़िडेन्सी के हताश अंगरेज़ों की मदद के लिए पहुँच जाना हैवलॉक और उसके साथियों के लिए कुछ कम हर्ष की बात न थी।

हैवलॉक को फिर एक बार भयङ्कर नैराश्य हुआ। उसके पहुँचने से रेज़िडेन्सी का मोहासरा समाप्त न हो सका। हैवलॉक रेज़िडेन्सी में कैद लखनऊ की क्रान्तिकारी सेना ने फिर एक बार रेज़िडेन्सी को उसी प्रकार चारों ओर से घेर लिया, जिस प्रकार हैवलॉक के आने के पहले घेर रक्खा था। हैवलॉक और उसकी सेना अब स्वयं रेज़िडेन्सी के अन्दर कैद हो गई। केवल कैदियों की संख्या पहले से बढ़ गई। लखनऊ का शेष नगर और अवध का समस्त प्रदेश पूर्ववत् स्वाधीन रहा।

सर कॉलिन कैम्पबेल कम्पनी की सेनाओं का नया कमाण्डर-इन-चीफ़ नियुक्त होकर १३ अगस्त को कलकत्ते पहुँचा। मद्रास, बम्बई, लङ्का और चीन से नई नई अंगरेज़ी पलटनें जमा की गईं। कासिम-वाज़ार के कारख़ाने में नई तोपें ढाली गईं।

इस तैयारी में कैम्पबेल को दो महीने लग गए।

अन्त में २७ अक्टूबर को हैवलॉक और ऊटरम जैसे सेनापतियों को रेज़िडेन्सी की कैद से मुक्त कराने और लखनऊ को फिर से विजय करने के लिए कैम्पबेल स्वयं कलकत्ते से चला।

साथ साथ एक जहाज़ी बेड़ा करनल पॉवल और कप्तान पील के अधीन कलकत्ते से इलाहाबाद की ओर भेजा गया। इस बेड़े को भी कई स्थानों पर क्रान्तिकारियों से लड़ना पड़ा। इनमें से एक स्थान पर करनल पॉवल मारा गया।

३ नवम्बर को सर कॉलिन कैम्पबेल कानपुर पहुँचा। कैम्पबेल ने अब अत्यन्त विशाल पैमाने पर कानपुर में सेना जमा करनी शुरू की। यह सेना ब्रिगेडियर जनरल ग्रॉण्ट के अधीन जमा की गई। जहाज़ी बेड़ा भी कानपुर पहुँच गया। दिल्ली की अंगरेज़ी सेना इस समय तक आज़ाद हो चुकी थी। जनरल ग्रेटहेड इस सेना सहित दिल्ली से कानपुर तक मार्ग के क्रान्तिकारियों को दमन करता हुआ कानपुर पहुँच गया।

एक अंगरेज़ इतिहास लेखक लिखता है कि क्रान्ति के आरम्भ से लेकर नवम्बर तक दिल्ली के पूर्व का समस्त ग्रेटहेड की कानपुर प्रदेश क्रान्तिकारियों के हाथों में था, किन्तु यात्रा जनता को उससे कोई कष्ट न पहुँचा था—

“लोग न केवल खेती बाड़ी करते ही रहे, वरन् अनेक ज़िलों में इतने विशाल पैमाने पर करते रहे, जिससे अधिक कि उन्होंने पहले कभी न की थी। वास्तव में सिवाय इससे कि क्रान्तिकारी अपनी आवश्यकताओं को पूरा कर लेते थे, वे देशवासियों पर कोई अन्याय करने का साहस न करते थे।”*

* “The people not only cultivated but in many districts as extensively as ever. In fact beyond supplying their necessity, the rebels did not venture to assume the character of tyrants of the country.”—*Narrative of the Indian Revolt.*

किन्तु जनरल ग्रेटहेड ने दिल्ली से कानपुर तक की यात्रा में मार्ग के समस्त ग्रामों को जलाने और निर्दोष जनता के संहार करने में जनरल नील को भी मात कर दिया। इस ओर से उस ओर तक उसकी सेना ने ग्रामवासियों का पशुओं की तरह शिकार किया। इससे अधिक हमें उस दुःखकर वृत्तान्त को विस्तार देने की आवश्यकता नहीं है।

सब से पहले जनरल ग्रांट इस नई विशाल सेना सहित आलमबाग पहुँचा, कानपुर और कालपी के बीच आलमबाग के लिये नई अंगरेज़ी सेना में नाना साहब के प्रयत्न अभी जारी थे जिन्हें आगे चल कर बयाल किया जायगा, इसलिए कैम्पबेल ने कुछ गोरी और कुछ सिख सेना तोपों सहित विनदम के अधीन कानपुर की रक्षा के लिए छोड़ दी और स्वयं जनरल ग्रांट के पीछे पीछे गङ्गा पार कर ६ नवम्बर को आलमबाग पहुँच गया।

रेज़िडेन्सी के कैदी अंगरेज़ों के साथ पत्र व्यवहार तक इस समय असम्भव था। कैम्पबेल ने कैवेना नामक अङ्गरेज़ गुप्तचर एक अंगरेज़ का काला मुँह रङ्ग कर उसे कैवेना हिन्दोस्तानी कपड़े पहना कर रात के समय एक हिन्दोस्तानी गुप्तचर के साथ रेज़िडेन्सी में भेजा। कैवेना ने वहाँ से लौट कर कैम्पबेल को भीतर के हालात सुनाए।

१४ नवम्बर को कैम्पबेल की सेना ने रेज़िडेन्सी की ओर बढ़ना शुरू किया। हैवलाक और ऊटरम ने भीतर से क्रान्तिकारी सेना

पर हमला किया और कैम्पबेल की सेना ने बाहर की ओर से दबाना शुरू किया। कम्पनी की सेना में इस समय हैवलॉक, ऊटरम, पील, ग्रेटहेड, दिल्ली का प्रसिद्ध हडसन, होपग्रॉण्ट, आयर और कमारडर-इन-चीफ़ सर कॉलिन कैम्पबेल जैसे ज़बरदस्त सेनापतियों के अतिरिक्त इङ्गलिस्तान, चीन आदि से आई हुई नई अंगरेज़ पलटनें और दिल्ली की अनुभवी अंगरेज़, सिख और अन्य पञ्जाबी पलटनें शामिल थीं।

१४ नवम्बर की शाम तक कैम्पबेल की सेना दिलखुश बाग़ पहुँची। १६ को इस सेना ने सिकन्दर बाग़ पर चढ़ाई की। फिर एक अत्यन्त घमासान संग्राम हुआ, जिसमें एक ओर क्रान्तिकारी सेना ने और दूसरी ओर सिखों ने खासी वीरता दिखाई। एक सिख सिपाही ही सबसे पहले गोलों की बौछार के अन्दर से सिकन्दर बाग़ की दीवार पर चढ़ता हुआ दिखाई दिया। सामने से उसकी छाती में एक गोली लगी, वह वहीं ढेर होगया। उसके बाद जनरल कूपर और जनरल लम्सडेन भी उसी दीवार पर मारे गए। किन्तु अन्त में अपने साथियों की लाशों पर से कूदते हुए सिख और अंगरेज़ दोनों सिकन्दर बाग़ के अन्दर पहुँच गए। इतने में कम्पनी की सेना ने एक दूसरी ओर से भी बाग़ में प्रवेश किया। सिकन्दर बाग़ के अन्दर की हिन्दोस्तानी सेना ने जिस अद्भुत वीरता के साथ उस दिन सिकन्दर बाग़ की रक्षा की, उसके विषय में इतिहास लेखक मॉलेसन लिखता है—

“इस बाड़े (सिकन्दर बाग) पर कब्ज़ा करने के लिए जो संग्राम हुआ वह अत्यन्त रक्तमय था और जानों को हथेली पर रख कर लड़ा गया । क्रान्तिकारियों ने अपनी जानों पर खेल कर पूरी वीरता के साथ युद्ध किया । हमारी सेना रास्ता चीरती हुई अन्दर घुस आई, तब भी संग्राम बन्द नहीं हुआ । प्रत्येक कमरे के लिए, प्रत्येक सोदी के लिए और मीनारों के एक एक कोने के लिए संग्राम होता रहा । न किसी ने किसी से दया चाही और न किसी ने किसी पर दया की । अन्त में जब आक्रामक सेना ने सिकन्दरबाग पर कब्ज़ा कर लिया तो दो हजार से ऊपर क्रान्तिकारियों की लाशों के ढेर उनके चारों ओर पड़े हुए थे । कहा जाता है कि जितनी सेना सिकन्दरबाग की रक्षा के लिए नियत थी उसमें से केवल चार आदमी अपनी जगह छोड़ कर निकल गए, किन्तु इन चार का बाग छोड़ कर जाना भी सन्दिग्ध है ।”*

लखनऊ का सिकन्दरबाग उस दिन शब्दशः रक्त की भील बना हुआ था ।

इसके बाद २४ घण्टे तक दिलखुशबाग, आलमबाग और शाहन-जफ में घमासान संग्राम होते रहे । अगले दिन नौ दिन का लगातार संग्राम मोती महल में उतनी ही भयङ्कर लड़ाई हुई । २३ नवम्बर तक लड़ाई जारी रही, किन्तु दिल्ली के पतन ने अंगरेजी सेना के हौसले बढ़ा दिए थे और अनेक क्रान्तिकारी नेताओं के दिल बुझा दिए थे । अन्त में २३ नवम्बर को नौ दिन के लगातार संग्राम के बाद सर कॉलिन कैम्पबेल की सेना और रेज़िडेन्सी के भीतर की अङ्गरेजी सेना दोनों एक दूसरे से मिल गई ।

* G. B. Malleson's *Indian Mutiny*, vol. iv, p. 132.

लखनऊ का समस्त शहर उस समय रक्त के समुद्र में तैरता
हुआ दिखाई देता था। रेज़िडेन्सी के अंगरेज़
लखनऊ रक्त का कैद से रिहा हो गए। किन्तु समस्त शहर अभी
समुद्र तक क्रान्तिकारियों के हाथों में था। इस बीच

२४ नवम्बर को जनरल हैवलाक की मृत्यु हो गई। सर कॉलिन
कैम्पबेल ने रेज़िडेन्सी को छोड़ कर आलमबाग में अपनी सेना और
तोपों को जमा किया, ऊटरम को वहाँ का सेनापति नियुक्त किया,
और लखनऊ शहर पर हमले की तैयारी शुरू की। इतने में कैम्पबेल
को समाचार मिला कि नाना साहब के प्रसिद्ध मराठा सेनापति
तात्या टोपे ने कानपुर की अंगरेज़ी सेना को हरा कर फिर से उस
नगर पर कब्ज़ा कर लिया। कैम्पबेल ने अब ऊटरम को लखनऊ के
लिए छोड़ा और स्वयं कानपुर फिर से विजय करने के लिए उस
ओर चल दिया।

अब हमें लखनऊ को छोड़ कर कुछ पीछे हट कर तात्या टोपे
और सर कॉलिन कैम्पबेल के संग्रामों को वर्णन करना होगा।

१६ जुलाई को जनरल हैवलाक की सेना ने इलाहाबाद से
आकर फिर से कानपुर विजय किया था। नाना
तात्या टोपे साहब अपने भाई बालासाहब, भतीजे रावसाहब,
सेनापति तात्या टोपे, घर की स्त्रियों और खजाने सहित १७ जुलाई
को सबेरे बिठूर से निकल कर फ़तहपुर चला गया था। नाना
जनरल हैवलाक पर फिर से हमला करने के लिए सेना जमा कर
रहा था। तात्या टोपे को उसने शिवराजपुर भेजा। शिवराजपुर

पहुँच कर तात्या ने कम्पनी की ४२ नम्बर पलटन को अपनी ओर किया । इसी पलटन की सहायता से उसने फिर एक बार बिठूर पर जाकर कब्ज़ा कर लिया और हैवलॉक की सेना पर, जब कि हैवलॉक लखनऊ जाना चाहता था, पीछे से आक्रमण किया, यहाँ तक कि हैवलॉक को लखनऊ का इरादा छोड़ कर पीछे हट जाना पड़ा । १६ अगस्त को हैवलॉक की सेना ने फिर तात्या टोपे की सेना पर विजय प्राप्त की । तात्या टोपे फिर अपनी बची हुई सेना सहित भाग कर नाना के पास फ़तहपुर पहुँचा । इसके बाद तात्या गुप्त रीति से ग्वालियर पहुँचा । ग्वालियर के निकट मुरार की छावनी में सींधिया की विशाल सबसीडीयरी सेना थी जिसमें पैदल पलटनें, सवार और तोपखाना था, तात्या टोपे ने इस समस्त सेना को क्रान्ति की ओर तोड़ लिया । उन्हें अपने साथ लेकर तात्या मुरार से कालपी आया । कालपी का क़िला जमना के उस पार कानपुर से ४६ मील दूर युद्ध की दृष्टि से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान पर था । ६ नवम्बर को तात्या टोपे ने कालपी के क़िले पर कब्ज़ा कर लिया । नाना ने अब कालपी ही को अपना केन्द्र बनाया । बालासाहब को वहाँ पर नियुक्त किया और कालपी से सेना लेकर तात्या टोपे फिर एक बार कानपुर की ओर बढ़ा । निस्सन्देह धैर्य, पराक्रम, फुरती और अन्य भारतवासियों को अपने पक्ष में करने की शक्ति में तात्या अद्वितीय था ।

जनरल विनडम उस समय कानपुर में था । १६ नवम्बर को तात्या टोपे ने विनडम को घेर कर उसके पास बाहर से रसद

इत्यादि का पहुँच सकना असम्भव कर दिया । विनढम अपनी सेना सहित तात्या टोपे के मुकाबले के लिए कानपुर से निकला । २६ नवम्बर को पारु नदी के ऊपर तात्या और विनढम की सेनाओं में एक घमासान संग्राम हुआ । पहले वार में कहा जाता है कि तात्या का काफी नुकसान हुआ । किन्तु तात्या की योग्यता को स्वीकार करते हुए इतिहास लेखक मॉलेसन लिखता है—

“विद्रोही सेना का नेता मूर्ख न था । विनढम ने उसे जो हानि पहुँचाई उससे डर जाने के स्थान पर वह अंगरेज़ सेनापति की कमज़ोरी को अच्छी तरह समझ गया X X X तात्या टोपे ने उस समय विनढम की स्थिति और उसकी आवश्यकताओं को इतनी अच्छी तरह पढ़ लिया जिस प्रकार कोई खुली हुई किताब को पढ़ता है । तात्या में एक सच्चे सेनापति के स्वाभाविक गुण मौजूद थे । उसने विनढम को इन कमज़ोरियों से फ़ायदा उठाने का इरादा कर लिया ।”^४

अगले दिन तात्या की सेना ने विनढम की सेना को तीन ओर से घेर कर पीछे हटाना शुरू किया । यहाँ तक कि बढ़ते बढ़ते आधा कानपुर तात्या की सेना के कब्ज़े में आ गया । इसके बाद तीन दिन के लगातार संग्राम के पश्चात् कानपुर का समस्त नगर फिर एक बार तात्या टोपे के हाथों में आ गया और विनढम की सेना को हार पर हार खाकर मैदान से भाग जाना पड़ा । अंगरेज़ी सेना के अनेक अफ़सर इन तीन दिन के संग्राम में काम आए ।

* Malleson's *Indian Mutiny*, vol. iv, p. 167.

तीसरे दिन की लड़ाई और अंगरेज़ी सेना की पराजय को वर्णन करते हुए एक अंगरेज़ अफ़सर अपने पत्र में लिखता है—

“आज के संग्राम का वृत्तान्त पढ़ कर आपको आश्चर्य होगा। इससे आपको मालूम होगा कि किस प्रकार अंगरेज़ी सेना अपनी विजय पताकाओं, अपने आदर्श वाक्यों और अपनी प्रसिद्ध वीरता समेत पीछे हटा दी गई। उन भारतवासियों ने, जिन्हें हम तुच्छ समझ रहे हैं और चिढ़ाते रहे हैं, अंगरेज़ी सेना से उसका कैम्प, उसका सामान और मैदान सब कुछ छीन लिया! शत्रु को अब यह कहने का हक़ हो गया है कि फ़िरङ्गी पिट गए। ये पिटे हुए फ़िरङ्गी अपनी खाइयों में लौट आए, उनके खेमे उलट दिए गए, असबाब छीन लिया गया, सामान ले लिया गया, ऊँट, हाथी, घोड़े और नौकर उन्हें छोड़ कर भाग गए। यह समस्त घटना अत्यन्त शोकजनक और लज्जास्पद है !” ❀

इसी पराजय से विवश होकर सर कॉलिन कैम्पबेल को लखनऊ छोड़ना पड़ा था। तात्या टोपे ने समा-
 सर कॉलिन चार पाते ही सर कॉलिन को मार्ग में रोकने के लिए गङ्गा का पुल तोड़ दिया और गङ्गा के ऊपर तोपें लगा दीं। फिर भी सर कॉलिन कैम्पबेल तात्या टोपे की तोपों से बच कर एक दूसरे स्थान से गङ्गा पार कर ३० नवम्बर को कानपुर के निकट पहुँच गया। इस समय तक नाना साहब भी तात्या टोपे की सहायता के लिए कानपुर पहुँच गया था।

मॉलेसन लिखता है कि सेनापति की हैसियत से तात्या टोपे

की स्वाभाविक योग्यता बहुत ही बढ़ी चढ़ी थी ।* गङ्गा के किनारे
 ही उसने कैम्पबेल की सेना को जा घेरा । पहली
 कानपुर पर
 अंगरेज़ी सेना का
 फिर से कब्ज़ा
 दिसम्बर से छै दिसम्बर तक खूब घमासान
 संग्राम होता रहा । दोनों ओर की सेनाओं
 की संख्या करीब करीब बराबर थी । तात्या
 के दाहिनी ओर ग्वालियर की सेना थी । यह सेना अन्त में अंगरेज़ी
 और सिखों के संयुक्त हमले के सामने पीछे हटने लगी । मैदान सर
 कॉलिन कैम्पबेल के हाथ रहा । कानपुर के नगर पर फिर से कम्पनी
 का कब्ज़ा हो गया । तात्या अपनी रही सही सेना और तोपों
 सहित फिर दक्खिन की ओर निकल गया । अंगरेज़ी सेना ने
 उसका पीछा किया । शिवराजपुर में फिर एक संग्राम हुआ । इस
 संग्राम में तात्या की कुछ तोपें भी अंगरेज़ों के हाथ आ गईं । किन्तु
 तात्या फिर अपनी शेष सेना सहित बच कर कालपी की ओर चला
 गया । अंगरेज़ी सेना कानपुर लौट आई । सर कॉलिन कैम्पबेल ने
 इस बार बिठूर के महलों को गिरा कर ज़मीन से मिला दिया ।

दिल्ली के पतन के बाद अधिकांश क्रान्तिकारी सेना अवध और
 रुहेलखण्ड में जमा होती जा रही थी । यह प्रदेश
 अवध और
 रुहेलखण्ड में
 दमन
 ही अब क्रान्ति का सबसे महत्वपूर्ण गढ़ बनता
 जाता था । इस प्रदेश को फिर से विजय करने
 से पहले आवश्यक था कि अवध के पश्चिम

* " A man of very great natural ability as leader . . . "—Malleson's
Indian Mutiny, vol. iv, p. 186.

में दिल्ली से पूर्व के समस्त इलाक़े को पूरी तरह अधीन कर लिया जाय। कई अंगरेज़ सेनापति अलग अलग सैन्यदल लेकर इस कार्य के लिए दिल्ली, कानपुर इत्यादि से विविध दिशाओं में निकल पड़े। ग्रामीण जनता को वश में करने और उन पर अपने बल की धाक जमाने के लिए इन लोगों ने स्थान स्थान पर उसी तरह के उपायों का उपयोग किया जिस तरह के उपाय नील, हैबलॉक और ग्रेटहैड जैसे सेनापति इससे पूर्व काम में ला चुके थे। इन समस्त प्रयत्नों में इटावा और फ़र्रुखाबाद की घटनाएँ विशेष वर्णन करने योग्य हैं।

१८ दिसम्बर को जनरल वालपोल कुछ सेना और तोपों सहित कानपुर से उत्तर की ओर बढ़ा। मार्ग में इटावे के २५ अमर शहीद क्रान्तिकारियों के साथ कई छोटे मोटे संग्राम हुए। इनमें इटावे के निकट रास्ते के ऊपर एक छोटा सा मकान था जिसकी छत पर और दीवार के अन्दर सूराखों में बन्दूकें लगा हुई थीं। इस मकान के अन्दर केवल २५ भारतीय क्रान्तिकारी थे। वालपोल के साथ एक बाज़ाब्ता सेना और कई तोपें थीं। फिर भी इन २५ मनुष्यों ने बिना लड़े वालपोल को आगे बढ़ने न दिया। वालपोल ने उनसे सुलह करना चाहा, किन्तु उन्होंने स्वीकार न किया। उन्हें तोपों से डराया गया, इसका भी कोई असर न हुआ। इटावे के इन २५ वीरों और वहाँ की शेष घटना के विषय में इतिहास लेखक मॉलेसन लिखता है—

“ये लोग गिनती में थोड़े से थे, इनके पास केवल साधारण बन्दूकें थीं,

किन्तु उनके अन्दर एक उत्साह था जो आतताइयों के उत्साह से भी कहीं अधिक भयङ्कर था—वे अपने पवित्र उद्देश के लिए शहीद होने का दृढ़ संकल्प कर चुके थे। X X X उनके मकान के अन्दर हाथ से बम फेंके गए। बाहर भुस जला कर उन लोगों को धुएँ में घोट देने का प्रयत्न किया गया, जिससे वे बाहर निकल आवें, किन्तु सब व्यर्थ हुआ। सूरान्वी के अन्दर से ये विद्रोही अपने आक्रामकों के ऊपर लगातार और ज़ोरों के साथ आग बरसाते रहे, इन्होंने उन्हें तीन घण्टे तक रोके रक्खा। अन्त में उस मकान को उड़ा देने का निश्चय किया गया। X X X मकान के उड़ने से उसके रक्तकों को जिस यश की अभिलाषा थी, वह उन्हें प्राप्त हो गई। वे सब शहीद हो गए और सब के सब उसी मकान के खण्डहरों में दफ़न हो गए।”*

फ़र्रुखाबाद के नवाब ने अपनी स्वाधीनता का एलान कर रक्खा था। तब हुआ कि तीन ओर से बालपोल, फ़र्रुखाबाद का सीटन और स्वयं कैम्पबेल के अधीन तीन सैन्य पतन दल पहुँच कर फ़र्रुखाबाद की राजधानी फ़तहगढ़ को घेर लें। फ़तहगढ़ में कई दिन तक घमासान संग्राम होता रहा। अन्त में १४ जनवरी सन् १८५८ को फ़तहगढ़ विजय कर लिया गया। नवाब को कैद कर लिया गया। इतिहास लेखक फ़ॉर्ब्स मिचेल लिखता है कि फ़र्रुखाबाद के मुसलमान नवाब को फाँसी देने से पहले उसके तमाम बदन पर सुअर की चरबी मल दी गई थी।† नाना साहब का एक मुख्य सेनापति नादिर खाँ भी

* Malleson's *Indian Mutiny*.

† Forbes-Mitchell's *Reminiscences*.

इसी स्थान पर गिरफ्तार हुआ और फाँसी पर चढ़ा दिया गया । चार्ल्स बॉल लिखता है कि फाँसी पर चढ़ते समय नादिर ख़ाँ ने “हिन्दोस्तान के लोगों को क़सम दी कि तलवार खींच कर और अंगरेज़ों को बाहर निकाल कर अपनी स्वाधीनता को फिर से स्थापित करें ।”*

इसी समय के निकट स्वयं दिल्ली के अन्दर फिर कुछ नई जान दिखाई देने लगी । अफ़वाह उड़ी कि नाना दिल्ली में फिर से सनसनी साहब बहादुरशाह को क़ैद से आज़ाद करने के लिए दिल्ली आ रहा है । चार्ल्स बॉल लिखता है कि इस पर बहादुरशाह के अंगरेज़ पहरेदारों को गुप्त आज्ञायें दे दी गईं कि यदि वास्तव में नाना दिल्ली के निकट पहुँचने लगे तो तुम लोग तुरन्त बूढ़े सम्राट को गोली से उड़ा देना ।† दिल्ली से इलाहाबाद तक जमना के किनारे का प्रदेश प्रायः सब फिर से अंगरेज़ों के हाथों में आ चुका था । इसलिए कैम्पबेल के लिए अब रुहेलखण्ड और अवध को विजय करना बाकी था ।

लखनऊ ही इस समय क्रान्ति का सबसे मुख्य केन्द्र था । २३ फ़रवरी सन् १८५८ को कैम्पबेल १७,००० पैदल, लखनऊ विजय के लिये विशाल अंगरेज़ी सैन्यदल करीब ५,००० सवार और १३४ तोपों सहित कानपुर से लखनऊ की ओर बढ़ा । अंगरेज़ इतिहास लेखक लिखते हैं कि इतनी विशाल

* Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 232.

† Ibid, vol. ii, p. 184.

सेना अवध के मैदानों में कभी दिखाई न दी थी। इस सेना में अधिकतर अंगरेज़, सिख और कुछ अन्य पञ्जाबी थे। रसल लिखता है कि इस सेना ने मार्ग में अनेक गाँव के गाँव बारूद से उड़ा दिए।*

किन्तु यह विशाल सेना भी लखनऊ को फिर से विजय करने के लिये काफी नहीं समझी गई। पश्चिम की देशद्रोही नैपाली सेना और से यह सेना और पूर्व की ओर से एक विशाल गोरखा सेना सेनापति जङ्गबहादुर के अधीन लखनऊ की ओर बढ़ी चली आ रही थी।

एक स्थान पर लिखा जा चुका है कि क्रान्ति के शुरू ही में अंगरेज़ों ने नैपाल दरबार से सहायता की प्रार्थना की थी। बहुत सम्भव है कि नैपाल युद्ध के समय अवध के नवाब का कम्पनी को करीब ढाई करोड़ रुपये की मदद देना नैपालियों के दिलों में खटक रहा हो और अवध निवासियों से बदला चुकाने का उन्हें यह एक अवसर दिखाई दिया हो। सब से पहले अगस्त सन् १८५७ में तीन हजार गोरखा सेना पूर्व में आजमगढ़ और जौनपुर पर उतर आई। किन्तु क्रान्तिकारी नेताओं मोहम्मद हुसेन, बेनीमाधव और राजा नादिर खाँ ने सफलता के साथ इस सेना से लड़कर पूर्वीय अवध की रक्षा की। इसके बाद लिखा है, जङ्गबहादुर और अंगरेज़ों में कुछ विशेष समझौता हो गया।

२३ दिसम्बर १८५७ को ६,००० नई गोरखा सेना जङ्गबहादुर

* Russell's *Diary*, p. 218.

के अधीन पूर्व को ओर से लखनऊ की ओर बढ़ी । इसके अतिरिक्त उसी ओर से दो और सैन्यदल कम्पनी की सेना के एक जनरल फ्रैंक्स के अधीन और दूसरा जनरल रोकफ़ट के अधीन लखनऊ की ओर बढ़े । २५ फ़रवरी सन् १८५८ को ये तीनों विशाल सैन्यदल घोगरा पार कर अम्बरपुर पहुँचे ।

अम्बरपुर एक छोटा सा दुर्ग था, जिसमें केवल ३४ भारतीय सिपाही थे । इन मुठ्ठी भर लोगों ने विशाल दमन में नैपालियों का हिस्सा नैपाली सेना को, जो आगे थी युद्ध का निमन्त्रण दिया । नैपाली सेना ने अम्बरपुर के दुर्ग पर हमला किया । ३४ रक्तकों में से प्रत्येक लड़ते लड़ते अपने स्थान पर कट कर मर गया । कहा जाता है, नैपाली सेना के सात आदमी मरे और ४३ घायल हुए । इसके बाद दुर्ग पर नैपाली सेना का कब्ज़ा हो गया ।* लखनऊ दरबार ने ग़फ़ूरबेग को जनरल फ्रैंक्स के मुकाबले के लिए सेना देकर भेजा । सुलतानपुर आदि स्थानों पर कई ज़बरदस्त संग्राम हुए । अन्त में नैपालियों और अंगरेज़ों की यह संयुक्त विशाल सेना पूर्वीय अवध पर विजय प्राप्त करती हुई आगे बढ़ चली ।

मार्ग में एक दुर्ग दौरारे का था । फ्रैंक्स अपने दल सहित इस दुर्ग को विजय करने के लिए बढ़ा । किन्तु दौरारे का अजेय दुर्ग दौरारा से फ्रैंक्स को हार खाकर पीछे हट जाना पड़ा, जिसके दण्ड में कैम्पबेल ने फ्रैंक्स

की पदवी कम कर दी। इसके बाद दूसरी ओर से चकर खाकर कम्पनी की सेना आगे बढ़ती रही।

११ मार्च सन् १८५८ को पश्चिम से कैम्पबेल की विशाल सेना और पूर्व से गोरखा और अंगरेजी सेनाएँ सब लखनऊ के निकट आकर मिल गईं।

लखनऊ शहर के अन्दर नवम्बर सन् ५७ से मार्च सन् ५८ तक स्वाधीनता का युद्ध बराबर जारी था।
लखनऊ शहर की अवध की अधिकांश प्रजा और वहाँ के प्रायः परिस्थिति सब राजा, जमींदार और ताल्लुकेदार सच्चे उत्साह के साथ इस युद्ध में शामिल थे। लॉर्ड कैनिङ्ग ने सर जेम्स ऊटरम के नाम एक पत्र में लिखा है कि जो राजा और ताल्लुकेदार अंगरेजों के विरुद्ध युद्ध में भाग ले रहे थे उनमें से कम से कम अनेक ऐसे थे जिन्हें स्वयं अंगरेजी राज से बजाय हानि के लाभ हुआ था, फिर भी ये लोग अंगरेजी राज के इस समय विकट शत्रु थे और नवाब बिरजीस कदर और बेगम हजरतमहल के लिए अपने सर्वस्व की आहुति देने को उद्यत थे।

इतिहास लेखक होम्स लिखता है—

“अनेक राजा और छोटे छोटे सरदार ऐसे थे जो सदा अङ्गरेज सरकार के बन्धनों से अपने आपको मुक्त करने के लिए चिन्तित रहते थे। उन्हें स्वयं कोई विशेष हानि न पहुँची थी, किन्तु अंगरेजी सरकार का अस्तित्व ही उन्हें सदा यह याद दिलाता रहता था कि हम एक पराजित क्रीम के आदमी हैं।

× × × भारत की लाखों जनता के दिलों में विदेशी सरकार की ओर कोई

सच्ची राजभक्ति न थी X X X विप्लव के दिनों में भारतवासियों के व्यवहार का ठीक ठीक अन्दाज़ा करने के लिए, यह याद रखना आवश्यक है कि इन लोगों का हमारी जैसी एक विदेशी सरकार की ओर उस प्रकार की राजभक्ति अनुभव करना, जो राजभक्ति कि केवल देशभक्ति के साथ साथ ही चल सकती है, मानव प्रकृति के प्रतिकूल होता। X X X उनमें एक भी मनुष्य ऐसा न था जिसे यदि एक बार यह विश्वास हो जाता कि अङ्गरेज़ी राज को उखाड़ कर फेंका जा सकता है, तो वह हमारे विरुद्ध न हो जाता !”*

रसल लिखता है कि अवध के लोग “अपने देश और अपने बादशाह के लिए देशभक्ति के भाव से प्रेरित होकर लड़ रहे थे।”†

लखनऊ नगर के अन्दर क्रान्ति का सब से योग्य नेता मौलवी अहमदशाह था, जिसका जिक्र ऊपर किया जा चुका है। अहमदशाह की योग्यता के विषय में इतिहास लेखक होम्स लिखता है—

“फ़ैजाबाद का मौलवी अहमदुल्लाह एक ऐसा व्यक्ति था जो अपने भावों और अपनी योग्यता दोनों की दृष्टि से एक महान आन्दोलन को चलाने और एक विशाल सेना का नेतृत्व ग्रहण करने दोनों के योग्य था।”‡

किन्तु दुर्भाग्यवश लखनऊ के अन्दर भी धीरे धीरे अव्यवस्था

* *The Sepoy War*, by Holmes.

† “Engaged in a patriotic war for their country and their sovereign.”
—Russell's *Diary*, p. 275.

‡ “A man fitted both by his spirit and his capacity to support a great cause and to command a great army. This was Ahmadullah—the Moulvi of Fyzabad.”—Holmes' *The Sepoy War*.

उत्पन्न हो गई थी। जिस प्रकार दिल्ली की सेना में बख्त खाँ के विरुद्ध उसी प्रकार लखनऊ की सेना में अहमद-
क्रान्तिकारियों में शाह के विरुद्ध कुछ लोग प्रति स्पर्धा अनुभव
अनुशासन की करने लगे थे। अहमदशाह की आज्ञाओं का
कमी यथेच्छ पालन न होता था।

कैम्पबेल के पहुँचने से पहले सर जेम्स ऊटरम चार हजार सेना सहित आलमबाग में मौजूद था। अहमदशाह ने कई बार चाहा कि ऊटरम पर एक जोरदार हमला करके उसकी सेना को समाप्त कर दिया जाय। किन्तु अहमदशाह की न चल सकी। प्रतिस्पर्धा यहाँ तक बढ़ी कि कुछ लोगों के जोर देने पर कहा जाता है, एक बार बेगम ने अहमदशाह को कैद तक कर दिया। किन्तु सेना और जनता दोनों में अहमदशाह इतना सर्वप्रिय था कि शीघ्र ही उसे फिर छोड़ देना पड़ा। इसके बाद कैम्पबेल की सेना लखनऊ पहुँची। अहमदशाह ने फिर सेना का नेतृत्व ग्रहण किया। जितनी बार भारतीय सेना ने आलमबाग पर हमला किया, मौलवी अहमद शाह अपने घोड़े या हाथी के ऊपर प्रायः सदा सब से आगे लड़ता हुआ दिखाई पड़ता था।

१५ जनवरी सन् १८५८ के संग्राम में मौलवी अहमदशाह के एक हाथ में गोली लगी। १७ जनवरी को क्रान्तिकारियों का एक और मुख्य सेनापति विदेही हनुमान घायल होकर पकड़ा गया। इसी समय राजा बालकृष्णसिंह की भी मृत्यु होगई। १५ फरवरी को हाथ का घाव कुछ अच्छा होते ही अहमदशाह फिर मैदान में

आया। कुछ समय बाद स्वयं बेगम हज़रतमहल शस्त्र धारण कर, घोड़े पर चढ़ कर, युद्ध के मैदान में उतर आई। किन्तु आपसी प्रतिस्पर्धा और अव्यवस्था ने अब भी लखनऊ को क्रान्तिकारी सेना का साथ न छोड़ा।

जिस समय सर कॉलिन कैम्पबेल आलमबाग़ पहुँचा, उस समय तक लखनऊ का समस्त नगर क्रान्तिकारियों के हाथों में था। शहर के बाहर आलमबाग़ में अंगरेज़ी सेना थी, और शहर के अन्दर क्रान्तिकारियों की ओर तीस हज़ार हिन्दोस्तानी सिपाही और पचास हज़ार सशस्त्र स्वयंसेवक जमा थे।* एक एक गली और एक एक बाज़ार में नाकेबन्दी और मोरचेबन्दी हो रही थी। हर घर की दीवारों में बन्दूकों के लिए सूराख बने हुए थे। हर मोरचे के ऊपर तोपें लगी हुई थीं। महल के चारों तरफ़ तोपें थीं। नगर के उत्तर की ओर गोमती नदी थी। शेष तीनों ओर मज़बूत क़िलेबन्दी थी।

कैम्पबेल के अधीन उस समय गोरी और हिन्दोस्तानी मिला कर करीब चालीस हज़ार अभ्यस्त सेना थी। इससे पहले अंगरेज़ों ने जितने हमले लखनऊ पर किए थे उनमें से कोई भी उत्तर की ओर से न हुआ था। सबसे पहले ६ मार्च को ऊटरम ने उस ओर से हमले की तैयारी शुरू की। सर कॉलिन कैम्पबेल के पहुँचने के बाद उत्तर और पूर्व दो ओर से हमला शुरू होगया। ६

तीसरी बार
लखनऊ में रक्त
की नदियाँ

मार्च से १५ मार्च तक खूब घमासान संग्राम जारी रहा। तीसरी बार लखनऊ की गलियों में रक्त की नदियाँ बहने लगीं। अन्त में दिल्ली के समान ही लखनऊ का भी पतन हुआ। अंगरेजी सेना ने एक दूसरे के बाद दिलखुशबाग, कदमरसूल, शाहनजफ़, बेगमकोठी इत्यादि मोरचों पर कब्ज़ा कर लिया। १० मार्च को वह हडसन, जिसने दिल्ली के शाहज़ादों का खून पिया था, लखनऊ के संग्राम में मारा गया। १४ मार्च को अंगरेजी सेना ने लखनऊ के महल में प्रवेश किया।

इतिहास-लेखक विलसन लिखता है कि उस दिन की विजय का मुख्य श्रेय “सिखों और दस नम्बर पलटन” को मिलना चाहिए।

बेगम हज़रतमहल, नवाब बिरजीस क़दर और मौलवी अहमद-शाह तीनों शहर से निकल गए। अहमदशाह ने शहादतगंज का संग्राम थोड़ा सा चक्र देकर अपने मुट्ठी भर आदमियों सहित फिर एक बार दूसरी ओर से लखनऊ में प्रवेश किया। लखनऊ के मोहल्ले शहादतगंज में पहुँच कर अहमदशाह ने नए सिरे से विजयी अंगरेजी सेना से मोरचा लिया। अहमदशाह के पास इस समय केवल दो तोपें रह गई थीं। दो पलटनें अहमदशाह के मुकाबले के लिए भेजी गईं। अंगरेज़ इतिहास लेखक लिखते हैं कि मौलवी अहमदशाह ने उस दिन अपूर्व वीरता के साथ युद्ध किया, शत्रु को अगणित जनों की हानि पहुंचाई, और अन्त में विजय असम्भव देख वह फिर लखनऊ से निकल गया। शहादतगंज की लड़ाई लखनऊ की अन्तिम लड़ाई

थी। अंगरेजी सेना ने ६ मील तक अहमदशाह का पीछा किया, किन्तु अहमदशाह हाथ न आया। लखनऊ के समस्त नगर पर अब कम्पनी का कब्जा होगया।

लखनऊ के पतन के बाद कम्पनी की सेना ने लखनऊ निवासियों के साथ जिस प्रकार का व्यवहार किया वह सार्वजनिक लूट और सार्वजनिक संहार, इन दो शब्दों में ही बयान किया जा सकता है। लेफ्टिनेण्ट माजेण्डी लिखता है कि लखनऊ के अन्दर उस समय के क़त्लेआम में किसी तरह की तमीज़ नहीं की गई।[॥]

हत्या से पहले जिस प्रकार की क्रूर यातनाएँ लोगों को दी गई उसकी कई मिसालें रसल ने अपनी पुस्तक में दी हैं। इनमें से केवल एक हम नीचे उद्धृत करते हैं—

“कुछ सिपाही अभी जीवित थे और उन्हें दया के साथ मारा गया। किन्तु इनमें से एक को खींच कर मकान से बाहर रेतीले मैदान में लाया गया। उसे टाँगों से पकड़ कर खींचा गया, एक सुविधा की जगह लाया गया। कुछ अंगरेज़ सिपाहियों ने उसके मुँह और शरीर में सज़ीनें भोंक कर उसे लटकाए रक्खा। दूसरे लोग एक छोटी सी चिता के लिए ईंधन जमा कर लाए; जब सब तैयार होगया तो उसे ज़िन्दा भून दिया गया ! इस काम के करने वाले अंगरेज़ थे, और कई अफ़सर खड़े देखते रहे, किन्तु किसी ने हस्तक्षेप न किया ! इस नारकी अत्याचार की बीभत्सता उस समय और भी अधिक बढ़ गई जब कि उस अभागे दुखिया ने अधजली और ज़िन्दा हालत

* Lieut. Majendie's *Up Among the Pandies*, p. 195, 196.

में भागने का प्रयत्न किया। अकस्मात् प्रयत्न करके वह चिता से कूद पड़ा। उसके शरीर का मांस हड्डियों से लटक रहा था। वह कुछ गज़ दौड़ा, फिर पकड़ लिया गया, वापस लाया गया, फिर आग पर रख दिया गया और जब तक राख न हो गया सज़्जीनों से दबा कर रक्खा गया।”❀

इसके मुकाबले में अंगरेज़ कैदियों के साथ बेगम हज़रतमहल का व्यवहार बिल्कुल दूसरे ढङ्ग का था। शुरु बेगम हज़रतमहल के दिनों में, जब कि लखनऊ के अन्दर क्रान्ति-कारियों का पल्ला भारी था, कुछ अंगरेज़ पुरुष और स्त्री लखनऊ में कैद कर लिए गए थे। किन्तु छै महीने तक इनकी जान पर कोई हमला नहीं किया गया, जिस समय कम्पनी की सेना ने नगर में घुस कर दोषी और निर्दोष सबका एक समान संहार प्रारम्भ किया, कुछ क्रुद्ध क्रान्तिकारियों ने महल में जाकर बेगम से प्रार्थना की कि अंगरेज़ कैदियों को हमारे हवाले कर दीजिये। बेगम ने सात या आठ अंगरेज़ पुरुषों को उनके हवाले

* “Some of the Sepoys were still alive and they were mercifully killed; but one of their number was dragged out to the sandy plain outside the house; he was pulled by his legs to a convenient place, where he was held down, pricked in the face and body by the bayonets of some of the soldiery, while others collected fuel for a small pyre; and when everything was ready—the man was roasted alive! These were Englishmen, and more than one officer saw it; no one offered to interfere! The horrors of this infernal cruelty were aggravated by the attempt of the miserable wretch to escape when half burnt to death. By a sudden effort he leaped away and, with the flesh of his body hanging from his bones, ran for a few yards ere he was caught, brought back, put on the fire again, and held there by bayonets, till his remains were consumed!”—Russell's *Diary*, p. 302.

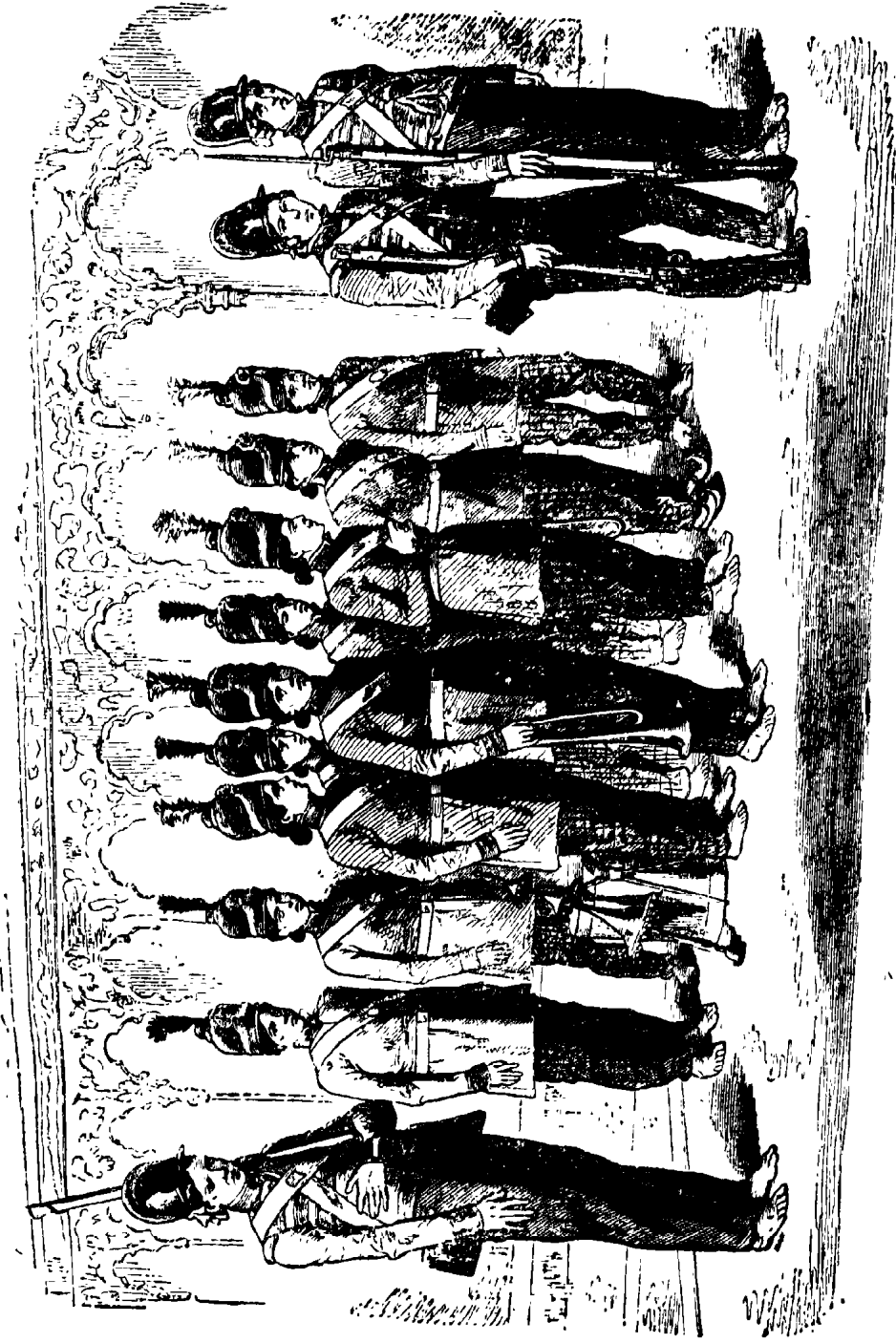
कर दिया। उन्हें तुरन्त गोली से उड़ा दिया गया। किन्तु जब कुछ क्रान्तिकारियों ने ज़िद की कि कैदी अंगरेज़ स्त्रियों को भी मार डाला जाय तो बेगम ने इनकार कर दिया। इतिहास लेखक चार्ल्स बॉल लिखता है—

“स्त्रियों के विषय में बेगम ने उन लोगों की माँग को पूरा करने से ज़ोरों के साथ इनकार कर दिया। बेगम ने तुरन्त महल के ज़नानखाने के अन्दर उन अंगरेज़ स्त्रियों को अपने संरक्षण में ले लिया। बेगम का यह कार्य स्त्री जाति के मान को बढ़ाने वाला था।”*

कम्पनी की सेना ने महल में घुस कर भी लूट और कत्लेआम जारी रखवा। महल के ज़नानखानों के अन्दर लखनऊ की बेगमों अनेक स्त्रियाँ मारी गईं। शेष स्त्रियाँ कैद कर ली गईं। महल की इन स्त्रियों के दिलों में भी अपने आन्दोलन की पवित्रता और उसकी अन्तिम विजय में पूर्ण विश्वास मौजूद था। एक छोटी सी घटना कई अंगरेज़ी इतिहासों में दी हुई है। एक दिन इन कैदी बेगमों के अंगरेज़ पहरेदारों ने हँस कर उनसे पूछा—“क्या आपका यह खयाल नहीं है कि अब यह जङ्ग खत्म होगई?” बेगमों ने उत्तर दिया—“नहीं” इसके खिलाफ़ हमें पूरा यकीन है कि आख़िर में तुम्हारी ही हार होगी।”†

* “To the honor of womanhood, the demand was imperatively refused by the Begum so far as the females were concerned, and they were immediately taken under her care in the Zenana of the palace.”—Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 94.

† *Narrative of the Indian Mutiny*, p. 348, Russell's *Diary*, p. 400.



महल की खियां जिन्होंने मरदाना वेश पहनकर लखनऊ के स्वाधीनता संग्राम में भाग लिया

[From a "Narrative of the Indian Revolt", London, 1858.]

लखनऊ के पतन के बाद भी अवध के कई भागों और हिन्दोस्तान के अन्य अनेक प्रान्तों में युद्ध बराबर जारी रहा।

यद्यपि बिहार में सन् ५७ का सङ्गठन अवध और दिल्ली जैसा न था, फिर भी उस प्रान्त में क्रान्ति के कई महत्वपूर्ण केन्द्र थे। विशेषकर पटने में एक जबरदस्त केन्द्र था, जिसकी शाखाएँ प्रान्त में चारों ओर फैली हुई थीं। सन् ५७ से पूर्व पटने में अनेक गुप्त सभाएँ हुआ करती थीं। वहाँ की पुलिस इस सङ्गठन में शामिल थी। लिखा है कि पटने के केन्द्र के पास धन की कमी न थी। सैकड़ों वैतनिक और अवैतनिक प्रचारक चारों ओर ग्रामों में क्रान्ति का प्रचार करते हुए फिरते थे। वहाँ के नेताओं का दिल्ली, लखनऊ और कानपुर के नेताओं के साथ गुप्त पत्र व्यवहार जारी था।

अंगरेजों को जब पटने वालों के गुप्त इरादों का सुराग मिला तो कुछ सिख सेना पटने की रक्षा के लिए भेजी गई। लिखा है कि नगर के लोगों ने इन सिख सिपाहियों से घृणा प्रकट करने के लिए उनके साथ तक से बचना शुरू किया।

ज़िला तिरहुत के एक पुलिस के जमादार वारिसअली को क्रान्ति के सन्देह पर गिरफ्तार कर फाँसी दे दी गई। वारिसअली के पत्रों में एक पत्र गया के नेता अलीकरीम के नाम का पकड़ा गया। कम्पनी की फौज का एक दस्ता अलीकरीम को गिरफ्तार करने के लिए भेजा गया। अलीकरीम अपने हाथी पर बैठ कर देहात चला गया। कम्पनी की फौज ने उसका पीछा किया। किन्तु

आस पास के ग्रामवाले अलीकरीम से मिले हुए थे। उन्होंने कम्पनी के सिपाहियों को धोखा देकर ग़लत राह बता दी और अंगरेजी दस्ते को असफल पीछे लौट आना पड़ा।

पटने के कमिश्नर टेलर को पता लगा कि शहर के तीन प्रभावशाली मौलवी क्रान्ति के सङ्गठन में शरीक हैं। टेलर ने उन तीनों को बातचीत के बहाने अपने घर बुलाया और धोखे से गिरफ्तार कर लिया।

३ जुलाई को पटने में कुछ विद्रोह हुआ, किन्तु सिखों की सहायता से आसानी से दमन कर दिया गया। क्रान्तिकारियों का मुख्य नेता पोरअली फाँसी पर चढ़ा दिया गया। लिखा है कि पोरअली को यातनाएँ दे देकर मारा गया। कमिश्नर टेलर स्वयं लिखता है कि पोरअली ने बड़ी वीरता और धार्मिक भाव के साथ यातनाओं और मृत्यु दोनों का सामना किया। दानापुर में उस समय तीन हिन्दोस्तानी पलटनें, एक गोरी पलटन और कुछ तोपखाना था। पोरअली की मृत्यु के बाद २५ जुलाई को दानापुर की देशी पलटनों ने स्वाधीनता का प्लान कर दिया। ये पलटनें अब जगदीशपुर की ओर बढ़ीं।

शाहाबाद के ज़िले में जगदीशपुर एक छोटी सी पुरानी राजपूत रियासत थी। सम्राट शाहजहाँ के दरबार से राजा कुँवरसिंह जगदीशपुर की रियासत के मालिक को 'राजा' की उपाधि प्रदान हुई थी और उसी समय से चली आती थी। अब यह रियासत भी लॉर्ड डलहौजी की अपहरण नीति का शिकार

हो चुकी थी। जगदीशपुर का राजा कुंवरसिंह आस पास के इलाके में अत्यन्त सर्वप्रिय था। कुंवरसिंह की आयु उस समय ८० वर्ष से ऊपर थी। फिर भी कुंवरसिंह बिहार के क्रान्तिकारियों का प्रमुख नेता और सन् ५७ के सब से ज्वलन्त व्यक्तियों में से था।

जिस समय दानापुर की क्रान्तिकारी सेना जगदीशपुर पहुँची
बूढ़े कुंवरसिंह ने तुरन्त अपने महल से निकल
आरा का कर शस्त्र उठा कर इस सेना का नेतृत्व ग्रहण
मोहासरा किया। कुंवरसिंह इस सेना सहित आरा पहुँचा।

उसने आरा के खजाने पर कब्जा किया, जेलखाने के कैदी रिहा कर दिए और अंगरेजी दस्तरों को गिरा कर बराबर कर दिया। इसके बाद उसने आरा के छोटे से क़िले को घेर लिया। क़िले के अन्दर थोड़े से अंगरेज और कुछ सिख सिपाही थे। लिखा है कि क़िले में पानी की कमी पड़ गई। तुरन्त क़िले के अन्दर के सिखों ने अंगरेजों की विपत्ति को देख कर २४ घण्टे के अन्दर एक नया कुंआ खोद कर तैयार कर दिया। कुंवरसिंह ने कम्पनी की सेना से वादा किया कि यदि आप लोग क़िला हमारे सुपुर्द कर दें तो आप सबको प्राणदान दे दिया जायगा। किन्तु क़िले के भीतर की सेना ने स्वीकार न किया।

क़िले के अन्दर के सिखों को कुंवरसिंह ने समझा बुझा कर क्रान्ति के पक्ष में करना चाहा, किन्तु उसे सफलता न हो सकी। इस प्रकार तीन दिन आरा के क़िले का मोहासरा जारी रहा।

२६ जुलाई को दानापुर से कप्तान डनबर के अधीन करीब ३०० गोरे सिपाही और १०० और सिख आराम के बाग़ का संग्राम आराम की सेना की मदद के लिए चले। आराम के निकट एक आराम का बाग़ था। कुंवरसिंह ने अपने कुछ आदमी आराम के वृक्षों की टहनियों में छिपा रखे थे। रात का समय था, जिस समय दानापुर की सेना ठीक वृक्षों के नीचे पहुँची, अंधेरे में ऊपर से गोलियाँ बरसनी शुरू हुईं। सुबह तक ४१५ आदमियों में से केवल ५० ज़िन्दा बच कर दानापुर की ओर लौटे। कप्तान डनबर इसी आराम के बाग़ में मारा गया।

इसके बाद मेजर आयर एक बड़ी सेना और तोपों सहित किले के अंगरेजों की सहायता के लिए बढ़ा। २ बीबीगंज का संग्राम अगस्त को बीबीगंज के निकट कुंवरसिंह की सेना और मेजर आयर की सेना में संग्राम हुआ। एक बार अंगरेजी सेना के एक अफ़सर कप्तान हेस्टिंग्स ने मेजर आयर से आकर कहा कि विजय हमारे हाथों से खिसकती हुई दिखाई देती है। किन्तु अन्त में मेजर आयर ही की विजय रही। कुंवरसिंह की सेना को पीछे हटना पड़ा और आठ दिन के मोहासरे के बाद आराम का नगर और क़िला फिर से अंगरेजों के हाथों में आ गया।

कुंवरसिंह अब जगदीशपुर की ओर लौट आया। मेजर आयर ने अपनी विजयी सेना सहित उसका पीछा किया। कई दिन संग्राम होता रहा। अन्त में मेजर आयर ने १४ अगस्त को जगदीशपुर के महल पर क़ब्ज़ा कर लिया।

बूढ़ा कुंवरसिंह बारह सौ सैनिकों और अपने महल की स्त्रियों को साथ लेकर जगदीशपुर से निकल गया। उसने अब किसी दूसरे स्थान पर जाकर अङ्गरेजों के साथ अपना बल आजमाने का निश्चय किया।

यह वह समय था जब कि कुछ गुरो और कुछ गुरखा
सेना आजमगढ़ की ओर से अवध में प्रवेश कर
मिलमैन की रही थी। १८ मार्च सन् १८५८ को आस पास
पराजय के अन्य कान्तिकारियों को अपने साथ लेकर
कुंवरसिंह ने आजमगढ़ से २५ मील दूर अतरौलिया नामक स्थान
पर डेरा जमाया। जिस समय अंगरेजों को यह समाचार मिला,
तुरन्त मिलमैन के अधीन कुछ पैदल, कुछ सवार और दो तोपें २२
मार्च सन् १८५८ को कुंवरसिंह के मुकाबले के लिए पहुँची। उसी
दिन अतरौलिया के मैदान में दोनों ओर की सेनाओं का आमना
सामना हुआ। थोड़ी ही देर बाद कुंवरसिंह अपनी सेना सहित
जोरों के साथ पीछे को हटने लगा। अंगरेजी सेना समझ गई कि
कुंवरसिंह हार कर मैदान से भाग गया। विजय के हर्ष में मिलमैन
ने अपनी सेना को एक आम के बग़ाचे में ठहर कर भोजन करने
की आज्ञा दी। किन्तु कुंवरसिंह उस जङ्गल की एक एक चप्पा
भूमि से परिचित था। इस बुढ़ापे में भी वह अत्यन्त फुरतीला था।
ठीक उस समय, जब कि मिलमैन की सेना भोजन कर रही थी,
कुंवरसिंह अचानक उस पर आ दूटा। थोड़ी देर के संग्राम के बाद
मैदान पूरी तरह कुंवरसिंह के हाथ रहा। मिलमैन के अनेक

सिपाही काम आए और शेष ने अतरौलिया से भाग कर कौशिला में आश्रय लिया। कुंवरसिंह ने मिलमैन का पीछा किया। मिलमैन के हिन्दोस्तानी नौकरों ने इस समय उसका साथ छोड़ दिया। लिखा है कि वे कम्पनी की सेना के बैलों और गाड़ियों समेत इधर उधर भाग गए, शेष असबाब और तोपें कुंवरसिंह के हाथ लगीं। मिलमैन अपने रहे सहे आदमियों सहित आजमगढ़ की ओर भाग गया।

एक दूसरी अंगरेजी सेना करनल डेम्स के अधीन बनारस और गाजीपुर से चलकर मिलमैन की सहायता के डेम्स की पराजय लिए आजमगढ़ पहुँची। २८ मार्च को यह संयुक्त सेना करनल डेम्स के अधीन फिर कुंवरसिंह के मुकाबले के लिए निकली। आजमगढ़ से कुछ दूर कुंवरसिंह और करनल डेम्स में संग्राम हुआ। कुंवरसिंह ने फिर एक बार पूर्ण विजय प्राप्त की। करनल डेम्स को मैदान से भाग कर आजमगढ़ के किले में आश्रय लेना पड़ा। विजयी कुंवरसिंह ने आजमगढ़ नगर में प्रवेश किया।

आजमगढ़ को विजय कर अपनी सेना के एक दल को आजम-
गढ़ के किले के मोहासरे के लिए छोड़ कर कुँवर
लॉर्ड कैनिङ्ग की सिंह अब बनारस की ओर बढ़ा। लॉर्ड कैनिङ्ग
घबराहट उस समय इलाहाबाद में था। इतिहास लेखक
मॉलेसन लिखता है कि कुंवरसिंह की विजयों और उसके बनारस
पर चढ़ाई करने की खबर सुन कर कैनिङ्ग घबरा गया।

कुंवरसिंह अपनी राजधानी जगदीशपुर से १०० मील से ऊपर निकल आया था और अब बनारस के लॉर्ड मार्क की पराजय ठीक उत्तर में था। लखनऊ से भागे हुए अनेक क्रान्तिकारी इस समय कुंवरसिंह की सेना में आकर शामिल हो गए। लॉर्ड कैनिङ्ग ने तुरन्त सेनापति लॉर्ड मार्क कर को सेना और तोपों सहित कुंवरसिंह के मुकाबले के लिए भेजा। ६ अप्रैल को लॉर्ड मार्क कर की सेना और कुंवरसिंह की सेना में संग्राम हुआ। लिखा है कि उस दिन ८१ वर्ष का बूढ़ा कुंवरसिंह अपने सफ़ेद घोड़े पर सवार ठीक घमासान लड़ाई के अन्दर बिजली की तरह इधर से उधर तक लपकता हुआ दिखाई दे रहा था। लॉर्ड मार्क कर हार गया, उसे अपनी तोपों सहित पीछे हटना पड़ा। लॉर्ड मार्क कर अब मैदान छोड़ कर आजमगढ़ की ओर बढ़ा। कुंवरसिंह ने उसका पीछा किया। सम्भव है कि या तो कुंवरसिंह का विचार इस समय कुछ बदल गया या वह लॉर्ड मार्क की चाल में आ गया। इतिहास लेखक मॉलेसन लिखता है कि कुंवरसिंह का इस समय बनारस आने का विचार छोड़ कर आजमगढ़ की ओर लॉर्ड मार्क का पीछा करना बहुत बड़ी भूल थी।

लॉर्ड मार्क ने अपने बचे हुए आदमियों सहित आजमगढ़ के क़िले में आश्रय लिया। आजमगढ़ का शहर क्रान्तिकारियों के हाथों में था। कुंवरसिंह ने लॉर्ड मार्क और उसकी सेना को क़िले में कैद कर क़िले का मोहासरा शुरू कर दिया।

पच्छिम की ओर से अब सेनापति लगर्ड एक दूसरी अंगरेजी
 सेना सहित लॉर्ड मार्क की सहायता के लिए
 कुंवरसिंह का युद्ध
 कौशल
 आजमगढ़ की ओर बढ़ा। कुंवरसिंह को इसका
 पता लग गया। कुंवरसिंह ने सब से पहले
 आजमगढ़ छोड़ कर गाज़ीपुर जाकर वहाँ से गङ्गा पार कर जगदीश
 पुर पहुँचने और फिर से अपनी पैतृक रियासत विजय करने का
 इरादा किया। इसके लिए कुंवरसिंह ने एक सुन्दर चाल चली।

लगर्ड की सेना तानू नदी के पुल पर से आजमगढ़ आने वाली
 थी। कुंवरसिंह ने अपनी सेना का एक दल उस पुल पर लगर्ड की
 सेना का मुकाबला करने के लिए भेज दिया। अपनी शेष सेना
 सहित कुंवरसिंह गाज़ीपुर की ओर बढ़ा। यह छोटा सा सैन्यदल
 पुल के ऊपर वीरता के साथ लगर्ड की सेना का मुकाबला करता
 रहा। जब उसे पता लगा कि मुख्य सेना काफी दूर निकल गई,
 वह धीरे धीरे पीछे हट कर उस सेना से जा मिला। लगर्ड को
 कुंवरसिंह की इस चाल का पता न चल सका। इतिहास लेखक
 मॉलेसन ने कुंवरसिंह की इस चाल और तानू नदी के ऊपर लड़ने
 वाले कुंवरसिंह के सिपाहियों की वीरता दोनों की खूब प्रशंसा की
 है। इसके बाद लगर्ड की सेना ने बारह मील तक कुंवरसिंह का
 पीछा किया, किन्तु कुंवरसिंह हाथ न आ सका।

इतने ही में ज़रा सा चक्कर देकर स्वयं कुंवरसिंह ने अचानक
 लगर्ड की
 पराजय
 लगर्ड की सेना पर हमला किया। कम्पनी की
 ओर कई अफसर और अनेक सिपाही मारे

गए। अन्त में कम्पनी की सेना को हार कर पीछे हट आना पड़ा और कुंवरसिंह गङ्गा की ओर बढ़ा।

एक और अंगरेजी सेना सेनापति डगलस के अधीन कुंवरसिंह को परास्त करने के लिए बढ़ी। नघई नामक डगलस की पराजय ग्राम के निकट डगलस और कुंवरसिंह की सेनाओं में संग्राम हुआ। कुंवरसिंह ने इस समय अपनी सेना के तीन दल किए। एक दल ने डगलस का मुकाबला किया। दूसरे दोनों दल घूम कर आगे बढ़ गए। पहला दल जोरों के साथ डगलस की सेना से लड़ता रहा। डगलस के मुकाबले में इस दल की संख्या कम थी। चार मील तक डगलस इस दल को दबाता चला गया। अन्त में ज्योंही डगलस की सेना थक कर रुकी, दूसरे दोनों दल अन्य रास्तों से घूम कर उस पर टूट पड़े। पराजित डगलस को पीछे हट जाना पड़ा।

कुंवरसिंह की संयुक्त सेना गङ्गा की ओर बढ़ी। डगलस की सेना ने फिर उसका पीछा किया, किन्तु व्यर्थ। कुंवरसिंह अपनी सेना सहित आश्चर्यजनक वेग के साथ चल कर सिकन्दरपुर पहुँचा। उसने घाघरा नदी पार की और मनोहर ग्राम में जाकर कुछ देर के लिए विश्राम किया।

मनोहर ग्राम में डगलस की सेना ने फिर कुंवरसिंह पर हमला किया। कुंवरसिंह के कुछ हाथी, कुछ बारूद और कुछ रसद का सामान डगलस के हाथ आया। कुंवरसिंह ने फिर अपनी सेना के कई छोटे छोटे दल बनाए और उन सब को अलग अलग रास्तों

से चल कर एक नियत स्थान पर मिलने की आज्ञा दी। डगलस के लिए इन पृथक् पृथक् दलों का पीछा कर सकना असम्भव हो गया। कुंवरसिंह को सारी टुकड़ियाँ आगे चल कर मिल गईं और गङ्गा की ओर बढ़ चलीं।

गङ्गा के निकट पहुँच कर कुंवरसिंह ने यह अफ़वाह उड़ा दी कि मेरी सेना बलिया के निकट हाथियों पर कुंवरसिंह गोली गङ्गा को पार करेगी। अंगरेज़ी सेना उसी से घायल स्थान पर जाकर कुंवरसिंह को रोकने के लिए डट गई। किन्तु कुंवरसिंह उस स्थान से सात मील नीचे शिवपुर घाट से रात्रि के समय किशतियों में गङ्गा को पार कर रहा था। अंगरेज़ी सेना को जब इस चाल का पता लगा, वह शिवपुर पहुँची। कुंवरसिंह की समस्त सेना गंगा पार कर चुकी थी। केवल एक अन्तिम किशती रह गई थी। कुंवरसिंह इसी किशती में था। ठीक जिस समय कुंवरसिंह की किशती बीच धार में थी अंगरेज़ी सेना के किसी सिपाही की गोली कुंवरसिंह की दाहिनी कलाई में आकर लगी। ८१ वर्ष के बूढ़े कुंवरसिंह ने यह देख कर कि दाहिना हाथ निकम्मा हो गया और समस्त शरीर में विष फैल जाने का डर है, बाएँ हाथ से तलवार खींच कर अपने घायल दाहिने हाथ को स्वयं एक बार में कुंहनी पर से काट कर गङ्गा में फेंक दिया। घाव पर कपड़ा लपेट कर कुंवरसिंह ने गङ्गा को पार किया। अंगरेज़ी सेना गङ्गा के उस पार उसका पीछा न कर सकी।



कुंवरसिंह

From the "History of Indian Mutiny" by Charles Ball.

गङ्गा के उस पार कुछ दूरी पर जगदीशपुर की राजधानी थी ।
 आज से आठ महीने पहले कुंवरसिंह को
 कुंवरसिंह का जगदीशपुर में प्रवेश जगदीशपुर से निकल जाना पड़ा था । इन आठ
 महीने तक जगदीशपुर अंगरेज़ी सेना के कब्ज़े
 में रहा । २२ अप्रैल को राजा कुंवरसिंह ने फिर
 जगदीशपुर में प्रवेश किया । कुंवरसिंह के भाई अमरसिंह ने पहले
 से कुछ स्वयं सेवकों का एक दल कुंवरसिंह की सहायता के लिए
 जमा कर रक्खा था । जगदीशपुर पर फिर से कुंवरसिंह का कब्ज़ा
 हो गया ।

आरा के अंगरेज़ अफ़सर चकित हो गए । २३ अप्रैल को
 लीग्रैण्ड के अधीन कम्पनी की सेना जगदीशपुर
 पर दोबारा हमला करने के लिए आरा से चली ।
 लीग्रैण्ड की पराजय आठ महीने कुंवरसिंह और उसकी सेना के
 लगातार संग्राम और कठिन यात्रा में बीते थे । जगदीशपुर पहुँचे
 उसे अभी २४ घण्टे भी न हुए थे । कुंवरसिंह का दाहिना हाथ
 कट चुका था । उसके पास सेना भी एक हजार से अधिक न थी ।
 उसके मुकाबले में लीग्रैण्ड की सेना सुसज्जित और ताज़ा थी ।
 तीर्पे भी इस सेना के साथ थीं । कुंवरसिंह के पास उस समय कोई
 तोप न थी । जगदीशपुर से डेढ़ मील के फ़ासले पर लीग्रैण्ड और
 कुंवरसिंह की सेना में संग्राम हुआ । लीग्रैण्ड की सेना में
 कुछ अंगरेज़ और अधिकांश सिख थे । किन्तु मैदान फिर पूरी
 तरह कुंवरसिंह के हाथों में रहा । उस दिन की पराजय को

वयान करते हुए एक अंगरेज़ अफ़सर जो संग्राम में शामिल था लिखता है—

“वास्तव में इसके बाद जो कुछ हुआ उसे लिखते हुए मुझे अत्यन्त लज्जा आती है। लड़ाई का मैदान छोड़ कर हमने जङ्गल से भागना शुरू किया। शत्रु हमें बराबर पीछे से पीटता रहा। हमारे सिपाही प्यास से मर रहे थे। एक निकृष्ट गन्दे छोटे से पोखर को देख कर वे घबरा कर उसकी ओर लपके। इतने में कुंवरसिंह के सवारों ने हमें पीछे से आ दबाया। इसके पश्चात् हमारी ज़िल्लत की कोई हद न रही, हमारी आपत्ति चरम सीमा को पहुँच गई। हममें से किसी में शर्म तक न रही। जहाँ जिसको कुशल दिखाई दी, वह उसी ओर भागा। अफ़सरों की आज्ञाओं की किसी ने परवा न की। व्यवस्था और क़वायद का अन्त हो गया। चारों ओर आहों, श्रापों और रोने के सिवा कुछ सुनाई न देता था। मार्ग में अङ्गरेज़ों के गिरोह के गिरोह मारे गरमी के गिर गिर कर मर गए। किसी को दवा मिल सकना भी असम्भव था, क्योंकि हमारे अस्पताल पर कुंवरसिंह ने पहले ही क़ब्ज़ा कर लिया था। कुछ वहीं गिर कर मर गए, शेष को शत्रु ने काट डाला। हमारे कहार डोलियाँ रख रख कर भाग गए। सब घबराए हुए थे, सब डरे हुए थे। सोलह हाथियों पर केवल हमारे घायल साथी लदे हुए थे। स्वयं जनरल लीग्रैण्ड की छाती में एक गोली लगी और वह मर गया ! हमारे सिपाही अपनी जान लेकर पाँच मील से ऊपर दौड़ चुके थे। उनमें अब अपनी बन्दूक उठाने तक की शक्ति न रह गई थी। सिखों को वहाँ की धूप की आदत थी। उन्होंने हमसे हाथी छीन लिए और हमसे आगे भाग गए। गोरों का किसी ने साथ न दिया। १६६ गोरों में से केवल ८० इस भयङ्कर संहार से

ज़िन्दा बच सके ! हमारा इस जङ्गल में जाना ऐसा ही हुआ जैसा पशुओं का कसाई खाने में जाना, हम वहाँ केवल बध होने के लिए गए थे !”*

इतिहास लेखक व्हाइट लिखता है—“इस अवसर पर अङ्गरेज़ों ने पूरी और बुरी से बुरी हार खाई ।”†

अंगरेज़ी सेना की सब तोपें और असबाब कुँवरसिंह के हाथ आया ।

इस प्रकार २३ अप्रैल सन् १८५८ को विजयी कुँवरसिंह फिर से अपनी पैतृक रियासत पर शासन करने लगा ।
 कुँवरसिंह की मृत्यु किन्तु कुँवरसिंह के हाथ का घाव अभी तक अच्छा न हुआ था । उस घाव ही के कारण २६ अप्रैल सन् १८५८ को अपने महल के अन्दर राजा कुँवरसिंह की मृत्यु हुई । कुँवरसिंह की मृत्यु के समय स्वाधीनता का हरा झण्डा उसको राजधानी के ऊपर फहरा रहा था और अंगरेज़ कम्पनी के आधिपत्य से वह अपनी रियासत और प्रजा दोनों को सर्वथा स्वाधीन कर चुका था । इतिहास लेखक होम्स लिखता है—

“उस बड़े राजपूत की, जो ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध इतनी वीरता और इतनी आन के साथ लड़ा, २६ अप्रैल सन् १८५८ को मृत्यु हुई ।”‡

* Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 288.

† “The English sustained on this occasion a complete defeat of the worst kind.”—White's *History of the Mutiny*.

‡ “The old Rajput who had fought so honourably and so bravely against the British power died on April 26th, 1858.”—*History of the Sepoy War*, by Holmes.

कुँवरसिंह का व्यक्तिगत चरित्र अत्यन्त पवित्र था, उसका जीवन परहेज़गारी का था। यहाँ तक कि लिखा है उसके राज में कोई मनुष्य इस डर से कि कहीं कुँवरसिंह न देख ले, खुले तौर पर तम्बाकू तक न पीता था। उसकी समस्त प्रजा उसका बहुत बड़ा आदर और उससे प्रेम करती थी। युद्ध कौशल में वह अपने समय में आद्वितीय था।

कुँवरसिंह के बाद उसका छोटा भाई अमरसिंह जगदीशपुर की गद्दी पर बैठा। अमरसिंह ने बड़े भाई के मरने के बाद चार दिन भी विश्राम नहीं लिया। केवल जगदीशपुर की रियासत पर अपना अधिकार बनाए रखने से भी वह सन्तुष्ट न रहा। उसने तुरन्त अपनी सेना को फिर से एकत्रित कर आरा पर चढ़ाई की। लीग्रैण्ड की सेना की पराजय के बाद जनरल डगलस और जनरल लगर्ड की सेनाएँ भी गङ्गा को पार कर आरा की सहायता के लिए पहुँच चुकी थीं। ३ मई को राजा अमरसिंह की सेना के साथ डगलस और लगर्ड की सेनाओं का पहला संग्राम हुआ। उसके बाद बिहिया, हातमपुर, दलीलपुर इत्यादि अनेक स्थानों पर दोनों सेनाओं में अनेक संग्राम हुए। अमरसिंह ठीक उसी प्रकार की युद्ध नीति द्वारा अंगरेज़ी सेना को बार बार हराता और हानि पहुँचाता रहा, जिस प्रकार की युद्ध नीति में कुँवरसिंह निपुण था। निराश होकर १५ जून को जनरल लगर्ड ने इस्तीफा दे दिया। लड़ाई का भार अब जनरल

डगलस पर पड़ा। डगलस के साथ सात हजार सेना थी। डगलस ने अमरसिंह को परास्त करने की कसम खाई। किन्तु जून, जुलाई, अगस्त और सितम्बर के महीने बीत गए, फिर भी अमरसिंह परास्त न हो सका। इस बीच विजयी अमरसिंह ने आरा में प्रवेश किया और जगदीशपुर की रियासत पर अपना आधिपत्य जमाए रखवा। जनरल डगलस ने कई बार हार खाकर यह एलान कर दिया कि जो मनुष्य किसी तरह भी अमरसिंह का सिर लाकर पेश करेगा, उसे बहुत बड़ा इनाम दिया जायगा, किन्तु इससे भी काम न चल सका।

सात ओर से सात विशाल सेनाओं ने एक साथ जगदीशपुर पर हमला किया। १७ अक्टूबर को इन सेनाओं ने जगदीशपुर को चारों ओर से घेर लिया। अमरसिंह ने देख लिया कि इस विशाल सैन्यदल पर विजय प्राप्त कर सकना असम्भव है। वह तुरन्त अपने थोड़े से सिपाहियों सहित मार्ग चीरता हुआ अंगरेज़ सेना के बीच से निकल गया। जगदीशपुर पर फिर कम्पनी का कब्ज़ा हो गया, किन्तु अमरसिंह हाथ न आ सका।

कम्पनी की सेना ने अमरसिंह का पीछा किया। १८ अक्टूबर को नौनदी नामक ग्राम में इस सेना ने अमरसिंह को घेर लिया। अमरसिंह के साथ केवल चार सौ सिपाही थे। इन चार सौ में से तीन सौ ने नौनदी के संग्राम में लड़ कर प्राण दिए। शेष सौ ने कम्पनी की सेना को एक बार

पीछे हटा दिया। इतने में और अधिक सेना अंगरेज़ों की मदद के लिए पहुँच गई। अमरसिंह के सौ आदमियों ने अपनी जान हथेली पर लेकर युद्ध किया। अन्त में अमरसिंह और उसके दो और साथी मैदान से निकल गए। शेष ६७ वहीं पर कट मरे। नौनदी के संग्राम में कम्पनी की ओर मरने वालों और घायलों की संख्या इससे कहीं अधिक थी।

कम्पनी की सेना ने फिर अमरसिंह का पीछा किया। एकबार कुछ सवार अमरसिंह के हाथी तक पहुँच गए। हाथी पकड़ लिया गया, किन्तु अमरसिंह कूद कर निकल गया।

अमरसिंह ने अब कैमूर के पहाड़ों में प्रवेश किया। शत्रु ने वहाँ पर भी उसका पीछा किया, किन्तु अमरसिंह अमरसिंह का अंत ने हार स्वीकार न की। इसके बाद राजा अमरसिंह का कोई पता नहीं चलता।

जगदीशपुर के महल की स्त्रियों ने भी शत्रु के हाथ में पड़ना गवारा न किया। लिखा है कि जिस समय जगदीशपुर की महल की डेढ़ सौ स्त्रियों ने यह देखा कि वीर स्त्रियाँ अब शत्रु के हाथों में पड़ने के सिवा कोई चारा नहीं, तो वे तोपों के मुँह के सन्मुख खड़ी होगई और स्वयं अपने हाथ से फ़लीता लगा कर उन सब ने अपने ऐहिक जीवन का अन्त कर दिया !

लखनऊ के पतन के बाद क्रान्तिकारियों का कोई विशेष केन्द्र

कहीं भी भारत में न रहा था। कम्पनी की सेनाएँ इस समय चारों ओर फैलती जा रही थीं। पलटनों पर अंगरेजों की विशाल सेना पलटन इङ्गलिस्तान से भरती हो होकर भारत आ रही थीं। विशाल भारतीय साम्राज्य को अपने हाथों से खिसकता देख कर इङ्गलिस्तान के शासकों ने उस समय अपनी सारी शक्ति भारतीय क्रान्ति के दमन करने में लगा रखी थी। पहली अप्रैल सन् १८५८ को कम्पनी की हिन्दोस्तानी सेना और देशी रियासतों की सेनाओं के अतिरिक्त कम्पनी के पास भारत में ६६,००० गोरी सेना थी। अंगरेज कौम के बड़े से बड़े अनुभवी सेनापति भारत में मौजूद थे। दूसरी ओर सिखों और गोरखों दोनों ने अपनी पूरी शक्ति से अंगरेजों का साथ दिया। क्रान्तिकारियों के अन्दर अव्यवस्था बढ़ती जा रही थी। दिल्ली, कानपुर और लखनऊ जैसे केन्द्र हाथ से निकल चुके थे। इस परिस्थिति में अवध और रुहेलखण्ड के नेताओं ने इधर उधर फैले हुए क्रान्तिकारियों के नाम यह आज्ञा प्रकाशित की—

“तुम लोग विधर्मियों की बाज़ाबता सेनाओं का खुले मैदान में सामना करने का प्रयत्न न करो, क्योंकि उनमें व्यवस्था हमसे बढ़ कर है और उनके पास बड़ी बड़ी तोपें हैं। उनके आने जाने पर दृष्टि रखो, दरियाओं के तमाम घाटों पर अपना पहरा रखो, उनके पत्र व्यवहार को बीच में रोक दो, उनकी रसद को रोक लो, उनकी डाक और चौकियों को तोड़ दो और सदा उनके कैम्प के इधर उधर फिरते रहो। क़िरज़ी को बिलकुल चैन न लेने दो !” ❀

इस आज्ञा के विषय में रसल लिखता है—“इस आम एलान से नेताओं को बुद्धिमत्ता का पता चलता है और यह भी पता चलता है कि इससे अधिक भयङ्कर युद्ध का हमें कभी भी सामना करना न पड़ा था।”*

मौलवी अहमदशाह लखनऊ से करीब तीस मील दूर बारी नामक स्थान पर था। बेगम हज़रतमहल छे बारी की लड़ाई हज़ार सैनिकों सहित बिटावली में थी। होपग्रॉण्ट तीन हज़ार सेना और तोपखाने सहित लखनऊ से बारी की ओर बढ़ा। मौलवी अहमदशाह को पता चला, उसने बारी से चार मील दूर एक गाँव में अपनी पैदल सेना को नियुक्त किया, और सवार सेना को किसी दूसरी जगह छिपा दिया। उसकी चाल यह थी कि कम्पनी की सेना इस गाँव पर हमला करे, अहमदशाह की पैदल सेना उसका मुकाबला करे और उसके सवार अचानक पीछे से आकर कम्पनी की सेना को घेर लें। मौलवी स्वयं पैदल सेना के साथ रहा। सवारों को आज्ञा थी कि जिस समय तक पैदल सेना के साथ अंगरेजों की लड़ाई शुरू न हो जाय तुम अपने आप को बराबर छिपाए रखना किन्तु ऐन मौके पर अधीर सवारों ने अहमदशाह की आज्ञा के विरुद्ध अंगरेजी सेना को सामने देखते ही अपने स्थान से निकल कर उस पर हमला कर दिया। इस अव्यवस्था का परिणाम यह हुआ कि थोड़ी सी लड़ाई के बाद

* Russell's *Diary*, p. 276

अहमदशाह को उस गाँव से निकल कर भाग जाना पड़ा और बारी का मैदान अंगरेजों के हाथ रहा ।

कम्पनी की सेना के अनेक दल इस समय अवध और रुहेलखण्ड के क्रान्तिकारियों को उत्तर की ओर खदेड़ते हुए चले जा रहे थे ।

१५ अप्रैल को वालपोल ने लखनऊ से ५० मील दूर रुइया के किले पर हमला किया । रुइया के ताल्लुकदार जनरल होप की मृत्यु नरपतिसिंह के पास केवल २५० साधारण सिपाही थे । वालपोल के साथ कई हजार सेना और तोपें थीं । सामने की ओर से वालपोल के डेढ़ सौ आदमियों ने किले पर चढ़ाई की । किले की दीवारों से गोलियों की बौछार शुरू हुई । ४६ अंगरेज वहीं पर मर गए, शेष को पीछे हट जाना पड़ा । वालपोल ने अपनी तोपों सहित किले के दूसरी ओर से गोलेबारी शुरू की । वालपोल के गोले किले के ऊपर से पार कर दूसरी ओर की अंगरेजी सेना पर जाकर गिरने लगे । वालपोल की घबराहट को देख कर जनरल होप आगे बढ़ा । होप मारा गया । समस्त अंगरेजी सेना को ज़िल्लत के साथ हार कर किले से पीछे हट जाना पड़ा । जनरल होप अंगरेजों के मुख्यतम और अनुभवी सेनापतियों में से था । उसकी मृत्यु से भारत और इङ्गलिस्तान के अंगरेजों को बहुत बड़ा शोक हुआ । इस विजय के बाद भी नरपतिसिंह ने जब देख लिया कि मैं विशाल अंगरेजी सेना के मुकाबले इस छोटे से किले में देर तक न ठहर सकूंगा, तो अपने मुट्ठी भर आदमियों सहित वह किले से बाहर निकल गया ।

नाना साहब और मौलवी अहमदशाह अब शाहजहाँपुर पहुँचे ।
 कमाण्डर-इन-चीफ़ सर कॉलिन कैम्पबेल ने
 शाहजहाँपुर और शाहजहाँपुर पहुँच कर चारों ओर से नगर को
 घेर लिया । उसका उद्देश नाना साहब और
 मौलवी अहमदशाह को वश में करना था । किन्तु ये दोनों नेता
 अंगरेजी सेना के बीच से शाहजहाँपुर छोड़ कर निकल गए ।

खानबहादुर खाँ ने अभी तक रुहेलखण्ड की राजधानी बरेली
 को स्वाधीन कर रक्खा था । दिल्ली का एक शाहजादा मिरजा
 फ़ीरोज़शाह, नाना साहब, मौलवी अहमदशाह, बालासाहब, बेगम
 हज़रतमहल, राजा तेजसिंह और अन्य अनेक नेता इस समय
 बरेली में थे । सर कॉलिन अपनी सेना सहित बरेली की ओर बढ़ा ।
 क्रान्तिकारी नेता पहले ही से बरेली छोड़ देने और चारों ओर
 रुहेलखण्ड में फैल जाने का निश्चय कर चुके थे । ५ मई को अंगरेजी
 सेना ने बरेली को घेर लिया । बरेली के असंख्य क्रान्तिकारी केवल
 ढाल तलवार लेकर मरने के लिए अंगरेजी सेना पर टूट पड़े । दोनों
 ओर काफ़ी जानें गईं । अन्त में ७ मई सन् १८५८ को खानबहादुर
 खाँ अन्य नेताओं और कुछ सेना सहित बरेली छोड़ कर निकल
 गया । अंगरेजी सेना ने बरेली के नगर पर कब्ज़ा कर लिया ।

सर कॉलिन कैम्पबेल अभी बरेली ही में था कि मौलवी
 अहमदशाह ने घूम कर फिर से शाहजहाँपुर
 शाहजहाँपुर का पर हमला किया, वहाँ की अंगरेजी सेना को
 संग्राम परास्त किया और शाहजहाँपुर पर कब्ज़ा

कर लिया। कैम्पबेल ने फिर शाहजहाँपुर पर हमला किया। इस बार तीन दिन तक शाहजहाँपुर में संग्राम होता रहा। एक बार मालूम होता था कि मौलवी अहमदशाह का अब शाहजहाँपुर से बच कर निकल सकना असम्भव है। तुरन्त चारों ओर से क्रान्तिकारी नेता सर्वप्रिय मौलवी अहमदशाह की सहायता के लिए पहुँच गए। बेगम हज़रतमहल, शाहज़ादा फ़ीरोज़शाह, नाना साहब इत्यादि सब अपनी सेनाएँ लेकर १५ मई को शाहजहाँपुर पहुँचे। मौलवी अहमदशाह फिर इन सब की सहायता से शाहजहाँपुर से निकल आया। इसके बाद रुहेलखण्ड से घूम कर अहमदशाह ने फिर अवध के अन्दर प्रवेश किया।

मौलवी अहमदशाह किसी तरह अंगरेज़ों के काबू में न आता था। इस बार अवध में प्रवेश करते ही उसने मौलवी अहमदशाह के साथ दगा अंगरेज़ों से लड़ने के लिए फिर अपना बल बढ़ाने का प्रयत्न किया। मार्ग में पवन नाम की छोटी सी हिन्दू रियासत थी। मौलवी अहमदशाह ने बेगम हज़रतमहल की मोहर लगा एक परवाना पवन के राजा के पास सहायता के लिए भेजा। राजा जगन्नाथसिंह ने तुरन्त मौलवी अहमदशाह को अपने यहाँ बुलवाया। अहमदशाह अपने हाथी पर बैठ कर पवन पहुँचा। राजा जगन्नाथसिंह और उसके भाई से अहमदशाह की बातचीत हुई; बातचीत हो ही रही थी कि जगन्नाथसिंह के भाई ने धोखे से मौलवी अहमदशाह पर गोली चला दी। अहमदशाह इस विश्वासघातक के वार से न बच सका। राजा जगन्नाथसिंह ने

तुरन्त अहमदशाह का सिर काट कर उसे एक कपड़े में लपेटा और स्वयं पास के अंगरेजी कैम्प में पहुँचा दिया। इस प्रकार ५ जून सन् १८५८ को मौलवी अहमदशाह का अन्त हुआ। अगले दिन मौलवी अहमदशाह का कटा हुआ सिर शाहजहाँपुर की कोतवाली के सामने टाँग दिया गया।

राजा जगन्नाथसिंह को इस सेवा के बदले में कम्पनी सरकार से पचास हजार रुपए इनाम में मिले।

मौलवी अहमदशाह की योग्यता के विषय में हम ऊपर भी अहमदशाह की योग्यता अंगरेज़ इतिहास लेखकों की राय उद्धृत कर चुके हैं। होम्स लिखता है कि मौलवी अहमदशाह “उत्तर भारत में अंगरेज़ों का सब से ज़बरदस्त शत्रु था।” * एक दूसरा अंगरेज़ इतिहास लेखक मॉलेसन लिखता है—

“मौलवी एक बड़ा अद्भुत मनुष्य था X X X सेनापति की हैसियत से उसकी योग्यता के विप्लव में अनेक सबूत मिले X X X कोई भी और मनुष्य अभिमान के साथ यह न कह सकता था कि मैंने दो बार सर कॉलिन कैम्पबेल को मैदान में परास्त किया ! X X X फ़ैज़ाबाद के मौलवी अहमदशाह की इस प्रकार मृत्यु हुई। यदि एक ऐसे मनुष्य को, जिसकी जन्मभूमि की स्वाधीनता का अन्याय द्वारा अपहरण कर लिया गया हो, और जो फिर से उस स्वाधीनता को स्थापित करने के लिए योजना करे

* “The most formidable enemy of the British in Northern India.”—Holmes' *History of the Indian Mutiny*, p. 539.

और युद्ध करे, देशभक्त कहा जा सकता है, तो इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता कि मौलवी अहमदशाह सच्चा देशभक्त था। उसने किसी की गुप्त हत्या करके अपनी तलवार को कलङ्कित न किया था; निहत्थे और निर्दोष मनुष्यों की हत्या को उसने कभी गवारा तक न किया था; उसने मरदाना वार, आन के साथ और डट कर खुले मैदान में उन विदेशियों के साथ युद्ध किया जिन्होंने उसका देश छीन लिया था; हर देश के वीर और सच्चे लोगों को मौलवी अहमदशाह का आदर के साथ स्मरण करना चाहिए।”*

ये शब्द एक अंगरेज़ इतिहास लेखक के हैं। निस्सन्देह संसार के स्वाधीनता के शहीदों में सन् ५७ के मौलवी अहमदशाह का नाम सदा के लिए आदरणीय रहेगा।

* “The Moulvi was a very remarkable man . . . of his capacity as a military leader many proofs were given during the revolt, . . . No other man could boast that he had twice foiled Sir Colin Campbell in the field ! . . . Thus died the Moulvi Ahmad Shah of Fyazabad. If a patriot is a man who plots and fights for the independence, wrongfully destroyed, of his native country, then most certainly the Moulvi was a true patriot. He had not stained his sword by assassination ; he had connived at no murders; he had fought manfully, honourably, and stubbornly in the field against the strangers who had seized his country ; and his memory is entitled to the respect of the brave and the true-hearted of all nations,”—Malleon's *Indian Mutiny*, vol. iv, p. 381.

उनचासवाँ अध्याय

लक्ष्मीबाई और तात्या टोपे

जमना के दक्खिन और विन्ध्याचल के उत्तर का समस्त प्रदेश
११ महीने तक क्रान्तिकारियों के हाथों में रहा,
सर ह्यू रोज़ का जिसका मुख्य श्रेय महारानी लक्ष्मीबाई को है।
कार्यक्रम सर ह्यू रोज़ के अधीन एक विशाल सेना, जिसमें
हैदराबाद, भोपाल और अन्य रियासतों की सेनाएँ भी शामिल थीं,
तोपों सहित, इस प्रदेश को फिर से विजय करने के लिए भेजी गई।

६ जनवरी सन् १८५८ को सर ह्यू रोज़ मऊ से रवाना हुआ।
रायगढ़, सागर, बानापुर, चँदेरी इत्यादि स्थानों को विजय करती
हुई यह सेना २० मार्च को भाँसी के निकट पहुँची। भाँसी इस
समस्त प्रदेश के क्रान्तिकारियों का सबसे मुख्य केन्द्र था। नगर के
अन्दर बानापुर का राजा मरदानसिंह और अन्य अनेक राजा और
सरदार रानी की सहायता के लिए मौजूद थे।

रानी लक्ष्मीबाई ने कम्पनी की सेना के पहुँचने से पहले भाँसी के चारों ओर दूर दूर तक के इलाके को वीरान करवा दिया था, ताकि शत्रु की सेना को भाँसी पर हमला करते समय रसद इत्यादि न मिल सके। न खेतों में नाज की एक बाल थी, न कहीं पर घास का तिनका था और न साए के लिए कोई वृक्ष था।

किन्तु महाराजा सींधिया ने और टेहरो टोकमगढ़ के राजा ने कम्पनी की सेना के लिए रसद, घास इत्यादि का इतना अच्छा प्रबन्ध कर दिया था कि उस सेना को किसी तरह की कठिनाई न हुई।

अंगरेजी सेना को बढ़ते देख कर रानी लक्ष्मीबाई ने क्रान्ति-कारियों का सेनापतित्व ग्रहण किया। प्रत्येक लक्ष्मीबाई का सेनापतित्व मोरचा उसने अपनी उपस्थिति में तैयार कराया और अपने सामने फ़सील के ऊपर तोपें चढ़वाई। सर ह्यूरोज़ लिखता है कि रानी लक्ष्मीबाई के साथ भाँसी को सैकड़ों स्त्रियाँ तोपखानों और मैगज़ीनों में आती जाती और काम करती दिखाई दे रही थीं।

२४ मार्च को सवेरे सबसे पहले भाँसी की एक तोप ने, जिसका नाम घनगर्ज था, कम्पनी की सेना के भाँसी में आठ दिन ऊपर गोले बरसाने शुरू किए। उसके बाद आठ लगातार संग्राम दिन तक लगातार संग्राम होता रहा।

एक दर्शक, जो उन दिनों भाँसी में मौजूद था, लिखता है :—

“२५ तारीख से गहरा संग्राम प्रारम्भ हुआ। अंगरेजों ने सारे दिन और

सारी रात गोले बरसाए । रात के समय क़िले और शहर के ऊपर तोपों के गोले डरावने दिखाई देते थे । पचास या तीस सेर का गोला ऐसा मालूम होता था जैसी एक छोटी सी गेंद, किन्तु अज़ारे की तरह लाल । X X X २६ तारीख के दोपहर को कम्पनी की सेना ने नगर के दक्खिनी फाटक पर इस ज़ोर से गोले बरसाए कि उस ओर की भौंसी की तोपें ठण्ढी हो गईं । किसी को भी वहाँ खड़े रहने की हिम्मत न हो सकी । X X X इस पर पश्चिमी फाटक के तोपची ने अपनी तोप का मुँह उस ओर करके शत्रु के ऊपर गोले बरसाने शुरू किए । तीसरे गोले ने अंगरेज़ी सेना के सब से अच्छे तोपची को उड़ा दिया । इस पर अंगरेज़ी तोप ठण्ढी होगई । रानी लक्ष्मीबाई ने खुश होकर अपनी ओर के तोपची को, जिसका नाम गुलाम ग़ौस ख़ाँ था, सोने का कड़ा इनाम में दिया । X X X पाँचवें या छठे दिन चार पाँच घण्टे तक रानी की तोपों ने चमत्कार कर दिखाया । उस दिन अंगरेज़ों की ओर असंख्य आदमी मारे गए, और अनेक तोपें ठण्ढी होगईं । फिर अंगरेज़ी तोपें अधिक उत्साह से चलने लगीं, भौंसी की सेना का दिल टूटने लगा और उनकी तोपें ठण्ढी होने लगीं । सातवें दिन शाम को शत्रु के गोलों ने नगर के बाईं ओर की दीवार का एक हिस्सा गिरा दिया और उस ओर की तोप ठण्ढी हो गई । कोई वहाँ पर खड़ा न रह सकता था । किन्तु रात के समय ११ मिस्री कम्बल आंटे दीवार तक पहुँचे और सुबह तक उस हिस्से की मरम्मत कर दी । भौंसी की तोप सूर्य निकलने से पूर्व फिर अपना कार्य करने लगी । X X X कम्पनी की ओर इससे बहुत भारी नुक़सान हुआ, यहाँ तक कि उनकी तोपें बहुत देर के लिए निकम्मी हो गईं । आठवें दिन सवेरे कम्पनी की सेना शङ्कर क़िले की ओर बढ़ी । दूरबीनों की सहायता से अंगरेज़ों

ने क्रिले के अन्दर के पानी के चश्मे पर गोले बरसाने शुरू किए। ६-७ आदमी पानी लेने के लिए पहुंचे, जिनमें से चार वहीं पर मर गए, शेष अपने बरतन छोड़ कर भाग आए। चार घण्टे तक किसी को नहाने धोने तक के लिए पानी न मिल सका। इस पर पश्चिमी और दक्खिनी फाटकों के तोपचियों ने कम्पनी की सेना के ऊपर लगातार गोलेबारी शुरू की और कम्पनी की जो तोपें शङ्कर क्रिले पर हमला कर रही थीं उनके मुँह फेर दिए। तब जाकर लोगों को नहाने और पीने के लिए पानी मिल सका। इमली के दरख्तों के नीचे बारूद का एक कारखाना था। × × × एक गोला इस कारखाने पर पड़ा जिससे ३० आदमी और ८ स्त्रियों मर गईं। उसी दिन सबसे अधिक शोर मचा। उस दिन का संग्राम भीषण था। बन्दूकों की आवाज़ दिलों को दहलाती थी, तोपें ज़ोरों के साथ चल रही थीं। जगह जगह तुरही और बिगुल की आवाज़ सुनाई देती थी। आसमान धुँएँ और गर्द से भरा हुआ था। शहर फ़सील के ऊपर के कई तोपची और अनेक सिपाही मारे गए। उनकी जगह दूसरे नियुक्त कर दिए गए। रानी लक्ष्मीबाई उस दिन बड़े परिश्रम के साथ कार्य करती रही। वह हर एक चीज़ को खुद देखती थी, आवश्यक आज्ञाएँ जारी करती थी और दीवार में जहाँ कमज़ोरी देखती, तुरन्त मरम्मत कराती। रानी की इस उपस्थिति से सिपाहियों की हिम्मत बेहद बढ़ गई। वे बराबर लड़ते रहे।”*

किन्तु कम्पनी की विशाल सेना और उसके सामान के मुकाबले में भाँसी की सेना का अकेले बहुत अधिक देर तक ठहर सकना असम्भव था।

तात्या टोपे अपनी सेना सहित जमना के उत्तर में था। जमना
 चरखारी का राजा पार कर अब वह चरखारी के राजा के यहाँ
 पहुँचा। चरखारी के राजा ने स्वाधीनता संग्राम
 में भाग लेने से इनकार कर दिया था। तात्या ने चरखारी पर
 हमला किया, राजा से २४ तोपें छीनी और तीन लाख रुपये युद्ध
 के खर्च के लिए वसूल किए। इसके बाद तात्या कालपी पहुँचा।
 कालपी में उसे रानी लक्ष्मीबाई का एक पत्र मिला जिसमें रानी ने
 उससे भाँसी की मदद के लिए पहुँचने की प्रार्थना की थी। तात्या
 भाँसी की ओर बढ़ा, लिखा है कि तात्या के अधीन एक विशाल
 सेना थी। कम्पनी की सेना एक बार सङ्कट में पड़ गई, सामने
 की ओर रानी लक्ष्मीबाई और पीछे की ओर तात्या टोपे की सेना।
 किन्तु कम्पनी की सेना ने इस समय खासी हिम्मत से काम
 लिया और तात्या की सेना ने मालूम होता है काफ़ी कायरता
 दिखाई। १ अप्रैल को अंगरेज़ी सेना ने साहस के साथ पीछे मुड़
 कर तात्या की सेना पर हमला किया। तात्या के करीब डेढ़ हजार
 आदमी मारे गए। उसकी तोपें अंगरेज़ों के हाथ आईं।

भाँसी की स्थिति अब और भी अधिक निराशाजनक होगई,
 फिर भी रानी लक्ष्मीबाई ने हिम्मत न हारी।
 कान्तिकारियों की स्थिति ३ अप्रैल को अंगरेज़ी सेना ने भाँसी पर
 अन्तिम बार हमला किया। चारों ओर से
 एक साथ आक्रमण होने लगा। रानी अपने घोड़े के ऊपर सवार
 सिपाहियों और अफ़सरों के हौसले बढ़ाती हुई, उनमें ज़ेवर और



रानी लक्ष्मी बाई, भांभी का संग्राम
[श्री वासुदेव राव सुबेदार, सागर, की कृपा द्वारा एक सम्माननीय चित्र में]

खिलअत बाँटती हुई, बिजली की तरह इधर से उधर तक फिर रही थी। शत्रु ने पहले नगर के उत्तर की ओर सदर दरवाज़े पर जोर दिया। आठ स्थानों पर सीढ़ियाँ लग गईं। रानी की तोपों ने अपना काम जारी रक्खा। अंगरेज़ अफ़सर डिक और मिचेलजॉन ने सीढ़ियों पर चढ़ कर अपने साथियों को ललकारा, किन्तु तुरन्त दो गोलियों ने इन दोनों बहादुर अंगरेज़ों को वहीं पर ढेर कर दिया। बोनस और फ़ॉक्स ने उनका स्थान लिया, वे दोनों भी मार डाले गए। आठों सीढ़ियाँ टूट कर गिर पड़ीं। इतिहास लेखक लो लिखता है कि भाँसी की दीवारों से गोलों और गोलियों की बौछार उस दिन अत्यन्त ही भोषण थी, जिसके कारण अंगरेज़ी सेना को पीछे हट जाना पड़ा।

किन्तु जब कि उत्तर की ओर सदर दरवाज़े की यह स्थिति थी, कहते हैं कि किसी भारतीय विश्वासघातक की सहायता से कम्पनी की सेना दक्खिनी दरवाज़े से नगर में घुस आई। इसके बाद कम्पनी की सेना एक स्थान के बाद दूसरा स्थान विजय करती हुई महल की ओर बढ़ चली।

रानी ने क़िले की फ़सील पर से नगरनिवासियों के संहार और उनकी बरबादी को देखा। वह तुरन्त एक हजार सिपाहियों सहित अंगरेज़ी सेना की ओर लपकी। दोनों ओर से बन्दूकों को फेंक कर तलवारों की लड़ाई होने लगी। दोनों ओर अनेक जानें गईं।

कम्पनी की सेना को कुछ दूर तक फिर पीछे हटना पड़ा। इतने में किसी ने आकर रानी को सूचना दी कि सदर दरवाजे का रक्षक सरदार खुदाबख्श और तोपखाने का अफसर सरदार गुलाम ग़ौस खाँ, दोनों मारे गए, जिसका अर्थ यह था कि उत्तर की ओर का दरवाजा भी अब शत्रु के लिए खुल गया। रानी का दिल टूट गया एक बार उसने किले के मैगज़ीन में अपने हाथ से आग लगा कर उसके साथ अपने प्राण दे देने का इरादा किया। किन्तु फिर अधिक सोच समझ कर उसने भाँसी से बाहर कहीं और पहुँच कर स्वाधीनता संग्राम में सहायता देने का निश्चय किया। भाँसी पर कम्पनी का कब्ज़ा हो गया।

रानी लक्ष्मीबाई ने उसी दिन रात को सदा के लिए भाँसी छोड़ दी। हथियार बाँधे हुए, मरदाना वेष में रानी लक्ष्मीबाई और अपने दत्तक पुत्र दामोदर को कमर से कालपी की ओर कसे हुए वह किले की दीवार पर से एक हाथी की पीठ पर कूद पड़ी। वह अपने प्यारे सफ़ेद घोड़े पर सवार हुई १० या १५ सवार उसने अपने साथ लिए और कालपी की ओर रवाना हुई।

लेफ़्टिनेण्ट बोंकर ने कुछ चुने हुए सवार लेकर रानी का पीछा किया। रानी और उसके साथियों ने अपने घोड़ों को सरपट छोड़ दिया। बोंकर और उसके सवार बराबर पीछा करते रहे। सुबह होते होते रानी एक क्षण भर के लिए भाण्डेर नामक ग्राम के पास ठहरी।

गाँव से दूध लेकर उसने दामोदर को पिलाया। किन्तु अंगरेज़ी सैन्यदल बराबर पीछा कर रहा था। रानी तुरन्त अपने साथियों सहित फिर घोड़ों पर चढ़ कर कालपी की ओर बढ़ी। लेफ़्टिनेण्ट बोंकर का घोड़ा रानी के घोड़े के पास आ पहुँचा। रानी ने तुरन्त अपनी तलवार खींच ली। रानी लक्ष्मीबाई की तलवार के एक वार में घायल होकर बोंकर अपने घोड़े से गिर पड़ा। रानी के साथ के सवारों और बोंकर के साथ के सवारों में तलवार के हाथ होने लगे। अन्त में घायल बोंकर और उसके साथी हार कर पीछे रह गये। रानी और उसके साथियों ने फिर अपने घोड़ों को सरपट छोड़ दिया। सुबह से दोपहर हो गया और दोपहर से तीसरा पहर, किन्तु रानी को ठहरने का अवकाश न मिल सका। चलते चलते शाम हो गई, तारे निकल आए, किन्तु फिर भी रानी न रुकी। अन्त में आधी रात के करीब अपने बच्चे दामोदर को कमर से बाँधे हुए, भाँसी से कालपी तक १०२ मील से ऊपर फ़ासला तय करके रानी लक्ष्मीबाई ने कालपी में प्रवेश किया।

रानी का प्यारा घोड़ा कालपी पहुँचते ही गिर कर मर गया। रानी ने शेष रात कालपी में विश्राम लिया।

सुबह को रानी लक्ष्मीबाई, नाना साहब के भतीजे रावसाहब और सेनापति तात्या टोपे में परस्पर बातचीत हुई।

जिस प्रकार सरह्यू रोज़ मऊ से भाँसी की ओर रवाना हुआ था उसी प्रकार जनरल ह्विटलॉक १७ फ़रवरी सन् १८५८ को जबलपुर से सागर इत्यादि फिर

बाँदा का नवाब

से विजय करने के लिये निकला था। ह्मिटलॉक के साथ भी काफी गोरी और देशी पलटनें थीं। ओरछा का राजा ह्मिटलॉक के साथ हो गया। सागर के बाद ह्मिटलॉक बाँदा की ओर बढ़ा। बाँदा के नवाब ने अनेक अंगरेज़ों को अपने महल में आश्रय दे रक्खा था, उसका व्यवहार उनके साथ अत्यन्त उदार था। किन्तु साथ ही वह अपने प्रान्त के क्रान्तिकारियों का एक मुख्य नेता था। शुरू में ही उसने बाँदा से अंगरेज़ी राज के चिन्ह उखाड़ कर सम्राट बहादुरशाह का हरा झण्डा नगर के ऊपर लगा दिया था।

ह्मिटलॉक को आते देख कर नवाब मुकाबले के लिए तैयार हो गया। कई लड़ाइयाँ हुईं, अन्त में नवाब की हार रही। विजयी ह्मिटलॉक ने १६ अप्रैल को बाँदा में प्रवेश किया। नवाब अपनी कुछ सेना सहित नगर छोड़ कर कालपी की ओर निकल गया।

इसके बाद ह्मिटलॉक ने करवी के राव माधोराव पर चढ़ाई की। माधोराव दस वर्ष का बालक था। उसकी नाबालिगी के दिनों में रियासत का प्रबन्ध कम्पनी के नियुक्त किए हुए एक कारबारी के हाथों में था। करवी के राव ने क्रान्ति में किसी तरह का भाग न लिया था। ह्मिटलॉक के आने का समाचार सुन कर वह स्वागत के लिए आगे बढ़ा। ह्मिटलॉक और उसकी सेना ने नगर में प्रवेश किया। तुरन्त बालक माधोराव को कैद कर लिया गया, महल को गिरा दिया गया, राजधानी को लूट लिया गया और रियासत को कम्पनी के राज

में मिला लिया गया। इस घटना के विषय में इतिहास लेखक मॉलेसन लिखता है—

“हिटलॉक की सेना के ऊपर वहां किसी ने एक गोली भी न चलाई थी, फिर भी हिटलॉक ने इरादा कर लिया कि बालक राव के साथ इस प्रकार का व्यवहार किया जाय जैसा किसी ऐसे मनुष्य के साथ किया जाता है जो अंगरेज़ी सेना के विरुद्ध लड़ा हो। इस बेईमानी और अन्याय का कारण यह था कि करवी के महल में माल भरा हुआ था जिससे सिपाहियों को अनेक कठिन संग्रामों और गरमी की कष्टकर यात्राओं के लिए इनाम दिए जा सकते थे। करवी के महल के तहखानों और खज़ानों में सोना, चाँदी, जवाहरात और कीमती हीरे भरे हुए थे। X X X हिटलॉक को इस धन का लोभ था।”*

इसके बाद हिटलॉक महोबा पहुँचा, वहाँ से उसने सेना भेज कर आस पास के क्रान्तिकारियों को दमन करना शुरू किया।

रानी लक्ष्मीबाई, रावसाहब, तात्या टोपे, बाँदा का नवाब, शाहगढ़ और बानापुर के राजा और अन्य अनेक क्रान्तिकारियों में
अव्यवस्था
क्रान्तिकारी नेता उस समय अपनी अपनी सेना सहित कालपी में मौजूद थे। इस विशाल सैन्य-

* “Not a shot had been fired against him (Whitlock), but he resolved never the less to treat the young Rao as though he had actually opposed the British forces. The reason for this perversion of honest dealing lay in the fact that in the palace of Kirwi was stored the where-withall to compensate soldiers for many a hard fight and many a broiling sun. In its vaults and strong rooms were specie, jewels, and diamonds of priceless value The wealth was coveted.”—Kaye and Malletson's *Indian Mutiny*, vol. v, p. 140-41.

दल के लिए शत्रु पर विजय प्राप्त कर सकना अधिक कठिन न होता। किन्तु इन क्रान्तिकारियों में कोई एक व्यक्ति ऐसा न था जो शेष सब को अपनी आज्ञा के अधीन कर सके। रानी सब से योग्य थी, किन्तु वह स्त्री थी और उसकी आयु केवल २२ वर्ष की थी। तात्या टोपे वीर और दक्ष सेनापति था, किन्तु वह एक साधारण घराने में उत्पन्न हुआ था। प्राचीन खानदानी नरेशों का एक स्त्री के या साधारण कुल में पैदा हुए मनुष्य के मातहत काम करना उस समय तक इतना सरल न था। ठीक यही दोष दिल्ली के पतन का भी मुख्य कारण रह चुका था। फिर भी रानी लक्ष्मीबाई कुछ सेना लेकर कालपी से ४२ मील दूर कञ्चगाँव पहुँची। कञ्चगाँव में फिर सर ह्यू रोज़ की सेना से लक्ष्मीबाई की सेना का आमना सामना हुआ। नेताओं में मतभेद और अव्यवस्था बनी रही। किसी ने रानी को यथेच्छ सहायता न दी। नतीजा यह हुआ कि कञ्चगाँव में फिर क्रान्तिकारियों की हार रही। इतिहास लेखक मॉलेसन ने बड़ी प्रशंसा के साथ लिखा है कि पराजय के बाद क्रान्तिकारी सेना आश्चर्यजनक व्यवस्था के साथ कालपी की ओर लौट आई।* किन्तु मालूम होता है यह व्यवस्था उनमें पराजय के बाद पैदा हुई।

सर ह्यू रोज़ ने अब कालपी पर हमला किया। लक्ष्मीबाई ने अपनी पराजित सेना को फिर से प्रोत्साहित किया। वह अपने सवारों सहित स्वयं सर ह्यू

* Malleson's *Indian Mutiny*, vol. v, p. 124.

रोज़ के मुकाबले के लिए आगे बढ़ी। खूब घमासान संग्राम हुआ। एक बार अंगरेज़ी सेना के दाहिने भाग को पीछे हट जाना पड़ा। कम्पनी के तोपची अपनी तोपें छोड़ कर भाग गए। लक्ष्मीबाई अपने घोड़े पर सब से आगे थी। इसके बाद स्वयं सर ह्यू रोज़ बाई और से मुड़ कर लक्ष्मीबाई के मुकाबले के लिए बढ़ा। अन्त में मैदान सर ह्यू रोज़ के हाथों रहा। २४ मई को कम्पनी की सेना ने कालपी में प्रवेश किया। कालपी के क़िले में अंगरेज़ों को करीब ७०० मन बारूद और असंख्य अस्त्र शस्त्र और अन्य सामान हाथ आया। रानी लक्ष्मीबाई, रावसाहब और बाँदे के नवाब और थोड़ी सी सेना सहित, कालपी छोड़ कर निकल गई।

निस्सन्देह सर ह्यू रोज़, जो इस समय तक करीब एक हजार मील की कठिन यात्रा कर, पहाड़ों, जङ्गलों और नदियों को पार कर, बड़ी बड़ी सेनाओं पर विजय प्राप्त कर चुका था और नरबदा से जमना तक का प्रदेश कम्पनी के लिए फिर से विजय कर चुका था, कम्पनी के अत्यन्त योग्य और वीर सेनापतियों में से था।

क्रान्तिकारियों के पास अब न सामान था, न कोई ढङ्ग की सेना और न कोई क़िला। फिर भी लक्ष्मीबाई और तात्या टोपे ने हिम्मत न हारी। तात्या गुप्त रीति से कालपी से निकल कर ग्वालियर पहुँचा।

ग्वालियर में उसने महाराजा सींधिया की सेना और प्रजा को अपनी ओर किया। इस नई सेना को साथ लेकर

सींधिया के नाम
क्रान्तिकारियों
का पत्र

वह फिर पीछे मुड़ा। गोपालपुर में तात्या, लक्ष्मीबाई, बाँदा के नवाब और रावसाहब की फिर भेंट हुई। लक्ष्मीबाई ने अब रावसाहब को सबसे पहले ग्वालियर विजय करने की सलाह दी, ताकि क्रान्तिकारियों का फिर से एक नया केन्द्र बन सके। २८ मई सन् १८५८ को सब क्रान्तिकारी नेता ग्वालियर के सामने पहुँच गए। महाराजा सींधिया के पास नीचे लिखा पत्र भेजा गया—

“हम लोग आपके पास मित्र भाव से आ रहे हैं। आप हमारे (पेशवा के) और अपने पूर्व सम्बन्ध को स्मरण कीजिए। हमें आपसे सहायता की आशा है, ताकि हम दक्खिन की ओर बढ़ सकें, इत्यादि।”

जयाजीराव सींधिया इन लोगों की ओर मित्रता दर्शाने के स्थान पर १ जून सन् १८५८ को अपनी सेना और तोपों सहित उनके मुकाबले के लिए निकला। सींधिया के इरादे को देख कर रानी लक्ष्मीबाई तीन सौ सवारों सहित सींधिया की तोपों पर टूट पड़ी। किन्तु सींधिया की अधिकांश सेना पहले ही तात्या को बचन दे चुकी थी। ये लोग तुरन्त अपने अफसरों सहित क्रान्तिकारियों की ओर आ मिले। ग्वालियर की तोपें ठण्डी हो गईं। जयाजीराव और उसके मन्त्री दिनकरराव को मैदान छोड़ कर आगरे की ओर भाग जाना पड़ा। ग्वालियर की प्रजा ने हर्ष और उल्लास के साथ विजयी क्रान्तिकारियों का स्वागत किया।

ग्वालियर की सेना ने पेशवा नाना साहब के प्रतिनिधि राव साहब को पेशवा मान कर तोपों की सलामी दी। सींधिया के

ग्वालियर पर
क्रान्तिकारियों का
क्रब्ज़ा

अर्थसचिव अमरचन्द भाटिया ने सींधिया का सारा खज़ाना क्रान्तिकारी नेताओं के हवाले कर दिया।

३ जून सन् १८५८ को फूलबाग में एक बहुत बड़ा दरबार हुआ। तमाम सामन्तों, सरदारों और अमीरों ने अपना अपना स्थान ग्रहण किया। अरब, रुहेला, राजपूत और मराठा पलटने अपनी वर्दियाँ पहरे दरबार में जमा होगईं। पेशवा का शिरपना और कलगी तुरा रावसाहब के सिर पर रखवा गया। समस्त दरबार ने रावसाहब को पेशवा स्वीकार किया। पेशवा के मन्त्री नियुक्त कर दिये गए। तात्या टोपे प्रधान सेनापति नियुक्त हुआ। बीस लाख रुपये सेना में तक़सीम कर दिए गए और अन्त में तोपों की सलामी हुई।

इस प्रकार तात्या और लक्ष्मीबाई ने दिल्ली, कानपुर और लखनऊ के स्थान पर सन् ५७-५८ के क्रान्ति-कारियों को एक नया और ज़बरदस्त केन्द्र प्रदान कर दिया। तात्या और लक्ष्मीबाई की इस कार्रवाई को बयान करते हुए इतिहास लेखक मॉलेसन लिखता है—

“इस प्रकार जो बात असम्भव मालूम होती थी वह होगई। × × × सर ह्यू रॉज़ समझ गया कि—अब देर करने से कितनी ज़बरदस्त हानि असन्दिग्ध है। यदि ग्वालियर तुरन्त विप्लवकारियों के हाथों से न छीन लिया गया तो कोई यह पहले से नहीं कह सकता कि नतीजा कितना अधिक बुरा हो सकता है। यदि विद्रोहियों को अवकाश मिल गया तो तात्या टोपे, जिसका राजनैतिक और सैनिक बल ग्वालियर पर कब्ज़ा हो जाने के कारण बेहद बढ़ गया है और जिसके पास इस समय ग्वालियर के समस्त जन, वहाँ का धन

और सामान मौजूद हैं, कालपी की पराजित सेना के अवशेषों पर एक नई सेना खड़ी कर लेगा और समस्त भारत के अन्दर एक मराठा विद्रोह पैदा कर देगा। तात्याटोपे इस काम में बड़ा चतुर था। ऐसी हालत में सम्भव है कि वह पेशवा का झण्डा फहरा कर दक्खिन महाराष्ट्र के ज़िलों को भड़का दे। उन ज़िलों में अंगरेज़ी सेना बाक़ी नहीं है। यदि मध्य भारत में विद्रोहकारियों को ख़ासी सफलता मिल गई तो सम्भव है कि दक्खिन के लोग फिर से पेशवा की उस सत्ता के लिए खड़े हो जायँ, जिसके लिए उनके पूर्वज युद्ध कर चुके थे और अपना रक्त बहा चुके थे।”*

लक्ष्मीबाई ने अब इस बात पर ज़ोर दिया कि और सब काम छोड़ कर सेना को तुरन्त सन्नद्ध कर मैदान में लाया जाय। रावसाहब और अन्य नेताओं ने लक्ष्मीबाई की नेक सलाह रानी की इस सलाह की अवहेलना की। अमूल्य

समय दावतों और उत्सवों में नष्ट किया गया। इतने में सर ह्यू रोज़ अपनी सेना सहित वेग के साथ ग्वालियर पर टूट पड़ा। सर ह्यू रोज़ ने महाराजा सींधिया को अपने साथ रक्खा और पलान किया कि कम्पनी की सेना केवल सींधिया को ग्वालियर की गद्दी पर फिर से स्थापित करने के लिए आई है।

तात्याटोपे मुकाबले के लिए आगे बढ़ा। ग्वालियर की सेना इससे पहले उत्तर भारत में एक बार कम्पनी की सेना से हार खा चुकी थी। थोड़ी देर के संग्राम के बाद ही ग्वालियर की सेना में उथल

* Ibid, vol. v, p. 149-50.

पुथल मच गई। रावसाहब घबरा गया। लक्ष्मीबाई ने फिर एक बार बिखरी हुई सेना में नई जान फूँकी। उसने फिर से सेना की व्यूह रचना की और नगर के पूर्वीय फाटक की रक्षा का भार स्वयं अपने ऊपर लिया।

लक्ष्मीबाई के साथ उसको दो सहेलियाँ मन्दरा और काशी घोड़ों पर सवार वीरता के साथ शस्त्र चला रही थीं। प्रसिद्ध सेनापति जनरल स्मिथ अब लक्ष्मीबाई के मुकाबले के लिए बढ़ा। कई बार स्मिथ की सेना ने पूर्वीय फाटक पर हमला किया, किन्तु हर बार उसे हार कर पीछे हट जाना पड़ा। कई बार रानी लक्ष्मीबाई ने फाटक से निकल कर बाहर की सेना पर हमला किया और अनेक शत्रुओं को मैदान में समाप्त कर फिर अपने फाटक को आसँभाला। लिखा है लक्ष्मीबाई उस दिन सुबह से शाम तक घोड़े पर सवार बिजली की तरह इधर से उधर जाती हुई दिखाई देती रही। अन्त में जनरल स्मिथ को उस ओर का प्रयत्न छोड़ कर पीछे हट जाना पड़ा। १७ जून सन् १८५८ का मैदान रानी लक्ष्मीबाई के हाथों रहा।

१८ जून को जनरल स्मिथ और अधिक सेना लेकर फिर उसी फाटक पर पहुँचा। उस दिन अंगरेजी सेना ने कई ओर से ग्वालियर के क़िले पर हमला किया। जनरल स्मिथ के साथ सेनापति सर ह्यू रोज़ भी रानी लक्ष्मीबाई के मुकाबले के लिए पूर्वीय फाटक के सामने दिखाई दिया। बहुत सवेरे, जब कि लक्ष्मीबाई अपनी दोनों

सहेलियों सहित शरबत पी रही थी, ख़बर मिली कि कम्पनी की सेना बढ़ी चली आ रही है। तुरन्त शरबत का कटोरा फेंक कर रानी अपनी सहेलियों सहित आगे बढ़ी। लक्ष्मीबाई उस दिन मरदाना वेष में थी। एक अंगरेज़ दर्शक लिखता है—

“तुरन्त सुन्दर रानी मैदान में पहुँच गई। सर ह्यू रोज़ की सेना के मुकाबले में उसने दृढ़ता के साथ अपनी सेना को खड़ा किया। बार बार उसने प्रचण्ड वेग के साथ सर ह्यू रोज़ की सेना पर हमला किया। रानी का दल कई स्थानों पर शत्रु के गोलों से बिंध गया। उसके सैनिकों की संख्या निरन्तर कम होती चली गई। फिर भी रानी सदा सबके आगे दिखाई देती थी। वह बार बार अपनी बिखरी हुई सेना को जमा करती रही और पद पद पर अलौकिक वीरता का परिचय देती रही। किन्तु इस सब से भी काम न चला। स्वयं सर ह्यू रोज़ ने अपने साँड़नी सवारों सहित आगे बढ़ कर रानी लक्ष्मीबाई की अन्तिम व्यूह रचना को तोड़ डाला। इस पर भी वीर और निर्भीक रानी अपने स्थान पर डटी रही।”

जब कि रानी लक्ष्मीबाई इस ‘अलौकिक वीरता’ के साथ सर ह्यू रोज़ का मुकाबला कर रही थी, शेष अंगरेज़ी सेना अन्य क्रान्तिकारी दलों को चीरती हुई पीछे की ओर से रानी पर आ टूटी। लक्ष्मीबाई अब दोनों ओर से घिर गई।

गवालियर की तोपें ठण्ढी हो गईं। मुख्य सेना तितर बितर हो गई। विजयी अंगरेज़ सेना चारों ओर से रानी के अधिकाधिक निकट बढ़ी आ रही थी। रानी के पास केवल उसकी दोनों सहेलियाँ और १५

लक्ष्मीबाई का
अमृत शौर्य



रानी लक्ष्मी बाई, मृत्यु से थोड़ी देर पूर्व
[श्री वासुदेव राव सूत्रेदार, सागर, की कृपा द्वारा, एक समकालीन चित्र से]

या २० सवार बाकी रह गए। रानी ने अपने घोड़े को सरपट छोड़ा और शत्रु को चीरते हुए दूसरी ओर की क्रान्तिकारी सेना से जाकर मिलना चाहा। अंगरेज सवारों ने उसका पीछा किया। रानी अपनी तलवार से मार्ग काटती हुई आगे बढ़ी। अचानक एक गोली उसकी सहेली मन्दरा के आकर लगी। मन्दरा घोड़े से गिर कर समाप्त हो गई। रानी ने तुरन्त मुड़ कर अपनी तलवार से उस गोरे सवार पर वार किया, जिसकी गोली ने मन्दरा को समाप्त किया था। सवार कट कर गिर पड़ा, रानी फिर आगे बढ़ी। सामने एक छोटा सा नाला था। एक छलाँग के बाद अंगरेज सवारों का रानी लक्ष्मीबाई को छू सकना असम्भव हो जाता, किन्तु दुर्भाग्यवश रानी का घोड़ा नया था। पिछले संग्रामों के अन्दर उसके कई प्यारे घोड़े उसके नीचे समाप्त हो चुके थे। घोड़ा बजाय छलाँग मारने के नाले के इस पार चक्कर खाने लगा। अंगरेज सवार अब और अधिक निकट आ पहुँचे। रानी चारों ओर से घिर गई।

रानी उस समय बिलकुल अकेली रह गई। उसने अकेले ही उन सब का अपनी तलवार से मुकाबला किया।
 लक्ष्मीबाई का बलिदान एक सवार ने पीछे से आकर रानी के सिर पर वार किया। सिर का दहिना भाग अलग हो गया दाहिनी आँख भी निकल कर बाहर आ गई, फिर भी लक्ष्मीबाई घोड़े पर डटी हुई अपनी तलवार चलाती रही। इतने में एक वार रानी की छाती पर हुआ। सर और छाती दोनों से खून का फव्वारा

छूटने लगा । बेहोश होते होते रानी ने अपनी तलवार से उस गोरे सवार को, जिसने सामने से रानी पर वार किया था, काट कर गिरा दिया ! किन्तु इसके बाद लक्ष्मीबाई की भुजा में और अधिक शक्ति न रह गई ।

लक्ष्मीबाई का एक वफ़ादार नौकर रामचन्द्रराव देशमुख उस समय पास था । घटनास्थल के निकट गङ्गादास बाबा की कुटिया थी । रामचन्द्रराव रानी को उठा कर उस कुटिया में ले गया । गङ्गादास बाबा ने रानी को पीने के लिए ठण्डा पानी दिया और उसे अपनी कुटिया में लिटा दिया ।

चन्द मिनट के अन्दर ही रानी लक्ष्मीबाई का शरीर ठण्डा पड़ गया । रामचन्द्रराव ने रानी की अन्तिम इच्छा के अनुसार शत्रु से छिपा कर घास को एक छोटी सी चिता बनाई और उस पर रानी लक्ष्मीबाई के मृत शरीर को लिटा दिया । थोड़ी देर के अन्दर आग की लपटों में लक्ष्मीबाई के शरीर की केवल अस्थियाँ शेष रह गई ।

निस्सन्देह महारानी लक्ष्मीबाई का समस्त व्यक्तिगत जीवन जितना पवित्र और निष्कलङ्क था उसकी मृत्यु भी उतनी ही वीरोचित थी । संसार के इतिहास में कदाचित् बिरले ही उदाहरण इस तरह की स्त्रियों के मिलेंगे जिन्होंने इतनी छोटी आयु में इस प्रकार शुद्ध जीवन व्यतीत करने के बाद लक्ष्मीबाई की सी अलौकिक वीरता और असाधारण युद्ध कौशल के साथ किसी भी देश की स्वाधीनता

लक्ष्मीबाई का
अन्तिम संस्कार

लक्ष्मीबाई का
चरित्र

के लिए युद्ध किया हो अथवा इस प्रकार अपने आदर्श के लिए लड़ते लड़ते युद्धक्षेत्र में प्राण दिए हों।

इतिहास लेखक विन्सेण्ट स्मिथ ने, जो भारतीय आदर्शों या भारतवासियों के मानव अधिकारों का अधिक पक्षपाती नहीं है, महारानी लक्ष्मीबाई को “स्वाधीनता संग्राम के नेताओं में सब से अधिक योग्य नेता”* स्वीकार किया है।

सन् ५७ के विद्रोह का मुख्य क्षेत्र उत्तरी भारत था। यदि विन्धाचल से दक्खिन का भाग क्रान्ति का दक्खिन में क्रान्ति उसी प्रकार साथ दे जाता जिस प्रकार उत्तर की चिनगारियाँ का, तो मद्रास और बम्बई की सेनाओं का उत्तर की ओर जाकर बिहार, बनारस, इलाहाबाद, अवध और रुहेलखण्ड को फिर से विजय कर सकना असम्भव होता और क्रान्ति का अन्तिम परिणाम बिल्कुल दूसरा ही होता। दक्खिन में क्रान्ति के प्रचारक पहुँच चुके थे, अनेक स्थानों में कुछ हुआ भी, किन्तु यह सब इतना कुसमय और इतने अव्यवस्थित ढङ्ग से हुआ कि अंगरेजों के लिए उसे दमन करना अत्यन्त सरल हो गया और क्रान्तिकारियों को उससे विशेष लाभ न पहुँच सका।

लन्दन के अन्दर रङ्गो बापूजी और अजीमुल्ला खाँ की भेंट का जिक्र एक पिछले अध्याय में किया जा चुका है। कोल्हापुर में क्रान्ति सतारा में बैठ कर रङ्गो बापूजी नाना साहब के

* “. . . the ablest of the rebel leaders.”—*The Oxford Student's History of India*, by Vincent. A. Smith, p. 328.

साथ पत्र व्यवहार करता रहा और दक्खिन के अनेक सरदारों और नरेशों को क्रान्ति की ओर करने के प्रयत्न करता रहा। १३ जुलाई सन् १८५७ को कोल्हापुर की देशी पलटन बिगड़ी। सिपाहियों ने अपने कुछ अंगरेज़ अफ़सरों को मार डाला और ख़ज़ाने पर क़ब्ज़ा कर लिया। किन्तु चन्द महीने के अन्दर ही अंगरेज़ों ने वहाँ के क्रान्ति-कारियों का दमन कर दिया। १५ दिसम्बर को महाराजा के छोटे भाई चिमना साहब की मदद से कोल्हापुर के नगर में फिर विद्रोह शुरू होगया। नगर के फाटक बन्द कर दिए गए, फ़सील पर तोपें चढ़ा दी गईं, और स्वाधीनता का ढिंढोरा पिटवा दिया गया। अंगरेज़ी सेना पहुँची, खासा घमासान संग्राम हुआ। किन्तु विजय अंगरेज़ों की ही रही। विजय के बाद अनेक लोग तोपों के मुँह से उड़ा दिए गए।

अगस्त सन् ५७ में बेलगाँव की देशी पलटन में क्रान्ति के लक्षण दिखाई दिए। नेताओं को तोप के मुँह से उड़ा दिया गया। बेलगाँव और धारवाड़ को शान्त कर दिया गया।

रङ्गो बापूजी का एक बेटा फाँसी पर लटका दिया गया। सतारा राजकुल के दो व्यक्तियों को निर्वासित कर दिया गया। रङ्गो बापूजी सतारा से हट गया। उसके पकड़ने के लिए बड़े बड़े इनामों का एलान किया गया। किन्तु उसका पता न चला।

बम्बई की कुछ देशी पलटनों ने निश्चय कर रक्खा था कि पहले बम्बई शहर में क्रान्ति प्रारम्भ की जाय, फिर पूना जाकर पूना

पर कब्ज़ा कर लिया जाय और नाना साहब को पेशवा पलान कर दिया जाय ।* बम्बई के सिपाही अभी सलाहें ही कर रहे थे कि अंगरेजों को पता चल गया । कुछ को फाँसी दे दी गई, कुछ को देश निकाला और मामला ठण्डा होगया ।

नागपुर के निकट के कुछ देशी सिपाहियों ने १३ जून सन् ५७ अपने लिए नियत कर रखी थी । कई बड़े बड़े नागरिक भी इस सलाह में शामिल थे । किन्तु मद्रास की देशी पलटनों ने समय से पहले पहुँच कर नागपुर को ठीक कर लिया ।

जबलपुर प्रान्त का गोंड राजा शङ्करसिंह और उसका पुत्र कान्ति के सच्चे भक्त थे । उन्होंने जबलपुर की ५२ नम्बर देशी पलटन को अपनी ओर कर लिया । अंगरेजों को पता चल गया । १८ सितम्बर सन् ५७ को राजा शङ्करसिंह और उसके बेटे को तोप के मुँह से उड़ा दिया गया । इस पर ५२ नम्बर पलटन बिगड़ी । एक अंगरेज मार डाला गया । ५२ नम्बर पलटन के कुछ सिपाहियों ने अन्य स्थानों पर जाकर कान्ति में भाग लिया ।

दिल्ली के शहजादों फ़ीरोज़शाह ने रियासत धार में, महीदपुर में, गोरिया में और अन्य स्थानों में कान्ति की योजनाएँ कीं । किन्तु अधिक सफलता न हो सकी ।

दक्खिन में हैदराबाद एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था । एक हैदराबाद अंगरेज इतिहास लेखक लिखता है—“तीन

* Forrest's Real Danger in India

महीने तक हिन्दोस्तान की किस्मत निज़ाम अफ़ज़लुद्दौला और उसके वज़ीर सर सालारजङ्ग के हाथों में थी।” निस्सन्देह यदि हैदराबाद का निज़ाम क्रान्तिकारियों का साथ दे जाता तो समस्त दक्खिनी भारत में भयङ्कर आग लग जाती। जून और जुलाई सन् ५७ में हैदराबाद के नगर निवासियों के अन्दर क्रान्ति की ओर बेहद जोश दिखाई दिया। बड़े बड़े मौलवियों ने अंगरेज़ों के विरुद्ध फ़तवे निकाले, क्रान्ति के पक्ष में हजारों पत्रिकाएँ बाँटी गईं, मसजिदों में बड़ी बड़ी सभायें हुईं, कुछ मुसलमान सिपाही भी बिगड़े, किन्तु निज़ाम और उसके वज़ीर ने अंगरेज़ों का सच्चा साथ दिया, क्रान्तिकारी नेताओं को पकड़ कर उनके हवाले कर दिया, स्वयं कम्पनी की सेना की मदद से विद्रोही सिपाहियों को कटवा डाला और हैदराबाद को बचाए रक्खा।

हैदराबाद ही के निकट एक छोटी सी रियासत ज़ोरापुर की थी। ज़ोरापुर का राजा छोटी उम्र का और क्रान्ति के पक्ष में था। अंगरेज़ों से लड़ने के लिए उसने अरब और रुहेले पठानों की एक सेना जमा कर ली। फ़रवरी सन् ५८ में वह हैदराबाद आया। सर सालारजङ्ग ने उसे गिरफ़्तार करा कर अंगरेज़ों के हवाले कर दिया। गिरफ़्तारी के बाद इस बालक राजा का व्यवहार अत्यन्त प्रशंसनीय और वीरोचित था। एक अंगरेज़ अफ़सर मीडोज़ टेलर के साथ वह बड़ा मेल जोल रखता था, और उसे “अप्पा” कहा करता था। जेलख़ाने में मीडोज़ टेलर उससे मिलने गया। राजा

ज़ोरापुर का वीर
बालक राजा

पूर्ववत् बड़े आदर से मिला। मीडोज़ टेलर ने उससे अन्य क्रान्तिकारी नेताओं के नाम पूछे। इस पर टेलर लिखता है,—“राजा ने बड़े गर्व के साथ अकड़ कर उत्तर दिया—

“नहीं अप्पा, मैं यह कभी नहीं बताऊँगा ! आप मुझे सलाह देते हैं कि मैं रेज़िडेण्ट से जाकर मिलूँ, किन्तु मैं यह नहीं करूँगा। शायद उसे यह आशा होगी कि मैं अपने प्राणों की भिन्ना माँगूँगा, किन्तु अप्पा ! मैं दूसरे की भिन्ना पर कायर की तरह जीना नहीं चाहता और न मैं कभी अपने देशवासियों के नाम प्रकट करूँगा !”

मीडोज़ टेलर एक दिन फिर राजा के पास गया। उसने बालक राजा से कहा कि यदि तुम दूसरों के नाम बता दोगे तो तुम्हें क्षमा कर दिया जायगा। राजा ने उत्तर दिया—

“× × × क्या ? जब कि मैं मौत के मुँह में जाने को तैयार हूँ, क्या मैं विश्वासघात करके अपने देशवासियों के नाम प्रकट करूँगा ? नहीं, नहीं ! तोप, फाँसी, कालापानी—इनमें से कोई भी इतना भयङ्कर नहीं है जितना विश्वासघात !”

टेलर ने राजा को सूचना दी कि तुम्हें प्राणदण्ड दिया जायगा। राजा ने उत्तर दिया—

“किन्तु अप्पा, मुझे एक प्रार्थना करनी है; मुझे फाँसी न देना, मैं चोर नहीं हूँ। मुझे तोप के मुँह से उड़ाना। फिर देखना कि मैं कितनी शान्ति के साथ तोप के मुँह पर खड़ा रह सकता हूँ !”

टेलर के कहने सुनने से राजा को प्राणदण्ड के स्थान पर कालेपानी की सजा दी गई। जब उसे कालेपानी ले जा रहे थे,

राजा ने अपने किसी अंगरेज पहरेदार से खेल खेल में पिस्तौल ले ली और अवसर पाकर अपने ऊपर गोली दाग दी। इससे पहले उसने एक दिन कहा था—

“मैं कालेपानी से मौत को पसन्द करता हूँ ! क्रैद और कालापानी ? मेरी प्रजा में से तुच्छ से तुच्छ पहाड़ी भी जेल में रहना पसन्द न करेगा— फिर मैं तो उनका राजा हूँ !”

इस वीर बालक राजा का वृत्तान्त और उसके शब्द हमने मीडोज़ टेलर की अंगरेजी पुस्तक “स्टोरी ऑफ़ माई लाइफ़” से दिए हैं।

जोरापुर के राजा का एक साथी नारगुण्ड का राजा भास्कर राव बाबा साहब था। बाबा साहब की रानी
भास्करराव बाबा बड़ी वीर और अंगरेजों की जानी दुश्मन थी।
साहब लिखा है कि बहुत दिनों तक सोचने विचारने के बाद रानी ही के कहने पर २५ मई सन् १८५८ को बाबासाहब ने अंगरेजों के विरुद्ध युद्ध का एलान कर दिया। मॉनसन के अधीन कम्पनी की एक सेना नारगुण्ड की ओर बढ़ी। बाबासाहब ने अपने कुछ सिपाहियों सहित मॉनसन को रात के समय नारगुण्ड के निकट जङ्गल में जा घेरा। संग्राम हुआ। मॉनसन मार डाला गया। उसका सर काट कर शेष धड़ जला दिया गया। कम्पनी की सेना हार कर भाग गई। अगले दिन मॉनसन का कटा हुआ सिर नारगुण्ड की फ़सील पर लटका दिया गया। इसके बाद बाबासाहब का एक सौतेला भाई अंगरेजों से मिल गया।

अंगरेजी सेना ने नारगुण्ड पर फिर हमला किया। बाबासाहब की सेना हार गई। बाबासाहब स्वयं बच कर निकल गया। कुछ दिनों बाद बाबासाहब गिरफ्तार कर लिया गया और १२ जून सन् १८५८ को उसे फाँसी पर लटका दिया गया। उसकी रानी और माता दोनों ने मालप्रभा नदी में कूद कर आत्महत्या कर ली।

कोमलद्रुग के भीमराव ने और खानदेश के भीलों और उनकी स्त्रियों ने तीर कमान लेकर अंगरेजों से युद्ध किया। किन्तु ये सब प्रयत्न अधिकतर समय निकल जाने के बाद हुए और आसानी से दमन कर दिए गए।

रंगून और बरमा में भी थोड़ा सा विद्रोह हुआ, किन्तु कुसमय।

अब हम फिर क्रान्ति के सब से महान क्षेत्र अवध की ओर आते हैं। मौलवी अहमदशाह की हत्या से पहले अवध में नए सिरे से क्रान्ति की आग लॉर्ड कैनिङ्ग ने अवध में यह एलान करवा दिया कि जो लोग हथियार रख देंगे उन्हें क्षमा कर दिया जायगा और उनकी जागीरें आदिक वापस दे दी जायँगी। किन्तु इसका विशेष असर दिखलाई न दिया। इसके बाद ५ जून सन् ५८ को अहमदशाह की हत्या हुई। अवध निवासियों का क्रोध फिर एक बार जोरों से भड़क उठा। निजामअली खाँ ने पीलीभीत पर हमला कर दिया। खानबहादुर खाँ चार हजार सेना जमा कर फिर मैदान में उतर आया। फ़र्रुखाबाद में पाँच हजार सिपाही नए सिरे से जमा होगए। नाना साहब, बाला साहब, विलायतशाह और अली खाँ मेवाती के अधीन

हज़ारों सिपाही आ आकर जमा होने लगे । घाघरा नदी के किनारे चौक घाट में बेगम हज़रतमहल और सरदार मामूं खाँ की सेना थी । शाहज़ादा फ़ीरोज़शाह भी इस समय अवध में था । इनके अतिरिक्त रुइया का राजा नरपतसिंह, राजा रामबख़्श, बहुनाथ सिंह, चन्दासिंह, गुलाबसिंह, भूपालसिंह, हनुमन्तसिंह इत्यादि अनेक बड़े बड़े ज़मींदार अपने अपने सैन्यदल लेकर अवध को फिर से अंगरेज़ों के हाथों से छीनने के प्रयत्नों में लग गए । बूढ़े राजा बेनीमाधव ने फिर से लखनऊ पर चढ़ाई करने की तैयारी शुरू की ।

अंगरेज़ यह सुन कर चकित रह गए कि १३ महीने तक लगातार युद्ध जारी रहने और ६ महीने से ऊपर लखनऊ में रक्त की नदियाँ बहने के बाद फिर कोई वीर लखनऊ पर हमला करने का साहस कर रहा है ! क्रान्तिकारियों की सेना इस बार लखनऊ के निकट नवाबगञ्ज में जमा हुई । १३ जून सन् १८५८ को सेनापति होप ग्रॉण्ट के अधीन कम्पनी की सेना ने, जिसमें कई हिन्दोस्तानी पलटने शामिल थीं, अचानक इन लोगों पर हमला किया । उस दिन के संग्राम का वृत्तान्त हम सेनापति होप ग्रॉण्ट ही के शब्दों में देना चाहते हैं । वह लिखता है—

“हम लोगों पर उनके हमले असफल रहे, किन्तु वे हमले अत्यन्त जोरदार थे, और हमें उनका मुक़ाबला करने के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ा । अनेक सुन्दर और साहसी ज़मींदारों ने दो तोपें खुले मैदान में लाकर पीछे की ओर से हम पर हमला किया । मैंने हिन्दोस्तान में बहुत से संग्राम

देखे हैं और बहुत से बहादुरों को इस दृढ़ता के साथ लड़ते देखा है कि या तो विजय प्राप्त करेंगे और या मर मिटेंगे; किन्तु मैंने इन ज़मींदारों के व्यवहार से बढ़ कर शानदार कभी कोई दृश्य नहीं देखा ! पहले उन्होंने हमारी एक सवार पलटन पर हमला किया, हमारे सवार उनके मुक्काबले पर न ठहर सके और इतने विचलित हो गए कि हमारी दो तोपें, जो उस पलटन के साथ थीं, बड़े ख़तरों में पड़ गईं । मैंने एक दूसरी सात नम्बर पलटन को आगे बढ़ने का हुक्म दिया । उनके साथ चार और तोपें थीं । ये तोपें शत्रु से पाँच सौ गज़ के फ़ासले पर लगा दी गईं । उन पर गोले बरसाने शुरू किए गए । वे इस बुरी तरह कट कट कर गिरने लगे जिस प्रकार हसिये से घास । उनका नेता एक लम्बा चौड़ा आदमी था । उसके गले में एक घेगा था । वह ज़रा नहीं घबराया । उसने अपनी तोपों के पास दो हरे झण्डे गड़वा कर उनके नीचे अपने आदमियों को जमा किया । किन्तु हमारे गोले इस बुरी तरह बरस रहे थे कि जो लोग तोपों के पास तक पहुँचते थे, वहीं मर कर गिर पड़ते थे । इसके बाद दो और नई पलटनें हमारी सहायता के लिए पहुँच गईं । तब हम बाक़ी बचे शत्रुओं को पीछे हटा सके । इस पर भी वे अपनी तलवारें और भाले हमारी ओर घुमाते जाते थे, और निर्भीकता के साथ हमें लड़ने के लिए आह्वान करते जाते थे । केवल उन दोनों तोपों के आस पास हमें १२५ लाशें मिली । तीन घण्टे के घमासान संग्राम के बाद विजय हमारी ओर रही ।”*

इस प्रकार के भयङ्कर संग्राम इस समय अवध में चारों ओर जारी थे ।

अक्टूबर सन् १८५८ में कमाण्डर-इन-चीफ़ सर कॉलिन कैम्प-

बेल ने नए सिरे से अनेक गोरी और काली पलटनों को जमा करके चारों ओर से अवध के क्रान्तिकारियों को उत्तर की ओर खदेड़ना शुरू किया। नए सिरे से अवधनिवासियों ने अपनी एक एक चप्पा भूमि के लिए विकट संग्राम किया।

राजा बेनीमाधव के स्थान शङ्करपुर पर तीन सेनाओं ने तीन ओर से चढ़ाई की। अंगरेजों का बल उस समय बेहद बढ़ा हुआ था और बेनीमाधव के पास सेना और सामान दोनों की कमी थी। फिर भी बेनीमाधव ने विदेशियों की अधीनता स्वीकार न की। कमाण्डर-इन-चीफ़ सर कॉलिन कैम्पबेल ने बेनीमाधव के पास सन्देशा भेजा कि अब आपका विजय की आशा करना व्यर्थ है, यदि आप वृथा रक्तपात नहीं चाहते तो अंगरेज सरकार की अधीनता स्वीकार कीजिये, आपको क्षमा कर दिया जायगा और आपकी समस्त ज़मींदारी आपको वापस कर दी जायगी। बेनीमाधव ने उत्तर दिया—

“इसके बाद किले की रक्षा कर सकना मेरे लिए असम्भव है, इसलिए मैं किले को छोड़ रहा हूँ। किन्तु मैं अपना शरीर आपके कदापि सुपुर्द न करूँगा। क्योंकि मेरा शरीर मेरा अपना नहीं, बल्कि मेरे बादशाह का है।”

निस्सन्देह ‘बादशाह’ शब्द से बूढ़े बेनीमाधव का तात्पर्य अवध-नरेश नवाब बिरजीस कदर और दिल्ली सम्राट बहादुरशाह से था।

क्रान्ति को प्रारम्भ हुए पूरा डेढ़ वर्ष बीत चुका था। इस

समय वह घटना हुई जो भारतीय ब्रिटिश राज्य के इतिहास में एक विशेष सीमा-चिह्न मानी जाती है। क्रान्ति कम्पनी के शासन के प्रारम्भ में पेशीनगोई हो चुकी थी कि अंगरेज़ का अन्त कम्पनी का राज भारत से उठ जायगा। निस्सन्देह कम्पनी का राज पहली नवम्बर सन् १८५८ से हिन्दोस्तान से हटा लिया गया। इङ्गलिस्तान के शासकों ने उस समय कम्पनी को एक सौ वर्ष की सत्ता का अन्त कर देना अपनी कुशल के लिए आवश्यक समझा। किन्तु पहली नवम्बर से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्थान पर इङ्गलिस्तान की मलका विक्टोरिया का राज इस देश पर कायम कर दिया गया।

लॉर्ड कैनिङ्ग इलाहाबाद में था। पहली नवम्बर को 'भारतीय नरेशों और भारतीय प्रजा के नाम' मलका विक्टोरिया का एलान विक्टोरिया का एक एलान भारत में प्रकाशित किया गया। उसी दिन लॉर्ड कैनिङ्ग ने स्वयं इलाहाबाद में दारागञ्ज के निकट क़िले के नीचे यह एलान सहस्रों मनुष्यों को पढ़ कर सुनाया। इस एलान में विक्टोरिया की ओर से भारतवासियों को सूचना दी गई कि—

कम्पनी का राज अब से समाप्त हुआ और उसके स्थान पर भारत के शासन की बाग हमने (अर्थात् मलका विक्टोरिया ने) अपने हाथों में ले ली है; सिवाय उन लोगों के जो हमारी अंगरेज़ी प्रजा की हत्या में भाग लेने के अपराधी हैं, शेष जो लोग भी हथियार रख दगे उन सब को क्षमा कर दिया जायगा; हिन्दोस्तानियों

की गोद लेने की प्रथा आइन्दा से जायज़ समझी जायगी और दत्तक पुत्रों को पिता की जायदाद और गद्दी का मालिक माना जायगा; किसी के धार्मिक विश्वासों या धार्मिक रस्मोरिवाज में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जायगा; देशी नरेशों के साथ कम्पनी ने इस समय तक जितनी सन्धियाँ की हैं उनकी सब शर्तों का आइन्दा ईमानदारी के साथ पालन किया जायगा; इसके बाद किसी भारतीय नरेश की रियासत या उसका कोई अधिकार न छीना जायगा; समस्त भारतवासियों के साथ ठीक उसी प्रकार का व्यवहार किया जायगा जिस प्रकार का अंगरेज़ों के साथ; इत्यादि, इत्यादि ।

किन्तु कम से कम अवध निवासियों पर विक्टोरिया के इस एलान का भी अधिक प्रभाव न पड़ा । इङ्गलिस्तान की मलका की ओर से इस एलान के प्रकाशित होते ही बेगम हज़रतमहल की ओर से एक एलान इसके जवाब में अवध की समस्त प्रजा के नाम प्रकाशित हुआ । यह एलान हिन्दोस्तानी भाषा में था । हम इसके कुछ वाक्य उसके सरकारी अंगरेज़ी अनुवाद से हिन्दी में अनुवाद करके नीचे उद्धृत करते हैं । बेगम हज़रतमहल ने इस एलान में लिखा—

“X X X पहली नवम्बर सन् १८५८ का एलान, जो हमारे सामने आया है, बिलकुल स्पष्ट है । X X X इसलिए हम X X X बहुत सोच समझ कर मौजूदा एलान प्रकाशित करते हैं, ताकि पूर्वोक्त एलान के

ख़ास ख़ास असली उद्देश प्रकट हो जायँ और हमारी रिआया होशियार हो जाय ।

“उस एतान में लिखा है कि हिन्दोस्तान का मुल्क जो अभी तक कम्पनी के सुपुर्द था, अब मलका ने अपने शासन में ले लिया है, और आइन्दा से मलका के क़ानूनों को माना जायगा । हमारी धर्मनिष्ठ प्रजा को इस पर एतबार नहीं करना चाहिए । क्योंकि कम्पनी के क़ानून, कम्पनी के अंगरेज़ मुलाज़िम, कम्पनी का गवरनर जनरल और कम्पनी की अदालतें इत्यादि, सब ज्यों की त्यों बनी रहेंगी । तो फिर वह नई बात कौन सी हुई जिससे जनता को लाभ हो या जिस पर वे विश्वास कर सकें ?

“उस एतान में लिखा है कि कम्पनी ने जो जो वादे और अहदपैमान किए हैं, मलका उन्हें मंज़ूर करेगी । लोगों को चाहिए कि इस चाल को ग़ौर से देख लें । कम्पनी ने सारे हिन्दोस्तान पर क़ब्ज़ा कर लिया है, और अगर यह बात क़ायम रही तो फिर इसमें नई बात क्या हुई ? कम्पनी ने भरतपुर के राजा को पहले अपना बेटा बतलाया और फिर उसका इलाक़ा ले लिया । लाहौर के राजा को वे लन्दन ले गए और फिर कभी उसे भारत लौटने न दिया । नवाब शम्सुद्दीन ख़ाँ को एक ओर उन्होंने फाँसी पर लटका दिया, और दूसरी ओर उसे सलाम किया । पेशवा को उन्होंने पूना और सतारा से निकाल दिया और आजीवन बिठूर में क़ैद कर दिया । बनारस के राजा को उन्होंने आगरे में क़ैद कर दिया । बिहार, उड़ीसा और बङ्गाल के नरेशों का उन्होंने नाम निशान तक नहीं छोड़ा । स्वयं हमारे क़दीम इलाक़े उन्होंने हमसे यह बहाना करके ले लिए कि फ़ौज को तनख़ाहें देनी हैं, और हमारे साथ जो सन्धि की उसकी

सातवीं धारा में उन्होंने यह क्रसम खाई कि हम आप से और अधिक कुछ न लेंगे। इसलिए यदि जां जां इन्तज़ाम कंपनी ने कर रखे हैं वे सब मज़ूर किए जायेंगे तो इससे पहले की हालत में और अब इस नई हालत में क्या अन्तर हुआ ? ये सब तो पुरानी बातें हैं। किन्तु हाल में भी क्रसमों और अहदनामों को तोड़ कर, और बावजूद इस बात के कि अंगरेजों ने हमसे करोड़ों रुपए कर्ज़ ले रखे थे—उन्होंने बिना किसी सबब के केवल यह बहाना लेकर कि आपका व्यवहार अच्छा नहीं और आपकी प्रजा असन्तुष्ट है, हमारा मुल्क और करोड़ों रुपए का माल हमसे छीन लिया। यदि हमारी प्रजा हमारे पूर्वाधिकारी नवाब वाजिदअली शाह से असन्तुष्ट थी, तो वह हमसे सन्तुष्ट कैसे हो गई ! और कभी किसी भी नरेश के लिए प्रजा ने अपने जान और माल का इस तरह क़ुरबान करके अपनी राजभक्ति का परिचय नहीं दिया जिस तरह कि हमारी प्रजा ने हमारे साथ किया है। फिर क्या कमी है कि वे हमारा मुल्क हमें वापस नहीं देते ? इसके अतिरिक्त उस एलान में लिखा है कि मलका को अपना इलाक़ा बढ़ाने की इच्छा नहीं है; फिर भी वह इन देशी रियासतों को अपने राज में मिला लेने से बाज़ नहीं रह सकती। X X X

X

X

X

“उस एलान में लिखा है कि ईसाई मज़हब ‘सच्चा’ है, किन्तु और किसी मज़हब वालों के साथ ज़्यादाती न की जायगी, और सब के साथ एक समान क़ानूनी व्यवहार किया जायगा। न्यायशासन से किसी मज़हब के सच्चे या झूठे होने से क्या सम्बन्ध है ? X X X सुअर खाना और शराब पीना, चरबी के कारतूस दाँत से काटना और आटे और मिठाइयों में सुअर

की चरबी मिलाना, सबके बनाने के बहाने मन्दिरों और मसजिदों को गिराना, गिरजा बनवाना, गलियों और कूचों में ईसाई मत का प्रचार करने के लिए पादरियों को भेजना X X X इन सब बातों के होते हुए लोग कैसे विश्वास कर सकते हैं कि उनके मज़हब में दखल न दिया जायगा ? X X X

“उस एलान में लिखा है कि X X X जिन लोगों ने हत्याएँ की हैं या हत्याओं में मदद दी है उन पर कोई दया न की जायगी, शेष सबको क्षमा कर दिया जायगा। एक मूर्ख मनुष्य भी देख सकता है कि इस एलान के अनुसार दोषी या निर्दोष कोई मनुष्य भी नहीं बच सकता। X X X एक बात उसमें साफ़ कही गई है, वह यह कि किसी भी दोषी मनुष्य को न छोड़ा जायगा, इसलिये जिस गाँव या इलाके में हमारी सेना ठहरी है उसके बाशिन्दे नहीं बच सकते। उस एलान को पढ़ कर, जिसमें कि साफ़ दुश्मनी भरी हुई है, हमें अपनी प्यारी प्रजा की स्थिति पर बड़ा दुःख है। अब हम एक स्पष्ट और विश्वस्त आज्ञा जारी करते हैं कि हमारी प्रजा में से जिन जिन लोगों ने मूर्खता करके गाँव के मुखियों की हैसियत से अपने तर्ह अंगरेज़ों के सामने पेश किया है, वे १ जनवरी सन् १८५६ से पहले हमारे कैम्प में आकर हाज़िर हों। निस्सन्देह उनका क्रूसूर माफ़ कर दिया जायगा। X X X आज तक कभी किसी ने नहीं देखा कि अंगरेज़ों ने किसी का क्रूसूर माफ़ किया हो।

X

X

X

“हमारी प्रजा में से कोई अंगरेज़ों के एलान के धोखे में न आए !”*

* *History of the Indian Mutiny*, by Charles Ball, vol. ii.

इस एलान के प्रकाशित होने के ६ महीने बाद तक अवध के

अन्दर स्वाधीनता का युद्ध बराबर जारी रहा ।

अवध में
क्रान्तिकारियों
की स्थिति

चार्ल्स बॉल लिखता है :—

“मलका विक्टोरिया के एलान के बाद भी

अवध के अन्दर आश्चर्य जनक युद्ध जारी रहा ।

विप्लवकारियों के इन सब गिरोहों के साथ उनके देशवासियों को सहानुभूति थी और इस सहानुभूति से उन्हें इतना अधिक बल और इतनी अधिक उत्तेजना प्राप्त हुई कि जिसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता । ये विप्लवकारी बिना कमसरियट के जहाँ चाहे जा सकते थे, क्योंकि लोग सब जगह उन्हें भोजन पहुँचा देते थे । वे बिना पहरे के अपना असबाब जहाँ चाहे छोड़ सकते थे, क्योंकि लोग उनके असबाब पर हमला न करते थे । उन्हें सदा अपनी और अंगरेजों की स्थिति का ठीक ठीक पता रहता था, क्योंकि लोग उन्हें घण्टे घण्टे भर के अन्दर आकर सूचना देते रहते थे । हम उनसे अपनी कोई योजना छिपा कर न रख सकते थे, क्योंकि हमारी प्रत्येक खाने की मेज़ के गिर्द और अंगरेजी सेना के करीब हर छेमे में उनसे गुप्त सहानुभूति रखने वाले लोग खड़े रहते थे । हमारे लिए उन पर अचानक हमला कर सकना एक अलौकिक सी बात थी, क्योंकि हमारे चलने की अक्रवाह, एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य को, हमारे सवारों से अधिक तेज़ी के साथ उन तक पहुँच जाती थी ।”*

यही कारण था कि विक्टोरिया के एलान के छै महीने बाद तक

भी अवध का प्रान्त अंगरेजों के क़ाबू में न आ सका । समय समय पर शङ्करपुर, हुंढियाखेड़ा, रायबरेली, सीतापुर अवधनिवासियों के अन्तिम प्रयत्न इत्यादि स्थानों पर बराबर संग्राम होते रहे । अन्त में अप्रैल सन् १८५६ तक अवध के समस्त क्रान्तिकारी नैपाल की सरहद के उस पार निकाल दिए गए ।

निर्वासित क्रान्तिकारी कहा जाता है कि करीब साठ हजार पुरुष, स्त्री और बच्चों ने नाना साहब, बालासाहब, बेगम हज़रतमहल और नवाब बिरजीस क़दर के साथ नैपाल में प्रवेश किया । नाना साहब और महाराजा जङ्गबहादुर में कुछ दिनों तक पत्र व्यवहार होता रहा । नाना साहब ने पहले नैपाल दरबार से अंगरेजों के विरुद्ध सहायता की प्रार्थना की, उसके बाद केवल भारतीय निर्वासितों के लिए नैपाल में रहने की इजाज़त चाही । महाराजा जङ्गबहादुर ने इनमें से कोई बात स्वीकार न की; बल्कि अंगरेजी सेना को नैपाल में प्रवेश करने और इन भारतीय निर्वासितों का संहार करने की इजाज़त दे दी । इन में से अनेक हथियार फेंक कर भारत वापिस आ गए, अनेक जंगलों और पहाड़ों में खप गए । नाना साहब का जनरल होप ग्रॉण्ट के साथ कुछ पत्र व्यवहार हुआ, जिनमें से अन्तिम पत्र में अंगरेजों के अन्यायों को दर्शाते हुए नाना साहब ने लिखा :—

“आपको हिन्दोस्तान पर क़ब्ज़ा करने का और मुझे दण्डनीय करार देने का क्या अधिकार है ? हिन्दोस्तान पर राज करने का आपको किसने अधिकार

दिया ? क्या ! आप फ़िरङ्गी लोग बादशाह हैं, और हम इस अपने मुल्क के अन्दर चोर हैं ?”

इसके बाद कुछ पता नहीं कि नाना साहब का क्या हुआ । बेगम हज़रतमहल और उसके पुत्र बिरजीस क़दर को कुछ समय बाद नैपाल दरबार ने अपने यहाँ आश्रय दिया ।

अवध की इस क्रान्ति के विषय में इतिहास लेखक मॉलेसन लिखता है :—

अवध का पतन “जिस विप्लव को उन सिपाहियों ने आरम्भ किया था, जिनमें से कि अधिकांश अवधनिवासी थे, उस विप्लव में समस्त अवध निवासियों ने शामिल होकर स्वाधीनता के लिए युद्ध किया X X X हिन्दोस्तान के किसी दूसरे भाग ने इतनी दृढ़ता के साथ डट कर और इतनी अधिक देर तक हमारा मुक़ाबला नहीं किया जितना कि अवध ने । इस समस्त युद्ध में उस अन्याय को याद करके जो अन्याय कि सन् १८५६ में उनके साथ किया गया था, अवधनिवासियों के हृदय अधिकाधिक मज़बूत और उनका सङ्कल्प अधिकाधिक दृढ़ होता रहता था । X X X अन्त में जब कमाण्डर-इन-चीफ़ सर कॉलिन कैम्पबेल (लॉर्ड क्लाइड) ने समस्त अवध में से बचे हुए विद्रोहियों को बीन बीन कर नैपाल के जङ्गलों में आश्रय लेने के लिए विवश कर दिया तो इन लोगों ने प्रायः हार मानने की अपेक्षा भूखों मर जाना अधिक पसन्द किया । किसानों ने, ताल्लुक़ेदारों ने, ज़मींदारों ने, व्यापारियों ने बहुत दिनों के लगातार युद्ध के बाद केवल उस समय हार स्वीकार की जब कि उन्होंने देख लिया कि अब सब कुछ हो चुका ।”❀

इसके पश्चात् केवल तात्या टोपे के अन्तिम प्रयत्नों को बयान करना बाकी रह जाता है।

तात्या टोपे के
अन्तिम प्रयत्न

तात्या टोपे के मुख्य साथियों नाना साहब, बाला साहब और लक्ष्मीबाई में से अब कोई बाकी न रहा था। अंगरेजों की सत्ता भारत में फिर से जम चुकी थी। स्वयं तात्या के पास अब न कोई ठङ्ग की सेना थी और न सामान। फिर भी तात्या टोपे ने आशा न छोड़ी। २० जून सन् १८५८ को ग्वालियर से निकल कर तात्या ने रावसाहब, बाँदा के नवाब और मुट्ठी भर बचे खुचे सैनिकों सहित नर्मदा की ओर बढ़ना चाहा। तात्या का उद्देश नर्मदा पार कर पेशवा के नाम पर दक्खिन के नरेशों और प्रजा को क्रान्ति के लिए फिर से तैयार करना था। २२ जून को अंगरेजी सेना ने उसे जौरा अलीपुर में जा घेरा। तात्या फिर बच कर निकल गया। तात्या का लक्ष्य इस समय किसी प्रकार नर्मदा पार करना था, और अंगरेज उसे नर्मदा पार करने से रोकना चाहते थे।

तात्या ने सब से पहले भरतपुर की ओर निगाह की। तुरन्त एक प्रबल अंगरेजी सेना तात्या को फँसाने के लिए भरतपुर पहुंच गई। तात्या मुड़ कर जयपुर की ओर बढ़ा। जयपुर की प्रजा और सेना दोनों तात्या से सहानुभूति रखती थीं। तात्या ने उन्हें तैयार रहने की सूचना दी। अंगरेजों को पता चल गया। तुरन्त एक अंगरेजी सेना नसीराबाद से जयपुर के लिए भेज दी गई। तात्या अब दक्खिन की ओर मुड़ा। करनल होम्स के अधीन एक सेना ने

उसका पीछा किया। तात्या अंगरेजी सेना से आँख बचाकर टोंक पहुँच गया। टोंक के नवाब ने नगर के दरवाजे बन्द कर लिए, और अपनी कुछ सेना चार तोपों सहित तात्या के मुकाबले के लिए भेजी। यह सेना सामने आते ही तात्या से जा मिली। उन्होंने अपनी तोपें तात्या के हवाले कर दीं। तात्या टोपे नई सेना और सामान सहित अब इन्द्रगढ़ की ओर बढ़ा। वर्षा ज़ोरों से हो रही थी। पीछे से होम्स अपनी सेना सहित तात्या की ओर बढ़ा चला आ रहा था। राजपूताने की ओर से सेनापति रॉबर्ट्स के अधीन एक सेना तात्या पर हमला करने के लिए आ रही थी। चम्बल नदी तात्या के सामने थी और खूब चढ़ी हुई थी।

तात्या तीनों से बच कर पूर्वोत्तर में बूंदी की ओर बढ़ा। नीमच नसीराबाद के प्रान्त में वह भीलवाड़ा नामक ग्राम में जाकर ठहरा। जनरल रॉबर्ट्स ने ख़बर पाते ही ७ अगस्त सन् १८५८ को तात्या पर हमला किया। दिन भर संग्राम होता रहा। रात को तात्या अपनी सेना और तोपों सहित उदयपुर रियासत में कोटरा ग्राम की ओर निकल गया।

कोटरा में १४ अगस्त को फिर अंगरेजी सेना ने उसे आ घेरा।

कोटरा का संग्राम संग्राम हुआ, किन्तु इस बार तात्या को अपनी तोपें मैदान में छोड़ कर पीछे हटना पड़ा। अंगरेजी सेना बराबर तात्या का पीछा करती रही। तात्या फिर चम्बल की ओर बढ़ा। इस समय एक अंगरेजी सेना पीछे से तात्या की ओर बढ़ी चली आ रही थी, दूसरी दाहिनी ओर से बढ़ी चली

आ रही थी और तीसरी उसके ठीक सामने चम्बल के किनारे मौजूद थी। फिर भी किसी को धोखा देते हुए और किसी से बचते हुए तात्या चम्बल तक पहुँच गया और आश्चर्यजनक फुर्ती के साथ अंगरेजी सेना से कुछ ही दूर फासले पर चम्बल नदी को पार कर गया। चम्बल नदी अब तात्या और अंगरेजी सेना के बीच में पड़ गई। किन्तु तात्या के पास न रसद थी और न तोपें। तात्या सीधे भालरापट्टन की ओर बढ़ा। वहाँ का राजा अपनी सेना और तोपों सहित तात्या पर हमला करने के लिए निकला। किन्तु मैदान में पहुँचते ही भालरापट्टन की सेना तात्या की ओर जा मिली। अब तात्या को सेना, सामान, रसद इत्यादि सब कुछ मिल गया। भालरापट्टन की ओर बढ़ते हुए तात्या के पास एक भी तोप न थी। अब उसके पास ३२ तोपें हो गईं। विजयी तात्या ने भालरापट्टन के राजा से युद्ध के खर्च के लिए १५ लाख रुपये वसूल किए। पाँच दिन तक तात्या वहीं ठहरा रहा। उसने अपनी सेना को तनखाहें दीं। रावसाहब और बाँदे का नवाब बराबर तात्या के साथ थे। तीनों ने मिल कर फिर नर्मदा पार करने का विचार किया। अंगरेजों ने इन लोगों को रोकने के लिए सेनाओं का एक जाल बिछा दिया। किन्तु तात्या के पास अब मुकाबले के लिए काफी सामान था। वह अब इन्दौर की ओर बढ़ा।

इस समय छै बड़े बड़े अंगरेज सेनापति रॉबर्ट्स, होम्स, पार्क, मिचेल, होप और लौखार्ट छै ओर से तात्या को घेरने का प्रयत्न कर रहे थे। कई बार तात्या और उसकी सेना अंगरेजी सेना को

सामने दिखाई तक दे जाती थी। किन्तु फिर भी तात्या बच कर निकल जाता था।

रायगढ़ के निकट मिचेल की सेना तात्या पर आ टूटी। थोड़े से संग्राम के बाद तात्या टोपे फिर अपनी तीस तात्या की समस्या तोपें मैदान में छोड़ कर बच कर निकल गया।

मार्ग में एक स्थान पर उसे चार और तोपें मिलीं। इसके बाद उत्तर की ओर बढ़ कर तात्या ने सींधिया के नगर ईशगढ़ पर हमला किया और वहाँ से आठ और तोपें प्राप्त कीं। तात्या जिस तरह हो, नर्मदा पार करने की धुन में था और अंगरेजी सेना उसे चारों ओर से घेर कर रोकना चाहती थी। तात्या की इस समय की समस्त यात्राओं, चालों, विजयों और पराजयों को बयान कर सकना असम्भव है। एक अंगरेज लेखक लिखता है—

“इसके बाद तात्या के बचने और भाग जाने का वह आश्चर्य जनक सिलसिला शुरू हुआ जो दस महीने तक जारी रहा और जिससे मालूम होता था कि हमारी विजय निष्फल हो गई। इस सिलसिले के कारण तात्या का नाम यूरोप भर में हमारे अधिकांश अंगरेज सेनापतियों के नामों की अपेक्षा भी कहीं अधिक मशहूर हो गया। तात्या के सामने समस्या सरल न थी। X X X उसे अपनी अव्यवस्थित सेना को लगातार इतनी तेज़ रफ़्तार पर ले जाना पड़ता था कि जिससे न केवल उसका पीछा करने वाली सेनाएँ ही, बल्कि वे सेनाएँ भी जो कभी दाहिनी ओर से और कभी बाईं ओर से अचानक उस पर टूट पड़ती थीं, हाथ मलती रह जाती थीं। एक ओर वह इस प्रकार उन्मत्तवत् अपनी सेना को भगाए लिए जाता था, दूसरी ओर वह

दरजनों शहरों पर कब्ज़ा कर लेता था, अपने साथ नया सामान जमा कर लेता था, इधर उधर से नई तोपें साथ ले लेता था और इन सबके अतिरिक्त अपनी सेना के लिए इस प्रकार के नए स्वयं सेवक रज़रूट भरती करता जाता था जिन्हें कि साठ मील रोज़ाना के हिसाब से लगातार भागना पड़ता था। तात्या ने अपने अल्प साधनों से जो कुछ कर दिखाया, उससे साबित है कि उसकी योग्यता साधारण न थी। X X X वह उस श्रेणी का मनुष्य था जिस श्रेणी का कि हैदरअली था। कहा जाता है कि तात्या नागपुर से होकर मद्रास पहुंचना चाहता था। यदि वह वास्तव में मद्रास तक पहुंच जाता तो वह हमारे लिए उतना ही भयङ्कर साबित होता जितना कि हैदरअली किसी समय हो चुका था। नर्मदा उसके लिए इतनी ही बड़ी रुकावट साबित हुई जितनी कि इङ्गलिश चैनल नैपोलियन के लिए। तात्या सब कुछ कर सका, किन्तु नर्मदा को पार न कर पाया। X X X अंगरेज़ी सेनाएँ शुरू में इतने ही धीरे धीरे आगे बढ़ीं जितने धीरे चलने कि उन्हें आदत थी। किन्तु फिर मज़बूर उन्होंने तेज़ चलना सीख लिया। जनरल पार्क और करनल नेपियर की अन्त की कोई कोई यातनाएँ इतनी ही तेज़ थीं जितनी तात्या की औसत आधी यात्राएँ। फिर भी तात्या बच कर निकलता रहा। गरमियाँ निकल गईं, सारी बरसात निकल गई, सारी सरदी निकल गई, और फिर तमाम गरमी निकल गई, तो भी तात्या निकला चला जा रहा था। उसके साथ कभी दो हजार थके हुए अनुयायी होते थे और कभी पन्द्रह हजार।”❀

इसके बाद तात्या ने अपनी सेना के दो टुकड़े किए। एक अपने

अधीन, दूसरा रावसाहब के अधीन । दोनों दल दो ओर से आगे बढ़े । कई जगह अंगरेजी सेना से लड़ाइयाँ लड़ते हुए दोनों दल ललितपुर में जाकर फिर मिल गए । यहाँ पर दक्खिन में मिचेल की सेना, पूरब में करनल लिडेल की सेना, उत्तर में करनल मीड की सेना, पच्छिम में करनल पार्क की सेना और चम्बल की ओर से जनरल रॉबर्ट्स के अधीन एक सेना,—पाँच ओर से पाँच अंगरेजी सेनाओं ने तात्या को घेर लिया । तात्या ने अब अंगरेजी सेना को धोखा देने के लिए दक्खिन की यात्रा छोड़ कर तेज़ी से उत्तर की ओर बढ़ना शुरू किया । अंगरेज़ समझे कि तात्या ने दक्खिन जाने का विचार छोड़ दिया । किन्तु तात्या फिर अचानक मुड़ पड़ा, तेज़ी से उसने बेतवा नदी पार की, कजूरी में अंगरेज़ सेना के साथ एक संग्राम किया, वहाँ से रायगढ़ पहुँचा और फिर सीधा तीर की तरह दक्खिन की ओर लपका । अंगरेज़ उसकी इन चालों से घबरा गए । जनरल पार्क एक ओर से लपका, मिचेल पीछे से लपका, बेचर सामने से तात्या की ओर बढ़ा । किन्तु तात्या अपनी सेना सहित नर्मदा पहुँच ही गया और होशङ्गाबाद के निकट संसार के बड़े से बड़े युद्ध विशारदों को चकित कर अपनी सेना सहित नर्मदा को पार कर गया ।

इतिहास लेखक मॉलेसन लिखता है—

“जिस दृढ़ता और धैर्य के साथ तात्या ने अपनी इस योजना को पूरा किया उसकी प्रशंसा न करना असम्भव है ।”

लन्दन ‘टाइम्स’ के सम्वाददाता ने लिखा—

“हमारा अत्यन्त अद्भुत मित्र तात्या टोपे इतना कष्ट देने वाला और चालाक शत्रु है कि उसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती। पिछले जून के महीने से उसने मध्य भारत में तहलका मचा रक्खा है, उसने हमारे स्थानों को रोंद डाला है, खजानों को लूट लिया है और हमारे मैगज़ीनों को खाली कर दिया है। उसने सेनाएँ जमा कर ली हैं और खो दी हैं, लड़ाइयाँ लड़ी हैं और हार खाई है, देशी नरेशों से तोपें छीन ली हैं, उन तोपों को खो दिया है, फिर और तोपें प्राप्त की हैं, उन्हें भी खो दिया है। इसके बाद उसकी यात्राएँ बिजली की तरह प्रतीत होती हैं। अठवाढ़ों वह तीस तीस और चालीस चालीस मील रोज़ाना चला है। कभी नर्मदा के इस पार और कभी उस पार। हमारे सैन्यदलों के वह कभी बीच से निकल गया है, कभी पीछे से और कभी सामने से। X X X कभी पहाड़ों पर से, कभी नदियों पर से, कभी वादियों में से और कभी घाटियों में से, कभी दलदलों में से, कभी आगे से और कभी पीछे से, कभी एक ओर से और कभी घूम कर, X X X फिर भी वह हाथ न आया।”*

अन्त में अक्टूबर सन् १८५८ में तात्या अपनी सेना सहित रावसाहब और बाँदा के नवाब को साथ लिए हुए नागपुर के निकट पहुँच गया।

लॉर्ड कैनिङ्ग और उसके साथी काफी घबरा गए। मॉलेसन लिखता है—

लॉर्ड कैनिङ्ग की
परेशानी

“जिस मनुष्य को महाराष्ट्र अन्तिम पेशवा का
न्याय्य उत्तराधिकारी स्वीकार करता था उसका भतीजा

सेना सहित महाराष्ट्र की भूमि पर जा पहुँचा। X X X निज़ाम हमारा वफ़ादार था। किन्तु वह समय बड़ा विचित्र था। X X X इससे पहले भी इस प्रकार की मिसालें हो चुकी थीं, जब कि यदि किसी नरेश ने राष्ट्र के भावों के विरुद्ध कार्य किया तो प्रजा ने अपने उस नरेश के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया। सींधिया के विरुद्ध भी इस प्रकार का विद्रोह हो चुका था। हमें यह भय होना आवश्यक था कि कहीं ऐसा न हो कि तात्या की सेना समस्त महाराष्ट्र को हमारे विरुद्ध शस्त्र उठा लेने के लिए उत्तेजित कर दे, और फिर जब सारी महाराष्ट्र क्रौम विदेशियों के विरुद्ध हथियार उठा लें तो इसे देख कर दक्खिन (अर्थात् निज़ाम के इलाक़े) के लोग भी रोकें न रुक सकें।”*

निस्सन्देह यदि यही घटना एक साल पहले हुई होती तो सम्भव था कि शेष भारतीय इतिहास की गति तात्या नागपुर में दूसरी ओर को पलट जाती। किन्तु पिछले एक वर्ष के अन्दर भारतवासियों का उत्साह काफी टूट चुका था। उत्तरीय भारत में जिस तात्या को लोग स्वयं आ आकर खुशी से रसद पहुँचाते थे उस तात्या के पास नागपुर के महाराष्ट्र लोग अब आने तक से डर गए।

तात्या की सेना कुछ दिन वहाँ ठहरी रही। अंगरेजी सेना ने फिर उसे चारों ओर से घेरना शुरू किया। तात्या के दक्खिन और उत्तर दोनों में विशाल अंगरेजी सेनाएँ थीं। उत्तर की सेना नर्मदा

* Malleson's *Indian Mutiny*, vol. v, pp. 239-40.

पार कर बढ़ो चली आ रही थी। नागपुर से तात्या को कोई सहायता न मिल सकी। लाचार होकर तात्या ने अब बड़ौदा की ओर बढ़ने का विचार किया।

नर्मदा के हर घाट पर दोनों ओर अंगरेजी सेना पड़ी हुई थी। तात्या बढ़ा, मेजर सरडरलैण्ड की सेना के साथ उसका एक संग्राम हुआ। तात्या ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि सब तोपें पीछे छोड़ कर नर्मदा में कूद पड़ो। तात्या और उसकी सेना एक पल भर के अन्दर नर्मदा के पार दिखाई दी। मॉलेसन लिखता है—

संसार की किसी भी सेना ने कभी कहीं पर इतनी तेज़ी के साथ कूच नहीं किया जितनी तेज़ी के साथ कि तात्या की भारतीय सेना इस समय कूच कर रही थी।

तात्या राजपुरा पहुँचा, वहाँ के सरदार से उसने घोड़े और कुछ धन वसूल किया। अगले दिन वह छोटा नवाब बाँदा का आत्म समर्पण उदयपुर पहुँचा। बड़ौदा यहाँ से केवल ५० मील था। इतने में पार्क के अधीन अंगरेजी सेना छोटा उदयपुर आ पहुँची। तात्या को बड़ौदा का विचार छोड़ देना पड़ा। अब वह फिर उत्तर की ओर मुड़ा। ठीक इस समय बाँदा के नवाब ने निराश होकर मलका विक्टोरिया के प्लान के अनुसार हथियार रख दिए। तात्या और रावसाहब अकेले रह गए। मॉलेसन लिखता है—

“किन्तु ये दोनों नेता इस कठिन आपत्ति के समय भी इतने ही

शान्त, वीर और चतुर बने रहे जितने कि वे पहले किसी भी समय में रह चुके थे ।”*

तात्या अब उदयपुर (मेवाड़) की ओर बढ़ा । तुरन्त कई अंगरेजी सेनाएँ उस पर टूट पड़ीं । वह मुड़ कर जंगल में घुस गया । तात्या के लिए अब बच सकना असम्भव दिखाई देने लगा । एक दिन

मेजर रॉक की पराजय
तात्या और रावसाहब करीब चार बजे शाम को प्रतापगढ़ की ओर बढ़े । मेजर रॉक ने आकर सामने से उनका मार्ग रोक लिया । तात्या मेजर रॉक की सेना को परास्त करता हुआ आगे निकल गया । २५ दिसम्बर सन् १८५८ को तात्या बाँसवाड़ा के जंगल से निकला । ठीक इसी समय दिल्ली के राजकुल का प्रसिद्ध शहजादा फ़ीरोज़शाह, जो अवध के संग्रामों में भाग ले चुका था, अपनी सेना सहित तात्या की सहायता के लिए आ रहा था । जिस प्रकार शहजादे फ़ीरोज़शाह ने सेना सहित गङ्गा और यमुना को पार कर तात्या से जाकर भेंट की, उसकी कहानी भी अत्यन्त मनोरञ्जक है । १३ जनवरी सन् १८५९ को इन्द्रगढ़ में फ़ीरोज़शाह, तात्या और रावसाहब में भेंट हुई । सींधिया का एक सरदार मानसिंह भी उस समय इन लोगों में आकर मिल गया ।

किन्तु इस समय तात्या फिर बुरी तरह चारों ओर से घिर रहा था । नेपियर उसके उत्तर में था, शॉवर्स तात्या देवास में उत्तर पच्छिम में, सोमरसेट पूरब में, स्मिथ

* Ibid, vol. v, p. 247.

दक्खिन-पूरब में, मिचेल और बैनसन दक्खिन में, और बॉनर दक्खिन-पच्छिम और पच्छिम में। ये सब तात्या को घेर लेने के लिए बड़े चले आ रहे थे। तात्या बढ़ते बढ़ते देवास पहुँचा।

१६ जनवरी को सवेरे देवास में तात्या, रावसाहब और फ़ीरोज़ शाह तीनों ख़ेमे में बैठे बातचीत कर रहे थे। अचानक किसी अंगरेज़ अफ़सर का हाथ तात्या की कमर पर पड़ा। अंगरेज़ सिपाही ख़ेमे में आ दूटे। मालूम हुआ तात्या पकड़ गया, किन्तु अचानक फिर ये तीनों नेता अंगरेज़ सिपाहियों के चंगुल से निकल गए। चारों ओर खोज हुई, किन्तु उनका पता न चल सका।

२१ जनवरी को ये तीनों अलवर के निकट शिखरजी में दिखाई दिए। अंगरेज़ी सेना बराबर उन्हें घेरने का प्रयत्न करती रही। तात्या की सारी आशाएँ अब टुकड़े टुकड़े हो चुकी थीं। वह थका हुआ था। मानसिंह पास के जंगल में छिपा था। तात्या ने फ़ीरोज़शाह और रावसाहब को सेना के साथ छोड़ा और स्वयं तीन आदमियों सहित मानसिंह से मिलने गया। मानसिंह इस समय तक अंगरेज़ों से मिल चुका था। उससे जागीर का वादा कर लिया गया था। फ़ीरोज़शाह ने तात्या को वापस अपने पास बुलाना चाहा। मानसिंह ने उसे रोक लिया और ७ अप्रैल सन् १८५६ को ठीक आधी रात के समय सोते हुए तात्या को शत्रु के हवाले कर दिया।

१८ अप्रैल सन् १८५६ तात्या टोपे के लिए फ़ाँसी का दिन

नियत हुआ। चारों तरफ़ फ़ौज़ का पहरा था। लिखा है फ़ौज़ के चारों ओर टीलों पर खड़े हज़ारों ग्रामनिवासी तात्या का बलिदान तात्या को दूर से श्रद्धा के साथ नमस्कार कर रहे थे। तात्या धैर्य और साहस के साथ फाँसी के तख़्ते पर चढ़ा, उसकी बेड़ियाँ काटी गईं। तात्या ने हँसते हुए अपने हाथ से फाँसी का फन्दा गले में डाल लिया। तख़्ता खिंच गया, शाम तक तात्या का शव फाँसी पर लटकता रहा। शाम को अनेक यूरोपियन दर्शकों ने दौड़ कर तात्या के सिर के दो दो, चार चार बाल तोड़ लिए और वीर तात्या की स्मृति स्वरूप उन्हें अपने पास रक्खा।

रावसाहब और शहज़ादा फ़ीरोज़शाह एक महीने बाद तक जी तोड़ लड़े। इसके बाद वेष बदल कर दोनों जङ्गलों में निकल गए। फ़ीरोज़शाह सन् १८६४ तक भारत के जङ्गलों में घूमता रहा। उसके बाद अरब चला गया, जहाँ सन् १८६६ में वह अन्य अनेक निर्वासित भारतीय क्रान्तिकारियों के साथ फ़कीर के वेष में देखा गया। रावसाहब तीन साल बाद पकड़ा गया और २० अगस्त सन् १८६२ को कानपुर में फाँसी पर लटका दिया गया।

इस तरह हिन्दोस्तान को विदेशी शासन से स्वाधीन करने का सब से महान और व्यापक प्रयत्न निष्फल गया और अंगरेजी राज की जड़ एक काल के लिए और अधिक मज़बूती के साथ इस देश में जम गई।



तात्या टोपे
[चित्रशाला प्रेस, पूना की कृपा द्वारा]

पचासवाँ अध्याय

सन् ५७ के स्वाधीनता संग्राम पर एक दृष्टि

इस विशाल राष्ट्रीय प्रयत्न के कारणों और उसकी प्रगति को ऊपर के पृष्ठों में विस्तार के साथ बयान किया जा चुका है। इस प्रयत्न की असफलता के मुख्य कारण भी इन्हीं पृष्ठों में स्थान स्थान पर दिखाए जा चुके हैं। इनमें मुख्यतम हमें दो दिखाई देते हैं—

पहला यह कि कारतूतों और विशेष कर मेरठ की घटना के कारण संग्राम नियत समय से पहले शुरू हो गया। हम ऊपर मॉलेसन, विलसन, हाइट जैसे अंगरेज़ विशेषज्ञों की सम्मति इस विषय में नकल कर चुके हैं कि यदि पूर्व निश्चय के अनुसार ३१ मई सन् १८५७ को सब स्थानों पर एक साथ युद्ध शुरू हुआ होता तो

अंगरेज शासकों के लिए भारत को फिर से विजय कर सकना सर्वथा असम्भव होता।

दूसरा कारण यह था कि सिखों और गोरखों ने अंगरेजों की सहायता करके उनके लिए दिल्ली और लखनऊ जैसे केन्द्रों को फिर से विजय कर सकना सम्भव बना दिया। इस विषय में पञ्जाब के चीफ कमिश्नर सर जॉन लॉरेन्स की स्पष्ट राय नक़ल की जा चुकी है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यदि पटियाला, नाभा और भींद ने ऐन समय पर अंगरेजों को मदद न दी होती तो दिल्ली का फिर से विजय हो सकना असम्भव था, और एक बार यदि दिल्ली की सेना विजय प्राप्त कर पूरब और दक्खिन में उतर आती तो सन् ५७ की क्रान्ति का बाद का सारा नक़शा बदल जाता।

क्रान्तिकारियों का सङ्गठन सुन्दर और प्रशंसनीय था, फिर भी कम से कम लाखों भारतवासी अपने देशवासियों के विरुद्ध तरह तरह से अंगरेजों की सहायता दे रहे थे। रसल लिखता है—

“फिर भी हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि अंगरेज चाहे कितने भी बहादुर क्यों न हों, यदि समस्त भारतवासी पूरी तरह हमारे विरुद्ध हो जाते तो भारत में अंगरेजों का निशान तक कहीं बाक़ी न रह जाता। हमारे क्रिश्चियन के भीतर की सेनाओं ने जिस तरह जी तोड़ कर अपने स्थानों की रक्षा की, वह निस्सन्देह वीरोचित था। किन्तु इस वीरता में भारतवासी शामिल थे,

और उन्हीं की सहायता और उपस्थिति के कारण उन स्थानों की रक्षा करना हमारे लिए सम्भव हो सका। यदि पटियाला और भींद के राजा हमारे साथ मित्रता न दर्शाते और यदि सिख हमारी पलटनों में भरती न होते और उधर पंजाब को शान्त न रखते, तो हमारा दिल्ली का मोहासरा कर सकना सर्वथा असम्भव होता। लखनऊ में भी सिखों ने हमें खूब सहायता दी, और हर स्थान पर जिस तरह कि भारतवासी हमारी सेनाओं में भरती होकर लड़ाई में हमारे बल को बढ़ाते थे, उसी तरह हर जगह भारतवासी ही हमारी घिरी हुई सेनाओं की मदद करते थे, हमें भोजन पहुँचाते थे और हमारी सेवा करते थे। इसी कारण यहाँ इस कैम्प में हमारी सब की हालत क्या है ! देशी फौजें ही सब से आगे रह कर हमारी रक्षा कर रही हैं, देशी लोग हमारे घोड़ों के लिए घास काट रहे हैं, वे ही हमारे सार्इस हैं, वे ही हमारे हाथियों को चारा देते हैं, वे ही हमारी बारबरदारी का इन्तजाम करते हैं, कमसरिघट में वे ही हमारे भोजन का प्रबन्ध करते हैं, वे ही हमारे गोरे सिपाहियों का खाना पकाते हैं, वे ही हमारे कैम्प की सफाई करते हैं, वे ही हमारे डेरे गाड़ते हैं और उन्हें इधर उधर ले जाते हैं, वे ही हमारे अफसरों का सब काम करते हैं और वे ही हमें अपने पास से रुपए उधार देते हैं। जो गोरा सिपाही मेरे साथ लिखने पढ़ने का काम करता है वह कहता है कि बिना हिन्दोस्तानी नौकरों, डोली उठाने वालों, अस्पताल के आदमियों और अन्य भारतवासियों के, उसकी पलटन एक सप्ताह भी जीवित न रह सकती।”*

* “ Yet it must be admitted that, with all their courage, they (The British) would have been quite exterminated if the natives had been, all and altogether, hostile to them. The desperate defences made by the garrisons were no doubt heroic ; but the natives shared their glory ; and they by their

जिस तरह सिखों के बिना दिल्ली, उसी तरह गोरखों के बिना लखनऊ का विजय हो सकना असम्भव था ।

इन दो मुख्य कारणों के अलावा इनसे कुछ कम महत्व के तीन और कारण संग्राम की असफलता के बताए जा सकते हैं ।

इनमें पहला था दिल्ली के मोहासरे के दिनों में दिल्ली के अन्दर
 योग्य और प्रभावशाली नेताओं का अभाव एक योग्य, शक्तिशाली और प्रभावशाली नेता का अभाव जो नगर के अन्दर की समस्त शक्तियों को अपने वश में कर, उन्हें एक महान प्रयत्न के लिये अग्रसर कर सके । यही एक मात्र कारण था कि दिल्ली के भीतर की विशाल घोर सेना बाहर निकल कर बाहर की अंगरेजी सेना को, जिसकी संख्या कहीं कम थी, महीनों तक समाप्त न कर सकी । यही त्रुटि एक दर्जे तक लखनऊ में भी थी और इसी के कारण कभी कभी ऐन नाजुक मौके पर

aid and presence rendered the defence possible. Our siege of Delhi would have been quite impossible, if the Rajas of Patiala and Jhind had not been our friends and if the Sikhs had not recruited in our battalions and remained quiet in the Punjab. The Sikhs at Lucknow did good service, and in all cases our garrisons were helped, fed and served by the natives, as our armies were attended and strengthened by them in the field. Look at us all, here in camp, at this moment, our outposts are native troops, natives are cutting grass for our horses and grooming them, feeding the elephants, managing the transports, supplying the commissariat which feeds us, cooking our soldiers' food, clearing their camp, pitching and carrying their tents, waiting on our officers, and even lending us their money. The soldier who acts as my amanuensis declares that his regiment could not have lived a week but for the regimental servants, doli-bearers, hospital men and other dependents." —*My Diary in India*, by Sir W. Russell.

क्रान्तिकारियों में व्यवस्था और आशापालन की कमी दिखाई देती थी ।

दूसरा कारण था सींधिया, होलकर और राजपूताने के नरेशों का केवल सङ्कोच और अविश्वास के कारण उस देशी नरेशों की अकर्मण्यता राष्ट्रीय विद्रोह में भाग न ले सकना । यदि महाराजा जयाजीराव सींधिया या कोई प्रमुख राजपूत नरेश समय पर अपनी सेना सहित दिल्ली पहुँच जाता तो कम्पनी की सेना के लिए ठहर सकना सर्वथा असम्भव होता और राजधानी के अन्दर प्रभावशाली नेता की कमी भी पूरी हो जाती । सम्राट बहादुरशाह ने इन लोगों को क्रान्ति की ओर करने का प्रयत्न भी किया, किन्तु उसे सफलता न मिल सकी ।

तीसरा कारण यह था कि विन्ध्याचल से नीचे के भाग ने उससे शतांश उत्साह के साथ भी क्रान्ति का साथ नहीं दिया, जिस उत्साह के साथ कि विन्ध्याचल से उत्तर के भाग ने दिया । यदि दक्खिन में उदासीनता मद्रास, बम्बई और महाराष्ट्र में उत्तर भारत के साथ साथ उसी तरह युद्ध शुरू हो गया होता तो उन प्रान्तों से उत्तर की ओर सेना भेज सकना अंगरेजों के लिए असम्भव होता, जनरल नील, जनरल हैवलॉक इत्यादि कलकत्ते तक भी न पहुँच पाते, और बनारस, इलाहाबाद, कानपुर और अन्त में लखनऊ विजय कर सकना अंगरेजों के लिए नामुमकिन होता ।

युद्ध की असफलता के ये पाँचों कारण इस प्रकार के हैं कि

यदि इनमें कोई एक भी अनुपस्थित होता तो शेष चारों के होते हुए भी शायद युद्ध असफल न हो पाता ।

अब प्रश्न यह हो सकता है कि यदि सन् ५७ का युद्ध सफल हो गया होता तो भारत या संसार के लिए नतीजा क्या होता ?

किसी भी निष्पक्ष इतिहास लेखक को इससे इनकार नहीं हो सकता कि अधिकांश क्रान्तिकारी अपने देश की स्वाधीनता और अपने धर्म की रक्षा के लिए मैदान में उतरे थे । दूसरी ओर जिन अंगरेज़ों ने उनका विरोध किया उनका मुख्य उद्देश इस देश के ऊपर अंगरेज़ी क़ौम के स्वेच्छाशासन को कायम रखना था । निस्सन्देह पहला आदर्श दूसरे आदर्श की अपेक्षा उच्चतर है । दोनों ओर से समय समय पर प्रशंसनीय वीरता और साहस का परिचय दिया गया । यहाँ पर दोनों ओर के अत्याचारों पर एक निगाह डालना अनुचित न होगा । बहुत मुमकिन है दिल्ली, कानपुर, भाँसी इत्यादि में कुछ न कुछ अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों की हत्या हुई । किन्तु इस सम्बन्ध में हमें एक दो बातों को याद रखना होगा ।

पहली यह कि जितनी बातें क्रान्तिकारियों के अत्याचारों के विषय में अंगरेज़ इतिहास लेखकों की पुस्तकों में पाई जाती हैं उनमें असत्य की मात्रा बहुत काफ़ी है । इसके सुबूत में हम ऊपर भी कई निष्पक्ष अंगरेज़ों की सम्मतियाँ नक़ल कर चुके हैं । इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के मेम्बर मिस्टर लेयर्ड ने इस तरह की घटनाओं की

दोनों ओर के
अत्याचारों की
सुलना

क्रान्तिकारियों पर
सूटे इज़ज़ाम

सच्चाई का ठीक ठीक पता लगाने के लिए क्रान्ति के दिनों में भारत की यात्रा की। ११ मई सन् १८५८ को इङ्गलिस्तान लौट कर लेयर्ड ने लन्दन में एक वक्तृता देते हुए कहा—

“जब मैं भारत में था, मैंने इद दरजे का सच्चाई के साथ यह पता लगाने का प्रयत्न किया कि आया किसी भी अंगरेज़ को अङ्ग भङ्ग किया गया था या नहीं। जिन लोगों को गवर्नमेण्ट ने इस विषय की जाँच करने के लिए नियुक्त किया था, और जिनके विषय में मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि यदि उन्हें भारतवासियों के अत्याचारों की एक भी मिसाल मिलती तो वे खुश होकर उसे चिपट जाते, उन लोगों तक ने मुझे विश्वास दिलाया कि उन्हें एक भी मिसाल ऐसी नहीं मिली जिसमें किसी अंगरेज़ को अङ्ग भङ्ग किया गया हो। इसके विपरीत बेशुमार मिसालें ऐसी मिलती हैं जिनमें हमारी सेना ने (अंग भंग करके) भयङ्कर बदला लिया x x x।”*

निस्सन्देह इस बयान में उन अंगरेज़ पुरुषों का जिक्र नहीं है जो युद्ध में लड़ते हुए कटे।

एक दूसरे स्थान पर लेयर्ड ने कहा :—

“अत्यन्त सावधानी के साथ जाँच करने के बाद, सबसे उत्तम और सबसे अधिक विश्वसनीय लोगों से मुझे जो कुछ सूचना मिली है, उससे मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि दिल्ली, कानपुर, मॉन्सी और अन्य स्थानों पर जो अनेक भीषण अत्याचार कहा जाता है कि अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों के ऊपर किए गए, वे सब के सब, प्रायः बिना एक भी अपवाद के, झूठे

* Mr. Layard M. P., *The Home News*, May 17th, 1888, p, 690.

हैं और कहने वालों के अपने मन से गढ़े हुए हैं, जिसके लिए उन्हें खजा आनी चाहिए।”❀

प्रामाणिक अंगरेज लेखकों की सम्मतियाँ इस विषय की भी नकल की जा चुकी हैं कि कानपुर में अंगरेज स्त्रियों और बच्चों की हत्या यदि हुई भी हो तो वह नाना साहब की इजाज़त से नहीं की गई और न नाना साहब पर उसकी ज़िम्मेदारी लादना न्याय है। भाँसी में भी किसी निहत्थे अंगरेज की हत्या में रानी लक्ष्मीबाई का कोई हाथ न था। सम्राट बहादुरशाह और नाना साहब, बेगम हज़रत महल और रानी लक्ष्मीबाई चारों ने समय समय पर अंगरेज स्त्रियों और बच्चों की रक्षा का पूरा प्रयत्न किया। फ़ॉरेस्ट लिखता है कि अवध के नेताओं ने एक प्लान द्वारा अपने अनुयायियों को आज्ञा दी कि—“स्त्रियों या बच्चों की हत्या से अपने आन्दोलन को कलङ्कित न करना।” अवध के अन्दर असंख्य मिसालें ऐसी मिलती हैं जिनमें क्रान्तिकारी ज़मींदारों और जनता ने अंगरेज स्त्रियों और बच्चों यहाँ तक कि आश्रित अंगरेज पुरुषों को अपने महलों और मकानों में आश्रय दिया। इसके विपरीत जनरल नील, कूपर, हैवलाक, हडसन जैसे अनेकों ने स्थान स्थान पर जिस तरह के कृत्य किए उनके विषय में स्वयं गवर्नर जनरल लॉर्ड कैनिङ्ग ने, २४ दिसम्बर सन् १८५७ को, अपनी कौन्सिल के अन्दर कहा था—

“न केवल छोटे बड़े हर तरह के अपराधी ही, बल्कि वे लोग भी

जिनका अपराध कम से कम अत्यन्त सन्दिग्ध था, बिना किसी भेदभाव के फाँसी पर लटका दिए गए। ग्रामों को आम तौर पर जला डाला गया और लूट लिया गया। इस तरह दोषी और निर्दोष, पुरुष और स्त्री, बच्चे और बूढ़े, सब को बिना भेदभाव दण्ड दिया गया × × ×।”*

नील, हडसन जैसों के अन्य अत्याचारों को दोहराना मानव हृदय को यातना पहुँचाना है।

किन्तु साथ ही भारतीय क्रान्तिकारी अपनी ‘स्वाधीनता और धर्म की रक्षा’ के नाम पर खड़े हुए थे। यूरोप और भारत की सभ्यताओं और दोनों के नैतिक आदर्शों में बहुत बड़ा अन्तर है। अंगरेज़ जनरल नील के अत्याचार कानपुर या किसी दूसरी जगह निहत्थे अंगरेज़ों के ऊपर भारतीय क्रान्तिकारियों के अत्याचारों के लिए कोई बहाना नहीं हो सकते। बहुत सम्भव है कि करीब दो सौ अंगरेज़ स्त्रियों और बालकों की हत्या—और जहाँ तक पता चल सकता है, सन् ५७ में समस्त भारत के अन्दर इससे अधिक अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों की हत्या नहीं की गई—स्वाधीनता के उस पवित्र आन्दोलन पर सदा के लिए एक कलंक रहेगी।

किन्तु फिर यह प्रश्न उठता है कि यदि सन् ५७ की क्रान्ति सफल हो गई होती तो हालत क्या होती। संसार की सभी क़ौमों और देशों के लिए स्वाधीनता हर हालत में श्रेयस्कर और पराधीनता सब से

* See page 1658 of this book.

बड़ा शाप है। किसी भी क़ौम को अपनी उन्नति या अपने सार्वगिक विकास का पूरा अवसर केवल स्वाधीनता में ही मिल सकता है। भारत या कोई देश इस व्यापक नियम का अपवाद नहीं हो सकता। किन्तु साथ ही सन् ५७ के हालात को ध्यान से पढ़ने पर तीन बातें हमारी नज़र में सबसे अधिक चमकती हैं।

पहली बात यह है। इसमें सन्देह नहीं सन् ५७ का स्वाधीनता संग्राम इस देश में हिन्दू मुसलिम ऐक्य का एक सुन्दर और ज्वलन्त उदाहरण था। उस संग्राम के समस्त हिन्दू और मुसलमान नेता, और लाखों हिन्दू और मुसलमान जन सामान्य अपने अपने धार्मिक विश्वासों पर कायम रहते हुए, भारत सम्राट के भंडे के नीचे, कंधे से कंधा मिलाकर, अपने प्यारे देश की आज़ादी के लिए युद्ध कर रहे थे। आज़ादी की लड़गन ने उस समय भारत के हिन्दू और मुसलमानों को कितना बेचैन कर रखा था इसकी एक सुन्दर मिसाल यह है कि गाय और सुअर की चरबी के जो कारतूस युद्ध का एक खास सबब थे, एक बार शुरू हो जाने पर, युद्ध के अनेक मैदानों में, लाखों हिन्दू और मुसलमान सिपाही विदेशियों से लड़ते समय उन्हीं कारतूसों की खुशी के साथ अपने दाँतों से काटते हुए दिखाई दिये।

साथ ही इसमें भी सन्देह नहीं कि सन् ५७ की क्रान्ति में भाग लेने वाले लाखों हिन्दू और मुसलमान ऐसे भी थे जिनके शस्त्र उठाने का मुख्य कारण यह था कि उन्हें अपना 'धर्म' ख़तरे में

दिखाई देता था। विधर्मी विदेशियों की अनेक करतूतों और खास कर चरबी के कारतूसों ने उनकी इस आशंका को खासा मज़बूत कर दिया था। इन भारतीय वीरों के हृदय की सच्चाई, इनके त्याग और इनकी वीरता का हमें आदर है। किन्तु हमें यह मानना होगा कि सर्वव्यापी मानवधर्म की दृष्टि से ऐसे लोग किसी अधिक उच्च धार्मिक आदर्श के लिए खड़े न हुए थे। रुढ़ियां रुढ़ियां हैं, और हक यह है कि इन हिन्दू, मुसलिम या ईसाई, पृथक् पृथक् धर्मों का समय संसार से बहुत दिनों का उठ चुका। सच्चा वास्तविक मानव धर्म मनुष्य मात्र के लिए एक है। इस सच्चे धर्म की भलक अनेक हिन्दू, मुसलमान और अन्य महात्माओं की वाणी में समय समय पर मिल चुकी है; यहाँ तक कि वे लोग अपने आप को हिन्दू मुसलमान इत्यादि कहने से भी परहेज़ करते थे। समस्त संसार इस सच्चे व्यापक धर्म की बाट जोह रहा है, और जिस भारत ने कबीर और नानक जैसों को पैदा किया उससे आशा की जाती है कि वह संसार को इस सच्चे सार्वजनिक धर्म की ओर ले जाने में अग्रसर होगा। ऐसी सूरत में सन् ५७ के अनेक क्रान्तिकारियों की 'धर्म, धर्म !' और 'दीन, दीन !' की आवाज़ न सार्वभौम सत्य की दृष्टि से बहुत ऊँची थी और न धर्म के क्षेत्र में भारत के वास्तविक गौरव के उपयुक्त थी।

इन दोनों धर्मों की पृथक् पृथक् लहरें भारतीय समाज के जीवन में पिछले एक हजार साल के अन्दर अनेक ढंग से टकरा चुकी थीं। हम इस पुस्तक के शुरू में दिखला चुके हैं कि उन एक

हजार साल के अन्दर जिस मेल और प्रेम के साथ हिन्दू और मुसलमान इस देश में रहते रहे उसकी मिसाल संसार के किसी भी दूसरे देश में मिलना कठिन है। किन्तु साथ ही हमारे दैनिक और मानसिक जीवन में वह टक्करें भी मौजूद थीं जिन्होंने कबीर को “आपस में दोउ लरि लरि मूए,” और नानक को “दावा राम रहीम कर लड़दे बेईमान,” कहने पर मजबूर किया। जैसा हम दिखला चुके हैं, इन टक्करों को हमारे कौमी जीवन से और उनके कारणों को हमारे दिलों से मिटाने के महान प्रयत्न भी जारी थे। किन्तु हमें बहुत सन्देह है कि सन् ५७ के जिस पहलू का हम जिक्र कर रहे हैं, सफलता के बाद, वह पहलू इन समन्वयात्मक प्रयत्नों में सहायक होता या भविष्य के लिए इन टक्करों की सम्भावना को और अधिक बढ़ा देता।

बहुत सम्भव है कि इन टक्करों का नतीजा अन्त में अच्छा ही होता और ये टक्करें हमें शीघ्र सार्वजनिक सत्य की चट्टान तक पहुँचा देतीं। सम्भव है कि सन् १७५७ से १८५७ तक के अनुभवों के कारण इन टक्करों में से अनेक कबीर और अकबर पैदा हो जाते, और यह अत्यन्त जटिल समस्या सुन्दरता पूर्वक सदा के लिए हल हो जाती। कम से कम यदि सन् ५७ का महान प्रयत्न सफल हो गया होता तो फिर किसी तीसरी ताकत को अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए इस समस्या को जान बूझ कर और अधिक जटिल बना देने का मौका न मिलता। किन्तु वे टक्करें देश को किस ओर ले जातीं इस सब में कितना समय लगता, और कबीर और अकबर के

स्वप्न कब तक पूरे हो पाते, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

दूसरी बात यह है कि सन् ५७ का समय राजघरानों और उच्च कुलों के मान, उनकी सत्ता और कुलीनता के उच्च कुलों का मान अभिमान का समय था। इन कुलों ही के नाम पर सन् ५७ का युद्ध शुरू हुआ। दिल्ली में बख्त ख़ाँ, लखनऊ में मौलवी अहमदशाह, कानपुर में अजीमुल्ला ख़ाँ और महाराष्ट्र में तात्या टोपे को केवल इस लिए यथेच्छ सफलता न मिल सकी, क्योंकि वे किसी राजकुल में पैदा न हुए थे। सन् ५७ की सफलता के बाद सम्भव है कि, एक तो भारत के राजकुलों में परस्पर मेल कायम रहना इतना सरल न होता जितना सम्राट बहादुरशाह ने राज-पूताना इत्यादि के राजाओं के नाम अपने पत्र में आशा की थी, और दूसरे जनता की सत्ता, जनता की शक्ति और जनता की राजनीति के दिन भारत से और अधिक दूर चले गए होते।

तीसरी बात यह है कि यद्यपि एक ओर बहादुरशाह, हज़रत महल, कुंवरसिंह और लक्ष्मीबाई जैसों के चित्र हिंसा और अहिंसा और चरित्र और दूसरी ओर कैनिङ्ग, नील, हैवलॉक और हडसन जैसों के चित्र और चरित्र, दोनों में साफ़ अन्तर दिखाई देता है; यद्यपि एक के ऊपर भारत के उच्चतर नैतिक आदर्शों और दूसरे के ऊपर पच्छिम के होन आदर्शों की छाप साफ़ दिखाई देती है, फिर भी जिन साधनों से सन् ५७ के क्रान्तिकारी अंगरेजों का मुकाबला कर रहे थे, वे हिंसात्मक साधन थे, जिन्हें

मनुष्य जाति हजारों साल से आजमा चुकी थी। सन् ५७ में जिस पक्ष की भी विजय होती वह विजय 'हिंसा' के सिद्धान्त की ही होती। स्वाभाविक था कि उस संग्राम में वही पक्ष अन्त में विजय प्राप्त करे जो 'हिंसा' के सिद्धान्त और उसके उपयोग में अधिक निस्सङ्कोच और अधिक सिद्धहस्त हो। भारत या एशिया का वास्तविक और चिरकालीन गौरव यूरोप के ऊपर इस तरह की विजय में न था। हमें पूरा विश्वास है कि 'हिंसा' के ऊपर 'अहिंसा' की श्रेष्ठता और अधिक बलवत्ता की अमली शिक्षा संसार को देने का कार्य भारत ही के लिए नियुक्त है, और सन् ५७ की राष्ट्रीय क्रान्ति की शताब्दी से पहले भारत के पग उस अधिक ज्वलन्त विजय की ओर साफ बढ़ते हुए दिखाई दे रहे हैं।

किन्तु यह सब केवल विश्वास और अनुमान की चीज़ें हैं। सन् ५७ की असफलता की याद किसी भी विचारवान भारतवासी के हृदय को दुखी और सन्तप्त किये बिना नहीं रह सकती। मालूम होता है कि शायद हमारी इन सब त्रुटियों की पूर्ति के लिए और भारतीय आत्मा के पूर्ण परिमार्जन के लिए ही इस देश को अभी कुछ समय और विदेशी शासन के तात्तदिव्य में से होकर निकलना बड़ा था।

एक प्रश्न यह भी उत्पन्न होता है कि यदि सन् ५७ की क्रान्ति ही न हुई होती तो नतीजा क्या होता? सन् १७५७ से १८५७ तक के कम्पनी के राज और उसके साधनों और कृत्यों का बयान इस

यदि क्रान्ति न
हुई होती ?

पुस्तक में किया जा चुका है। उस समस्त दुःखकर कहानी को दोहराना असम्भव और निरर्थक है। लॉर्ड डलहौजी ही के भारतीय रियासतों को हड़पने के विषय में हम इतिहास लेखक लडलो को यह राय उद्धृत कर चुके हैं कि—

“यदि इन हालात में उन लोगों के पक्ष में, जिनकी रियासतें छीन ली गई थीं और छीनने वालों के विरुद्ध भारतवासियों के भाव न भड़क उठते तो भारतवासी मनुष्यत्व से गिरे हुए समझे जाते।”❀

इसी प्रकार यदि दिल्ली सम्राट के लगातार अपमान और लखनऊ की स्वाधीनता के नाश से भारतवासियों के हृदयों में जोश उत्पन्न न होता तो वे मनुष्य न कहला सकते। ऐसे ही मनुष्य का विचार चाहे सत्य हो वा असत्य, किन्तु जिस चीज़ को भी मनुष्य अपना धर्म समझता है उसको आघात से बचाने के लिए यदि वह अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार नहीं हो जाता, तो उसे मनुष्य नहीं कहा जा सकता।

ऐसी अवस्था में यदि भारतवासियों में मनुष्यत्व बाक़ी था तो सन् ५७ की क्रान्ति स्वाभाविक और अनिवार्य थी। उस क्रान्ति के आदर्शों के विषय में या क्रान्तिकारियों के सम्मुख वास्तविक और उच्चतर आदर्शों के अभाव के विषय में हम जाहे कुछ भी क्यों न कहें, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यदि सन् ५७ की क्रान्ति न हुई होती तो उसका यही अर्थ था कि भारतवासियों में से साहस,

• “*Thoughts on the Policy of the Crown.* by Ludlow, pp. 35, 36.

आत्मगौरव, कर्तव्यपरायणता और जीवन शक्ति का अन्त हो चुका । अंगरेज शासकों के हौसले फिर सहस्रों गुने बढ़ गए होते और भारतवासियों के जीवन में आशा की छटा तक कहीं दिखाई न देती । इसमें तो कुछ भी सन्देह नहीं कि फिर हिन्दू या मुसलमान एक भी देशी रियासत भारत में बाकी न बची होती । भारतवासियों की अवस्था इस समय तक करीब करीब वैसी ही होती जैसी अफ़्रीका और अमरीका के उन आदिम निवासियों की, जिनके सहस्रों वर्षों के अस्तित्व को यूरोपियन जातियों ने संसार से मिटा दिया और जिनके प्रदेशों में अब यूरोपियन जातियों के उपनिवेश बने हुए हैं । इस सब दृष्टि से सन् ५७ के क्रान्तिकारियों का भीषण बलिदान कदापि व्यर्थ नहीं गया । उन लोगों के असफल प्रयत्नों ने, जब कि एक ओर अंगरेज शासकों की आँखें खोल दीं और उन्हें सावधान कर दिया, दूसरी ओर उन्होंने भारतवासियों के राष्ट्रीय जीवन में आशा और आत्मविश्वास की वह झलक पैदा कर दी जो सौ वर्ष तक भी कभी फीकी नहीं पड़ सकती ।

एक और बात इस विषय में ध्यान देने योग्य है । किसी भी देश की कोई इतनी महान घटना संसार के अन्य देशों पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती। ठीक सन् ५७ में अंगरेज चीन के साथ युद्ध करने का सङ्कल्प कर चुके थे । जिस अंगरेजी सेना की मदद से लॉर्ड कैनिङ्ग ने भारत को फिर से विजय किया, उसमें से अधिकांश चीन पर हमला करने के लिए रवाना हो चुकी

सन् ५७ की
क्रान्ति का अन्य
देशों पर
असर

थी, और लॉर्ड कैनिङ्ग ने भारत की आपत्ति को देख कर उसे बीच ही में रोक लिया। उस समय का चीन भी ४० वर्ष बाद के बॉक्सर युद्ध के समय के चीन से कहीं अधिक निर्बल देश था। सन् ५७ का जापान भी करीब तीन सौ छोटी छोटी रियासतों में बँटा हुआ था, जिनमें परस्पर प्रतिस्पर्धा और आप दिनों के संग्राम होते रहते थे। उस समय का जापान राजनैतिक दृष्टि से किसी प्रकार उस समय के भारत से अधिक बलवान या अधिक अच्छी अवस्था में न था। भारतीय क्रान्ति के ११ वर्ष बाद जापानी देशभक्तों ने, अपने यहाँ की २७३ सैकड़ों वर्षों की पुरानी रियासतों को अन्त कर, देश में एक प्रधान शासन कायम किया। सन् १८६८ के इस महान परिवर्तन से ही जापान की समस्त जागृति का प्रारम्भ हुआ। प्रसिद्ध अंगरेज़ तत्ववेत्ता हरबर्ट स्पेन्सर का वह ऐतिहासिक पत्र, जिसमें उसने भारत की ओर सङ्केत करते हुए जापानी नीतिज्ञों को यूरोप और अमरीका निवासियों की चालों की ओर से सावधान किया, भारतीय क्रान्ति के बाद का ही लिखा हुआ था। कौन कह सकता है कि यदि चीन और जापान दोनों देश पाश्चात्य कौमों के अधीन होने से बचे रहे तो इसका श्रेय किस दर्जे तक सन् ५७ की क्रान्ति के उन प्रवर्तकों और सञ्चालकों को मिलना चाहिए जिन्होंने एशियाई जीवन के उस ऐन नाजुक मौक़े पर ब्रिटिश महत्वाकांक्षा को कुछ दिनों के लिए एक ज़बरदस्त धक्का पहुँचाया, और अन्य एशियाई देशों को पाश्चात्य कूटनीति की ओर से सावधान हो जाने का मौक़ा दिया।

जो हो, भारतवासियों के लिए अब मुख्य कार्य केवल अपने धार्मिक, सामाजिक और नैतिक आदर्शों को स्थिर करना है। इसी के साथ साथ उन्हें 'अहिंसा' की शक्ति को समझना होगा और अपने मन में 'अहिंसा' की अजेयता और उपयोगिता में विश्वास उत्पन्न करना होगा। हम ऊपर लिख चुके हैं कि भारत के पग उस भावी अपूर्व विजय की ओर साफ़ और दृढ़ता के साथ बढ़ते हुए दिखाई दे रहे हैं। प्रश्न केवल समय का है।

हमारे भावी
आदर्श

अंगरेज़ इतिहास लेखक फ़ॉरेस्ट लिखता है—

“सन् १७ की क्रान्ति हमें इस बात की याद दिलाती है कि हमारा साम्राज्य एक ऐसे पतले छिलके के ऊपर कायम है, जिसके किसी भी समय सामाजिक परिवर्तनों और धार्मिक क्रान्तियों की प्रचण्ड ज्वालाओं द्वारा टुकड़े टुकड़े हो जाने की सम्भावना है।”❀

* “The Mutiny reminds us that our dominions rest on a thin crust ever likely to be rent by titanic fires of social changes and religious revolutions.”—*State Papers*, by Forrest, Introduction.



इक्यावनवाँ अध्याय

सन् १८५७ के बाद

सन् १८५७ की आज़ादी की जंग से अंगरेज़ नीतिशों की आँखें खुल गईं। वे अब अनुभव करने लगे कि जिस तेज़ी के साथ वे कुछ समय पहले से हिन्दोस्तान की देशी रियासतों का एक एक कर खात्मा करने और देश के सारे मानचित्र को लाल रँग देने की कोशिशों में लगे हुए थे वह अंगरेज़ी राज की स्थिरता के लिए कल्याण सूचक न थी। वे समझ गए कि अपने साम्राज्य को और अधिक बढ़ाने की निस्वत अब उसकी मज़बूती के उपाय करना ज्यादा ज़रूरी है। उन्हें अपनी करीब एक सौ साल की शासन नीति पर फिर से गौर करने की ज़रूरत महसूस हुई। सन् ५७-५८ के अन्दर भारत और इङ्गलिस्तान के अंगरेज़ी समाचार पत्रों और राजनैतिक केन्द्रों में इस विषय की खूब बहस हुई। अन्त को जो

खास खास उपाय अंगरेजी साम्राज्य की आइन्दा की मज़बूती के लिए सब से ज़्यादा महत्व के समझे गए और जिनके ऊपर बहुत दर्जे तक सन् ५७ के बाद से भारत में अंगरेजी राज की नीति ढाली गई उन्हें हम एक एक कर नीचे बयान करते हैं—

सन् १८५८ तक ब्रिटिश भारत की हुकूमत ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों में थी। ऊपर आ चुका है कि सन् १-ईस्ट इण्डिया १६०० ईसवी में इङ्गलिस्तान की मलका एलिज़ेबेथ कम्पनी का अन्त ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की रचना की थी और फिर हर बीस साल के बाद इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट एक नए 'चारटर एक्ट' के ज़रिये हिन्दोस्तान के अन्दर कम्पनी के अधिकारों को पक्का करती रहती थी जिसका मतलब यह था कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी वास्तव में पार्लिमेण्ट की केवल एक एजेंट थी।

क्लाइव से पहले ईस्ट इण्डिया कम्पनी का काम इस देश में केवल व्यापार करना था। क्लाइव के समय से हिन्दोस्तान के कुछ इलाक़े के ऊपर कम्पनी का राज शुरू हुआ। उसके बाद वारन हेस्टिंग्स ब्रिटिश भारत का पहला गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ। वारन हेस्टिंग्स ही के समय में इङ्गलिस्तान के एक मन्त्री फ़ॉक्स ने पार्लिमेण्ट के सामने यह तजवीज़ पेश की कि हिन्दोस्तान के अन्दर जो कुछ इलाक़ा कम्पनी के हाथ आ गया है उसके शासन का इन्तज़ाम कम्पनी के हाथों से लेकर इङ्गलिस्तान के बादशाह और इङ्गलिस्तान के मन्त्रिमण्डल के हाथों में दे दिया जाय। हाउस ऑफ़ कॉमन्स ने फ़ॉक्स की इस तजवीज़ को मंज़ूर कर लिया। किन्तु हाउस

ऑफ़ लॉर्ड्स पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के धनाढ्य हिस्सेदारों का प्रभाव अधिक था, इसलिए हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स ने फ़ॉक्स की तजवीज़ को नामंज़ूर कर दिया।

अगले साल यानी सन् १७८३ में प्रधान मन्त्री विलियम पिट ने यह तजवीज़ पेश की कि इङ्गलिस्तान के मन्त्रिमण्डल के मातहत एक नया मोहकमा कायम किया जाय जिसे 'बोर्ड ऑफ़ कण्ट्रोल' कहा जाय। मन्त्रियों में से एक इस बोर्ड का प्रधान रहे, और कम्पनी के डाइरेक्टर अपने भारतीय राज के शासन का जो कुछ प्रबन्ध करें वह सब इस बोर्ड की देख रेख में करें। सन् १७८४ से लेकर सन् १८५८ तक इङ्गलिस्तान का यह सरकारी मोहकमा और कम्पनी के डाइरेक्टर, दोनों मिलकर ब्रिटिश भारत की शासन नीति चलाते रहे। दूसरे शब्दों में करीब करीब शुरू से ही भारत में अंगरेज़ी राज की असली बाग इङ्गलिस्तान की सरकार और वहाँ की पार्लिमेण्ट के हाथों में रही और ईस्ट इण्डिया कम्पनी इस मामले में उनकी केवल एक एजेंट थी।

सन् १७८३ के बाद सन् १८१३ में एक नई बात यह की गई कि उस समय से हिन्दोस्तान के साथ तिजारत करने का अनन्य अधिकार भी पार्लिमेण्ट ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी से ले लिया और हर अंगरेज़ या हर अंगरेज़ कम्पनी को इस देश के साथ तिजारत करने का अधिकार दे दिया। वजह यह थी कि इङ्गलिस्तान और हिन्दोस्तान के बीच की तिजारत बहुत बढ़ गई थी और सारी अंगरेज़ कौम उससे लाभ उठाने के लिए लालायित थी। हम ऊपर

एक अध्याय में दिखा चुके हैं कि भारत के प्राचीन उद्योग धन्धों के सर्वनाश और भारत की वर्तमान दरिद्रता का मूल कारण सन् १८१३ का 'चारटर' एक्ट था ।

हर नए चारटर एक्ट में अंगरेज़ कौम और अंगरेज़ व्यापारियों के असली उद्देश पर पर्दा डालने के लिए कोई न कोई वाक्य इस तरह का जोड़ दिया जाता था जिससे मालूम हो कि इन विदेशियों का असली मतलब केवल भारतवासियों का उपकार करना है ! मिसाल के तौर पर सन् १८१३ के चारटर में लिखा गया कि हिन्दोस्तान के "अंगरेज़ी इलाकों के बाशिन्दों के सुख और उनके हित को बढ़ाना"* इङ्गलिस्तान का "कर्तव्य" है, इत्यादि ।

सन् १८३३ के एक्ट में लिखा है :—

"इन इलाकों के किसी बाशिन्दे को, या इन इलाकों में रहने वाली बादशाह की किसी कुदरती रिश्तावा को, केवल उसके मज़हब, या जन्म स्थान या नसल, या रङ्ग की वजह से कम्पनी के मातहत किसी मुलाज़मत, पदवी या ओहदे के अयोग्य न समझा जायगा ।"†

सन् १८३३ से सन् १८५३ तक भारत के अन्दर अंगरेज़ी राज की सीमाएँ इतनी बढ़ चुकी थीं कि फिर १८५३ के 'चारटर एक्ट'

* "To promote the interest and happiness of the inhabitants of the British Dominions."—Charter Act of 1813.

† "That no Native of the said territories, nor any naturalborn subject of His Majesty resident therein, shall by reason only of his religion, place of birth, descent, color, or any of them, be disabled from holding any place, office, or employment under the said company."—Charter Act of 1833.

में इस तरह के किसी परोपकार सूचक वाक्य की ज़रूरत महसूस न हुई।

सन् १८५३ के चार्टर एक्ट के पास होने के समय अंगरेज़ शासकों ने जो गवाहियाँ पार्लिमेन्ट की सिलेक्ट कमेटी के सामने दीं उनसे साफ़ मालूम होता है कि उस समय भारत के अंगरेज़ शासकों का एक मात्र उद्देश यह था कि जिस तरह हो सके, इस देश से धन चूस कर इङ्गलिस्तान को धनाढ्य बनाया जावे और अंगरेज़ी तालीम और ईसाई मत प्रचार के ज़रिये हिन्दोस्तान के राष्ट्रीय चरित्र को निर्बल कर उन्हें सदा के लिए अंगरेज़ कौम का गुलाम बना कर रखा जावे।

सन् ५७ के कुछ पहले से इङ्गलिस्तान के अन्दर इस बात के लिए फिर ज़बरदस्त आन्दोलन जारी था कि कम्पनी के विशाल भारतीय साम्राज्य का इन्तज़ाम कम्पनी के हाथों से लेकर बराह्रास्त इङ्गलिस्तान के बादशाह और इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के हाथों में दे दिया जाय। इस आन्दोलन की दो खास वजह बताई गईं।

पहली वजह यह थी कि हिन्दोस्तान ही की और खास कर बंगाल की 'लूट' के प्रताप से १६ वीं सदी के आख़िर के दिनों से इंगलिस्तान के पिछड़े हुए उद्योग धन्धे बढ़ने शुरू हुए और लंकाशायर आदि के कारख़ाने खुलने लगे। इन नए कारख़ानों के मालिकों को एक तरफ़ तो रुई जैसे कच्चे माल की ज़रूरत थी और रुई इङ्गलिस्तान में न हो सकती थी। शुरू में कुछ रुई अमरीका से इङ्गलिस्तान मंगवाई गई किन्तु वह बहुत मंहगी पड़ती थी।

दूसरी तरफ उद्योग धन्धों के बढ़ने के साथ साथ इङ्गलिस्तान की अनुपजाऊ भूमि में नाज की पैदावार भी और कम होती जा रही थी, और वहाँ के लोगों को भोजन पहुँचाने के लिए बाहर से नाज की भी जरूरत थी। इसके लिए राजनैतिक भाषा में एक नया वाक्य "Development of the resources of India" (हिन्दोस्तान की भूमि की उपजाऊ शक्ति को उन्नति देना) गढ़ा गया। मतलब यह था कि विशाल भारत भूमि में इस तरह की व्यवस्था की जावे, इस तरह के रास्ते बनाए जावें और सहूलियतें की जावें, जिनसे इस देश से माल और धन के खींचने में आसानी हो, वहाँ के अंगरेजी इलाक़े के अन्दर रुई की खेती को बढ़ाया जावे और रेलों इत्यादि के ज़रिए रुई, नाज और दूसरे कच्चे माल के जगह जगह से जमा होकर इङ्गलिस्तान भेजे जाने और इङ्गलिस्तान के नए कारख़ानों में बने हुए माल को हिन्दोस्तान के शहरों और गावों में पहुँचाने की सुविधाएँ पैदा की जावें। किन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी के रहते यह काम पूरी तेज़ी के साथ नहीं हो सकता था।

दूसरी वजह यह थी कि इङ्गलिस्तान के अनेक लोग हिन्दोस्तान के ज़रखेज़ मैदानों में आ आकर बसना और इस देश को ऑस्ट्रेलिया, अफ़्रीका, अमरीका आदि की तरह इङ्गलिस्तान का एक उपनिवेश बना देना चाहते थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी इस तरह के उपनिवेश बनाने के खिलाफ़ थी।

असली बात यह थी कि कम्पनी के डाइरेक्टर और हिस्सेदार

चाहते थे कि हिन्दोस्तान की तिजारत हिन्दोस्तान की हुकूमत और हिन्दोस्तान की लूट का सारा फायदा उन्हीं को पहुँचे । किन्तु इङ्गलिस्तान में उनके वैभव को देख देख कर उनके हज़ारों और प्रतिस्पर्धी पैदा हो चुके थे । लोग चाहते थे कि जो लाभ भारत से केवल कम्पनी को हो रहा है वह अब सारी अंगरेज़ी कौम को हो । यही कम्पनी के तोड़े जाने का सब से बड़ा कारण था ।

किन्तु ये दो खास वजह बताई गईं जिनसे इङ्गलिस्तान के लोग कम्पनी के तोड़े जाने और ब्रिटिश भारत की हुकूमत बराह्रास्त इङ्गलिस्तान के बादशाह के हाथों में दिए जाने के लिए बहुत दिनों से आन्दोलन कर रहे थे । सन् ५७ के विप्लव से इन लोगों को मौका मिल गया । सन् १८५८ में पार्लिमेण्ट के सामने यह तजवीज़ पेश की गई । इसके जवाब में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों ने एक लम्बी दरखास्त लिख कर फ़रवरी सन् १८५८ पार्लिमेण्ट के सामने पेश की । डाइरेक्टरों ने इस दरखास्त में अपने सौ साल के शासन के लाभ को दिखाते हुए प्रार्थना की कि शासन की वाग कम्पनी ही के हाथों में रहने दी जाय । हाल के विप्लव की ओर इशारा करते हुए और अपने शासन की सफलता को दर्शाते हुए डाइरेक्टरों ने इस दरखास्त में लिखा :—

“हम लोगों को यह दिखाने की ज़रूरत नहीं है कि हाल की दुर्घटना में यदि देशी नरेश बजाय बलवे को दमन करने में हमें सहायता देने के, बलवे के मार्ग प्रदर्शक बन जाते या यदि देश की आम जनता बलवे में

शामिल हो जाती तो इस दुर्घटना का आखिरी नतीजा शायद कितना सुखतल्लिफ़ होता ।”❧

इसी दरखास्त में कम्पनी के डाइरेक्टरों ने लिखा कि—

“जिस उसूल का इस समय इङ्गलिस्तान में बड़े ज़ोरों के साथ प्रचार किया जा रहा है वह यह है कि हिन्दोस्तान पर हुकूमत करने में हमें ख़ास नज़र इसी बात पर रखनी चाहिए कि जो अंगरेज़ वहाँ रहते हैं, उन्हें किसी तरह फ़ायदा हो ।”†

डाइरेक्टरों ने इस दरखास्त में पार्लिमेण्ट को तफ़सील के साथ यह भी सलाह दी कि भारत के भावी शासन में किन किन बातों के ख़ास ख़याल रखने की ज़रूरत है ।

किन्तु अंगरेज़ क़ौम की बढ़ती हुई माँग को अब पूरा न करना असम्भव था । कम्पनी की प्रार्थना अब स्वीकार न हो सकती थी । भारतवासियों के दिलों को भी किसी नए और गहरे परिवर्तन द्वारा अपनी ओर करने की ज़रूरत थी । सन् १८५८ में ही भारत के अन्दर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन का ख़ात्मा कर दिया गया । भारत में अंगरेजी राज के शासन की बाग़ इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट ने स्वयं अपने हाथों में ले ली । हाउस ऑफ़ कॉमन्स ने

* “ . . . how very different would probably have been the issue of late events, if the Native princes instead of aiding in suppressing the rebellion, had put themselves at its head, or if the general population had joined in the revolt : ”—East India Company's petition to Parliament, 1858.

† “ The doctrine now widely promulgated that India should be administered with an special view to the benefit of the English who reside there. ”—Ibid.

१६ मार्च सन् १८५८ को एक नई कमेटी नियुक्त की। इस कमेटी का काम नीचे लिखे शब्दों में निश्चित किया गया—

“तहक्रीक़ात की जाय कि हिन्दोस्तान में, खास कर देश के पहाड़ी ज़िलों और अधिक स्वास्थ्यजनक स्थानों में यूरोपियनों की बस्तियाँ आबाद करने और उपनिवेश बढ़ाने के लिए और साथ ही मध्य एशिया के साथ हमारी तिजारत को तरक्की देने के लिए क्या क्या किया जा चुका है, क्या क्या किया जा सकता है और उसके क्या क्या सर्वोत्तम उपाय हैं ?”*

सर चार्ल्स मेटकाफ़ ने यह राय देते हुए कि भारत का शासन कम्पनी के हाथों से लेकर पार्लिमेण्ट के हाथों में दे दिया जाय, लिखा कि—

“यद्यपि मालूम होता है कि हिन्दोस्तान के लोग इस बारे में बिल्कुल उदासीन हैं कि हिन्दोस्तान के ऊपर कम्पनी द्वारा शासन किया जाय या बराहारास्त इज़लिस्तान के मन्त्रियों द्वारा फिर भी भारत की दूसरी रिश्ताया इस बारे में उदासीन नहीं है, यानी जो यूरोपियन हिन्दोस्तान में रहते हैं और जो कम्पनी के नौकर नहीं हैं और इनके अलावा आम तौर पर वे सब लोग जो दोगली नसल के हैं, वे अब कभी भी कम्पनी के शासन से सन्तुष्ट न होंगे।”

ज़ाहिर है कि इस परिवर्तन में हिन्दोस्तानियों की इच्छा का

* “To inquire into the progress and prospects, and the best means to be adopted for the promotion of European colonization and settlement in India, especially in the hill districts and healthier climates of that country; as well as for the extension of our commerce with Central Asia.”—Terms of Reference of the Select Committee of the House of Commons, 16th March, 1858.

इतना सवाल न था जितना अंगरेजों की इच्छा का। इसके बाद किसी को भी इस विषय में सन्देह नहीं हो सकता कि भारत का शासन कम्पनी के हाथों से लेकर इङ्गलिस्तान के मन्त्रिमण्डल के हाथों में देने का खास उद्देश भारतवासियों को लाभ पहुँचाना न था, बल्कि भारत के सर्वोत्तम प्रदेशों में यूरोपनिवासियों के उपनिवेश बना कर भारतवासियों को अपने गोरे मालिकों के लिए “लकड़ी चीरने वालों और पानी भरने वालों” की अवस्था तक पहुँचा देना था। कम्पनी के शासन को अन्त कर देने में हो अब अंगरेज नीतिज्ञों को भारत में अंगरेजी राज की स्थिरता और उसका भावी हित दिखाई देता था।

विश्व के पूरी तरह शान्त होने से पहले ही भारत का शासन कम्पनी के हाथों से लेकर इङ्गलिस्तान की सरकार के हाथों में दे दिया गया। मलका
२—मलका विक्टोरिया
का एलान
विक्टोरिया उस समय इङ्गलिस्तान के सिंहासन पर थी। हिन्दोस्तान के राजाओं, रईसों, सरदारों और समस्त प्रजा के नाम मलका की ओर से एक एलान प्रकाशित किया गया, जिसका जिक्र हम ऊपर एक अध्याय में कर चुके हैं। सार रूप में इस एलान के अन्दर नए अधिकार परिवर्तन की सूचना दी गई, भारतवासियों को सलाह दी गई कि वे मलका, उसके उत्तराधिकारियों और उनके द्वारा नियुक्त अफसरों के सदा वफ़ादार रहें। लॉर्ड कैनिङ्ग को भारत का पहला वाइसराय नियुक्त किया गया, देशी राजाओं को यह विश्वास दिलाया गया कि जो सन्धियाँ

और अहदनामे आप लोगों के साथ इस समय तक किए जा चुके हैं, इङ्गलिस्तान की सरकार उन पर कायम रहेगी, भारतीय प्रजा को विश्वास दिलाया गया कि तुम्हारे मज़हब में किसी तरह का दखल न दिया जायगा, और अन्त में लोगों से विस्रव को शान्त करने की प्रार्थना करते हुए मलका विक्टोरिया ने एलान किया—

“जब ईश्वर की कृपा से देश में फिर से शान्ति कायम हो जायगी, तब हमारी हार्दिक इच्छा है कि हिन्दोस्तान की कारीगरी को तरक्की दी जाय, ऐसे ऐसे काम बढ़ाए जाय जिनसे आम जनता को लाभ हो और उनकी उन्नति हो, और शासन इस तरह से चलाया जाय जिससे भारत में रहने वाली हमारी समस्त रिश्ताया को लाभ हो। प्रजा की खुशहाली ही में हमारा बल है, उनके सन्तोष में हमारी सलामती है और उनकी कृतज्ञता हमारे लिए सब से अच्छा इनाम है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा हमें और हमारे मातहत अफसरों को बल दें, ताकि हम अपनी इन इच्छाओं को अपनी प्रजा के हित के लिए पूरा कर सकें।”

ऊपर लिखा वाक्य इस एलान का सब से अधिक चित्ताकर्षक वाक्य है। अनेक भोले भारतवासियों के लिए एलान के ये शब्द काफी सान्त्वना देने वाले साबित हुए और उन पर भरोसा करके सन् ५७ की विशाल युद्धाग्नि में समाप्त हो जाने वाले स्वदेशी मुग़ल साम्राज्य की जगह उन्होंने विदेशी अंगरेज़ी राज को अपना लिया। किन्तु वास्तव में इस एलान का मूल्य इस तरह के अन्य राजनैतिक एलानों से किसी तरह ज़्यादा न था और न यह एलान या कम्पनी से लेकर इङ्गलिस्तान के बादशाह के हाथों में शासन की बाग का

दिया जाना दोनों में से कोई बात भारत की ओर अंगरेज़ शासकों की नीति में किसी तरह के भी मौलिक परिवर्तन का चिन्ह थी। इस एलान का मुख्य उद्देश था स्वतंत्रता संग्राम में असफल भारतवासियों के दिलों को किसी तरह शान्त करना और इसमें सन्देह नहीं, इस उद्देश में अंगरेज़ शासकों को काफी सफलता मिली। प्रसिद्ध अंगरेज़ इतिहास लेखक फ्रीमैन ने बहुत दिनों बाद इस तरह के एलानों के विषय में लिखा—

“किन्तु जब हम विज्ञप्तियों और एलानों की ओर आते हैं X X X तो हम झूठ के खास चुने हुए मैदान में पहुँच जाते हैं, X X X निस्सन्देह जो मनुष्य पार्लियामेंट के हर काम या हर क़ानून पर विश्वास कर लेता है, वह बालक की तरह भोला है।”*

इस तरह के जितने वादें इङ्गलिस्तान ने हिन्दोस्तान के साथ किए हैं, उन सबको मारकिस ऑफ़ सैलिसबरी ने साफ़ “राजनैतिक छल (Political hypocrisy)” स्वीकार किया है।

भारत सरकार के प्रसिद्ध और सुयोग्य लॉ मेम्बर सर जेम्स स्टीफ़ेन ने मलका विक्टोरिया के इस खास एलान के विषय में साफ़ कहा था कि यह एलान—“केवल एक रसमी पत्र था, यह कोई अहदनामा न था जो भारत के अंगरेज़ शासकों के ऊपर किसी तरह का भी बन्धन हो, इस एलान की कोई भी क़ानूनी कीमत

* “ . . . But when we come to manifestoes, proclamations . . . here we are on the very chosen region of lies, He is of child-like simplicity indeed who believes every act of Parliament,”—Freeman's *Methods of Historical study*, pp. 258, 259.

नहीं है (The Proclamation has no legal force whatever.) ।”

इङ्गलिस्तान की राज व्यवस्था के अनुसार भी मलका को कोई इस तरह का अधिकार प्राप्त न था और न इङ्गलिस्तान के किसी बादशाह को प्राप्त है, जिससे इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट या वहाँ के मन्त्री बादशाह के किसी एलान के अनुसार अमल करने के लिए मजबूर किए जा सकें । पहली नवम्बर सन् १८५८ को लॉर्ड कैनिङ्ग ने यह एलान इलाहाबाद में पढ़ कर सुनाया । भारत के अंगरेज़ शासकों ने उस समय से आज तक अपने व्यवहार में इस एलान के वादों की कभी अणुमात्र भी परवा नहीं की ।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि लॉर्ड डलहौज़ी का उद्देश भारत के समस्त मानचित्र को अंगरेज़ी राज के रङ्ग में रँग देना था । पञ्जाब, नागपुर, अवध, सतारा, भाँसी इत्यादि पर कब्ज़ा किया जा चुका था । १८ अप्रैल सन् १८५६ को पार्लिमेण्ट के सामने वक्तृता देते हुए सर अर्सकाइन पेरी ने कहा था,—“इसके बाद अब निज़ाम के राज की बारी है । उसके बाद मालवा की उपजाऊ भूमि पर कब्ज़ा किया जायगा, जहाँ की काली मिट्टी में रुई और अफीम बहुत अच्छी पैदा हो सकती है । फिर गुजरात जो उससे भी ज़्यादा ज़रखेज़ है । x x x राजपूताने और बाक़ी की छै करोड़ देशी प्रजा को इसके बाद विजय किया जायगा ।” इत्यादि॥

* Speech by Sir Erskine Perry in the House of Commons on April 18th, 1856.

किन्तु अगले ही साल विसव ने यह सारा नक्शा बदल दिया । अंगरेजों की आँखें खुल गईं, वे समझ गए कि लॉर्ड डलहौजी की अपहरण नीति ही विसव का एक खास कारण थी । उन्हें अब अपना हित और अपने साम्राज्य की स्थिरता हिन्दोस्तान की बाकी देशी रियासतों के कायम रहने में ही दिखाई देने लगी ।

निस्सन्देह विसव के बाद भी और विसव के ऐन दिनों में भी कुछ ऐसे अंगरेज मौजूद थे, जो रही सही देशी रियासतों को खत्म करके अंगरेजी राज में मिला लेने के पक्ष में थे । सन् १८५८ में लन्दन में “इण्डियन पॉलिसी (भारतीय नीति)” नामक एक पत्रिका प्रकाशित हुई, जिसमें भारत के अंगरेज शासकों को यह सलाह दी गई कि हर देशी नरेश के मरने पर वे उसके राज पर कब्ज़ा कर लें । किन्तु विचारवान् अंगरेज नीतिज्ञों को इस सलाह के मानने में अपने साम्राज्य का हित दिखाई न दिया । यही वजह है कि विसव के बाद से अब तक एक बरमा को छोड़ कर किसी नई देशी रियासत पर कब्ज़ा नहीं किया गया । इसमें भी सन्देह नहीं कि जिस नीति का पिछले ७० साल के अन्दर अंगरेज शासकों ने देशी नरेशों के साथ व्यवहार किया है, उसका नतीजा यह है कि धीरे धीरे हिन्दोस्तान की करीब करीब सब देशी रियासतें विदेशी अंगरेजी राज की स्थिरता में किसी तरह का खतरा हो सकने के बजाय ब्रिटिश साम्राज्य की खास पोषक बन गई हैं ।

सन् ५७से अब तक हिन्दोस्तान की सैकड़ों छोटी बड़ी रियासतों के साथ जिस तरह का व्यवहार किया गया है, जिस तरह

अंगरेज़ रेज़िडेण्टों, पोलिटिकल एजण्टों इत्यादि द्वारा क़दम क़दम पर देशी नरेशों के न्याय्य अधिकारों में हस्तक्षेप होता रहा है, जिस तरह हिन्दोस्तानी राजकुमारों की शिक्षा पर अंगरेज़ नीतिज्ञों ने सदा अपना ही अनन्य अधिकार बनाए रखा, जिसमें कभी कभी उन कुमारों के अभिभावकों और स्वयं गद्दीनशीन नरेशों तक को दखल देने का अधिकारी नहीं समझा गया, जिस तरह अनेक राजकुमारों के चरित्र का व्यवस्थित और वैज्ञानिक ढंग से सत्यानाश किया गया है और फिर कभी कभी उस चरित्र हीनता को ही उनकी अयोग्यता का सुबूत मान लिया गया है, यह सब लम्बी और दुःखकर कहानो संसार के साम्राज्यों के इतिहास में अपना खास स्थान रखती है। इसकी दूसरी मिसालें ढूँढ़ने के लिए हमें पच्छिम एशिया के ऊपर आज से चार पाँच हजार साल पहले के मिथ्री साम्राज्य और उसके दो तीन हजार साल बाद के रोमन साम्राज्य के इतिहास को पढ़ना होगा। किन्तु यह सब विषय हमारी इस पुस्तक के प्रसंग से बाहर है।

अंगरेज़ों की देशी फ़ौजों के सिपाही ज़्यादातर देशी रियासतों से भरती किए जाते हैं, और ब्रिटिश भारत के किसी भी विद्रोह को दमन करने में वे ही अधिक उपयोगी साबित होते हैं।

हिन्दोस्तान में अंगरेज़ों के उपनिवेश यानी अंगरेज़ी बस्तियाँ बसाने का चरचा वारन हेस्टिंग्स के समय से चला आता था। किन्तु इस विषय पर अंगरेज़ नीतिज्ञों में सदा काफ़ी मतभेद रहा। अनेक

४-भारत में अंगरेज़ी
उपनिवेश

अंगरेज़ उन दिनों इस तरह के उपनिवेशों को बढ़ने देने के विरुद्ध थे। वारन हेस्टिंग्स की कौन्सिल के सदस्य मॉनसन की राय थी कि अंगरेज़ भारत में खेती इत्यादि का कार्य न कर सकेंगे, और यदि करने की चेष्टा करेंगे तो उनका रहन सहन भारतीय प्रजा की अपेक्षा इतना महंगा होगा कि उसकी वजह से सरकार की आमदनी में बहुत कमी पड़ जायगी।

७ नवम्बर सन् १७८४ को कॉर्नवालिस ने इङ्गलिस्तान के भारत मन्त्री डगडास को लिखा कि—“ब्रिटेन के हित के लिए यह बात बड़े महत्व की है कि यूरोपनिवासियों को जहाँ तक हो सके हमारे भारतीय इलाकों में उपनिवेश बनाने और बसने से रोका जाय।”

४ फ़रवरी सन् १८०१ को डाइरेक्टरों ने भारत में इस तरह के उपनिवेशों के विरुद्ध एक प्रस्ताव पास किया।

सन् १८१३ में कम्पनी के अनन्य अधिकार को तोड़ कर समस्त इङ्गलिस्तान निवासियों के लिए भारत आने और तिजारत करने का मैदान खोल दिया गया। इसके बाद दक्खिन और उत्तर के कई नए पहाड़ी इलाके अंगरेज़ी राज में मिलाए गए। इसलिए इङ्गलिस्तान के कुछ लोगों ने कम्पनी के डाइरेक्टरों की राय के खिलाफ़ फिर भारत में अपने उपनिवेश बनाने के लिए आन्दोलन शुरू किया। इन लोगों की मुख्य दलील यह थी कि इस तरह के उपनिवेशों की मदद से अंगरेज़ी राज भारत में अधिक दिनों तक कायम रह सकेगा। अन्य नीतिज्ञों के अलावा सर फ़्रेडरिक शोर भी इस तरह के उपनिवेशों के पक्ष में था। उसकी दलील यह थी—

“अंगरेज़ी सत्ता के उलट जाने से इस तरह के नए बसे हुए (विदेशी) लोगों को कोई फ़ायदा न होगा, बल्कि उन्हें हर तरह से नुक़सान होगा, इसलिए हिन्दोस्तानियों की तरफ़ से किसी भी उपद्रव या बगावत के समय ये लोग अपना सारा प्रभाव गवरमेण्ट के पक्ष में लगा देंगे और अपने देशी नौकरों, साथियों आदि को भी ऐसा ही करने के लिए उत्तेजित करेंगे; इसके विपरीत भारतवासियों के भाव अंगरेज़ सरकार की ओर इस तरह के हैं कि जब कभी कोई बगावत होती है तब जो लोग बगावत में शामिल नहीं होते वे भी कम से कम तटस्थ रहते हैं, किन्तु सरकार को प्रायः कोई सहायता नहीं देता।”*

सर चार्ल्स मेटकॉफ़ और लॉर्ड विलियम बैरिटज़ भी भारत में अंगरेज़ी उपनिवेश बनाने के पक्ष में थे। उनकी दलीलें भी ठीक इसी तरह की थीं। नतीजा यह हुआ कि सन् १८३३ के चारटर एक्ट में उन अंगरेज़ों के लिए कई तरह की नई सुविधाएँ कर दी गईं, जो भारत में आकर बसना चाहते थे।

नैपाल के रेज़िडेण्ट ब्रायन हॉटन हॉजसन ने दिसम्बर सन् १८५६ में हिमालय की उर्वर घाटियों में यूरोपियनों के उपनिवेश बनाने के पक्ष में एक अत्यन्त जोरदार पत्र लिखा। उसने लिखा—

“X X X हिमालय में अपने उपनिवेशों को बढ़ाना अंगरेज़ सरकार के सर्वोच्च और सबसे अधिक महत्वपूर्ण कर्त्तव्यों में से एक है।”

हॉजसन की राय में “भारत के अन्दर ब्रिटिश सत्ता को स्थायी बनाने के लिए सब से बड़ा, सब से पक्का, सबसे निःशङ्क और

सबसे सुगम राजनैतिक उपाय”* भारत के अन्दर अंगरेजों के उपनिवेश ही हो सकते थे ।

हॉजसन की तजवीज़ थी कि आयरलैंड और स्कॉटलैंड के किसानों को मुक्त ज़मीनें देकर भारत में बसने के लिए प्रोत्साहित किया जाय ।

सन् ५७ के बाद इस विषय का आन्दोलन इङ्गलिस्तान में और भी अधिक जोर के साथ होने लगा । इसी लिए सन् १८५८ में पार्लिमेण्ट ने वह तहकीकाती कमेटी कायम की जिसका जिक्र हम ऊपर कर चुके हैं ।

इसके साथ साथ अनेक तरीकों से उस समय के अंगरेज शासकों ने अपने देशवासियों और खास कर अंगरेज पूँजीपतियों को भारत में आकर बसने के लिए उत्साहित करना शुरू किया । आसाम और कुमायूं में अंगरेज सरकार ने हिन्दोस्तानियों के खर्च पर चाय की काश्त के तजुरबे किए और यह खुले प्लान कर दिया कि इन तजुरबों के सफल होने पर चाय के सरकारी खेत उन अंगरेजों को दे दिए जायेंगे जो इस काम के लिए आसाम और कुमायूं में बसना चाहेंगे । तजुरबों का सारा खर्च हिन्दोस्तानियों के सर पर पड़ा और दोनों स्थानों के चाय के खेत बाद में अंगरेजों

* “ . . . the encouragement of colonization therein is one of the highest and most important duties of the Government, . . . greatest, surest, soundest and simplest of all political measures for the stabilisation of the British power in India, . . . ”—Brian Houghton Hodgson, Resident of Nepal, on the Colonization of the Himalayas by Europeans, December, 1856.

के हवाले कर दिए गए। हिन्दोस्तानियों ही के खर्च पर कई अंगरेजों को इसलिए चीन भेजा गया कि वे चीन से चाय के बीज लाएँ, चीनी काश्त के तरीकों को सीखें और वहाँ से चीनी विशेषज्ञ साथ लाकर भारत में अपने धन्धे को तरकी दें। पिछले डेढ़ सौ साल से ऊपर के ब्रिटिश शासन में कभी किसी भारतीय व्यापार को उत्तेजना देने के लिए अंगरेज सरकार ने इस तरह के प्रयत्न नहीं किए। यूरोपियन पूँजीपतियों की बचत को बढ़ाने और पक्का करने के लिए हिन्दोस्तानी मजदूरों के सम्बन्ध में भारत सरकार ने इस तरह के क़ानून पास किए जिनसे हजारों भारतवासी इन लोगों के क़ानूनी गुलाम बन गए। इन क़ानूनी गुलामों के साथ अंगरेज पूँजीपतियों और उनके नौकरों का व्यवहार ब्रिटिश भारतीय इतिहास का एक अत्यन्त कलङ्कित अध्याय है।

ठीक इसी तरह धन इत्यादि की सहायता कुमायूँ ही में लोहे का धन्धा करने वाले अंगरेजों को दी गई।

नील की खेती करने वाले अंगरेजों को भी भारतवासियों के धन से समय समय पर सहायता दी जा चुकी है और हिन्दोस्तानी मजदूरों के साथ इन निलहे गोरों के घोर अमानुषिक व्यवहार का चरचा अनेक बार देशी समाचार पत्रों में हो चुका है। रेलों, सड़कों और उनके विचित्र नियमों द्वारा भी इन अंगरेजों को अपने कार्य में हर तरह की सहायता दी गई है।

सन् १८५८ की कमेटी के सामने गवाहों ने यह सब बातें विस्तार के साथ बयान कीं। गवाहों में से कुछ की राय थी कि

भारत के पहाड़ी प्रदेशों पर अंगरेज किसानों और मजदूरों को आबाद कर दिया जाय और भारत के मैदानों में इस तरह के अंगरेज पूंजीपतियों को बसाया जाय जो अपने अधीन हिन्दोस्तानी किसानों और मजदूरों से काम ले सकें। इससे बढ़ कर कुछ लोगों की राय यहाँ तक थी कि एलजीरिया (उत्तर अफ़रीका) के समान समस्त हिन्दोस्तान में अंगरेज पूंजीपतियों से लेकर अंगरेज किसानों और मजदूरों तक को बसाया जावे। अंगरेजों को भारत में ज़मींदारी करने के लिए अनेक तरह की सुविधाएँ दी जाने की सलाह भी हुई।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में अंगरेजों की बस्तियाँ बसाने के खिलाफ़ थी। यह बात कमेटी के सामने अनेक गवाहों ने अपने बयानों में कही है। इन गवाहों में से हम केवल एक जे० जी० वॉलर का बयान नीचे उद्धृत करते हैं। उससे पूछा गया—

“भारत में यूरोपियनों को बसने में ख़ास ख़ास एतराज़ कौन से हो सकते हैं ?”

गवाह ने उत्तर दिया—

“मैं समझता हूँ, मैं कई एतराज़ गिना चुका हूँ; किन्तु एक और एतराज़ इतने महत्व का है कि मेरे लिए उसे छोड़ देना अपने विषय के साथ इन्साफ़ करना न होगा। मैं समझता हूँ कि जो कम्पनी बतौर एक अमीन के बादशाह के नाम पर इस समय भारत पर शासन कर रही है, उसके हाथों से शासन का अधिकार ले लेना नितान्त आवश्यक है। यदि अंगरेज सरकार का वास्त-

बिक उद्देश यह है कि हिन्दोस्तान में अङ्गरेजों को बसने के लिए प्रोत्साहित किया जाय, तो X X X मेरी राय है कि X X X अङ्गरेज अपने बादशाह के स्थान पर किसी बीच की कम्पनी का अधिकार स्वीकार न करेंगे। X X X मैं समझता हूँ कि न केवल अङ्गरेजों को भारत में उपनिवेश बनाने के लिए प्रेरित करने और प्रोत्साहित करने के लिए ही, बल्कि उस अत्यन्त विशाल देश पर अपना प्रभुत्व जमाए रखने के लिए भी भारत के शासन में क्रौर्य गहरे परिवर्तन की ज़रूरत है, और इन परिवर्तनों के लिए केवल तभी मार्ग तैयार किया जा सकता है जब कि कम्पनी की जगह इङ्गलिस्तान के बादशाह का नाम और बादशाह का अधिकार कायम कर दिया जाय।”

कम्पनी तोड़ दी गई। भारत में कई स्थानों पर खास कर, कई ज़रखेज़ पहाड़ी इलाकों में अंगरेजों की बस्तियाँ बसाने की जी तोड़ कोशिशें की गईं। इन कोशिशों का विस्तृत इतिहास हमारे प्रसंग से बाहर है। किन्तु बावजूद कम्पनी के तोड़ दिए जाने के और बावजूद इन तमाम कोशिशों, कमेटियों, गवाहियों, सुविधाओं, इरादों और उत्तेजनाओं के पिछले ८० साल के अन्दर संसार के अन्य देशों की तरह हिन्दोस्तान में अंगरेजों की बस्तियाँ आबाद न हो सकीं। इस असफलता की वजह बयान करते हुए टाउनसेण्ड अपनी पुस्तक ‘एशिया एण्ड यूरोप’ में लिखता है :—

“कहा जाता है कि हिन्दोस्तान में गोरों (यूरोपियनों) की कमी का कारण वहाँ की आबोहवा है, किन्तु वहाँ की पहाड़ियों पर भी तो कोई अङ्गरेज जाकर नहीं बसता। अङ्गरेज न्यू साउथवेल्स (ऑस्ट्रेलिया) के गरम मैदानों में रहते हैं; अमरीका के गोरे लोग X X X फ्लोरिडा (मध्य अमरीका) के उन

मैदानों में भरे हुए हैं जिनमें मारे गरमी के भभूके उठते हैं; स्पेन के लोग दोनों अमरीकाओं के गरम प्रदेशों में एक शासक जाति की हैसियत से बसे हुए हैं; डच लोग जावा में रह रहे हैं; किन्तु अंगरेज़, चाहे उन्हें कितने भी प्रलोभन क्यों न दिए जायँ, भारतवर्ष में नहीं ठहर सकते। ऐसे ज़ोरों के साथ उनकी तबियत ऊबती है, इतने ज़ोरों के साथ वे इस बात को अनुभव करने लगते हैं कि हम यहाँ पर देश के निवासियों से बिल्कुल अलग परदेशी हैं, कि फिर चाहे उन्हें कितनी भी कुरबानी क्यों न करनी पड़े; धन, पदवी या अपने सुखकर कारबार में उन्हें कितनी भी हानि क्यों न सहनी पड़े, वे चुपचाप वहाँ से खिसक कर यूरोप चले आते हैं।”

निस्सन्देह भारत की भूमि के अभी तक अंगरेजी उपनिवेशों के शाप से बचे रहने की असली वजह यह है कि भारत एक प्राचीन, विशाल और अत्यन्त घना बसा हुआ देश है। अंगरेज़ों के लिए न यहाँ की करोड़ों जनता को मिटा कर उनकी जगह लेना इतना सरल है जितना ऑस्ट्रेलिया के अर्धसभ्य आदिमवासियों को मिटा कर उनकी जगह लेना, और न वे यूरोपनिवासी, जो अभी तक ‘सभ्यता’ के उच्चतर अङ्गों में भारतवासियों से कहीं पीछे हैं, जिनके और भारतवासियों के चरित्रों, रहन सहन और आदर्शों में इतना ज़बरदस्त अन्तर है, बिना अपना जातीय व्यक्तित्व खोए भारतवासियों के साथ किसी तरह भी मिल जुल कर भारत में रह सकते हैं।

सन् १८१३ के 'चारटर एक्ट' में एक धारा यह भी थी कि जो
 १-राष्ट्रीय भावों का नाश
 अंगरेज़ ईसाई पादरी भारतवासियों के "धार्मिक
 उद्धार" के लिए यानी उन्हें ईसाई बनाने के लिए
 "भारत जाना चाहें और वहाँ रहना चाहें" उन्हें

"कानून के ज़रिए हर प्रकार की सुविधा" दी जाय। चुनावों के
 इसके बाद से ही "ईसाई धर्म प्रचार का एक सरकारी मोहकमा
 (एक्लेज़िएस्टिकल डिपार्टमेण्ट)" भारत में खोल दिया गया और
 उसका खर्च ज़बरदस्ती भारतवासियों के सिर मढ़ दिया गया।

सन् ५७ के विद्रोह के बाद अंगरेज़ नीतिज्ञों में इस विषय पर
 खूब बहस होने लगी। मार्च सन् १८५८ की अंगरेज़ी पत्रिका "दी
 कैलकटा रिव्यू" में एक अंगरेज़ का लिखा हुआ नीचे लिखा वाक्य
 मिलता है जिससे पता चलता है कि उस समय के अंगरेज़ नीतिज्ञों
 को क्या क्या बातें सूझ रही थीं। वह अंगरेज़ लिखता है—

"हमें चारों ओर X X X इस समय की आवाज़ें सुनाई दे रही हैं;
 जिनमें ज़ोरों के साथ यह सलाह दी जाती है कि हमें क्या करना चाहिए।
 कोई कहता है 'भारत को अवश्य ईसाई बना लेना चाहिए', कोई कहता है
 'भारत भर में अंगरेज़ों को बसाना चाहिए', कोई कहता है 'मुसलमानों के
 मज़हब को दबा देना चाहिए', कोई कहता है 'हमें हिन्दोस्तानी ज़बान को
 ख़त्म कर देना चाहिए और उसकी जगह अपनी मातृभाषा (अंगरेज़ी)
 प्रचलित कर देनी चाहिए'। ये इनमें से केवल थोड़ी सी आवाज़ें हैं।"^{१४}

* " . . . on every hand, we hear the voices of the times . . .
 urging the popular measure of the hour, 'India must be christianized'—

सन् ५७ के बाद अधिकांश अंगरेज नीतिज्ञ इस बात को और अधिक जोरों के साथ अनुभव करने लगे थे कि भारतवासियों के दिलों से राष्ट्रीयता के रहे सहे भावों को मिटा देना और आइन्दा इस तरह के भावों को पनपने न देना अंगरेजी साम्राज्य की स्थिरता के लिए आवश्यक है। इसके उस समय दो मुख्य उपाय सोचे गए—(१) भारत में ईसाई मत प्रचार और (२) अंगरेजी शिक्षा।

मलका विक्टोरिया ने अपने एलान में यह वादा किया था कि मजहब के मामले में अंगरेज सरकार किसी तरह का पक्षपात न करेगी। किन्तु विभव के केवल अगले ही वर्ष इङ्गलिस्तान के प्रधान मन्त्री लॉर्ड पामर्सटन ने ईसाई पादरियों के एक डेपुटेशन के उत्तर में कहा—

“मालूम होता है कि अन्तिम लक्ष्य के विषय में हम सब का एक ही मत है। समस्त भारत में पूरब से पच्छिम तक और उत्तर से दक्खिन तक ईसाई मत के फैलाने में जहाँ तक हो सके मदद देना, न केवल हमारा कर्ज़ है बल्कि इसी में हमारा फ़ायदा है।”*

‘India must be colonized’—‘The Mohammedan religion must be suppressed,’—‘We must abolish the vernacular and substitute our mother tongue,’ such are but a few,”—*The Calcutta Review*, March 1858, p. 163.

* “We seem to be all agreed as to the end. It is not only our duty, but it is our interest to promote the diffusion of Christianity as far as possible throughout the length and breadth of india.”—Lord Palmerston, to a deputation headed by the Archbishop of Canterbury, in 1859, *The Conversion of India*, by George Smith, C. I. E., L. L. D., p. 233.

सन् ५७ के विप्लव पर टीका करते हुए अनेक अंगरेज पादरियों ने कहा—

“हमारे दुश्मन वे मुसलमान थे जिनके मज़हब की तारीफ़ करके हमने उन्हें फुला दिया, और वे हिन्दू थे जिनके अन्धविश्वासों को हमने पुष्ट किया, किन्तु हमारे सच्चे मित्र वे हिन्दोस्तानी थे जिन्हें हमारे पादरियों ने ईसाई बना लिया था।”

इन लोगों के ईसाई मत प्रचार का एक मात्र उद्देश अपने साम्राज्य को पक्का करना था। विलियम एडवर्ड्स विप्लव के दिनों में कम्पनी का मुलाज़िम था और बाद में आगरा हाईकोर्ट का एक जज हुआ। उसकी राय थी—

“हम विदेशी आक्रामक और विजेता समझे जाते हैं और सदा समझे जायेंगे, X X X हमारे लिए अपनी रक्षा का सबसे अच्छा उपाय यह है कि हम देश को ईसाई बना लें; X X X देशी ईसाइयों की बस्तियाँ जब देश में इधर उधर फैल जायेंगी तो वे अनेक वर्षों तक हमारी मज़बूती के लिए स्तम्भों का काम देंगी, क्योंकि जब तक अधिकांश जनता मूर्तिपूजक (हिन्दू) या मुसलमान रहेगी, तब तक ये ईसाई लोग अवश्य राजभक्त रहेंगे।”❀

लॉर्ड विलियम बैरिस्ट्र की कोशिशों और पञ्जाब को ईसाई बनाने की तजवीज़ों का ज़िक्र इससे पहले किया जा चुका है।

* “We are, and ever must be, regarded as foreign invaders and conquerors, . . . Our best safeguard is in the evangelization of the country; . . . Christian settlements scattered about the country would be as towers of strength for many years to come, for they must be loyal as long as the mass of the people remain either idolaters [or Mohammedans.”—William Edwardes.

जो गरज़ भारतवासियों को ईसाई बनाने या मुसलमानों को दबाने से थी वही भारत में अंगरेज़ी शिक्षा के प्रचार से थी। लार्ड मैकाले इस शिक्षा का सब से ज़बरदस्त हामी था और उसके असली विचारों का ज़िक्र हम ऊपर शिक्षा के अध्याय में कर चुके हैं।

भारत को विचित्र स्थिति में देश को ईसाई बनाने का प्रयत्न अधिक न चल सका और न अधिक खुले तौर पर उसे शासन नीति का एक अंग बनाया जा सका। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अंगरेज़ी शिक्षा ने एक खासी श्रेणी ऐसे लोगों की पैदा कर दी है, जो अपनी रोज़ी के लिए अंगरेज़ी राज पर निर्भर हैं, जो उस राज के विशेष स्तम्भ हैं, जिनके रहन सहन और भारतीय जनता के रहन सहन में बहुत बड़ा अन्तर पैदा हो गया है, और जिनमें सामूहिक दृष्टि से राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय मान के भावों का करीब करीब अभाव है।

आज कल की यूरोपियन राजनीति में किसी देश पर शासन करने का मतलब ही उस देश से अधिक से अधिक धन खींचना है। भारत को 'लूट' से ही इङ्गलिस्तान के और विशेष कर लङ्काशायर के कारख़ाने चले, जिसका ज़िक्र एक पिछले अध्याय में किया जा चुका है। सन् ५७ के बाद "भारत की उपजाऊ शक्ति को उन्नति देने (Development of the resources of India)" का विशेष चरचा सुना जाने लगा। इसके छै खास खास उपाय सोचे गए।

६-हिन्दोस्तान की
उपजाऊ शक्ति को
उन्नति देना

(क) भारत में रेलों का जारी करना—भारत में रेलें उसी धन से जारी की गईं जो अंगरेजों ने मुख्तलिफ़ तरीकों से भारत से कमाया था। एक पिछले अध्याय में दिखाया जा चुका है कि इस तरह के कामों के लिए कभी एक पैसा भी इङ्गलिस्तान से लाकर हिन्दोस्तान में खर्च नहीं किया गया। इस पर भी पार्लिमेण्ट के एक मेम्बर स्विफ्ट मैकनील ने १४ अगस्त सन् १८६० को कहा था—

“यह हिसाब लगाया जा चुका है कि जितना धन भारत में रेलों पर खर्च किया जाता है, उसमें से हर शिल्लिंग पीछे आठ पेंस (यानी दो तिहाई) इङ्गलिस्तान चला आता है।”*

इन रेलों के मुख्य कार्य हैं—भारत से गेहूँ, कपास आदि इङ्गलिस्तान भेज सकना, इङ्गलिस्तान का बना हुआ माल भारत के कोने कोने में पहुँचाना और ज़रूरत पड़ने पर इधर से उधर तक सेनाओं का ले जा सकना। निस्सन्देह हमारी आज कल की पराधीन स्थिति में ये रेलें भारतवासियों के धन, उनके धन्यों और उनके स्वास्थ्य तीनों के लिए नाशक और बेशुमार ग्रामों को उजाड़ देने वाली साबित हुई हैं।

(ख) रुई की खेती—इङ्गलिस्तान को अपने कपड़े के धन्धे के लिए रुई पहले अमरीका से मंहगे दामों पर लेनी पड़ती थी। भारत में बरार, सिन्ध और पञ्जाब अपनी सुन्दर रुई के लिए

* It has been computed that out of every shilling spent in railway enterprise, 8d. makes its way to England. —Swift Macneill in the House of Commons 14th August, 1890.

मशहूर थे। इन देशों पर अंगरेजों के कब्जा करने का एक खास मतलब यह था कि इङ्गलिस्तान के कारखानों को सस्ती रुई भेजी जा सके। सन् १८५८ के बाद इसके लिए विशेष प्रयत्न किए गए। एक नई 'ईस्ट इण्डिया कॉटन कम्पनी' कायम की गई और रुई की काश्त और उसके इङ्गलिस्तान भेजे जाने की ओर खास ध्यान दिया गया। इङ्गलिस्तान और हिन्दोस्तान के सम्बन्ध का सब से मुख्य रूप उस समय से आज तक कच्ची रुई का भारत से इङ्गलिस्तान जाना और इङ्गलिस्तान के बने हुए कपड़ों का भारत में आकर बेचा जाना है। यही इङ्गलिस्तान के लोगों की जीविका का सबसे बड़ा आधार है।

(ग) अंगरेज पूंजीपतियों को सुविधाएँ—भारत में आकर धन्धा करने वाले अंगरेज पूंजीपतियों को शुरू से खास सुविधाएँ मिलती रही हैं। चाय, नील इत्यादि की खेती कराने वाले अंगरेजों के साथ सरकार की रिश्तायतों का जिक्र ऊपर इसी अध्याय में किया जा चुका है। इन अंगरेज पूंजीपतियों के फायदे के लिए चाय और नील के बागीचों के लाखों हिन्दोस्तानी मजदूरों के साथ जो सलूक भारत सरकार ने जायज रखा है उसकी दूसरी मिसाल ढूंढने के लिए हमें पौने दो हजार साल पहले रोमन गुलामी की प्रथा के अमानुषिक इतिहास की शरण लेनी पड़ती है। सन् १८६० में सर एशले एडन ने, जो बाद में बङ्गाल का लेफ्टिनेण्ट गवर्नर हुआ, साफ़ कहा था कि—“नील की काश्त कभी भी लोग अपनी इच्छा से नहीं करते, बल्कि सदा उनसे ज़बरदस्ती कराई जाती है।”

ब्रिटिश भारत में चाय और नील की काश्त का इतिहास गुलामी की प्रथा का अत्यन्त लज्जाजनक इतिहास है।

(घ) अंगरेजों को नौकरियाँ—ब्रिटिश सत्ता को मज़बूत रखने का उस समय यह भी एक खास उपाय माना गया। अनेक अंगरेज स्वीकार कर चुके हैं कि अंगरेजों को जो तनखाहें आम तौर पर भारत में दी जाती हैं उससे आधी भी उन्हें इङ्गलिस्तान या किसी दूसरे देश में न मिल सकतीं।

(च) असली शासन से भारतवासियों को दूर रखना—बहुत दर्जे तक इङ्गलिस्तान के हित में भारत का अहित और भारत के हित में इङ्गलिस्तान का अहित है। एक के उद्योग धन्धों की उन्नति में दूसरे की बे रोज़गारी है और एक की खुशहाली में दूसरे की निर्धनता। इसलिए शासन प्रबन्ध में कोई वास्तविक अधिकार हिन्दोस्तानियों को देना विदेशी शासकों के लिए कभी भी हितकर नहीं हो सकता।

कप्तान पी० पेज ने लन्दन के ईस्ट इण्डिया हाउस से बैठ कर ६ अप्रैल सन् १८१६ को अपने एक मेमोरण्डम में लिखा कि—

“मैं भारतवासियों की नेक चलनी के इनाम में उनकी इज़्ज़त बढ़ा दूँगा, किन्तु उनके हाथ में सत्ता कभी न दूँगा, X X X।

“X X X यही उसूल रोमन लोगों का था। हम भारतवासियों के हाथों में बिना किसी प्रकार की सत्ता दिए उनकी ख़ैरख़ाही अपनी ओर बनाए रख सकते हैं। उन्हें केवल सत्ता का आभास देना काफी होगा; और यद्यपि व्यक्तिगत जीवन में मैं राशकूकाल्त के इस उसूल को घृणा की दृष्टि

से देखता हूँ कि मनुष्य अपने मित्रों के साथ भी इस प्रकार से रहे कि मानों एक दिन वे अवश्य उसके शत्रु बनने वाले हैं, फिर भी मैं समझता हूँ कि भारत के शासकों के लिए इस उसूल को सदा ध्यान में रखना ही उचित है।”❀

इंगलिस्तान और हिन्दोस्तान दोनों देशों के नीतिज्ञ इस बात को अच्छी तरह समझते हैं कि सन् १६३५ के गवरमेण्ट आफ़ इण्डिया एक्ट की असेम्बलियाँ और वज़ारतें भी ‘सत्ता के आभास’ से किसी अंश में अधिक नहीं हैं।

(छ) क़ानून और अदालतें—‘भारत की उपजाऊ शक्ति को उन्नति देने’ (?) का एक खास उपाय आज कल के क़ानून और कचहरियाँ हैं। जो ‘ताज़ीरात हिन्द’ सन् १८३३ के चार्टर एक्ट के बाद लॉर्ड मैकाले ने बनाया था और जिसका अधिक ज़िक्र हम एक पिछले अध्याय में कर चुके हैं, वह सन् १८५७ की क्रान्ति के बाद भारत के क़ानून की शकल में रायज हुआ।

क़रीब क़रबी इसी ढंग के और अंगरेज़ों ही के बनाए हुए

• “I would reward good conduct (of Natives) with honour but never with power. . . .

“*Nullum imperium tutum, nisi benevolentia munitum.* The good will of the Natives may be retained without granting them power, the semblance is sufficient; and although I abhor in private life that maxim of Rochefaucult's which recommends a man to live with his friends as if they were one day to be his enemies, I think it may be remembered with effect by the sovereigns of India.”—Captain P. Page in his Memorandum, dated East India House, April 9th, 1819, *Report of the Select Committee, 1832*, vol. v, pp. 480-483.

“ताज़ीरात आयरलैण्ड” (आयरिश पीनल कोड) के बारे में मशहूर अंगरेज़ विद्वान बर्क ने जो शब्द कहे थे वह किसी न किसी दर्जे तक “ताज़ीरात हिन्द” के बारे में भी कहे जा सकते हैं। बर्क ने कहा था—

“इस कोड का संग्रह और सम्पादन बड़ी क्राबलीयत के साथ किया गया है और उसके सारे हिस्से एक दूसरे के साथ खूब खपते हुए हैं। वह एक बहुत पेचीदा मशीन है जिसे बड़ी अकलमन्दी के साथ तय्यार किया गया है। कभी भी किसी चतुर, किन्तु पतित मनुष्य ने किसी क्रौम पर अत्याचार करने, उसे दरिद्र बना देने, उसे चरित्र भ्रष्ट करने और उसके अन्दर के मनुष्यत्व तक का सत्यानाश कर डालने के लिए इससे अधिक उपयोगी यन्त्र तय्यार न किया होगा।”

दीवानी के क़ानून की पेचीदगियाँ भी मुक़दमें बाज़ी को कम करने के स्थान पर बढ़ाने ही में अधिक मदद देती हैं और हज़ारों घरानों के सर्वनाश का कारण साबित हो चुकी हैं। आजकल की अदालतों और उनकी कार्रवाइयों से भारतवासियों का जो आर्थिक और नैतिक पतन हुआ है वह किसी से भी छिपा नहीं है। ये अदालतें हमें बड़ी हसरत के साथ हज़ारों वर्षों से चली आती हुई पौने दो सौ साल पहले तक की उन पंचायतों की याद दिलाती

* “Well digested and well disposed in all its parts; a machine of wise and elaborate contrivance, and as well fitted for the oppression, impoverishment and degradation of a people, and the debasement in them of human nature itself, as ever proceeded from the perverted ingenuity of man.”—*Burke on the Irish Penal Code.*

हैं जिनमें ग़रीब से ग़रीब को बिना पैसे न्याय मिल सकता था और मुग़ल समय के शहरों के उन न्यायालयों की याद दिलाती हैं जिनके दरवाज़ों पर लिखा रहता था 'फ़कीरी (दरिद्रता) ही न्यायाधीश के लिए सबसे ज़्यादा फ़ख़् (अभिमान) की चीज़ है' और जिनके धर्मभीरु न्यायाधीशों के लिए किसी के यहाँ दावत में जाना या किसी से एक पान तक की भेंट स्वीकार करना हराम समझा जाता था ।

अपनी अपूर्व वीरता और उसके साथ साथ देशभक्ति के अभाव के कारण भारतीय सिपाहियों ने विदेशी ७-भारतीय सेना का सङ्गठन राज के संस्थापन में सदा ज़बरदस्त हिस्सा लिया है । किन्तु विप्लव के बाद सेना के नए सङ्गठन के लिए एक रायल कमीशन नियुक्त हुआ । कुछ की तजवीज़ थी कि केवल अंगरेज़ और दोगले सिपाही भारतीय सेना में रक्खे जायँ, किन्तु इससे काम न चल सकता था । कुछ और लोगों की तजवीज़ थी कि अंगरेज़ सिपाहियों के साथ साथ थोड़े से अरब, बरमो और अफ़रीका के हब्शी भी भारतीय सेना में भरती किए जायँ । इस तरह की सलाहें देने वाले विप्लव से डर गए थे और हिन्दोस्तानी सिपाहियों की पलटनों को बिलकुल तोड़ देना चाहते थे । किन्तु इस तजवीज़ से भी काम न चल सका । अन्त को यह तजवीज़ ठहरी कि हिन्दोस्तानी पलटनों में ब्रिटिश भारतीय प्रजा के मुक़ाबले में नैपाल के गोरखों, सरहद के पठानों, जम्मू के डोगरों, राजपूताने के राजपूतों, पटियाले आदि के सिखों और मराठा

रियासतों के मराठों को तरजीह दी जाय । तोपखाने की नौकरियाँ अविश्वास के कारण देशी सिपाहियों के लिए बन्द कर दी गई, क्योंकि अंगरेज लेखक कॉलफील्ड के अनुसार—“इस मोहकमें मैं हिन्दोस्तानी सब से अधिक योग्यता प्राप्त कर लेते हैं।” देशी सिपाहियों को गोरे सिपाहियों के मुकाबले में घटिया हथियार मिलने लगे । फौज के बड़े बड़े और असली ज़िम्मेदारी के ओहदे उनके लिए बन्द होगए ।

करनल मॉलेसन लिखता है—

“अपने देशी सिपाहियों के साथ हमारी बेवफ़ाई (Bad faith) थी जिसने उनके दिलों को हमारी ओर से सशङ्क कर दिया × × × ।

“सिपाहियों की ओर हमारी यह बेवफ़ाई ठीक पहले अफ़ग़ान युद्ध के बाद से शुरू हो जाती है ।”

विप्लव को दमन करने का सारा खर्च यहाँ तक कि इंगलिस्तान में गोरे सिपाहियों को शिक्षा देने और उनके भारत आने जाने का खर्च तक हिन्दोस्तान से वसूल किया गया । हिन्दोस्तान से बाहर के अंगरेजों के अनेक युद्धों का खर्च भी हिन्दोस्तान से लिया गया है । मेजर विनगेट लिखता है कि सन् १८५६ में ६१,८६७ अंगरेज सिपाही भारत में पल रहे थे और इनके अलावा १६,४२७ अंगरेज सिपाही ऐसे थे जो उस समय इङ्गलिस्तान में रहते थे, इङ्गलिस्तान की रक्षा करते थे और जिन्हें तनखाहें हिन्दोस्तान से दी जाती थीं । जब कभी इङ्गलिस्तान से हिन्दोस्तान पलटने लाने की ज़रूरत होती थी तो उन गोरी पलटनों के इङ्गलिस्तान से चलने के छै

महीने पहले तक की तनखाहें और तमाम खर्च भारत से लिया जाता था। भारतीय सेना के नए सङ्गठन द्वारा अंगरेजी सेना की संख्या बढ़ा दी गई, भारत से अंगरेजों की आमदनी बढ़ गई, देशी सिपाहियों की अवस्था और अधिक हीन होगई, भारत के शासन का आर्थिक भार बढ़ गया और देश की श्रृङ्खलाएँ और अधिक मज़बूत होगई।

सन् १८१३ में सर जॉन मैल्कम ने, जो उन विशेष अनुभवी नीतिज्ञों में से था, जिन्होंने १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत के अन्दर अंगरेजी साम्राज्य को विस्तार दिया, पार्लिमेण्ट की तहकीकाती कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा था—

“इस समय हमारा साम्राज्य इतनी दूर तक फैला हुआ है कि जो असाधारण ढङ्ग की हुकूमत हमने उस देश में क़ायम की है उसके बने रहने के लिए केवल एक बात का हमें सहारा है, वह यह कि जो बड़ी बड़ी जातियाँ इस समय अंगरेज़ सरकार के अधीन हैं वे सब एक दूसरे से अलग अलग हैं, और जातियों में भी फिर अनेक जातियाँ और उपजातियाँ हैं; जब तक ये लोग इस तरह एक दूसरे से बटे रहेंगे, तब तक इस बात का डर नहीं है कि कोई भी बलवा हमारी सत्ता को हिला सके।”*

* “In the present extended state of our Empire, our security for preserving a power of so extraordinary a nature as that we have established, rests upon the general division of the great communities under the Government, and their subdivision into various castes and tribes; while they continue divided in this manner, no insurrection is likely to shake the

इसके कुछ साल बाद एक अंगरेज़ अफ़सर ने लिखा था—

“हमारे राजनैतिक, मुल्की और क़ौज़ी तीनों तरह के भारतीय शासन का उसूल, ‘फूट फ़ैलाओ और शासन करो’ होना चाहिए।”^ॐ

सन् १८३१ की जाँच के समय मेजर जनरल सर लिओनेल स्मिथ ने कहा था—

“X X X अभी तक हमने साम्प्रदायिक और धार्मिक पक्षपात के द्वारा ही मुल्क को वश में रक्खा है—हिन्दुओं के खिलाफ़ मुसलमानों को और इसी तरह अन्य जातियों को एक दूसरे के खिलाफ़ X X X।”[†]

विप्लव के बाद करनल जॉन कोक ने, जो उस समय मुरादाबाद की पलटनों का कमाण्डर था, लिखा कि—

“हमारी कोशिश यह होनी चाहिए कि भिन्न भिन्न धर्मों और जातियों के लोगों में हमारे सौभाग्य से जो अनैक्य मौजूद है उसे पूरे ज़ोरों में कायम रक्खा जाय, हमें उन्हें मिलाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। भारत सरकार का उसूल यही होना चाहिए,—‘फूट फ़ैलाओ और शासन करो।’”[‡]

stability of our power.”—Sir John Malcolm, before the Parliamentary Committee of 1813.

* “*Divide et impera* should be the motto of our Indian administration, whether political, civil, or military.”—Carnatus in the *Asiatic Journal*, May 1821.

† “. . . the prejudices of sects and religions by which we have hitherto kept the country—the Mussalmans against Hindoos, and so on;”—Major-General Sir Lionel Smith, K. C. B., before the Enquiry Committee of 1831.

‡ “Our endeavour should be to uphold in full force the (for us fortunate) separation which exists between the different religions and races,

१४ मई सन् १८५६ को बम्बई के गवर्नर लॉर्ड एलफिन्स्टन ने अपने एक सरकारी पत्र में लिखा कि—

“पुराने रोम के शासकों का उसूल था—‘फूट फैलाओ और शासन करो,’ और यही हमारा उसूल होना चाहिए।”*

हमें इस तरह के और वाक्य देने की ज़रूरत नहीं है। वास्तव में किसी देश के अन्दर विदेशी शासन को चिरस्थायी रखने का सबसे ज़बरदस्त उपाय यही हो सकता है।

जिस तरह एक मज़हब और दूसरे मज़हब के लोगों में फूट डालने का प्रश्न है, उसी तरह एक प्रान्त और दूसरे प्रान्त के लोगों में। विप्लव के बाद एक तजवीज़ यह की गई थी कि भारतीय सरकार के अधिकारों को कुछ कम कर दिया जाय और विविध प्रान्तीय सरकारों को अपने अपने यहाँ के शासन में अधिक स्वतन्त्रता दे दी जाय। इस तजवीज़ का नाम उसके असली लक्ष्य को छिपाने के लिए ‘प्रान्तीय स्वाधीनता (Provincial autonomy), रक्खा गया। मेजर जी० विनगेट ने १३ जुलाई सन् १८५८ को पार्लिमेण्ट की सिलेक्ट कमेटी के सामने इस तजवीज़ की गरज़ को इस तरह बयान किया था—

not to endeavour to amalgamate them. *Divide et impera* should be the principal of Indian Government.”—Lieut.-Colonel John Coke, Commandant at Muradabad.

* “*Divide et impera* was the old Roman Motto, and it should be ours.”—Lord Elphinstone, Governor of Bombay, in a Minute, dated 14th May, 1859.

प्रश्न—आप कहते हैं कि एक केन्द्रीय सरकार से कई तरह के ख़तरे हैं और आप कहते हैं कि इससे तमाम देशवासियों में एक समान भाव पैदा होंगे और उनके एक समान लक्ष्य होंगे जो हमारे लिए ख़तरनाक हो सकते हैं ?

उत्तर—हाँ ! मैं समझता हूँ कि यदि कोई एक ऐसी बात हुई कि जिसमें तमाम भारतवासी दिलचस्पी लेने लगे तो उससे विदेशी शासन को अधिक हानि पहुँचने की सम्भावना है, बनिस्वत किसी भी ऐसी बात के कि जिसका आन्दोलन भारत के केवल एक भाग तक परिमित हो । यदि किसी प्रश्न पर सारे भारतीय साम्राज्य भर में आन्दोलन होने लगा तो निस्सन्देह किसी ऐसे प्रश्न की अपेक्षा, जिसका सम्बन्ध केवल एक प्रान्त के लोगों से हो, विदेशी सत्ता के लिए यह कहीं अधिक ख़तरनाक होगा ।*

इस 'प्रान्तीय स्वाधीनता' का असली लक्ष्य यही था कि विविध प्रान्तों के लोगों में परस्पर प्रेम और राष्ट्रीयता यानी भारतीयता के भाव पैदा होने न पायें ।

वाह्य दृष्टि में भारत इङ्गलिस्तान को कोई ख़िराज नहीं देता, किन्तु मेजर विनगेट ने बड़ी योग्यता के साथ साबित किया है कि जो रक़म 'होम चार्जेज़' के नाम से भारत सरकार हर साल इङ्गलिस्तान भेजती है, वह वास्तव में भारतवर्ष का इङ्गलि-

६-भारत से
इङ्गलिस्तान को
ख़िराज

* Major G. Wingate, before the Parliamentary Committee, 13th, July 1858.

स्तान को खिराज है। सन् १८३४ से १८५१ तक १७ साल के अन्दर ५,७६,००,००० पाउण्ड यानी करीब ७५ करोड़ रुपए इस मद में भारत से इङ्गलिस्तान भेजे गए। इस रकम के बदले में भारत को कुछ भी प्राप्त न हुआ और न भारत को इससे कोई लाभ हुआ। जो रकम हर साल अंगरेज व्यक्तियों ने अपने और अपने कुटुम्बियों के लिए भारत से इङ्गलिस्तान भेजी, और जो विशाल धन इङ्गलिस्तान के लोगों ने भारत के व्यापार से कमाया, उस सब का इस से कोई सम्बन्ध नहीं। इसके अलावा भारत से कमाए हुए धन में से ३,६०,००,००० पाउण्ड विविध अंगरेजों का उस समय भारत सरकार के पास करजों की शकल में जमा था।

विप्लव के बाद का पिछले ८० साल का इतिहास इस पुस्तक के प्रसङ्ग से बाहर है। किन्तु आजकल की अन्तिम शब्द परिस्थिति में किसी भी देश का दूसरे देश पर शासन न उन उपायों के अलावा किसी दूसरे उपायों द्वारा कायम हो सकता है जिनका इस पुस्तक भर में जिक्र है, न किसी दूसरे उपायों द्वारा जारी रखा जा सकता है और न उसके कोई दूसरे नतीजे हो सकते हैं।

लॉर्ड मैकाले ने सच कहा है —

“मुझे विश्वास है कि सब प्रकार के अन्यायों में सब से बुरा अन्याय एक कौम का दूसरी कौम पर अन्याय करना है।”❀

* “Of all forms of tyranny I believe the worst is that of a nation over a nation.”—Lord Macaulay.

अमरीका के प्रसिद्ध राष्ट्रपति अबराहाम लिङ्गन ने एक स्थान पर लिखा है :—

“कोई क्रौम भी इतनी भली नहीं हो सकती जो दूसरी क्रौम पर शासन कर सके।”*

यदि लासी के मैदान से ही भारत में अंगरेज़ी राज का आरम्भ मान लिया जाय, तो भारत के लिए १८० साल के विदेशी शासन का नतीजा कम से कम ऊपर की दृष्टि से दिन प्रति दिन बढ़ती हुई भयङ्कर दरिद्रता, निर्बलता, फूट, आप दिन के दुष्काल, मलेरिया, इनफ्लु-एन्ज़ा और प्लेग के सिवा और कुछ दिखाई न दिया। इङ्गलिस्तान के लिए भी, यदि आज भारत के ऊपर से अंगरेज़ों का राज हट जाय तो कल लङ्काशायर के तमाम पुतलीघर और देश के अन्य असंख्य कारखाने, जो भारतीय पराधीनता ही के सहारे चल रहे हैं, बन्द हो जायँ, लाखों अंगरेज़ पूंजीपति और मज़दूर बेरोज़गार हो जायँ, और सारा देश आश्चर्यजनक तेज़ी के साथ दरिद्रता, अवनति और बरबादी की ओर जाता हुआ दिखाई देने लगे। नैतिक क्षेत्र में दोनों देशों के लिए नतीजा इससे भी अधिक नाशकर है। हर अन्याय अन्यायी और अन्याय पीड़ित दोनों के लिए एक समान घातक होता है। एक क्रौम के ऊपर दूसरी क्रौम के बलात् शासन द्वारा शासक क्रौम के अन्दर स्वार्थान्धता, क्रूरता और अविवेक का बढ़ते जाना और विवेक, सहृदयता तथा मानव प्रेम

* “There is no nation good enough to govern another nation.”—
President Abraham Lincoln.

जैसे उच्चतर गुणों का लोप होते जाना स्वाभाविक और अनिवार्य है। इसी तरह शासित क़ौम के अन्दर दिन प्रति दिन स्वार्थ, अनैक्य और कायरता का बढ़ते जाना और प्रेम, आत्मविश्वास तथा साहस का कम होते जाना भी उतना ही स्वाभाविक है। वास्तव में इस प्रकार का अप्राकृतिक सम्बन्ध धीरे धीरे दोनों देशों को नाश तथा मृत्यु की ओर ले जाए बिना नहीं रह सकता।

किसी दो देशों में इस तरह का सम्बन्ध संसार के अन्य देशों के लिए भी हितकर नहीं हो सकता। जर्मनी, इतालिया, जापान, अमरीका जैसे बलवान देशों में इङ्गलिस्तान के विशाल साम्राज्य को देख देख कर ईर्ष्या और बेचैनी होना, और भारत की गुलामी के कारण अफ़ग़ानिस्तान, ईरान, इराक़, टर्की और मिश्र जैसी निर्बल जातियों की स्वाधीनता का और अधिक ख़तरे में होना स्वाभाविक है। अपने भारतीय साम्राज्य को सुरक्षित रखने के लिए ही इङ्गलिस्तान को बार बार अफ़ग़ानिस्तान के मामलों में बेजा हस्तक्षेप की सूझती है। मिश्र के प्रसिद्ध देशभक्त ज़ाग़लूल पाशा ने सच कहा था कि भारत पर अपना साम्राज्य बनाए रखने के लिए इङ्गलिस्तान को नहर सुएज़ की ज़रूरत है, और नहर सुएज़ पर क़ब्ज़ा रखने के लिए मिश्र को पराधीन करने की। इसके अलावा भारत जैसे विशाल देश के राज से विदेशी शासकों के हाथों में इस तरह के लाखों सस्ते तनखाहदार और आदर्श हीन सिपाही मिल जाते हैं जिनका अन्य देशों को गुलाम बनाने में आसानी से उपयोग किया जा सकता है। सारांश यह कि दो देशों का इस तरह का

अप्राकृतिक सम्बन्ध संसार के किसी भी देश के लिए हितकर नहीं हो सकता ।

इस अप्राकृतिक स्थिति से बाहर निकलने का तरीका भी केवल एक ही हो सकता है और वह यह है कि इन दोनों देशों के इस न्याय विरुद्ध और धर्म विरुद्ध सम्बन्ध का जितनी जल्दी हो सके अन्त कर दिया जावे । इसका उपाय भी अधिकतर शासित कौम ही के हाथों में है । ऊपर के समस्त अभ्यासों से जाहिर है कि कोई विदेशी शासन किसी देश के ऊपर न बिना शासितों की सहायता के कायम हो सकता था और न बिना उनके सहयोग के जारी रह सकता है । हर विदेशी शासन का आधार जिसके सहारे वह शासन ज़िन्दा रहता है वह धन और सम्पत्ति है जो शासक जाति व्यापार के जरिए या दूसरे उपायों से शासित देश से कमाती है । इसी तरह वह जीवन प्रद वायु जिसके बिना कोई विदेशी शासन कहीं पर एक क्षण भी कायम नहीं रह सकता शासितों का परस्पर अविश्वास और अनैक्य है ।

दूसरे शब्दों में भारत और इंगलिस्तान की वर्तमान स्थिति में इस अप्राकृतिक और नाशकर सम्बन्ध को अन्त करने के तीन ही मुख्य उपाय हैं—

१—विदेशी वस्तुओं और खासकर विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार कर देश की बनी वस्तुओं और हाथ के कते और हाथ के बुने खद्दर के उपयोग द्वारा विदेशी शासकों के मार्ग से सबसे प्रबल प्रलोभन को दूर कर देना ।

२—बिना जाति-पाँति, धर्म, सम्प्रदाय या ऊँच नीच के भेद भाव के समस्त भारतवासियों में परस्पर प्रेम, विश्वास और ऐक्य का संचार करना और ३५ करोड़ देशवासियों के हित के सामने अपने अपने व्यक्तिगत या छोटे छोटे सामूहिक स्वार्थ को तिलाञ्जलि देने के लिये सदा तय्यार रहना ।

३—विदेशी शासन में और शासन से सम्बन्ध रहने वाले हर मोहकमे में शासकों के साथ भारतवासी मात्र का बढ़ता हुआ असहयोग ।

इन उपायों की सफलता के लिए सबसे बड़ी ज़रूरत इस बात की है और एक प्रकार से इसी में हमारी अन्तिम सफलता की कुंजी है कि हम किसी क़दम पर भी अपने आज कल के जीवन के सर्वोच्च सिद्धान्त और इस युग के सर्वोच्च आदर्श 'अहिंसा' से डिगने न पावें ।

यही भारत के लिए उद्धार का एक मात्र मार्ग है और भारतवासियों के लिए धर्म का एक मात्र पथ । इसी पर भारत और इंगलिस्तान दोनों का भावी जीवन निर्भर है । इसी में इन दोनों देशों का और इनके ज़रिए शेष संसार का वास्तविक कल्याण है ।



क्या कहाँ

पुस्तक प्रवेश

अ

अकबर—का विश्वप्रेम पृष्ठ २६, का
'दीने इलाही' ११०, की दादू से
मुलाक़ात ११६, का समकालीन
मलूक दास १२०, के समय की
चित्रकला १३८-१३९, की शराब
के विरुद्ध आज्ञाएँ १५४, की
धार्मिक उदारता १५८, १६०, के
अधीन हिन्दी की उन्नति १६६,
की महानता, सुधार और मानव
धर्म १७३-१७६, के उत्तरा-
धिकारी १७६-१८१, के साथ
हैदरअली की समता १८३

अकबरशाह दूसरा—१८२, १९९

अजमेर—१६७

अफ़ग़ान युद्ध—६

अफ़ग़ानिस्तान—४६, पर सिकन्दर
की विजय ४८, पर सम्राट
चन्द्रगुप्त का राज ५०-५१, पर
यूनानियों की सत्ता ५१, पर
कनिष्क का राज ५४, में बौद्ध
और शैव मतों का प्रचार ७३,
८६, पर गोरियों का शासन
९६, हिन्दोस्तान का एक प्रान्त
९८, में मलूकदास का मठ १२१,
के द्वारा मुग़ल साम्राज्य के दिनों
में भारतीय व्यापार १४५

अफ़रीका—(कारथेज) ६५, के
साथ भारत का व्यापार ६६,
१४५, १६५

अफ़लातून—८५

अबबाब की मुग़लों के शासन में
मनाही—१५३
अबुलअला अलमअरी, सीरिया
का महात्मा—८७-८८
अबुलफ़ज़ल—१६६
अबुल रज़ाक—१६७
अब्दुर रहमान सानीनी—७५-७६
अब्बासी ख़लीफ़ाओं के बौद्ध
वज़ीर—८६
अमरीका, के स्वतन्त्रता के प्रयत्न—
२०१
अमृतसर—१३८
अयोध्या—७३
अरकाट का अपहरण—३७
अरब—२, भारत के साथ प्राचीन
सम्बन्ध ६४-७१, अरब के
मुसलमान फ़कीर और उपदेशक
७३-७७, ७९, ८१, अरबी में
यूनानी और बौद्ध ग्रन्थों के
अनुवाद ८४-८६, में नानक के
उपदेश १११-११२, के साथ
भारत का व्यापार १४५, १६६
आरमोरिका (पश्चिमोत्तर फ्रान्स)
—५९
अरस्तू—८५
अलशिज़ाली, सूफ़ी महात्मा—८७

अलताई पहाड़—५४
अलफ़्रेड लायल—८३
अलबेरुनी—२, ७३
अलाउल, मुसलिम विद्वान—१७०
अलाउल हक़, पंजाब का एक
मुसलमान सन्त—१११
अली इलाही सम्प्रदाय—८१
अली राजा—७७
अलीवर्दी ख़ाँ—१४, १६१
अलेक्ज़ेण्डर हैमिल्टन, कप्तान—
१५८
अल्लमा प्रभु—६४
अल्लाह उपनिषत्—१७५
अवार जाति—५७
अशोक सम्राट—५१, और बौद्ध
धर्म का प्रचार ८०, का साम्राज्य
१४२
असीरिया—४७
अहमदशाह, मुसलमान लेखक—
१०५
अहमदाबाद—१६६, १६७

आ

आक्सफ़ोर्ड—२७
आगरे—का ताज १३७, की शिल्प-
कला १३८, की चित्रकला १३८,

की प्राचीन आबादी, दस्तकारी
आदि १६६-१६८
आदि उपदेश, सत्तनामियों का
धर्म ग्रन्थ—१२२
आदिलशाही बादशाहों के शासन
में मराठी की उन्नति—१७१
आनन्द तीर्थ, दक्षिण का सन्त—६२
आयरलैण्ड—६२, १४८, १६०,
१६२, १७८
आरनाल्ड—८१
आलमजस्ती, ज्योतिष का अरबी
ग्रन्थ और उसका संस्कृत में
अनुवाद—१७२
आस्ट्रिया—२०१

इ

इंगलिस्तान—८, ६, की सत्रहवीं
शताब्दी की अवस्था २३-३१,
को सभ्य बनाने की कोशिशें
३१-३४, और भारत की टकर
३६, ४६ पर अन्य देशों के हमले
५७-६३, १००, में भारतीय
माल की खपत १६६, १६६, से
भारत का सम्बन्ध १८२, १८४,
१८६, १८८, १९०, १९७,
२००—२०२

इदेसियस, इतिहास लेखक—६०
इतालिया—पर एशियाई हमले
५७-५९, ६२, ६६, के स्वाधीनता
के प्रयत्न—२०१
इबोरे कम (यार्क)—६०
इब्राहीम लोधी—१००, १४१
इराक (मैसोपोटामिया)—४७,
५१, ५६, ६६, ६८
इलाहाबाद—१६७, १६३
इलीरिया (यूनान) पर असभ्य
जातियों के हमले—६०
इसलाम मत—२२, का जन्म ६१,
की पहली शताब्दी ६४-६६,
का भारत में प्रवेश ७०, का भारत
में प्रचार ७४-८४, में अद्वैतवाद
और सूफी विचारों का जन्म
८६-८८, का भारतीय सम्प्रदायों
और महात्माओं के विचारों पर
प्रभाव ६०, ६६, ६७, १०३-
१३४, और शिल्पकला १३६-
१३७ के भारत में प्रचार का
ढंग १५८, का भारतीय रूप
१७३, और हिन्दू धर्म का मेल
१७४, की संकीर्ण प्रवृत्तियाँ
१७६-१७८

ई

ई० ए० एस, अमरीकन विद्वान—

१६७, १६८

ईथियोपिया—१६६

ईरान—१, ४५, ६५, ६६, में

बौद्धमत का प्रचार ७३, १११,

१४५, १६६, १८६

ईश्वरदास नागर—१२२

ईष्ट इण्डिया कम्पनी—७, १३, १६

३७, ३६, ४२, ४४, १६६, १८६,

१६२

ईस्टविक, कप्तान—१२

उ

उज्जयनी (उज्जैन)—५५, १६७

उमर खलीफ़ा—८१

उमर खय्याम—८८

ए

एकान्त रमय्या—६४

एका सालिस (बाथ)—६०

एक्रीटेन—५६, ६०

एच० जी० वेल्स—के सम्राट

अकबर के सम्बन्ध में विचार

१७४

एडमण्ड बर्क—१६२

एडवर्ड कारपेण्टर—२०२

एण्टि ओकस (अन्ति ओकस)

—५१

एपाइरस—६०

एरियन, यूनानी इतिहास लेखक

—१६७

ऐ

एक्ट्स आफ़ यूनिफ़ार्मिटी—१६०,

१६२

ऐबे दुबाय—१६

ऐले रिक—५६

औ

औरंगज़ेब—के समय की सुख

समृद्धि ३०, की मृत्यु के बाद

४५, ४६, १००, १२१, १२३, १२४,

की भेंट बेगार के विरुद्ध आज्ञाएँ

१५०७ की शराब के विरुद्ध

आज्ञाएँ १५४, १५८, की मन्दिरों

के नाम माफ़ियाँ १६२, १६३, के

हिन्दू मन्त्री और सेनापति १६२,

की धार्मिक संकीर्णता से देश

को हानि १७८-१८१, के बाद

अंगरेज़ों की साज़िशें १८२-

१८३, और अंगरेज़ १८६, २०६

क

कंस, बंगाल का राजा—१७०
 कच्छ—६७
 कदा, इलाहाबाद—१२१
 कनिङ्गम, कसान—८
 कनिङ्गम, पीटर—८
 कनिष्क, सम्राट—द्वारा बौद्धमत
 का प्रचार और उसके साम्राज्य
 की सीमाएँ—५४
 कन्धार—५०
 कन्नौज—१६७
 कपिलवस्तु—७१
 कबीर—पर मनसूर का प्रभाव ८६,
 रामानन्द के शिष्यों में १०१,
 का जन्म १०२, की शिक्षा १०३-
 ११०, ११२, ११६, १७३, १७५,
 १७७, १७८, १८१, २०५
 कबीर चौरा (काशी)—११०
 'क्यामत नामा'—१२४
 कराची—१६७
 कर्ताभज, सम्प्रदाय—१२८-१२९
 कलकत्ता—१६७
 कल्याण—६९
 काउण्टी, यूरोपियन यात्री—१६५,
 १६७

कांगड़ा—१३८
 काठियावाड़—६७, ७८
 कापालिक—७३, ७४
 काबुल—४७, ५०, ७३, १२१
 कर्ताबाबा—१२९
 कालीकाता—१८६
 काशगर, में हिन्दूबस्तियाँ—८५
 काशमीर—१३८, १६६
 'किताबुलबुद', अरबी भाषा में बौद्ध
 ग्रन्थ—८६
 कुतुबशाह, का साहित्य प्रेम—१७१
 कुलजुम सरूप—१२४
 कुशान साम्राज्य—५४
 कुशी नगर—७१
 कूका विद्रोह, पंजाब—२००
 कृष्णदास—१२८
 केज़िया—७१
 केशव, महात्मा—१२४
 कैमोलोडूनम (कालचेस्टर)—६०
 कोंकण—७८
 कोडंगलूर—७५
 कोल्हापुर—६४

ख

खज़ार जाति—५७
 खम्मात—७६

खलीफ़ा उमर—६

खलीफ़ा यज़ीद—८७

खुरासान—८६, १४५

ख़्वारज़िम—१४५

ग

गज़नी—६५

गया—७१

गयासुद्दीन, सुलतान—१७०

गरीब दास—१२४

गाल (फ़्रांस)—६०, ६१

गुजरात—७३, १०३, १३८, के बने

जहाज़ १६५, के रेशमी और

सूती कपड़े १६५

गुनराज ख़ाँ (मलधर वसु)—१७०

गुलाल, सन्त—१२५

गोआ—१४५

गोरखपुर—१०२

गोलकुण्डा—१६७

गोल्डविनस्मिथ, प्रोफ़ेसर—१७

गोविन्द पुर—१८६

गौड़, बंगाल की प्राचीन राजधानी

की आबादी—१६८

ग्रैटन—१२

ग्लियर—१३८

च

चंगेज़ ख़ाँ—१४०

चट्टग्राम—१७०

चन्द्रगुप्त, सम्राट—५०, ५१

चन्द्रगुप्त (दूसरा)—८०

चन्नवासव—६४

चम्बा—१३८

चरनदास—१२४

चार्ल्स नेपियर, सर—११

चाल—६६, १४५

चीन—६६, १३८, १४०, १४५, १६६

१६७, १६८

चेरामन पेरूमल—७६

चैतन्य महाप्रभु—१२७, १२८

चोखमेल्ला, सन्त—१३२

छ

छोटे ख़ाँ—१७०

ज

जगजीवनदास—१२४

जगन्नाथपुरी—१३६

जंगम अथवा वीर शैव—६४

जदुभट्टाचार्य—१२८

जदुनाथ सरकार—१३४, १३६,

१४२, १४५, १४८, १५०, १६६

जम्मू—१३८

जयपुर—१३८, १७२

जयसिंह, सवाई महाराज-द्वारा
ज्योतिष की उन्नति १७२, की
औरंगजेब को चेतावनी १८०

ज़रथुस्त्रीमत—८८

ज़रमनी—४५, ५७, १००, १४०

जलालुद्दीन बुखारी—१११

जलालुद्दीन रूमी—१०५

जहांगीर—का न्याय शासन २६,
के समय की चित्रकला १३८,
के समय की तिजारत १४५,
के समय में शराब की बन्दी
१५४, की धार्मिक निष्पक्षता
और न्याय १५७, १६०, शासन
और प्रजापालकता १६४

जानके, सर—६, १४, १६१

जापान—में भारत के जहाज़ १६५,
में भारतीय माल की खपत
१६७, जावा १४५

जेम्स मिल—८

जौनपुर—१०२

झ

झूंसी—१०२

झेलम—४८

ट

टरकी—४७, का शहज़ादा फ़कीर
७८, की शिल्पकला १३७, में
भारतीय जहाज़ १४५ में गुज-
रात के बने कपड़ों की खपत
१६६

टाइन नदी—२६

टाइन सेण्ड—८२

टारेन्स—१६१

टीपू, सुलतान—के साथ अन्याय
१४, का जगद्गुरु शंकराचार्य के
साथ सम्बन्ध १८३

टेम्स नदी—२७

ठ

ठट्टा का प्राचीन बन्दरगाह—१४५

ड

डेन्यूब—५८, ५६, ६२

डोफ़ाइन (दक्षिण-पूर्व फ़्रांस)—६२

डोरोवरनम (कैण्टरवरी)—६०

ड्रेपर, इतिहासज्ञ—२३, २४, २७

त

तक्ष शिला—४८, ५२

तंजोर, की चित्रकला—१३८

तबरेज़, के चित्रकार भारत
में—१३८

तातार—में बौद्धमत का प्रचार ५४,
में मुसलमानों का शासन ६५,
६७, पर चंगेज़ खाँ का हमला
१४०, के साथ भारत का व्या-
पार १६६

ताना टापू—६६
तिब्बत, में बौद्धधर्म प्रचार—५४
तिरुजान, शैव आचार्य—६०
तिरुमलाई नायक का प्रसिद्ध
महल—१३७

तिलक, महमूद गज़नवी का हिन्दू
सेनापति—६६

तुकाराम, सन्त—१३३-१३४

तुरामान—५५

तुर्किस्तान—६५

तुलसीदास, गोस्वामी—१०१, १७७

तूरानी, जाति के यूरोप पर
हमले—६०

तैमूर—१४१

त्रिचक्षपल्ली (त्रिमूर)—७८

त्रिवानपुर—७६

थ

थंगल, दक्षिण में मुसलमानों का
धर्मगुरु—७७

थिसेली—६०

द

दयाबाई—१२४

‘दस मुक्कामी रेख्ता’, कबीर की
पुस्तक—१०७

दादू—८६, ११६-१२०, १७३

दारा, ईरान सम्राट—४७

दारा शिकोह—का हिन्दू गुरु
१२३, का चरित्र और के विचार
१७८—१७९

दाहिर, काठियावाड़ का राजा—६७

दिनेशचन्द्र सेन—१२७, १६६, १७०

दिल्ली—१००, १३७, १३८, १३९,
१६७, १७१, १६६

दीने इलाही—१२७, १७५

दुलनदास—१२५

दूप्ले, सेनापति—१८५

दौलत खाँ लोदी—१११

ध

धन्ना जाट—११६

धरनी दास—१२४

धर्म गजन (बौद्ध ग्रन्थ)—१२६

धर्म-पूजा पद्धति (बौद्ध ग्रन्थ)—१२६

धारवाड़—६४

न

नज़दवली, टरकी का शहज़ादा
 फ़क़ीर—७८
 नन्दकुमार—१४, १८२
 नसीर शाह—१७०
 नादिर उन निकात—१२३, १७८
 नादिरशाह—८७
 नानक—८६, १११—११६, १७३
 नाना फ़ड़नवीस—१८३
 नामदेव—१३१, १३२
 नारायणी, सम्प्रदाय—१२३
 नारायनसिंह, स्वामी—१२५
 नारिकम—६१
 नार्थ मैन—६१
 निज़ामुद्दीन (औलिया)—१२५
 निम्बा दित्य—६०
 नीरु जुलाहा—१०१
 नूरुद्दीन—७६
 नैपाल—१२१

प

पगू—१६५
 पंजाब—१११
 पटना (पाटिलपुत्र)—७१, १६७
 पण्डर पुर—१३२, १३३
 पज़ेनाक (जाति)—५७

पद्मावत—१६०
 परङ्गल खाँ—१७०
 परमेश्वर, कवीन्द्र—१७०
 पल्लूदास—१२५
 पहलव (पार्थियन)—५३, ५४
 पाक पट्टन—१११
 पानीपत—१००, १११, १४१
 पिरार्ड, पुर्तगाली यात्री—१६६
 पीपा, सन्त—११६
 पुरुष पुर (पेशावर)—५४
 पुष्कला वती—५३
 पेज़ यात्री—१६७
 पेन्नुकोण्डा—७८
 पेरू और मेक्सिको के यूरोपियन
 शासकों से अंगरेज़ कम्पनी की
 तुलना—३६
 पैनोनिया—६१
 पैरिया—६४
 पोप ग़्रिगरी—६१
 पोलैण्ड—६६, १४०
 पोरव (पोरस) पंजाब का राजा—
 ४८, ४९
 प्राणनाथ, महात्मा—१२४
 प्लासी—१८२, १८४

फ

- फ़ख़रुद्दीन बाबा—७८
 फ़तहपुर—१६६
 फ़तहपुर सीकरी—११६
 फ़रीद—१२५
 फ़रीदुद्दीन अत्तार, ईरान का एक
 महात्मा—१०४
 फ़ाहियान, चीनी यात्री—७३
 फ़िलिप्पाइन—१६७
 फ़ीरोज़शाह, तुग़लक—१५३
 फ़्रान्स—४५, १००, १४८, १६७,
 १६७
 फ़्रेडरिक आगन्ट्स—१४६, १५७,
 १६३, १७५

ब

- बबेनन—२७
 बख्तियारी—५१
 बग़दाद—१८६
 बंगाल—३५, ११०, १२६-१२६,
 १८४
 बंग भंग—२००
 बड़ी दीवार, चीन की—५५
 बनारस—१०१, १०२, १७२, १६३
 बम्बई—१६७
 बरमा—१६७

- बर्न्स, सर, अलेक्ज़ेंडर—६
 बलकान—६१, ६६, १४०
 बलख—८६, १४५
 बलगार जाति—५७
 बलिया—१२५
 बलूचिस्तान—४६, ४८, ५०, ५१,
 ६७, ८६
 बल्लभी राजा, बलहार—७८
 बसरा, में ख़लीफ़ाओं के अधीन
 हिन्दूपदाधिकारी—८५
 बहरायन (इराक़)—६६
 बहादुर शाह, सम्राट—१५, की
 काव्यरचना १६६, की धार्मिक
 निष्पक्षता १८२, की सत्ता का
 अन्त १६६-२००
 बहिराम भट्ट—१३३
 बाद जननि (बौद्ध ग्रन्थ)—१२६
 बाबर—६६, १००, १४१, १५७,
 की धार्मिक उदारता १६०, १६८
 बाबा फ़रीद—१११, १७३
 बाबालाल, महात्मा—१२३
 बारबरी—१६६
 बारबोसा, लेखक—१६५
 बिल आक्र सिक्कुरिटी—१६०
 'बिल बहर' वा 'बुदसिफ़' (अरबी
 बौद्ध ग्रन्थ)—८६

बीजापुर—६४, १६७
 बीरमान, सन्त—१२२
 बुइसोने द, इतिहास लेखक—५८
 ६१, ६२
 बुझारा—१४५
 बुद्ध गुप्त, सम्राट—५५
 बुझा साहब (बुल्ले शाह)—१२४
 बूझली कलन्दर—१२५
 बेगिटङ्क लार्ड—१६
 बेलगाम—६४
 बेल्लियम—५६, ६१
 बैतुल मुकद्दम (जेरुसेलम)—६५
 बैबिलोन—४७
 बोलन, दर्दा—१४५
 बौद्धमत-का प्रचार ५४, का भारत
 में हास ७१-७४
 ब्रिटन जाति—५८, ५६

भ

भदोच—१४५
 भीका, महात्मा—१२५

म

मकदूनिया—६०
 मक्का—७७
 मखदूम जहाँनिया—१११
 मगध—४६, ७१

मगियार जाति—५७, ६२
 मगहर—११०
 मंगोल जाति—५७
 मंगोलिया—१४१
 मछली पट्टन—१४५
 मथुरा—७३, १७२
 मदुरा—७८, ६०, १३७
 मद्रास—३५, १८१, १६२, १६३
 मनसूर—८६, १०७, १२५, २०५
 मनुष्य पंचक—६३
 मलधर बसु—१७०
 मलबार तट—६६, ७५
 मलाका—१६७
 मलिक मोहम्मद जायसी—१७०
 मलूकदास—१२०, १२१
 महमूद गज़नवी—६६, ८०, ६८,
 १८७
 महमूद तुग़लक़—१४१
 महादेव गोविन्द रनाडे—१३०,
 १३१
 महा पिछा (मोपला)—७७
 माइल्स, करनल—१६, १७
 मानव धर्म—१००-१३४, २०४
 माधव—६०
 माधोजी सीधिया—१८२
 मालेसन करनल—१८५, १६६

मिर्जा सम्प्रदाय—३१-३२
 मिरज़ा इक़बाल—१६
 मिलिटन—२७
 मिलिन्द पन्ह—५२
 मिलिन्द, राजा—५२
 मिश्र—१, ४७, ६५, की शिल्पकला
 १३७, १४५
 मिहिर कुल—५५
 मीर क़ासिम—१४
 मीर जाफ़र—१८२
 मुल्तान—५५, ६६, १११, १६७
 मेक्सिको (अमरीका)—१६५, १६७
 मेगस्थनीज़, इतिहास-लेखक—४६
 मैकालिफ़, लेखक—१०१
 मैसूर—६४, ६७
 मोतज़ली, सम्प्रदाय—८७
 मोपला—७७
 मोर लैण्ड—१५४, १६३
 मोहम्मद इब्न इसहाक़ अन्नदीम
 ७३
 मोहम्मद गोरी—६६, १३६
 मोहम्मद बिन क़ासिम—का सिन्ध
 पर शासन ६७-६८, ६५, ६८
 मोहम्मद शाह, सम्राट का गुरुस्वामी
 नारायण सिंह १२५, की नारा
 यनी सम्प्रदाय को जागीरें

१२५, की मृत्यु १४२
 मोहम्मद साहब—देखो हज़रत
 मोहम्मद
 मोहम्मद हाशिम—१५२
 मोहसिन फ़ानी—१०२
 मौर्य कुल—५०

य

यमन (अरब में)—७६
 यशोधर्म देव (विक्रादित्य)—५५,
 ८०
 यूनान—४७, ६१, ६६

र

रज़ा खाँ, दीवान—१८२
 रणजीत सिंह, महाराजा पंजाब—
 १८३
 राजपूताना—१३७
 राजापुर—१४५
 राज्यवर्धन—५६
 राम ग्राम—७१
 राम दुलाल—१२६
 राम मोहनराय—१८२
 राम सनेही, महात्मा—१२४
 रामानन्द—१००, १७७
 रामानुज—६०, ६१, ६४, १००

रालेण्डसन, इतिहास लेखक—

७४

रासकुमारी—६८

रूस—४५, ६६, १४०, २०१

रेटिया—६१

रैदास भक्त—११६

रोम—४५

रोमन साम्राज्य पर मुसलमानों के
हमले—६५

ल

लक्ष्मी बाई, रानी—१४

लंका—१११, १४५, १६७

लन्दन—२६, ६०, १६७

लन्दी नियम—६०

लाहौर—१३८, १६६, १६७

लिगायत सम्प्रदाय—६४

लूथर की सम्प्रदाय—१६०

लैकी—६

व

वन्सीटार्ट—३६

वल्हभाचार्य—६०, १७७

वारथेमा—१६५

वारन हेस्टिंग्स—४०, ६२

वासव—६०, ६१, ६४

विक्टोरिया, मलका—१६, २००

विजयनगर—१३७, १६७

विदिशा (भिलसा)—५२

विन्ध्या—५४

विलियम नेपियर, मेजर जनरल—
११, १३

विलियम हाविट—३७

विल्क्स, इतिहास लेखक—६८

विसी गाथ, जाति—५६

वृन्दावन—१२८, १३७

वेण्टाह सेनोरम (नार विच)—६०

वैशाली—७१

श

शक (सीदियन) जाति—५१, ५३,
५४

शंकराचार्य, जगद्गुरु—६०-६३,
१८३

शम्स तबरेज़—१२५

शाकल (सियालकोट)—५२

शाम (सीरिया)—४७, ६५, ८५,
की शिल्पकला १३७, १६६

शालामार बाग, कश्मीर—१३८

शाह आलम, सम्राट—१५, का
मराठों से सम्बन्ध १८२, की
मृत्यु के बाद अंगरेजों द्वारा
सम्राट का अपमान १६६

शाहजहाँ—के समय की अवस्था
२६, के समय की शिल्प कला
और चित्रकारी १३८, की प्रजा
पालकता १५१-१५२, की
धार्मिक उदारता १६०, के समय
की सुख समृद्धि १६३, द्वारा
अकबर की नीति का अनुसरण
१७६, की अंगरेज़ों के साथ
रियायतें १८६

शिवनारायण—१२४

शिवनारायणी सम्प्रदाय—१२५

शीराज़—१३८

शून्य पुराण—१२६

शेख़ इसमाइल बोख़ारी—१११

शेख़बदरुद्दीन—८६

शेख़ मुहम्मद—१३३

शेख़ सादी शीराज़ी—१०५

शेरशाह, सम्राट—१६३

श्रावस्ती—७१

श्रीकरण नन्दी—१७०

स

सत्तनामी सम्प्रदाय—१२२, १२३

सत्यपीर—१७५

सत्याग्रह—२०६

समर क्रन्द—१४५

समुद्र गुप्त, सम्राट—८०, १४२

सय्यद इब्राहीम शहीद—७८

सय्यद गुलाम हुसेन—१५

सर टामस रो—१५८

सर हिन्द—१११

सशङ्क, बंगाल का शैव राजा—७३

सहजानन्द—१२५

सहजोबाई—१२४

साइरस—४७

सादुल्ला खाँ, दीवाने आला—१५१

सामुरी राजा, कालीकट—७६, ७७

सामूगद का संग्राम—१७६

सिंहलद्वीप—६७

सिकन्दर—४८-५१

सिद्धर सम्प्रदाय—६५

सिद्धराज, राजा—७६

सिन्ध—५३, ६७, ६८

सिन्धु—४७, ४८, ५०, ५१

सिराजुद्दौला—१४, १८२

सिसली—६६

सीली, प्रोक्रैसर—१७

सीसतान—४६, ८६

सुक्ररात—८५

सुपारा—६६

सुमात्रा—१४५

सूतानटी—१८६

सूरत—१४५, १६७
 सेअरुल मुताखरीन—१५
 सेना नाई—११६
 सेमिरामिस, मलका—४७
 सेल्यूकस—५०, ५१
 सोनागढ़—१३७
 सोमनाथ—७६, ६६
 सोमेश्वर नाथ, महादेव, अरेल,
 इलाहाबाद—१६२
 सौराष्ट्र—५१
 स्काटलैण्ड—२८, ६२, १६०
 स्कैनडेनेविया के डाकू—६२
 स्टर राक—७५
 स्पेन—५७, ५६, ६१
 स्याम—१४५
 स्लैव—६०

ह

हंगेरी—१४०
 हज़रत ईसा—६६
 हज़रत मोहम्मद—६४, ६५, ६६,
 ७०, ८५, ८८, १०४, १०६
 हज़ाज—६७

हरबर्ट स्पेन्सर—७, ३६
 हरवे—६
 हर्षवर्धन, सम्राट—७०, १४१
 हाफ़िज़, प्रसिद्ध सूफ़ी कवि—१२५
 हिन्दुकुश—५१
 हिरात—४६, ५०
 हीनयान, बौद्ध सम्प्रदाय—६८
 हीलियो दरस, राजदूत—५२
 हुण जाति—५१, ५३, ५५-५८,
 ६०, ६२
 हुमायूँ—१३८, १४१, १५७
 हुलाकू खाँ—१४०
 हुसैन अली खाँ किरमानी, मीर—
 १६, १७
 हुसेनशाह, बंगाल का बादशाह—
 १२७, १७०, १७५

हैदरअली—१४-१६, १८३, १६२
 हैलवे शिया (स्वीज़र लैण्ड)—६१
 ह्यूगेनाट, फ़्रान्स की एक ईसाई
 सम्प्रदाय—१६०
 ह्यूनत्सांग, चीनी यात्री—७३

अध्याय १-५१

अ

- अकबर—१५७, १७६
 अकबर शाह (दूसरा)—६४१,
 १६०, १०७२, १०८१, १३५६,
 १३६०
 अकबराबादी मसजिद, दिल्ली, का
 गिराया जाना—१५४१
 अकोला—१०२१
 अजनाला—१५११, १५१२,
 १५१४-१५१६
 अजन्ती घाट—६२०
 अजमेर—८०६, १०३८
 अज़ीज़न, कानपुर की एक वेश्या
 क्रान्तिकारी—१४४४
 अज़ीज़ुद्दीन, फ़कीर—१३०३
 अजीतसिंह—१२५२
 अज़ीमशाह—२१
 अज़ीमाबाद (पटना)—११३,
 २०५, २०७
 अज़ीमुल उमरा—४४०-४४२, ४४७
 अज़ीमुल्ला खाँ (सन् ५७ की
 क्रान्ति का प्रवर्तक)—१३६६,
 १३८२, १३८३, १३९१, १४३६,
 १४४१, १४४५, १६१६, १६६१
 अज़ार—१५६
 अटक—२६४, २६६
 अतरसिंह—१२५२
 अतरौलिया, का संग्राम—१५८१
 अनवरुद्दीन—२५, २६-२८
 अपटन, करनल—२८०-२८२,
 २८४, २८५
 अफ़ग़ानिस्तान—१६२-१६४,
 ८१३, ८५१, ८५३, ८५४-८५६,
 ८६८-८७३, १०६४, १०६६, के

- साथ अंगरेजों का पहला युद्ध—
११५६-११८६, ११६८, १२०६,
१२६४, १३०५, १४७१, १७०६
- अफ़ज़लगढ़—७८१
- अफ़रीक़ा—२, १०, ८७७, ६२६,
१६७२
- अब्दुल ख़ालिफ़, शहज़ादा, टीपू
का पुत्र—३८२
- अब्दुल ग़फ़ूर ख़ाँ—१०३६, १०३७
- अब्दुल नबी—८५६
- अब्दुल वहाब ख़ाँ—३४४
- अब्दुल्ला ख़ाँ, सरदार—११७५
- अब्दुल्ला शहज़ादे की हत्या—१५३३
- अब्दुल्ला, सय्यद—२६५, ३०३
- अब्बास अली ख़ाँ, सिन्ध का
अमीर—१२५१
- अब्बास कुली ख़ाँ—३११
- अमरचन्द भाटिया—१६१३
- अमरसिंह थापा—६३५, ६४३,
६४६, ६४८, ६५१-६५४
- अमरसिंह, राजा जगदीशपुर (सन्
५७)—१५८७, १५६०-१५६२
- अमरसिंह, राजा तओर—५११-
५१७
- अमरीका—४, ६२६, ११०५,
१६७१, १६६३, १७०५
- अमीचन्द—३६, ४६, ४७, ७१, ७६-
८१, १००-१०२
- अमीर ख़ाँ, पिण्डारी—६३३-६३६,
७३४, ७३५, ७३८, ७७६-७८१,
७८३, ७६३, ८३२, ८३३, ८४४,
८४५, ६७३, १०३६
- अमृतराव, पेशवा—५८२, ५८५,
५८७, ५८६, ५६०
- अमृतसर—८६६, ८६७, १४७२,
१५१५, १५१६
- अम्बरपुर का दुर्ग—१५६८
- अम्बाजी, सींधिया का सेनापति—
५४६-५४८, ६६६, ७०६, ७०७,
७१६
- अम्बाला—८६३, १२५६, १३६१,
१३६६, १४०४, १४८१-१४८३
- अरकाट—२६८, ३००, ३१६,
३३४, ३३५, ३४२, ३४३, ३५०,
३६५, ५३१
- अरगांव—६७६, ६८०, ७१२, ८१५
- अरब—के सौदागर २, १०, १५१,
२३३, ८७७, ८८३, में दिल्ली का
शहज़ादा
- फ़ीरोज़शाह—१६४८
- अरबअली ख़ाँ—१६३

अराकान—१०४१, १०४२, १०४८,
१०६४

अर्सकाइन पेरी, सर—१६७६

अलवर—१०७१, १६४७

अली अकबर—१२२०

अली इब्राहीम खाँ—३८६

अली करीम, गया का क्रान्तिकारी
नेता—१५७७, १५७८

अली खाँ, मेवाती, (सन् १८५७)
—१६२५

अलीगढ़—का संग्राम ६६५-६६६
७३८, ७४२, में क्रान्ति १४११-
१४१३

अली गौहर, शहजादा—११६, १२२

अली नक़ी खाँ, वाजिद अली शाह
का वज़ीर—१३८८

अली नगर—५०, ५१ की सन्धि
६८, ७१, ८५

अली बख़्श, मिरज़ा—१२२६

अली मुराद, मीर—१२०३, १२०७-
१२१०, १२२३

अली वर्दी खाँ—३१-३६, ८७, ६३,
१०७, १०८, ११२, २३६

अलीवाल का संग्राम—१२७६,
१२७७

अली हुसेन—५३०, ५३१

अलेक्जेंडर बर्न्स, लेफ़्टेनेण्ट, (बाद
में सर)—११६०-११६५, ११७८

११८०, ११८१, ११६५, १२००

अलबुक्रक—६

अवध की रियासत का अन्त—

१३३६-१३५०, सन् ५७ में

स्वाधीनता १४५५-१४६६, में

संग्राम १५४४-१५५६, का पतन

१५६३-१५७६, १५६३-१५६६,

१६७६

असद खाँ—२०७

असार्ह का संग्राम—६६४-६७०,
७१२, ८१५

असीरगढ़—६७१, ६७२, १००३,
१०३२-१०३४

अहमदनगर—२८६, का संग्राम
६५३-६५८, ६६३, ७३१, ७३८

अहमद शाह अब्दाली—१६१-
१६४, २६६

अहमद शाह, मौलवी, सन् ५७ की
क्रान्ति का प्रमुख नेता—१३६२,

१४५६-१४६१, १५७१, १५७४,

१५६४, १५६७-१५६६, और

उसका चरित्र। १६२२, १६६१

अहमदाबाद—१०, ६८०, ६८७,
६८६

आ

आकलैंड, लार्ड—११५६, ११६०,
११६६, ११६८, ११८१, १२८५
आगरा—८, १०, १३, ६१६, ६६३,
का संग्राम ७०४, ७४६, ७५०,
७६२, ७७४, ७६८, ६७०, ११८५,
११८७, १४२०, १४८५, में क्रान्ति
१४६७, १४६८, १६३१
आगा मोहम्मद—३५६, ३५७
आज़मगढ़ में क्रान्ति—१४२०,
१४२१, १४२३, १५६७, १५८१,
१५८४
आज़मुद्दौला—५३०, ५३१
आम्बूर—२८, ३२५
आयरकूट, जनरल, सर—३४५,
३४६,
आयर, मेजर—१५५२, १५८०
आयरलैंड—४३०, ४३१, ७२४,
११४२, १६८४
आरचर, मेजर—७०२, ६६६,
१०५५, १०६६
आरनी का संग्राम—३४६
आरस का संग्राम—२७७
आरमीनियन ईसाई—१६०
आरा में विप्लव—१५७६, १५८०,
१५८७, १५६०

आर्मस्ट्रांग, कप्तान—७४६
आल्फ्रेड क्लार्क, कमाण्डर-इन-चीफ़,
सर—४३०
आलमगीर, दूसरा—१२२, १६२
आलमबाग़ (लखनऊ) का संग्राम
१५५२, १५५६, १५५८, १५५६
आलीजाह—४१५
आवा—१०४४, १०६६, १३२२
आष्टा—७३३
आसफ़जाह—४४५, ८२६
आसफ़ुद्दौला, नवाब अवध—२५१,
२५२, २५५, २५६, २५८-२६०,
४२०, ४२१, ८३०
आसाम—१०४१, १०५१, १०५४,
१६८४
आस्ट्रेलिया—६२६, १६७२, १६८७

इ

इंगलिस, ब्रिगेडियर—१५४६, १५४७
इंगलिस्तान—४, ११-१४, १७, २४,
२६, ३८, ११८, १३१, १३२, १५१
१५६-१८६, २१६, २२६, २३४,
२४२, २५१, २५७, २६१-२६३,
३६४-३६८, ३७२, ३६१, ४२४,
४३०, ४३१, ४७४, ५०४, ५१५,
५३१, ५३८, ५६६, ६०६, ६१४,

६१७, ८०७, ८०८, ८२२, ८५५,
के उद्योग धन्धों का विकास
८७७-८८२, ८९४-९०५, ९१२,
९१४, १०८३, १०८६, १०९४,
११०३, ११०४, ११०६, १११६,
११२२, ११३४, ११३६, ११५६,
११५७, ११५९, ११६१, ११६४-
११६६, ११८६, १३३१, १४८८,
१५९३, १५९५, १६२९, १६५६,
१६६७-१६७९, १६८२, १६८४,
१६९०, १६९३-१६९६, १६९९,
१७०३-१७०८

इंगली—८६

इजरटन, करनल—९८९

इटवा—६३७, ७२१, की स्वाधीनता
१४१३, के २५ अमर शहीद
१५६४

इण्डिया रिफार्म सोसायटी—११०६

इतालिया—का भारत से व्यापार

२-४, १५१, ८७७, १३८४

इनाम कमीशन—१३५०, १३६७

इन्क्वीज़ीशन—८

इन्दौर—५८९, ७३४, १००६, १०९३,
में क्रान्ति १४९७, १६३९

इन्द्रगढ़—१६३८

इब्राहीम लिंकन—११०५, १७०५

इमदाद हुसेन खाँ—५०५, ५०६

इमामगढ़—१२११

इमामुद्दीन शेख—१२८१

इराक़—१७०६

इलाहाबाद—२०३, २०४, २१३,
२१४, २२१-२२२, २३१, २४१,
२७१, ४२२, ६३७, १०२९,
१०३२, १३६०, १३९०, १४२०,
में क्रान्ति १४२३-१४२७, १४३३,
१४३८, १४४५, १४९८, १४९९,
१५०१, १५५१, १५५५, १५६६,
१५८२, १६१२, १६१९, १६५४,
१६७९

इलाही बख़्श, मिरज़ा—१५२२,
१५२७-१५३१

इलियास, शेख—३१०, ३११

इसलामाबाद—१३३

इस्तमरारी बन्दोबस्त—३९४, ३९५

ई

ईरज़ खाँ, मिरज़ा—१८७

ईरान के सौदागर २, १५१, २३३,
८४७-८५२, ८५४-८५९, ८७७,
९१९, १४२१, १७०६

ईवन नेपियन, सर—९९३

ईवन्स बेल, मेजर—१०८६, ११६६,
१३०६, १३३३

ईवर्ट, करनल—१४४७

ईशगढ़ में तात्या टोपे—१६४०

ईसाई धर्म—के विषय में भारत
वासियों के विचार १८, का
भारतवर्ष में प्रचार और वेलोर
का गढ़र ८१८-८२१ भारत-
वासियों को ईसाई बनाने की
आकांक्षा और सन् ५७ की
क्रान्ति १३७०-१३७६, का
प्रचार साम्राज्य की स्थिरता का
एक उपाय १६८६-१६६२

ईष्ट इण्डिया कम्पनी—१२, १७, २१
२२, ३५, ३८, १५१, २२६, २३६,
३४०, ३६०, ३६६, ५१०, ५११,
५१५, ६६८, ८००, ८०१, ८०७,
८२२, ८३०, ८३६, ८६२, ८६३,
८८२, ८८३, ८६४, ८२५, ८५६,
१०३०, १०३६, १०६२, ११०३,
११२०, ११३०, ११३७, ११३८,
१२५८, १३७०, १४७७, १६२६,
का अन्त १६६८-१६७४,
१६८६

ईस्ट इण्डिया काटन कम्पनी—
१६६४

ईस्ट करनल—६५६

ईस्टविक, कप्तान—११६६, ११६३,
११६४, १२००, १२०४, १२०७-
१२०६, १२११, १२१६, १२२४,
१२२७, १२२८, १२३१, १२३२,
१२३४, १२३७

उ

उजैन—७३६, ७४१, ७५६, ७६१,
७८३

उड़ीसा—३१, ३४, ५४, ६८, ११०,
११६, १६६, १६७, २१६, २२२,
२३६, २६०, ३८३, पर अंगरेजों
का कब्ज़ा ६८५-६६२, १६३१

उदयपुर—८१०, ६७१, १६३८

उन्नाव का संग्राम—१५४८, १५५०,
१५५२

उम्दतुल उमरा—४१८, ५१६-५२४,
५२६, ५२६, ५३०, १३३५

ऊ

ऊदवानाला की लड़ाई—१८८-
१६३, १६६, २१३

ए

एगन्यू (दूसरा सिख युद्ध)—
१२६१, १२६२

एगन्यू, करनल (मैसूर युद्ध)—
४६०

एच० जोन्स, सर, ईरान में अंगरेज़
दूत—८५५, ८५६
एजूकेशन डिस्पैच, १८५४ का—
११५५
एडमण्ड बर्क—१२६, १५६, २६२,
३६४, ३६८, ४२६, १०३०
एडमॉन्सटन, मार्क्विस् वेल्सली का
सेक्रेटरी—५७२, ६३६
एडम्स, करनल (तीसरा मराठा
युद्ध)—१०३४
एडम्स, गवरनर-जनरल—१०४०
एडम्स, मेजर—१६०, १६१, १६३
एडवर्ड पेजेट, कमाण्डर-इन-चीफ़,
सर—१०५१
एडवर्ड्स, अंगरेज़ दूत—१३१५
एडवर्ड्स, कप्तान—२५६
एडवर्ड्स, मेजर (दूसरा सिख
युद्ध)—१२६६-१३०१, १३७४
ए० डी० कैम्पबेल, बेलारी का
कलेक्टर—११२५, ११२६, ११२६
एण्डरसन (दूसरा सिख युद्ध)—
१२६०, १२६१
एण्डरसन, लेफ़्टेनेण्ट (दूसरा मराठा
युद्ध)—७५०
एण्ड्रू बेल, डाक्टर—११२२

एनसन, कमाण्डर-इन-चीफ़—
१४६८, १४८१, १४८२
एलजीरिया (उत्तर अफ़्रीका)—
१६८६
एलफ़िन्सटन, अफ़ग़ानिस्तान में
अंगरेज़ दूत—८५७, ८६६-८७३
एलफ़िन्सटन, रेज़िडेण्ट, बाद में
लार्ड और बम्बई का गवरनर—
७८६, ६७६, ६८०, ६८४-६६५
६६७, ६६६, १०००, १००३,
१००६, १००७, १००६, १०१५,
१०२८, ११२७, ११५६, १७०२
एलयाट, अंगरेज़ दूत—२८८
एलाइजाह इम्पे—२४६, २५३, २६२,
३६१, १०२८
एलिज़ेबेथ, मलका इंगलिस्तान—
१२, १६६८
एलिस—१८३, १८४, १६३, १६५
एलेनबु, लार्ड—११८१, ११८६,
१२०५-१२०७, १२३६-१२५६,
१२६३, १२६५, १३१३, १३६१
ए० वाकर, मेजर—६८१, ६८२
एशले एडन, सर—१६६४
ऐ
ऐबट, कप्तान—१२६४-१२६७

ऐबे दुबॉय—८१६
 ऐमयाट, अंगरेज़ दूत—१७६, १८१-
 १८५
 ऐमहर्स्ट, लार्ड, गवरनर जनरल—
 १०४०-१०७४, १०८६, १२५५
 एम्बौयना—४२३
 ऐलूरेड क्लार्क, कमाण्डर-इन-चीफ,
 सर—५५१

ओ

ओरछा, का राजा क्रान्तिकारियों
 के विरुद्ध—१६०८

औ

औरंगज़ेब—१७, २०-२२, ३१, १६१,
 ३०३, ४६३, ८२६
 औरंगाबाद—५८६, ६३५, ६५२,
 ६५३, ६५६

क

कश्मिन—७
 कच्छ—६५५, ६५६, १०४४, १२३३,
 १४६७
 कछाड़—१०५१, की स्वाधीनता
 का अन्त १०८४, ११००
 कजूरी, का संग्राम—१६४२
 कंचगांव, का संग्राम—१६१०
 कटक—६०८, ६५३, ६८६

कडप्पा—४७५
 कड़ा (इलाहाबाद)—२१३, २२२,
 २७१
 कदम रसूल (लखनऊ)—१५७३
 क्रमरुद्दीन खाँ—४६३, ४६४
 कमल, सन् ५७ की क्रान्ति का एक
 चिन्ह—१३६२, १३६३
 कमलनयन मुन्शी—७८७, ७८८,
 ८०६
 कम्बोदिया—८७७
 करनाटक—२२-२८, २६६, ३०६,
 ३१८, ३३१, ३४०, ३४१, ३६४,
 ३६५, ४१६, ४१८, ४३४, ४८०,
 ५१०, ५११, की नवाबी का
 अन्त ५१८-५३२, ५५७, ५७८,
 ५८७, ८८०, १३२३, १३३४,
 १३३५, १३४१
 करनाल में जनरल ऐनसन की
 मृत्यु—१४८१-१४८३
 करनूल—४७५, १०३८
 करमअली, सिन्ध का अमीर—
 ११६२
 करमण्डल—३७, ५०८
 करवी, के राव के साथ अंगरेज़ों का
 व्यवहार—१६०८, १६०९
 कराची—१२३२

करीम खाँ पिण्डारी—८३६

करीम साहब—३४०, ४६३

कर्कपैट्रिक, कप्तान, रेज़िडेण्ट—४३६

४४१, ४४४, ४४६, ५५१

कर्कपैट्रिक, मेजर—४३२, ४३६, ८४६

कर्ज़न, लार्ड—१३३६

कलकत्ता, ग्राम का अंगरेज़ों को

दे दिया जाना २१, ३६, ४३-४५

४७, ४६, ५२, ५७, ५६, ६१, ८५,

६०, ६१, १२३, १३१, १३४-१३८

१४८, १५०, १८३, १८६, १६६,

२०२, २१७, २१६, २२२, २२३,

२३६, २४०, २४१, २४६, २८२,

२८३, २८६, ४२६, ४३०, ४३१,

४३५, ४४०, ४५७, ४७६, ४६७,

५५१, ५६७, ६८८, ७३५, ७५२,

८०३, ८०४, ८११, ८२४, ६३२,

१०४०, १०४१, १०४७, १०५५,

१०६१, १२२३, १३५७, से क्रांति

का प्रचार १३८६, १३६४, १३६५

१४०३, १४२०, १४२३, १४६८,

१४६८, १५५४, १५५५, १६५४

कलंगा का दुर्ग — ६३५-६४२, ६४४

कलिंजर—६७०

कल्याण—३०१

कल्याणसिंह, महाराजा—१६३

२०७

काक्स, कप्तान—१०४१

काक्स बाज़ार—१०४१

क्राज़िलबाश, अफ़ग़ानिस्तान के

सरदार—११७४

काटन, कमाण्डर-इन-चीफ़-१०६७

काठमाण्डू—६३४, ६४४, ६५१

काठियावाड़—६५५, ६७६, १०४४

क्रादिर नवाज़ खाँ—६३२, ७११

कानपुर—६३७, ६६७, ७६२, ६६६,

१३६८, १३६६, १४२०, १४३४

में क्रान्ति १४३६-१४४०, १४६४

१४६८, १५१०, का कुँआ १५४८-

१५५१, १५५५, १५५६-१५६४,

१५६३, १६१३, १६४६, १६५४,

१६५५, १६५७, १६५६, १६६१

काबुल—५४३, ५४४, ८१२, ६०६

११६३-११६५, ११७१, ११८०,

११८८

काबुली दरवाज़ा, दिल्ली—१५२३,

१५२४

कामगार खाँ—५४६

कामाक्षी बाई—१३३४

कार्टियर, गवरनर, बंगाल—२३१

कारनक, मेजर, बाद में जनरल—

१६६७, १६३, २०६, २२१

कारपेण्टर, करनल (नेपाल युद्ध)—

६३७, ६४२

कारपेण्टर, मेजर (सतारा के राजा प्रतापसिंह काजेलर)—

४७१

कारुड—३३४

कार्नवालिस, लार्ड—३६७, ३६६

३६७, ४०३, ४०४, ४०६, ४१६,

४२६, ४३२, ४५०, ४५१, ४६१,

४६६, ५०४, ५४४, ६००, ८०३,

८०६, ८१३, ८२४

कालपी—६७०, क्रान्ति का एक

केन्द्र १५५१, १५५६, १५६०,

१६०६, १६०७, १६०६-१६११

कालिन कैम्पबेल, कमाण्डर-इन-चीफ़

सर, बाद में लार्ड क्लाइड—

१४३५, १५५४- १५५६,

१५६२, १५६३, १५६५, १५६६,

१५६८, १५६९, १५७१, १५७२,

१५६६, १६२७, १६३६

कालिन्स, करनल, रेज़िडेण्ट—५४४,

५४५, ५७५, ५७६, ५६८, ६०३,

६०६, ६०७, ६१०-६१२, ६१६-

६२७, ६७०

कालीकट—५, ६, १५

काले खाँ, रिसालदार, झाँसी

(सन् ५७)-१४५४

काल्याँ-दा-खूह, अजनाला-१५१४-

१५१६

कावेरी पट्टम—३१८, ३१९, ३२१

काशमीर—१०६८, १२६२, १२८१

१२६४

काशमीरासिंह—१२५२

काशी—देखो बनारस

काशी—रानी लक्ष्मी बाई की एक

सहेली—१६१५

काशीराव, होलकर—५४०, ५४१

६३२

काशमीरी दरवाज़ा, दिल्ली—१४०८,

१५२३-१५२५

कासलरी, लार्ड—६१८

कासिम बाज़ार—३६, ४२, ४३, ५७

७०, ८६, १३५, १५५४

काहनसिंह—१२६१, १२६२

किंग बेरिंग—१०४१-१०४३

किनेरी का संग्राम—१२६६

किशनदास, राजा—४१, ४६

कीटिंग, करनल—२७८, २८०

कीरतसिंह, राजा—१०३४

कूट, मेजर—१०८, १०९, १६६

- कुदला (कुरदला) का संग्राम—
४१५, ४३८, ५५४, ५५५
- कड़लोर—१३३४
- कुंवरसिंह, राजा जगदीशपुर, क्रान्ति
का प्रमुखनेता—१५७६-१५६०,
१६६१
- कुमार्यु—६४४, ६२६, ६४८-६५०,
१६८४, १६८५
- कुमार कुण्डा—७८३
- कुर्ग—३३७, की स्वाधीनता का
अन्त १०७८-१०८४, ११००
- कुशलगढ़—७४८-७५०
- कुस्तुनतुनिया—१३८३
- कूपर, जनरल—१५५२, १५५७
- कृष्णराव, मंत्री हैदरअली—३५०,
४८३
- केन्नवे, कप्तान—३८५
- केरहर्डी—११२०
- केली, मेजर, बाद में करनल—६३७,
१०६४
- केलो, करनल—१२२-१२६, १२६,
१३८, १४३, १६६
- क्रैडक, सर जान, ईसाई मत प्रचार
में उत्साह—८१६
- कैथल—८६३, पर अंगरेज़ों का
क्रब्ज़ा १२४६-१२५०
- कैनिंग, कप्तान—१०४४-१०४६,
१०५१
- कैनिंग, लार्ड—११५७, १३५२,
१३७२, १३६७, १४२१, १४२४,
१४६८, १४७०, १४८१, १४६८,
१५६६, १५८२, १५८३, १६२५,
१६२६, १६४३, १६५८, १६६४,
१६७६, १६७६
- कैनोरा, करनल—१२६७
- कैम्पबेल, कप्तान (नैपाल युद्ध)—
६३७
- कैम्पबेल जेम्स, करनल, बाद में सर
(दूसरा मराठा युद्ध)—६५३,
६५५, ६८६, ६८७
- कैम्पबेल, करनल (सन् ५७)—
१५२२, १५२४, १५२५, १५२६
- कैम्पबेल, जनरल (बरमा युद्ध)—
१०५१
- कैलाशगढ़—३४४
- कैवेनडिश, रेज़िडेण्ट—१०६०
- कैवेना, अंगरेज़ गुप्तचर (सन् ५७)
१५५६
- कैस, जनरल, अमरीकन नीतिज्ञ—
१३२०
- कोंकण—३०१, ६६३
- कोट कपूरा—१२६७

कोटा—७४३, ७४५, ७६६, ६७२

कोपरगाँव—४००

कोमल दुग—१६२५

कोयम्बतूर—३५६, ३५८

कोयल—पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा

६६४, ६६६, ७३८

कोरल—२७६

कोरिया की रेलें—६१४

कोलबुक, अंगरेज़ दूत—५४८, ५५१

५७७

कोलम्बस—४

कोलार—३०६

कोल्हापुर—५७७, ५७८, में क्रान्ति

१६१६

कौंगा का क़िला—६६६

क्राफ़र्ड—८६६

क्राइव, बाद में लार्ड—३२, ५१,

५३, ५८, ५६, ६१, ६६, ६८, ६६,

७६, ७७, ७६, ८३, ८६, ८८, ६०,

६२-१२१, १२६, १४१, २१६-

२३२, २३८, २४०, २४१, ४२४,

५३१, ५६७, ८७५, ८६१, १०२८,

१३४६, १६६८

क़ोज़, करनल, रेज़िडेण्ट—४४२,

४६०, ६०६-६०८, ६३२, ६५६,

६६१, ६७७

ख

खड़की, का संग्राम—१०००-१००१

खड़गसिंह, महाराजा—१२५०,

१२५१

खण्डाला—२६०

खम्मात की खाड़ी—२६६

खाकीशाह पीरज़ादा—३२५, ३२६

खाण्डेराव, मैसूर का दैव—३१३,

३१४

खानदेश—६७१, ६७१, में क्रान्ति

१६२५

खान बहादुर खाँ, क्रान्ति का प्रमुख

नेता—१४१४-१४१६, १४१८-

१४२०, का ऐलान १५६६,

१६२५

खिमलासा—१२४३

खुदादाद खाँ—७८

खुदाबख़्श, सरदार, भाँसी की

लड़ाई—१६०६

खुदाम हुसेन—१११, १२५

खुरशेदजी जमशेदजी मोदी—६८४-

६८६

खुसरो बाग़, इलाहाबाद—१४२६,

१४३४

खुसरो बेग, मिरज़ा—१२१६,

१२२२

खूनी दरवाज़ा, दिल्ली—१५३२
 खैरपुर—११६६, १२०१, १२०२,
 के नगर का लूटा जाना १२११,
 १२२३, की बेगमों की शोच-
 नीय हालत १२२४, के अमीर
 का चरित्र १२२६

ग

गंगादास, बाबा—१६१८
 गंगाधर राव, राजा (भाँसी)—
 १३३२, १४५१
 गंगाधर शास्त्री—६८१, ६८४-६६२,
 ६६८
 गजराज मिश्र, नैपाल का कुल
 पुरोहित—६५१
 गजम—६५३, ६८७, ६०८
 गंजी—३४२
 गढ़वाल—६२६, ६३४, पर अंगरेज़ों
 का क़ब्ज़ा ६४८-६५०
 गढ़ा मण्डला का प्रान्त—१०२६
 गणेशराव—३३६
 गफ़्त, लार्ड—१३०४
 गफ़ूर बेग, क्रान्तिकारी सेनापति—
 १५६८
 गफ़्तार, सय्यद, टीपू का सेना-
 पति—३८०, ४६५, ४६७
 गया मौनपुर—१६६

गाज़ी उद्दीन, वज़ीर दिल्ली—१६२,
 १६४
 गाज़ी उद्दीन हैदर, नवाब अवध—
 ६३१-६३३, ६६०
 गाज़ी ख़ाँ—४६६
 गाज़ीपुर—२१४, ८०६, १५८२,
 १५८४
 गाडर वाड़ा—१०२६
 गाड्ड, करनल—२६२, २६६-२६८,
 ३०१, ३०४
 गायकवाड़—२६५, २६७, २६३,
 ३०७, ३४८, ३६२, ४०६, ६८१,
 ६८२, ६७६-६८३, ६८६, ६८७,
 ६८६
 गायकवाड़, आनन्दराव—६८२,
 ६८३, ६८२
 गायकवाड़, गोविन्दराव—२७८
 गायकवाड़, दमनाजी—२७८
 गायकवाड़, दूमाजी—६८०
 गायकवाड़, फ़तहसिंह—२७८,
 २८२, ६८०, ६८१, ६८६, ६८७,
 ६८६
 गायकवाड़, मलहर राव—६८२
 गायकवाड़, मानिक जी—२७८
 गायकवाड़, सयाजी—२७८, २७६
 गार्डन, कप्तान—१२३०

- गार्डनर, करनल—१४६
गाविलगढ़—६७३, ६७७, ६८०,
१०२३
गिरिधर राय—२६३
गुजरात—२७६-२७६, २६७, २६८,
३०५, ६५३, ६७३, ६७५, ६७७,
६८१, ६८५, ७३४, ७३८, ७३९,
७४१, ७५६, ७६०, ७७४, ८७१,
८८०, ८८६, ८८१-८८३, ८८८,
१२३३, १६७६
गुजरात (पंजाब) का संग्राम—
१३०५
गुलदूर—३०४, ३४२, ३८५
गुरु बख्शसिंह, हवलदार, भांसी का
क्रान्तिकारी—१४५४
गुलबर्गा—३०६
गुलशनाबाद—४६३
गुलाबसिंह, राजा—१२६१-१२६३,
१२७८-१२८२, १२८५, १३०२
गुलाबसिंह, सन् ५७ का क्रान्ति-
कारी—१६२६
गुलाम अली, सिंध का अमीर—
११६२
गुलाम ग़ौस खाँ, क्रान्तिकारी
भांसी—१६०२
गुलाम मोहम्मद, नवाब रुहेल
खण्ड—४१८
गुलामशाह, सिंध का अमीर—
११६१
गुलाम हुसेन, सय्यद—५१
गैरिबाल्डी की सन् ५७ की क्रान्ति
से सहानुभूति—१३८४
गोआ—६-६
गोंडा में, क्रान्ति—१४५८
गोपालपुर—१६१२
गोरखपुर, में कम्पनी के अत्याचार
२५८-२६०, ८२८-८३०, ८३१,
८४४, १३५४, की स्वाधीनता
१४२०
गोविन्द गढ़—१३०३
गोविन्द चन्द्र नारिन, राजा—
१०५१, १०८४
गोविन्दपुर—२१
गोविन्दराम, मित्र—८६
गोविन्दराव, काले—४१४
गोहद—३०२, ३०६, ७२८, ७२९,
७३१, ७८३, ७८८, ७९८, ८०५,
८०६, ८१०, ८२३, ८७१
ग्राण्ट डफ़, कप्तान, रेज़िडेण्ट—
१३२६

ग्राण्ट, ब्रिगेडियर-जनरल—१५५५,

१५५६

ग्राण्ट राबर्ट, सर, गवर्नर—१३२७

ग्राम पंचायतें—३८७-३६३

ग्रिगरी खोजा—१६०, १६५

ग्रीन मरसर—६३६, ६३७, ६६६

ग्रेट ब्रिटेन—४३१

ग्रेट हेड, जनरल—१५५५-१५५७,

१५६४

ग्रैहम, कप्तान—६५६

ग्लासगो चैम्बर आफ़ कामर्स—६००

ग्वालियर—में काशी नरेश चेतसिंह

के अन्तिम दिवस २५०, ३०२,

३०६, ६६६, ७०१, ७०४, ७०६,

७०७-७०८, ७३१, ७८३, ७८८,

८०५, ८०६, ८१०, ८७६, १०८६,

१०८१, ११००, १२३८-१२४६,

में क्रान्ति १४६६, १५४६, १५६०,

१५६३, पर क्रान्तिकारियों का

क्रब्ज़ा १६११-१६१६

च

चट्टग्राम—१३४, १४२, १४३, १५८,

२०३, ४३०, १०४१, १०४२,

१०४८

चतरसिंह अटारीवाला—१२६४-

१२६८, १३०२, १३०४

चन्दर गिरि का क़िला—३४४

चन्दर नगर—३०, ७६, ७७, ७६-८३,

८५, ८६, १००, ४३०

चन्दा साहब, करनाटक का नवाब—

२६-२६

चन्दासिंह, सन् ५७—१६२६

चन्देरी—१६००

चपाती—सन् ५७ की क्रान्ति का

चिन्ह विशेष—१३६२, १३६३

चम्बल नदी—७४१, ७४३, ७४४,

६७६, को पार करने के तात्या

टोपे के प्रयत्न १६३८-१६३६

चम्बेली नदी, पर मानसून की सेना

की दुर्गति—७४५

चरखारी में तात्या टोपे—१६०४

चान्दौर—७२६, ७२७, ७३२, ७३४,

७६१

चारटर एक्ट—सन् १७७३ का ३६६,

सन् १८१३ का ८८६, सन्

१८३३ का ११०३-१११७,

११३३, सन् १८५३ का ११३७,

१६७०, १६७१, १६८३

चारबाग़, लखनऊ का संग्राम

(सन् ५७)—१५५३

- चार्ल्स नेपियर, जनरल, सर—
१२०७-१२१८, १२२५-१२२७,
१२३४, १२३५, १२३७, १३००-
१३०२
चार्ल्स मेटकाफ़, सर—८६४-
८६७, १०५५, १०५८, १०६३,
१०६७, १०६६, १०६५, १०६६,
११५६, १३५६, १६७५, १६८३
- चार्ल्स बुड, सर—११५५
चिखली—२७६
चिङ्गलपुट—१३३५
चितवर—१४६
चितूर का क़िला—३४४
चित्तल द्रुग—३३८, ८७४
चित्तौड़—६७१
चिनहट (लखनऊ) का संग्राम—
१४६४, १५४४
चिपौक का महल, अरकाट—५२६,
५३०
चिमना साहब, कोल्हापुर का
क्रान्तिकारी नेता—१६२०
चिलियान वाला का संग्राम—
१३०४, १३०५
चीतू पिण्डारी—८३६, १०३४
चीन—१५१, २३३, ८७७, ६१४,
१४२१, १५५४, १६६४, १६८५
- चीप, अंगरेज़ प्रतिनिधि, बरमा—
१०४८
चुँचड़ा—१०, ११, ४३०
चुनार—२१२, २५१, ६६६, के क़िले
में त्रयम्बक जी डाँगलिया की
मृत्यु ६६७
चेतर्सिंह, राजा बनारस—२४८-
२५०, २५२, २५३, १४२२
चेरी, वज़ीर अली का रत्नक—
४६६
चोमहन—१४६
चौकघाट, में बेगम हज़रत महल
की सेना का कैम्प—१६२६
चौतरा बामशाह—६४६
चौथ—२६५, ३१२, ३३६, ४१४,
५५५, ५६३, ६८६, ७२१
चौरागढ़—१०२५, १०३३
च्यू, क़सान—१०४८
- छ
- छत्तीसगढ़—१०३४
छपारा-सिवनी—१०२६
छूतावटी (सूतानटी)—२१
- ज
- जगतसिंह, बाबा—१५१६

जगदीशपुर में विप्लव—१५७८-

१५८१, १५८३, १५८७, १५९०
१५९२

जगन्नाथ पुरी—६८६, ६८८

जगन्नाथ सिंह, राजा—१५९७,
१५९८

जंगबहादुर, महाराजा, प्रधान मंत्री
नेपाल—१५६७, १६३५

जंगलवाड़ी—८९१

जबलपुर—१०२९, १०३३, १६०७
में क्रान्ति १६२१

ज़मानशाह—५४३, ५५२, ८५०-
८५४

जम्मू—१२५२

जयटक—६४२-६४४

जयनगर—५५२

जयपुर—७०७, ७०८, ७२३, ७४९,
८०५, ८०६, ८१०, ८७२, ८७३,
८७४, १०८७, १०८८, १४९७,
१५१८, १५१९, १६३७

जरमनी के किसानों की अवस्था—
३२, ३४

जलालाबाद—११८१, १२५२

जवां बख्त, शहज़ादा—१३६२-
१३६४, १५३०, १५४३

जशपुर—१०२३

जसारत खाँ, उड़ीसा का नायब—
२३६

जहाँगीर—१३, १४

जहाँगीर, मिरज़ा (सलीम मिरज़ा)

सम्राट अकबर शाह का पुत्र—
१३६०

जहाँनाबाद—१४९

जाश्वोरा—१०३७

जांती—१६३

ज़ागलूल पाशा—१७०६

जाधो बौशार—५५४

जान कुक—४६

जान कोक, करनल—१७०१

जॉन कोनोली, कप्तान, का अफ़ग़ान
सरदारों की हत्या के सम्बन्ध में
गुप्त पत्र—११७४, ११७५

जान ब्रिगज़, जनरल—११६६

जान मिचेल (भाँसी की लड़ाई)
—१६०५

जान मैक् फ़रसन, सर—३६४,
३६६-३६९, ४०३

जान मैलकम, करनल, बाद में
सर—३८१, ४३९, ४४०, ४४४,
४४७, ४६०, ५६४, ७२७, ७२८,
७३०, ८१७, ८४८, ८५४, ८५६,
८५७, ८६५, ८६६, १०००, १००३,
१००४, १०१६, १०६४, ११३१,
११३२, ११३४

जान लारेन्स, सर, बाद में लार्ड—

१३७४, १४६६, १४७०, १४७३,
१४७७, १४८३, १५१५, १५३३,
१६५१

जान विलियम के सर—१४५२,

१४५४, १४७७, १४७८, १४८१,
१४८०, १४८४, १५०२

जान शोर, सर—३६८-४२४, ४२५,

४३७, ४५४, ४६६, ५१४

जापान—१५१, ८७७, १६६५

जामगांव—७८३

जामा मसजिद, दिल्ली पर अंगरेज़ी

सेना का हमला—१५२५, १५२६

जार्ज कैम्पबेल, सर—१४३८, १५२६

जार्ज टामस—६४८, ८१६

जार्ज, तीसरा, इंगलिस्तान का

बादशाह—से हैदरअली से संधि

३३७, ३६५, ६७८

जार्ज फ़ारेस्ट, सर—१३६८, १४६२,

१५०५, १५२२, १६५७, १६६६

जार्ज फ़ार्सटर, अंगरेज़ दूत—३७४

जार्ज बारलो, सर—६२२, ८०८,

८०६, ८१३, ८१६-८१८, ८२१

जार्ज लवी बाण्ड—२७८

जार्ज वाट, सर—६२२

जालन्धर—१२६८, १४७२, में

क्रान्ति १४७८-१४८०

ज़ालिमसिंह, राजा—७४३, ७४५

जावा—१०

जिलैस्पी, मेजर जनरल—६३४-

६३६, ६४३, ६४४

ज़ीनत महल, बेगम—१३६२,

१३६१, १४०८, १४६३, १५३०,
१५४३

जीन बैप्टिस्टे फ़िलासे—७३३, ७८५-

७८८

जीवनसिंह, राना—६३६

जी० विनगेट, मेजर—१७०२, १७०३

जूठाराम, जयपुर का मन्त्री—१०८७

जूदा—८६

जूनागढ़—६७६

जे० एस० बर्किघम—१०४०

जेतपुर—१२५४, १३२३, पर कम्पनी

का कब्ज़ा १३३४

जेन किन्स रेज़िडेण्ट—७८४, ८०५,

८१०, १००६, १०१३, १०१४-
१०२६, १०२८

जेम्स, अब्बल—१३

जेम्स ऊटरम, करनल, बाद में जन-

रल और सर—१२०७, १२०६,

१२११-१२१६, १२१८, १२३०,

१३४७, १५५२, १५५४, १५५६,

१५५७, १५५६, १५६६, १५७१,

१५७२

जेम्स क्रेग—५४७

जेम्स टाड, करनल—१७२-१७४

जेम्स बर्न्स, डाक्टर—१२२७

जेम्स मैकिण्टाश—१७८

जेम्स स्टिफ़ेन, सर, की मलका
विक्टोरिया ऐलान पर राय—
१६७८

जेरु सेलम—१८१

जे० सी० मार्शमैन—११३०, ११३६

जैकब, मेजर—१५२५

ज़ैनुल आबदीन—२०७

जैनोघ्रा—२

जैन्तिया—१०८४

जोधपुर—५५२, ८१०, में अण्णा
साहब के अन्तिम दिन १०३५,
१०८७, १४६७, १५१८, १५१६

जोन्स, ब्रिगेडियर (सन् ५७)—
१५२३, १५२४

जोन्स, मेजर-जनरल—७७४

ज़ोरापुर, का वीर बालक (सन् ५७)
—१६२२-१६२४

जोशिया वेब—४५४

जौतगढ़—६४२

जौनपुर—सन् ५७ में स्वाधीनता
१४२२, १५६७

जौन सर—६४३

जौरा अलीपुर—में तात्या टोपे—

१६३७

ज्वाला प्रसाद, नाना का साथी—

१४४१, १४४५, १५००

ज्वाला सहाय, दीवान—१२६७

झ

झण्डासिंह, सरदार—१२६७

झांऊलाल, महाराजा—४२०

झांसी—२६८, १०६३, ११६६,

१३२३, पर कम्पनी का क़ब्ज़ा

१३३२, १३३३, १३४७, १३५५,

१३६६, में क्रान्ति १४५१-

१४५४, का संग्राम १६००-

१६०७, १६५५, १६५७, १६७६

झालरा पट्टन, में तात्या टोपे—
१६३६

झिन्दाँ कौर, महारानी—१२६०,

१२८१, १२६२-१२६४, १३५४

झिंद—१४७०, १४८१, १४८२,

१५२१, १६५१

ट

टकर, करनल—१३६८

टर्की—१३८३, १७०६

टाड, कप्तान (दूसरा मराठा युद्ध)—

७२०

टामस मेटकाफ़, रेज़िडेण्ट—१३६३
 टामस रो, सर—१४
 टामस हिसलप, सर—१७०
 टालपुर (सिन्ध का राजकुल)—
 १२१७, १२२४
 टिलसिट की सन्धि—८५५
 टीकासिंह सूबेदार, कानपुर का क्रांति-
 कारी—१४४१, १५००

टीपूसुलतान (फ़तह अली)—३१८,
 ३२४, ३२५, की मंगलोर विजय
 ३२८, ३२९-३३२, ३३६, ३३८,
 ३४०, का करनल बेली से युद्ध
 और विजय ३४१-३४२, ३४४,
 ३४५, ३४७, की मसनद नशीनी
 ३५०, की अंगरेज़ों से सन्धि
 ३५१, ३६२, का अंगरेज़ों से युद्ध
 ३७०-३८३, ४१५, ४३२, ४३४,
 ४३७, ४४७, का शासन, युद्ध,
 मृत्यु और चरित्र ४४९-४६४,
 ४६६, ५१६, ५२१, ५२४-५२७,
 ५३२, ५३८, ५४१, ५४६, ५४८-
 ५६४, ५६६, ५७१, ६१८, ६४०,
 ७५१, ८२१, ८५३, १०७६,
 १०८०, १०८५

टी० मैकेन—१३७३

टीरने, मेम्बर पार्लिमेण्ट—६६५, ६६६

टेनमथ, लार्ड—देखो जानशोर, सर
 टेलर, कमिशनर—१५७८
 टेवाय—१०६४
 टेहरी टीकमगढ़—१६०१
 टोंक—६३६, ७३८, १६३८
 ट्वेलियन, सर, चार्ल्स—६१६,
 ६१७, ११४३-११५४, ११५६,
 ११५७

ठ

ठठा, कपड़े के व्यवसाय का केन्द्र—
 ११६१

ड

डगलस, सेनापति—१५८५,
 १५८६, १५९०, १५९१
 डच जाति—६-११, ३०, ५४
 डनकन, गवरनर—८४६, ८४९
 डनवर, कप्तान—१५८०
 डफ़रिन, लार्ड—८२४
 डलहौज़ी, लार्ड—८६३, ११५५,
 ११६६, १२८५, १२८६, १२९८,
 १३०९, १३११-१३१३, १३१५,
 १३१७-१३२१, की भू-पिपासा
 १३२३-१३५२, का राजघरानों
 के प्रति बर्ताव १३५४-१३५५,
 की अपहरणीति क्रान्ति का

कारण १३५६, १३६२, १३६५,
१३६६, का इनाम कमीशन
१३६७, का नाना के साथ अन्याय
१३६८, का गोद लेने की प्रथा
नाज़ायज करना १३७२ का
भाँसी के शासन में हस्तक्षेप
१४५१, का वाज़िद अलीशाह
को बदनाम करना १४६३, का
जगदीशपुर का अपहरण १५७८,
की अपहरणनीति पर लडलो
१६६३, १६७६, १६८०

डह्ला (डाला-बरमी ज़िला)—

१०६४, १३१८
डवटन, मेजर—४५६, १०२१
डाउड्सवेल, १८०८ में गवरमेन्ट
सेक्रेटरी—८२६
डान, करनल—७३८
डानेल्ड मैकलिआड—१३७४
डिक, भाँसी की लड़ाई—१६०५
डिज़रेली, प्रधानमंत्री, इंगलिस्तान
—१४०१

डिप्टीगल—३१३

डीग—७६६-७७२

डूग्रे, अंगरेज़ दूत—३३३, ३३६

डेनियल, इटावे का असिसटेण्ट
मैजिस्ट्रेट—१४१३

डेम्स, करनल—१५८२

डेरा गाज़ी ख़ाँ—१२६६

डेविड आक्टर लोनी, करनल, सर
७०३, ७६३, ८६८, ६३४, ६४५-
६४६, ६७३

डेविड बेयर्ड, सर—३४२, ४३२,
४७७, ५१४

ढ

ढाका—४१, ८६

ढूँढ़िया खेड़ा का संग्राम—१६३५

त

तंजोर—२७, २८, ३००, ३१०,
४३४, ५०७-५१७, १३२३, का
अपहरण १३३४

तफ़ज़ुल हुसेन ख़ाँ, नवाब-१४५८
तरकाट पल्ली, का संग्राम—३४६,
३४७

तलवण्डी—१२६६

ताज़ीरात हिन्द—१११५-१११७,
१६६६

ताजुद्दीन, दिल्ली सम्राट का दूत—
१४७०

तात्याटोपे—१४३६, नाना के
साथ फ़तहपुर में १५५६, का
बिठूर पर क़ब्ज़ा १५६०, का

कानपुर पर फिर से कब्ज़ा
 १५६१, का कैम्पबेल से संग्राम
 १५६२-१५६३, की लक्ष्मीबाई
 से बातें १६०७, कालपी में
 १६०६, के अन्तिम प्रयत्न
 १६१०-१६४७, का बलिदान
 १६४८, १६६१
 तानू नदी का संग्राम—१५८४
 ताझाह का क़िला—४३, ६०, ६१
 तारागढ़—६४६
 तालनेर—१०३२
 तालेगाँव, का संग्राम—२६०,
 २६४, की सन्धि २६८
 तिरहुत—१५७७
 तिलक चन्द, राजा—१४६, १५०
 तुकाजी, होलकर—देखो होलकर
 तुकाजी
 तुलजा जी—५१०, ५११, ५१६
 तेजसिंह, राजा, अवध का एक
 क्रान्तिकारी नेता—१५६६
 तेजसिंह, सरदार, पंजाब—१२६१,
 १२६३, १२७०, १२७३, १२७७,
 १२७६, १२८२, १३०२, १३०६
 तेनासई—१०६४, १३११
 तेरानो, लेफ्टेनेण्ट दी—८०, ८१
 तेहरान—८४८

तैलंगतेश—३७
 त्रयम्बकजी डांगलिया—६८७-६६७
 त्रयम्बक दुर्ग—१०३२
 त्रिचन्नपल्ली का संग्राम—२६, ३४१,
 ३४६
 त्रिनमल्ली—३२२, ३२४
 त्रिम्बाजी—५१४
 त्रिवारकुर (तिरुविदांकुर, त्रावणकोर)
 ३७५, ५८७, ८२०, ८४६

थ

थानेश्वर—१२५०, १२५२, १४८२,

द

दन्दोल—६८१
 दमदम की घटना (सन् ५७)—
 १३६५-१३६८
 दयाराम, हाथरस का जाट राजा—
 ६५७, ६५८
 दरगाह कुली खाँ—३११
 दरिया गंज, दिल्ली—१४०८
 दरिया दौलत बाग—३४२
 दरियाना—११६५
 दलीपसिंह, महाराजा—१२५२,
 १२५६, १२६०, १२६१, १२६४,
 १२६६, १२७२, १२८१, १२८२,
 १२८६, १२६२-१२६५, १३०८,
 १३५४

दलीपसिंह, सूबेदार (फ़ैज़ाबाद)

१४६०

दस्तक—४०, ६८, १५२, १५४

दादपुर—६५

दादा खासजी वाला—१२४२-

१२४६

दानापुर—१४२०, १५७८-१५८०

दामोदर राव, राजा, काँसी—

१३३२, १४५१

दामोदर, लक्ष्मीबाई का दत्तक पुत्र

—१६०६, १६०७

दाराबख्त शाहज़ादा—१३६२

दिनकर राव—१६१२

दिलखुश बाग़ (लखनऊ) का

संग्राम—१५५७, १५५८, १५७३

दिल्ली—६, ८, १३, ३१, ३२,

११६, १२२, १२४, १२५,

१६०-१६८, २४१, २६४, ६१६,

६६३, ७००-७०४, ७५६, ७६२,

७६३, ७६५, ७६७, ८०१, ८०८,

८०९, ८६५, ९०९, ९३९, ९६१,

१३४३, १३५३, १३५७-१३६२,

१३८६, १३८७, १३८९, १४०६-

१४०९, की स्वाधीनता १४१०-

१४१४, में सिपहसालार बख्त

खाँ १४२०, १४२१, १४२४,

१४३८, का क्रान्ति में महत्व

१४६४-१४६६, १४७६, १४८१-

१४९६, १५१०, १५१६-१५२६,

का पतन १५२७-१५४३, १५४४,

१५५५-१५५८, १५६३, १५६४,

१५६६, १५७१, १५७३, १५७७,

१६१३, १६२१, १६४६, १६५१,

१६५३, १६५५, १६५७

दिल्ली सम्राट—२१, २३, ४०, ५४,

७४, ८४, २१५, २६४-२६६, २६३

२६६, ३०३, ३०४, ३१२, ३८३,

३६४, ४०१, ४०२, ४४२, ५३३,

५५५, ५६२, ६३६, ७०२, ७६२,

९६०, ९६१, का मान भङ्ग

१०७२-१०७४, १०८६, ११९०,

१२५५, १२५६, १३४०, १३५४,

१३५६-१३६४, देखो बहादुर-

शाह गो हत्या के विरुद्ध आज्ञाएँ

१४८७, १६६३

दिव—७

दी बायन—४०१, ४०६, ६६३, ६६४,

दीवान अली—१३१०

दीवानी—२२४

दुबाथ करनल—१०८८

दुर्लभराम, राजा—८७, ६३, ६४,

१११, १३३

दुन्यूयू—१०६५

दूप्ले—२३-२६

दूमास—२३

देवम्मा जी (कुर्ग की रानी) १०८०

१०८२

देवास—१६४८

देवी कोट—२८, ५०६

देहरादून—६२६, ६३४-६३६,
६४२

दैव (दलवाई) ३१३, ३१४, ३५२
४७४

दोलचासिंह—७६४

दोस्त अली खाँ—२३, २५, २६

दोस्त मोहम्मद खाँ—११६०-
११६५, ११७१, ११७२, ११७३,
११७८, ११८०, ११८८, १२६४,
१३०५, १४७१

दौरारा, दुर्ग—१५६८

ध

धर्मपुरी—३२०

धार—१६२१

धारवाड़ में क्रान्ति—१६२०

धूँडिया बाघ (मलिक जहान खाँ)

—४७५, ५६६, ५६६, ५८६

धौलपुर—३०२, ८०५, ८०६

न

नजफ़ खाँ—१८६, २१३, २६६,
३००

नजफ़ गढ़—१५२१

नजमुद्दौला—२१७, २१८, २२०,
२२१, की हत्या २२३-२२४,
५३१

नज्जुन गुह—४८५

नदिया—८६, ११४

नन्द कुमार, महाराजा—८०, ८१,
८५, १६०, १६२, १६५, २०८,
२१६, २१६, २४०, को फांसी
२४५-२४७, २५७

नन्दीराज—३१३

नरपति सिंह (रुइया का ताल्लुके
दार, अवध का क्रान्तिकारी
नेता)—१५६५, १६२६

नर्बदा, नदी—६६४, ६७१, १०२३,
को पार करने के तात्या टोपे के
प्रयत्न—१६३६-१६४२, १६४४

नवकृष्ण, राजा—६६

नवानगर—६७६

नवाब गज़, का संग्राम—१६२६

नसरू पिण्डारी—८३६

नसीर खाँ, सिन्ध का अमीर—
१२०३, १२१२-१२१६, १२१८,
१२१६, १२२२, १२२७, १२२६

नसीराबाद, में क्रान्ति—१४१३,

१४४१, १६३७, १६३८

नसीरुद्दीन—१३६, १३७

नाक्स, कप्तान—१२५

नागपुर—३०४, ५७७, ६०८, ६३३,

६८५, ७१५, ७८६, ७९०, ७९२,

८४१, ८४३, १००६-१०३३,

१०३५, १०३७, ११६६, १३२३

का अपहरण १३२६, के महलों

की लूट १३३०, १३३१, १३३२,

१३४७, १३५५ के क्रान्तिकारी

१६२१, १६४१, १६४३, १६४४,

१६७६

नागू पण्डित—१०१४, १०२५

नागौर—१५०

नादिर खाँ, अवध का क्रान्तिकारी

सेनापति—१५६७

नादिर खाँ, नाना साहब का एक

सेनापति—१५६५

नादिरशाह—१५८, २१५, ३०३,

११६०, की लूट से दिल्ली में

अंगरेज़ी सेना की लूट से तुलना

—१५३४

नाना धुन्ध पन्त (सन् ५७)—की

फड़नवीस से तुलना ३००,

१००४, के साथ अन्याय १३५६,

को पेनशन देने से इनकार

१३६८, १३६६, १३८१, १३८२

की अज़ीमुल्ला के साथ क्रान्ति

की योजना १३८५-१३८७, की

क्रान्ति के संगठन के लिये तीर्थ

यात्रा १३६१-१३६२, १४१०,

और कानपुर की स्वाधीनता

१४३६-१४४४, का शासन

प्रबन्ध १४४४-१४४५, और

सती चौरा घाट का हत्याकांड

१४४६-१४४८, का क़ैदी अंगरेज़

स्त्रियों के प्रति व्यवहार १४४८-

१४४९, का दरबार १४५०,

१५००, और बीबीगढ़ का हत्या

कांड १५०१-१५०७, १५१०,

१५४८, नाना के मनसूबे १५४६

१५५१, १५५६, १५६०, १५६६,

१५६६, १५६७, १६०७, १६२१,

१६२५, का नैपाल में प्रवेश—

१६३५, १६३७, १६५७

नाना फड़नवीस—२७२, २७३,

२७६, २८१, २८२, २८६, २८६,

२९२, २९६, २९७, का दिल्ली

सम्राट के नाम पत्र २९६-३००,

३०२-३०७, ३३६, ३४६, ३५१,

३६२, ३६३, ३८२, ४००, ४०३-

४१३, ४३२, क्रैद में ५३६-५४१
५४३, ५५६, के अंगरेजों को
निकालने के अन्तिम प्रयत्न
५६२-५६३, की मृत्यु ५६४-
५६५, की सच्ची आशंकाएं ५८४,
६६८, १३५४

नाक्र नदी—१०४६, १०५५

नाभा—१४७०, १४७६, १४८१,
१४८७, १६५१

नामदार खाँ—५४६

नायब शरीफ—११७४

नार गुण्ड में क्रान्ति—१६२४,
१६२५

नारायण पंडित—१०१४, १०२१

नालागढ़—६४६, ६४७, ६५०

नालापानी—६३७, ६४०

नासिर जंग—२६-२६

नाहन—६३४, ६३५, ६४३

निकलसन, कप्तान, बाद में जनरल

१२६०, १२७१, १४७७, १५२०,

१५२१, १५२४-१५२६

निज़ाम—१६१, २७१, २७६, २८२,

२६८, ३०२, ३०४, ३१२, ३२२, ३३८,

३८५, ४१४-४१६, ४३६-४४८,

४५३, ५३६, ५५१, ५५४, ५५५,

५६२, ५६३, ५६७, ५७१, ५८६,

६०६, ६१०, ६३४, ६३५, अफ़-
ज़लुद्दौला १६२२

निज़ाम अली खाँ, अवध का
क्रान्तिकारी नेता—१६२५

निज़ामुलमुल्क—३०३, ३१२, ३४८

३६२, ४४२, ४४५, ६८१

नीमच की क्रान्तिकारी सेना—

१५२०, १६३८

नील, जनरल—१४२१, की दमन

योजना १४२८, के फांसी के

तरीके और नरसंहार १४२६-

१४३२, का इलाहाबाद वालों

से बदला १४३३, का छोटे

छोटे बालकों को फांसी चढ़ाना

१४३४-१४३५, १४४६, १४४८,

१४४९, १४६८, १४८३, १४९६,

का कानपुर यात्रा में सैकड़ों गावों

को जलाना १४९६-१५००, की

लखनऊ के संग्राम में मृत्यु

१५५३, १५५६, १५६४, १६५४,

१६५८, १६५९

नीलगिरि, उड़ीसा की एक रियासत
६६१

नीली, मिरजा—१३६०

नूर मोहम्मद खाँ, सिन्ध का अमीर-

११६६, ११७०, ११९६, १२०४,

१२२०

नूरुद्दीन—१३०३

नेगापट्टन—७

नेपियर, जनरल (सन् ५७)—१६४१

नैथन क्रो—११६१, ११६२

नैनीताल—१४१६

नैपाल—४३२, युद्ध ६२६-६५४

दरबार १४५७, १५६७, १६३५,
१६८३

नैपोलियन—३५६, ८८१, ८८२,
६७८, १२३६

नौ नदी का संग्राम—१५६१, १५६२

न्यू साउथ वेल्स (आस्ट्रेलिया)—
१६८७

प

पगू, बरमा का प्रान्त—१३१६-
१३२२, १३५५, १३६६

पंजाब—१६१, १६२, २६६, २६७,
६४६, १०६७-११०१, ११६६,
१३०२-१३०६, १३६६, का
काल्यांदाबुर्ज और काल्यांदाखूह
१५१०-१५१६, को ईसाई बनाने
के प्रयत्न १६६१

पटना—१०, ८६, १०६, ११४-११६,
१२३-१२७, १६६-१६६, १८३,
१८४, १६३, २००, २०१, २०६,
में क्रान्ति १५७७-१५७८

पटियाला—६४५, ८११, १२६४,

१४७०, १४८१, १४८२, १६५१

पण्डरपुर—६६०, ६६६

पनियार का संग्राम—१२४८

परशुराम भाऊ—३०१, ५५७, ५६०,
५६३, ५६४

पलाशी बाग—६३, १०५

पवन की रियासत (अवध)—१५६७

पवनगज (हैदर अली का हाथी)
३६२

पवनगढ़—६८४

पांडे, सन् ५७ के क्रान्तिकारियों का
विशेष सम्बोधन—१४०२-१४०३

पानीपत—५४०, ५४३, ५४५-५४८
५५४, ५५६-५६०, ५६६, ५७०,
५७२

पामर्सटन, लार्ड, प्रधान मंत्री इंग-
लैण्ड—११६५, १६६०

पार्क, जनरल (सन् ५७)—१६३६
१६४१, १६४२

पाल बेन फ्रील्ड—४१७

पालवेल, जनरल (आगरा) १४६८

पारुपा—६३४

पावल, करनल (दूसरा मराठा
युद्ध)—६६२

पावल, करनल (सन् ५७)—१५५५

पावेल, कमिशनर मुरादाबाद—

१४१७

पिट, प्रधान मंत्री इंगलैण्ड—११८

२१६, ४२६, ४३०, १६६६

पिण्डारी जाति—८३५-८४१, का

दमन ६६४-६७०, ६७७, १०४४

पिपली—१६

पी० पेज, कप्तान—१६६५

पीयर्ट, डाक्टर—१२२६

पीरअली, पटने का क्रान्तिकारी नेता

को फाँसी—१५७८

पील, कप्तान—१५५५

पीलीभीत—१६२५

पुट्टुचेरी (पांडिचेरी)—२२, २३,

२६, ३०, १३१, ३४१

पुनापा, पिण्डारी सेनापति—८३६

पुरन्धर—२८२, की सन्धि २८४-

२८६, ६६५-६६७

पुरुषोत्तम महादेव हिंगने—२६६

पुर्तगाल—४, ५, १५१

पुर्तगाल निवासियों का भारत

आगमन और व्यापार ५-१२,

३०

पुलीकट—१०

पूना—१६२, २७५-२६२, ३०१,

३०५, ४०५, ४०७-४११, ४४७,

४८४, ५४०-५४६, ५५३-५६१,

५६५-५७०, ५७७-५८०, ५८५-

५६१, ६०३-६०६, ६११, ६१२,

६२१, ६३१-६३४, ६५८-६६२,

६६६, ६६२, ७३४, ७६१, ६६६,

६७७, ६७६, ६८१, ६८५-६८६,

६६६, १०००, की समृद्धि

पेशवाओं के अधीन १००४,

१२२३, १२३१, १६२०, १६३१

पूना दरबार—देखो पेशवा दरबार

पूनामाली—१३३४

पूरिम पाक का संग्राम—३४२

पूरनिया (बंगाल)—४१, ५४, १११,

१२६, ६३४

पूरनिया, मंत्री हैदर और टीपू—

३५०, ४६२, ४६४, ४७१, ४७४,

४८३

पेतरूस, खोजा—१६०, १६४

पेरू (दक्षिण अमरीका)—३४

पेशवा—१६२, २६७, २६८, २७२,

२७४, को फँसाने के प्रयत्न

५३८-५८४, ६०६-६११, ६२४,

६३१, ६८८, ६८६

पेशवा, अमृत राव—५८१, ५८२,

५८५, ५८७, ५८६, ६०३, ६७३

पेशवा, दरबार—२७१, २८०-२८३,

२८५-२८७, २८९, २९५, ३०५,
३०७, ३३७, ३३९, ३७४, ४०४,
४१४, ४४७, ५४४, ५५५-५६१,
५६३, ५७२, ५९६, ६८५, ६८७,
१३५४

पेशवा, नारायण राव की हत्या—
२७४-२७६, ३३७

पेशवा, बाजीराव—२९८, ४००,
४०३, ४१२, ४१३, ५४०-५४३,
५४५, ५४६, ५४९, ५५३, ५५६,
५८५-५९३, ५९४-५९६, ६०३-
६०५, ६०७, ६११, ६१२, ६२५,
६५८, ६६०, ६६२, ८३६, ९७७-
९८०, ९८४-१००५, १०२५,
१०२९, १०३८, १०७०, १३५६,
१३६८, १३६९

पेशवा, बालाजी बाजीराव—२६४,
२६७

पेशवा, बालाजी विश्वनाथ—२६५

पेशवा, माधोराव—२६७, २६८,
२७३, २७४

पेशवा, माधोरावनारायण—२६५,
४००, ४०३, ४१०, ४११, ४१५

पेशावर—८७०, ९०९, १०९८,
१४७२, १३९३, १३९४, १३९७,
१३८८, १४७४, १४७५, १४७८

पैद्री—६९७

पैरों, कस्तान—६१५, ६९७-६९९

पैल्लेग्राइन ड्रीवज़—३८६

पोक्रम, कस्तान—३०२

पोलक, जनरल—११८८

प्रतापसिंह, राजा तंजोर—२७, २८
५०८-५१०

प्रतापसिंह, राजा सतारा—९९८,
९९९, १००३, १२८३, १३२६,
१३२७

प्रयाग—देखो इलाहाबाद

प्रह्लाद, नायक—६८८

प्राइज़ एजेन्सी, सन् ५७ में दिल्ली
में कम्पनी की सेना की लूट—
१५३८

प्रासी—११, ३०, का संग्राम ९३-
९५, १०५, १३६-१३७, ३४५,
८७९, ८८१, ८८९, १३५२, १३५३
१४९१, १७०५

फ

फ़कीरुद्दीन, मुन्शी—५५४

फ़जलुल्लाह ख़ाँ—३१९

फ़ज़ह अली ख़ाँ, सिन्ध का अमीर
११९१, १२२०

फ़तह ख़ाँ—१२९९

क्रतहगढ़—३८४, ४२२, १५६५
क्रतहपुर, में सन् ५७ की क्रान्ति—
१५००

क्रतह मोहम्मद, हैदरअली का पिता
३१०, ३११

क्रतहमोहम्मद गोरी—१२००

क्रतह हैदर, सुलतान—४७१, ४७३

क्रुखसियर—२६५

क्रुखाबाद—४३४, ५०५, ५०६,
५१०, में क्रान्ति १४५८, १५६४,
१५६४, १६२५

क्रुता—५५, ५८

क्राइलोस, कसान—५७६

क्राक्स (झांसी की लड़ाई)—
१६०५

क्राक्स, इंगलिस्तान का मंत्री—
१६६६

क्रातमा सुलतान, सम्राट बहादुर
शाह की बेटी—१५४३

क्राफामऊ (इलाहाबाद)—२०२

क्रासेट, करनल—७३५, ७३६

क्रास्ट, कसान—६३७

क्रिलिप क्रैन्सिस—६१७, ६२६,
६३०

क्रिलौर—१४७२, में क्रान्ति १४७८-
१४८०

क्रीरोज़पुर—१२५२, १२५६, १२६०
१२६४, १२६७, १२६८, १२७२,
१२७७, १२६८, में क्रान्ति
१४७३

क्रीरोज़ शहर का संग्राम—१२७३,
१२७४, १२७६, १२७८

क्रुलरटन—१६५, २०६

क्रुलवाड़ी—२०७

कुलैली नहर, सिन्ध—१२३३

कुज़ाबाद—२५२, २५३, १३६२,
१४२३, में क्रान्ति १४५६-
१४६१, १५७०

क़ैज़ुल्ला खाँ, नवाब—२४४, ४१८

क़ैनकोर्ट, करनल—८२१

फ़ॉर्ट विलियम—२१, १६, ४३५

फ़ान्स—४, के बाशिन्दे २२-३०,
के किसान ३२, २८८, ४२६-४२६,
६१४, ८५४-८५६, ८६१

फ़ान्सिस ड्रेक—१२

फ़ान्सीसी—२२-३०, ३७, ४१, ५४,
७१-७७, ७६-८२, ८५, ८६, १०६
२४८, २८७, २६२, ३२६, ३२७,
४२८-४३०, ४५२-४५७, ५०८,
६१५-६१८, ६२६, ८६०, ८७३,
८८३

फ़ेज़र, मेजर-जनरल—७६६, ७६७

फ्रेडरिक करी, रेज़िडेण्ट, सर—

१२८६, १२८६, १२८७-१२८८

फ्रेडरिक कूपर—१५११-१५१६,

१६५८

ब

फ्रेडरिक शोर, सर—१८०५, १८०६,

१८१०, १८७७, १८८२

फ्रेडरिक हैलिडे, सर—११३६

फ्रेन्क्स, जनरल—१५६८

फ्लोरिडा (मध्य अमरीका)—

१६८७

बक्सर—२०५, २०८, की लड़ाई

२१०-२११, २४६

बख्त ख़ाँ, दिल्ली का क्रान्तिकारी

सिपह सालार—१४१६, १४२०

१४६२-१४६४, १५१७-१५२१,

१५२७, १५२८-१५३०, १६६१

बग़दाद—८४६

बंकाबाई, राजमाता—१३३०

बंगलोर—३७६, ४८५

बंगाल—में अंगरेज़ १६, ३१, के

किसान ३२, ३३-३६, ५४-५८,

६८, ७४, ८७, ८९, १००, १०७

११०, ११२, ११७, ११८, १२१,

१२२, १२४, १२७, १२८, १३४,

१४०, १४२, १४४, १४७, १५१,

१५६, १५८, १५९-१६१, १६६,

१६८, १७१, १७५, १७६, १८१,

१८६, १८६, १८७, २०१, २०२,

२०६, २१८, २२२, २२४, २२५,

२३०-२३७, २३९-२४१, २४४,

२४७, २६०, २६६, २६९, २६६,

३२६, ३७७, ३८४-३८६, ६५३,

१६३१

बजबज—५६-६१

बदाशहर (जम्मू)—१२८२

बदौदा—२७६, ६८२, ६८३, ६८०-

६८५, ६८८-६९१, १६४५

बदायूँ—सन् ५७ की क्रान्ति में

१४१८, १४२०

बनारस—२२१-२२३, २२६, २४७-

२५१, ४२१, ४६६, ४६७, ५४६,

५५२, ८००, ८०६, ८३४, ११३५

१२६२, १३२७, १३५४, १३६०,

में क्रान्ति १४२०-१४२३, १४२८,

१४३३, १४३८, १५८२, १६१६,

१६५४

बन्दानवाज़ गेसूदराज़—३०६

बन्नू—१२६६

बम्बई—७, १७, २०, २३६, २४४,

२६६, २७१, २७५, २८०, २८६,

- २८६, २६०, २६२, ३०१, ३२६,
३३५, ४६४, ५३६, ५६७, ६८१,
७३५, ६८७, ६८८, १४२१,
१५५४, के क्रान्तिकारी १६२०,
१६५४
- बम्बू खाँ—६२८, ६४६, ७६३, ७६४
- बर, करनल—१०००, १००१
- बरगोस, कप्तान—१५२४
- बरमा—१५१, पहला युद्ध १०४१-
१०५८, १०६६, १०७१, दूसरा
युद्ध १३०६-१३२२, में क्रान्ति
१६२५
- बरमी जाति—१०४८, १०४९
- बरसात (परगना) १४६
- बरहानपुर—६०५, ६७०, ६७१,
६७८, ७०६, १०३४, १०३५,
१२४७
- बरार—२८७, २८८, २६३, ५४८,
५४९, ५७७, ५६५, ५६६, ६०८-
६१०, ६१२, ६१६, ६२३, ६६३,
६७३, ६८०, ७८६, ७९१, ८१४,
८२३, ८२८, ८४१-८४५, ८७१,
१००६, १०२३, १३३७-१३३९,
१६६३
- बरेली—२१३, ७६४, में क्रान्ति
१४१४-१४२०, १५२०, १५६६
- बर्ड, मेजर—४२१, ४२२, ४६८,
६३३
- बर्धमान—८६, ११४, १३४, १४३,
१४६, १५०, १५८, १६०, १६८,
२०३
- बर्न, करनल—७६५
- बर्न, करनल, फ्रौजी गवरनर, दिल्ली
१५३६
- बर्न बैस्टियन, दिल्ली—१५२४
- बरनार्ड, कमाण्डर-इन-चीफ—
१४८४, १८६१, १४६४
- बलगुरी—१४६
- बलभद्रसिंह (नैपाल युद्ध) ६३५-
६४३, ६४६, ६५३
- बलवन्त सिंह, राजा बनारस-२४७
२४८
- बलवन्त सिंह, राजा भरतपुर—
१०६७
- बलिया—१५८६
- बलूचिस्तान—११६५, ११७२
- बशीरतगंज के संग्राम—१५४८-
१५५०, १५५२
- बसई—२६८-२७०, २७५, २७६,
२८१, २८३, २८४, ३०१, की
सन्धि ५८१-५८४, ५८८, ५९१,
५९६, ५९७, ६०५, ६११, ६२०,

६६६, ६६२, ६७७, ६८५

बसरा—८४६

बहराइच—२५८, १४५८

बहादुरशाह, अन्तिम दिल्ली सम्राट

१३६०-१३६४, १३८५, १३८७,

की नाना से भेंट १३६१, १४०८

-१४१०, १४२६, १४४२, १४४६

१४५०, १४५४, १४६४, १४६७,

१४६६, १४८६, की गोहत्या के

विरुद्ध आज्ञा १४८७, के स्वा-

धीनता युद्ध के एलान १४८७-

१४८६, १४६२, १४६३, १४१७,

१५१८, की राजपूत राजाओं से

अपील १५१६, १५२०, १५२२

१५२७, १५२८, १५२६, की

गिरफ्तारी १५३०, के शहजादों

की हत्या १५३१-१५३२, के

कुल का अन्त १५४२, की मृत्यु

१५४३, १५४५, १५६६, १६२८,

१६५४, १६५७, १६६१

बहादुरसिंह, राना—६३५

बहावलपुर—८६६, १२६६, १३०६

बहुनाथ सिंह (सन् १८५७)—१६२६

बाकरगंज—१५५

बाँदा—१६०७, १६०८, का नवाब

१६३७, १६३६, १६४३

बानापुर—१६००, १६०६

बापूजी गणेश गोखले-५८६, १०००

१००२

बाबर—३५४, ७५७

बाबा ख़ाँ, ईरान का बादशाह—

८४६, ८४७, ८५०

बाबा साहब, नाना साहब का भाई

१४३६, १४४५

बाराबही—६८८

बारामहल—३१७

बारी—८०५, ८०६

बालकृष्ण, भट्ट—१४३५

बालकृष्णसिंह, राजा—१५४५,

१५७१

बालाजी कुञ्जर—६६६, ६७०,

६७३

बालाजी पन्त नातू—६६३, ६६४,

१००२, १००३

बालापुर कलां—३११

बालाबेहूत—१२४३

बाला साहब, नाना धुन्धपन्त का

भाई १३६१, १४३६, १५५६,

१५६०, १५६६, १६२५, १६३७

बालाहिसार—११७४

बालेश्वर—८६, ६८५, ६८६

बिटावली—१५६४

- बिठूर—१००३, १३६८, १३८१
१३८२, १३८५, १३८६, १३८९,
१४३६, १४४०, १४५०, १४५३,
१५०७, १५५०, १५५६, १६३१
बिरजीस क्रदर, शहजादा—१४६५
१५४४, १५६६, १५७३, १६२८,
१६३६
बिलासपुर (पंजाब)—६५०
बिहार—३१, ३४, ५४, ६८, ११०, ११२
११५, ११६, १२२, १५६, १६१,
१६६, २१६, २२२, २३६, २६०,
३८३, ६४४, में क्रान्ति १५७७-
१५६२, १६१६, १६३१
बीकानेर—८६६, १५१६
बीजापुर—३०६
बीबीगंज (आरा) का संग्राम—
१५८०
बीबीगढ़, कानपुर—१५०१-१५०७
१६५६
बीरभूम—१५०, १६०
बुखारा—६०६
बुडीवाल—१२७६
बुन्देलखण्ड—२०३, २८६, ६६२,
६६३, ७१२, ७३५, ७३७, ७३८,
७५६, ७६८, ८४६, १२४३, १२५४
बुन्देल की सराय का संग्राम—
१४८६, १४६०
बुरहानुद्दीन, पीरजादा—३१०
बुलन्दशहर में विप्लव—१४११,
१४१३
बुशायर (ईरान) ८४६, ८४७
बूटवाल—६३४
बूँदी—७४३, ६७२, १६३८
बेगम कोठी, लखनऊ—१५७३
बेचर, करनल—१६४२
बेदनूर—३१६, ३१७
बेनी माधव, राजा (सन् ५७)—
१५६७, १६२६, १६२८
बेलग्राम, में क्रान्ति—१६२०
बेलडाक, मेजर—६४२
बेली, करनल (पहला मैसूर युद्ध)
३४१, ३४२, ३४५
बेली मेजर, रेजीडेण्ट लखनऊ—६३१
६३२
बैंक्स, मेजर—१५४६
बैजाबाई, महारानी—१०७०
बैरकपुर—६०१, ८२७, का हत्या
काण्ड १०६०-१०६२, १३८८
१३६३, १३६७, १४०१
बैरी क्लोज़, करनल, रेजीडेण्ट—
५६४, ५७२, ५७५, ५७६, ५७८,
५८०, ५८७, ५६०, ६७८, ६७६,
६८५

बोकर, लेफ्टेनेण्ट—१६०६, १६०७
 बोनस (भाँसी की लड़ाई)—
 १६०५
 बोर्ड आफ़ कन्ट्रोल—३७०, ११५५
 १६६६
 बोल्ट्स—१६२, २३३, ८८६,
 बौशियर—३३३, ३३६
 ब्राइडन, डाक्टर—११८१
 ब्राइनलो, कप्तान—१४१५
 ब्राडफ़ुट, मेजर—१२६३-१२६७,
 १२७१, १२७५, १२८०
 ब्रायन हाटन हाजसन, रेज़िडेण्ट
 नैपाल—१६८३, १६८४
 ब्रिगज़, करनल—२७२
 ब्रिस्टल—११
 ब्रूक, कप्तान—३३३
 ब्रेकन—६१४
 ब्रेज़ील—३४
 ब्रेडशा, मैजर—६२६, ६५१
 ब्लैक, असिस्टेंट रेज़िडेण्ट—
 १०८८
 ब्लैकहोल, कलकत्ता—५०, १२१,
 १५०४, १५१४
 ब्लैकहोल, पंजाब—१५१०-१५१६

भ

भक्खर—१२०२

भगवन्तसिंह, राजा—६५८
 भगवान गोला—६७
 भगवानसिंह—१२८८
 भड़ोच—२७६, २६१, ६८१, ६८२-
 ६८४
 भदरपुर—१०५७
 भरतपुर—१६१, १६३, १६४, ६४६,
 ७६२, ७६४, का मोहांसरा,
 ७६५-७६४, ७६५, ७६७, ८०३,
 ८०६, ८१५, ८१६, ८२३, ८३२,
 ६५२, ६५६, ६५७, १०६६-१०७१,
 १४६८, १६३१, १६३७
 भागीरथ राव (जयाजीराव सींधिया)
 —१२३६
 भाण्डेर—१६०६
 भारत—चार सौ वर्ष पूर्व की स्थिति
 १-२, के जल मार्ग की खोज ३,
 की खोज में कोलम्बस ४, में
 पुर्तगालियों का प्रवेश ५, की
 उस समय की स्थिति ६, में
 पुर्तगालियों का व्यवहार ७, में
 डच जाति ६-१०, में अंगरेज़
 ११-१५, में फ्रान्सीसी २२-२४,
 के दक्षिण भाग में मोरचे २६-
 ३०, की बनी बन्दूकें १८६, की
 बनी तोपें २१३, की वैज्ञानिक

सरहद की खोज ११६०, में अंग-
रेज़ी उपनिवेश १६८१-१६८८,
में अंगरेज़ी राज १—१७०५
भास्कर राव बाबा साहब, राजा

नारगुण्ड—१६२४, १६२५
भिगार—६५५
भीमराव—१६२५
भीमसिंह—१२५२
भीलसा—७३३, ७८३
भूपाल सिंह (सन् ५७)—१६२६
भैरोवाल की सन्धि—१२८१,
१२८६, १२८८, १२९८
भोंसले—२६५, २६७, २८२, २८७,
३०७, ३४८, ३६२, ४०४, ४३४
भोंसले, आपा साहब—१००६-
१०३५
भोंसले, पुरुषाजी (बाला साहब)
१००६, १०१४, १०२५, १०२८
भोंसले, बाला साहब-देखो भोंसले
पुरुषाजी
भोंसले, मूदाजी—२८७, २८८,
२९६, २९७, २९९, ३०४, ३०५,
३७४, ४०४, ५३९, ६२८
भोंसले, यशवन्तराव—१३२८,
१३२९
भोंसले, राघोजी—६०५, ६०८,
६१०, ६२०, ६२२-६२५, ६३१,
६५३, ६८६, ७०६, ७११, ७५४,
७८८-७९२, १००६, १०११,
१०२९

भोंसले, राघोजी (तीसरे)—
१३२८
भोपाल—२८६, १०३४
भोरघाट—३०१

म

मऊ—१६०७
मंगलपांडे—१४०२, को फांसी
१४०३, १४५५
मंगलोर—७, ३२८-३३०
भवन, लखनऊ—१४५७,
१४६५
पटन—१५, २२, ७४
मछेरी—१०३८
मंचूरिया—६१४
मंडल घाट—१४९
मंडला—१२२५
मंडी—१०३५
मंडी, कसान का भरतपुर लूट का
वर्णन—१०७०
मथुरा—७५७-७६०, ७६२, ७६३,
७८६, ७९८, १४८७
मद्रास—१६, २४, २५, ५५, ५६,
१४९, २१९, २३९, २४४, २८६,
३२२-३२५, ३३१-३३३, ३३६,
३३९, ३४१,

३४३, ३४५, ३४६, ३४६, ३७६,
 ४४०, ४४१, ४४२, ४५२, ४५७,
 ५१०, ५१६, ५२७, ५४५, ५५६,
 ५६७, ७३५, ८०७, ८१६, ८२१,
 ८७४, ८७५, ८८५, १०५२, १०५६
 १३५७, १४२१, १४६८, १५५४,
 १६२१, १६५४
 मध्य प्रान्त—१०३८
 मध्य भारत—१०३८
 मनरो (टामस मनरो), सर, जन-
 रल—२०७, २०६, ३४१, ३४२,
 ३४५, ५६५
 मनियार गुड्डी—३४७
 मनिल्ला—४२३
 मनीपुर—१०४६
 मनोहर ग्राम का संग्राम—१५८५
 मन्दरा, लक्ष्मी बाई की सहेली—
 १६१५, १६१७
 मयूर भंज—६८६, ६९०
 मरगुई—१०६४
 मरदानसिंह, राजा—१६००
 मराठा मण्डल—देखो महाराष्ट्र
 मण्डल
 मराठे—२५, २६, ३१, ३३, ७२, ७३,
 १६१, १६८, २१३, २४७, पहला
 मराठा युद्ध २६४-३०७, दूसरा

मराठा युद्ध ५३८-८२१, तीसरा
 मराठा युद्ध ६६२-१०३६
 मरे, करनल—६५३, ७३४, ७३६,
 ७४१, ७५६-७६१, ७७४, ७८३
 मलका पुर—१०२२
 मलद्वीप—३५३
 मलबार—४८३
 मलाका—११, ४२३
 मलिक जहान ख़ाँ—४७५, ५६६
 महताब बाग़—४६५
 महमूद अमीन ख़ाँ—१०६
 महमूद ग़ज़नवी—८८१, ११८३
 महमूद बन्दर (पोर्तोनोवो)—३४१
 महा मन्दिर (जोधपुर)—१०३५
 महादेव पहाड़—१०३३
 महामेंजी बन्दूला—१०५४, १०५७,
 १०६५
 महाराजपुर—१२४८
 महाराष्ट्र मण्डल—२६४, २६५,
 २८७, २८८, २९३, ३४६, ३६२,
 ४०३, ४०६, ४१२, ४१३, ५३८,
 ४४१, ५६५, ५७५, ५७६, ५७८,
 ५८३, ५८४, ५९५, ५९८, ६०५,
 ६२४, ६८१, ७२३, ७८६, ८१५,
 ८७५, १०१४, १२३८, १३२५
 महीदपुर, का संग्राम—१०३६, १६२१

- महीपतराम, राजा—६३५
महीमण्डल गढ़—३४४
महोबा—१६०६
माजेण्डी, लेफ्टनेण्ट—१५३६,
१५७४
माण्टीगल, लार्ड—११५३
माण्डेश्वर—७८२, १०३७
माधोराव, राव—१६०८
मानकर—१४६
मानसन (सन् १८५८)—१६२४
मानसन, जनरल, दूसरा मराठा
युद्ध—७३६-७५०, ७५६, ७८३,
८२३
मानसन, वारन हेस्टिंग्स की कौन्सिल
का सदस्य—१६८२
मानसिंह, राजा जोधपुर—१०३५
मानसिंह, राजा शाहगञ्ज—१४६१
मानसिंह, सरदार ग्वालियर—
१६४७, १६४८
मानिकचन्द—५०, ५५, ५८, ५९,
८७
मानिक पत्तन—६८८
माबरे टामसन—१५३७
माबी, करनल—६३५, ६३६, ६३६,
६४२
मामा साहब—१२४२, १२४४
मामूखाँ, सरदार (१८५७)—१६२६
मारगन, कप्तान—६८८, ६९२
मारटिण्डल, जनरल—६४३, ६४४
मारनिंगटन, लार्ड—देखो वेल्सली
मार्किंस
मारले, मेजर-जनरल—६३४
मारवाड़—६७२
मारीशस—४२३, ४५४, ४५६, ४५७,
१३१०
मार्क कवन, सर—१०६०
मार्ककर, लार्ड, सेनापति—१५८३,
१५८४
मालन—१४५८
मालम (किला)—६४६
मालवा—२६३, २६४, ५७७, ७३३
७६०, ७६२, ८३८, ८४०, ६७३,
१०३७, १६७६
मास्टिन, रेज़िडेण्ट, पूना—२७०-
२७६, २७८, २७९, २८४, २८५,
२९०, ४०४, ४०८, ४११
माहुली—६६६
मिचेल, करनल (१८५७)—१६३६
१६४०, १६४२
मिठाराम दीवान (सिन्ध)—१२१६,
१२२२
मिण्टो, लार्ड (प्रथम)—८२२-

- ८७२, १०४२, १०४३, १०४४,
 ११६४
 मियामीर—१४७२, १४७४
 मियानी का संग्राम—१२१५-
 १२१७
 मिरजा, अख्तर सुलतान, शहजादे
 की हत्या—१५३१
 मिरजा, अबूबकर, शहजादे की
 की हत्या—१५३१
 मिरजा, कैसर शहजादे को फांसी
 —१५४२
 मिरजा, क्रोयास शहजादा—१३६३
 १३६४, १५४२
 मिरजापुर—६६७
 मिरजा, फखरु, शहजादा—१३६३
 मिरजा, फ़ीरोजशाह, शहजादा—
 १५६६, १५६७, १६२१, १६२६,
 १६४६, १६४८
 मिरजा, मुग़ल, शहजादा—१४८६,
 १४६२, १५१७, १५१६, की हत्या
 १५२१
 मिरजा, मोहम्मदशाह शहजादे को
 फांसी—१५४२
 मिल, करनल—३४, ३५
 मिलमैन—१५८१, १५८२
 मिशनरी, करनल और पादरी
 लेफ़्टेनेण्ट—१३७६
 मिश्र—१५१, ८७७, ६१४, १३८४,
 १७०६
 मीकम, लेफ़्टेनेण्ट—१४५५
 मीड, करनल—१६४२
 मीडोज़, जनरल—३७६, ३७७,
 ३८०, ३८१
 मीडोज़ टेलर—१६२२-१६२४
 मीर आलम—४६१
 मीर क़ासिम—५२, १०६, १३४-
 १४०, १४७-१६६, १६७-१६६,
 २०२, २०३, २०५, २११, ३६१
 मीरजाफ़र—५१-५३, ७८, ८७, ८८,
 ६०-६६, १०१, १०२, १०६-१४६,
 १४७, १४६, १५२, १७०-१७५,
 १८७, १६७-२१६, २१७, २१६,
 २२०, २६५, ३६१, ४००
 मीरन—६५, १०३, ११५, ११६,
 १२१, की हत्या १२५-१२७
 १३०, १४०
 मीर मसजिद—११७५
 मीर मुही उद्दीन (मीर मदन),
 सिराजुद्दौला का वफ़ादार सेना-
 पति—६३-६५
 मीर मुही उद्दीन—हैदर अली का
 सेनापति—३४४, ४६६
 मीर मोहम्मद अली ख़ाँ—१६३

मीर सादिक—३४३, ४६६, ४६८,
४६९

मुई जुहीन, शहजादा, टीपू का पुत्र
३८२

मुकन्दरा घाटी—७४०, ७४७, ७५०

मुगल साम्राज्य—६, ८, १४, १७,
२२, ३१

मुंगेर—१७२, १७६, १७९, १८१-
१८५, १९३, २०१

मुज़फ़्फ़र जंग—२६-२९, ३१२

मुदकी का संग्राम—१२७३

मुन्नी बेगम—२४५

मुबारकुद्दौला—४००

मुरसान—६५६-६५६

मुरादखली, सिन्ध का अमीर—
११६२

मुरादाबाद—६२७, ६४९, १४१४,
में क्रान्ति १४१७, १४१८, १४२०
१७०१

मुरार—१५६०

मुर्शिदाबाद—लन्दन से तुलना
३२, ३३, ३६, ३९, ५४, ६१, ६६,
७१, ७८, ७९, ८७, ९१, ९३, ९५-
९६, १०२, १०६, १०८, १०९-
११२, ११६, ११७, १२३, १२४,

१२८, १३४, १३५, १३८, १४३,
१४५, १६६, १६९, १७२, १८७,
२००, २०२, २१६, २१७-२२४,
२३६, २३७, २३८, २४१, २४५,
४००, ५३१, ६८५, ६३४

मुलतान—६६९, १०९८, १२०३,
१२८७-१२९१, १२९४, १२९७-
१३०१, १३०४, १३०५

मुल्ला जाफ़र—८७१

मुल्ला, नाना धुन्धपन्त का साथी
१४४५

मुही बांध—४८६-४८९

मूलराज, दीवान—१२८७-१२९१
१२९४, १२९७-१३०१, १३०३,
१३०५, १३०६

मेंजी महासिल्व—१०५०

मेदिनीपुर—१३४, १४२, १४३, १५८,
६०८

मेरठ—६४२, ६३४, १२५९, १३६०,
में क्रान्ति का प्रारम्भ १४०४-
१४०९, १४१०, १४१४, १४१७,
१४२१, १४२४, १४६८, १४८४,
१४८५, १६५०

मेलकोट—४८५

मेलापुर—१४५८

- मेवाड़—१७२
मेहदी अली खाँ—८४७-८४१,
८७२
मैकनील, करनल—५२६
मैकबीन, करनल (बरमा युद्ध)—
१०५२
मैकाले, कप्तान—४६०
मैकाले, लार्ड—१०२६, १०२८,
१११२-१११७, ११३६-११४३,
११५७, ११८५, ११८६, १२५७,
१३७१, १६६२, १६६६, १७०४
मैकलाउड, रेज़िडेण्ट—५१३-५१६
मैक्स मूलर—११२०, ११२१
मैक्सिको—८७७
मैंगल्स, अध्यक्ष, ईस्ट इण्डिया
कम्पनी—१३७०
मैज़नी, के विचार—४२७, ४२८
मैनपुरी, में क्रान्ति—१४१२-१४१३
मैलकम, मेजर—१४५३
मैलेट, रेज़िडेण्ट—३७४, ४०४, ४०५
४०८, ४१०, ४१२, ४१३
मैसूर—२६८, ३११-३१६, ३५१,
३५२, ३५४, ३७०, ३७६, ४६५,
४७३, ४७८, ४७९, ४८३, ४८६,
४९०, ५२०, ५५१, ५५६, ५६१,
५६३, ५६४, ५७२, ५८७, ६४०,
६४१, ६८७, १०८५-१०८७,
११००, १३८६
मोती महल (लखनऊ) का संग्राम
१५५८
मोरांग—६५०
मोरोबा—२८५, २८६
मोलमई—१३१०
मोहनलाल पण्डित—११५७,
११६१, ११७२-११७५
मोहनलाल, राजा, सिराजुद्दौला
का वफ़ादार साथी—६३
मोहम्मद अकबर खाँ—११७८-
११८०
मोहम्मद अली (बालाजाह)—
२८, २९, ३००, ३०४, ३१७,
३२०, ३२२, ३३४, ३३५, ३३८,
३४०, ३४४-३४६, ३६५, ३६६,
४१६, ४१९, ५१०, ५१६, ५२०,
५२४, ५२५-५२७, ५३२, १३३५
मोहम्मद खाँ—१२२८, १२२९
मोहम्मद खाँ, मीर—१२२०
मोहम्मद खाँ, सय्यद—१८७
मोहम्मद गोरी—८८१
मोहम्मद ग़ौस, नवाब—१३३५
मोहम्मद तक़ी खाँ—१८४, १८५,
१८७

मोहम्मद तुगलक, के अत्याचारों से
सन् ५७ के अंगरेजों के अत्या-
चारों की तुलना—१५००

मोहम्मद बशीर खाँ—२१२

मोहम्मद बेग, सिराजुद्दौला का
क्रांतिल—१०२

मोहम्मद मीर खाँ—६७४

मोहम्मद रज़ा खाँ—२१८, २२१,
२२३, २३२, २३६, २४०, २४५

मोहम्मद हुसेन, तहसीलदार—
१४५४

मोहम्मद हुसेन, मीर—१२२४

मोहम्मद हुसेन, क्रान्तिकारीनेता—
१५६७

मोहम्मदी—१४५८

म्हाड़—५८०

य

यन्दाबू की सन्धि—१०७१

यलोशिप—१३१७

यशवन्तराव, घोरपड़े—६६५, १००१

यशोदा बाई—४१२, ४१३

यारलुक्क खाँ—८७, ६३, ६४

युगलसिंह, राजा—५४, १११, १२५

यूसुफ, मल्लाह—१३१०

र

रघुनाथ राव (काँसी)—१०६३

११४

रघुनाथ राव, राघोबा—१६२,
२६५, २६७, २६८, २७१-२८६,
२८६-२८२, २८५, २८७, ३००,
३०६, ४००, ४०३, ५४०, ५७०,
५८२, ५८४

रघुराव बाबा—६५५

रंगपुर—६४५

रंगून—१०५१- १०५३, १०६१,
१०६४, १३०६-१३१८, १३२०,
१४२१, १४६८, में क्रैद में
सम्राट बहादुरशाह की मृत्यु
१५४३, में क्रान्ति १६२५

रंगो बापू जी—६६४, १३८२,
१३८३, १६१६, १६२०

रज़ा खाँ सय्यद—६३६, ६४०

रणजीत सिंह, महाराजा, पंजाब—
६४५, ६४६, ६४६, ६५०, ८६०-
८६६, ६२७, ६५३, १०३५,
१०६४-११००, ११६२, ११६३,
११६६, ११६७, ११६४, ११६५,
११६७, १२५०, १२५८, १२५६,
१२६२, १२६४, १२६८, १२६६,
१२७६, १२७६, १२८७, १२६२,
१३०३, १३५४

रणजीतसिंह, राजा, भरतपुर—
७५४, ७६६, ७७०, ७७२, ७७६,

- ७७८, ७८१, ७८२, ७८७, ८००,
८१२, ८१६, ८२७
रणजूर सिंह—६४३
रतनपुर—१०२५
रत्न पुल्लङ्ग—१०५५
रथर फ़ोर्ड, डाक्टर—६४६
रवन्ना (पास)—६०६-६०८
राक, मेजर—१६४६
राचूरी—१०३३
राजकेरी—८०५, ८०६
राजदीर—१०३२
राजपूताना—३०२, ६७१-६७३,
१४६७, १६७६
राजवल्लभ, राजा—४१, ४७, ८७,
१२७
राजमहल—५४, १०२, १८८
राजशाही—३६६, ८२६
'राजस्थान', ग्रन्थ—६७१, ६७२
रानो जी, सींधिया—२६३
राबर्ट ब्रायट, सर—१३२७
राबर्ट ब्राउन—६०१
राबर्ट माण्ट गूमरी—१३७४, १४७२,
१४७३, १५११, १५१५
राबर्टसन—१०४८
राबर्ट्स, जनरल—१६३८, १६३६,
१६४२
राबर्ट्स, लार्ड—१३८४, १३६८,
१४०३, १५३५
राबेन्ना बेगम, बहादुरशाह की बेटी
१५४३
रामगढ़—६४६
रामचन्द्र राव—१००७
रामचन्द्र राव, देशमुख—१६१८
रामचन्द्र राव, राजा (भौंसी)—
१३३२
रामचन्द्र बाग—१०२५
रामटेक—१०१६
रामदीन, घोष—८६
रामनगर (काशी के निकट)—
२४६, २५०
रामनगर (पंजाब का संग्राम)—
१३०४
रामनारायण, राजा—१०८, १०६,
११२, ११५-११७, १२३, १६६,
१६८, १६६, १७३, १७४
रामपुर—१६१, २४४, ६२८, ६४६
रामपुरा—७४६, ७४८, ७४९
रामबक्श, राजा (१८५७)—१६२६
राममोहन राय, राजा—६४१,
१०८६, १३६०
रामरम सिंह, राजा—११०
रामराव फलकिया—१२४६, १२४७

रामसरन, राजा—१४७
 रामू पहाड़ी—१०४६, १०५७
 रायगढ़ (महाराष्ट्र)—५८०, ११५, ११६
 रायगढ़ (बुन्देलखण्ड)—१६००, १६४०
 रायन, कसान—७२०
 रायबरेली—१६३५
 रायबेलोर—४७३
 रालेण्डशन, मेजर—११३८
 राव साहब, भतीजा नाना साहब—
 १४३६, १५५६, १६०७, १६०८,
 १६१२-१६१५, १६३७, १६३८,
 १६४२, १६४३, १६४६, १६४७,
 को फांसी १६४६
 रासकुमारी—१०३०
 रिचर्ड—१०३
 रिचर्डस, मेजर—१४४
 रिनाड, मेजर—१४६६
 रिपले, करनल—१४०७, १४०८
 रीड, जनरल, कमाण्डर-इन-चीफ—
 १४६४, १४६५
 रीड, मेजर (१८५७)—१४८५,
 १४६१, १५२३, १५२४
 रीवा—१०३८
 रेगुलेशन एक्ट—३६१

रेजीडेन्सी, लखनऊ—१४५७, १४६५
 १५४५-१५४७, १५५३, १५५४,
 १५५८, १५५९
 रेमाँ, मोशियो—४१५, ४१६, ४३७
 रेवाड़ी—१७०
 रुइया का दुर्ग—१५६५, १६२६
 रुक्नुहौला—३१८
 रुस्तम खाँ, खैरपुर, सिन्ध, का बूढ़ा
 अमीर—११६६-१२०३, १२०७-
 १२११, १२१३, १२१६, १२२३,
 १२२४, १२२६, १२२८, १२२९,
 १२३१, १२३२
 रुस्तम शाह—१४६१
 रुहेलखण्ड—२४२-२४४, २७१, ५१०,
 ७८०, १४१४-१४२०, १४६२
 रुहेला जाति—१६१, २४२-२४४
 रुबाह गाँवर—५५४
 रुस—८५६, १०६, १३८३, १३८४
 रोकफ्रट, जनरल—१५६८
 रोपड़—१०६६
 रोशनराव—४६१
 रोहरी—१२०८
 रोहिताश्व (रोहतास)—२०६

ल

लकवाजी दादा—५५२
 लक्ष्मीबाई, रानी झांसी—१३३३,

- १४५१-१४५४, १६००-१६१६,
१६३७, १६५७, १६६१
लखनऊ—२५१, ४२१, ४२२, ५००,
५०६, ५६४, ८००, ६३२, ६५६,
की नवाबी का अन्त १३३६-
१३५०, १३८८, १३८९, १३९१,
१३९२, १४०४, १४२०, १४४०,
१४४३, सन् १८५७ में १४५६-
१४५८, १४६२, १५४४, १४६५,
१४८८, १५४४-१५४८, १५५०-
१५५४, १५५६-१५६०, १५६२,
१५६६, १५६७-१५७७, १५८२-
१५८४ के संग्राम १६२६, १६५१-
१६५३, १६६१, १६६३
लगर्ड, सेनापति—१५८४, १५९०
लंका—७, ४२३, ८७७, १५५४
लंकाशायर—६१८, १६६२
लडलो, मेजर—६३७, ६४४
लन्दन—मुर्शिदाबाद से तुलना
३२, ६८, ५००, ६१२, १३७८,
१३८१-१३८३, १६१६, १६३१
लम्ब्सडेन, जनरल—१५५७
ललितपुर—१६४२
लशिगटन—१०१, १४०
लसवादी का संग्राम—७०४, ७०६
७०८, ८१५
लांगक्रील्ड, ब्रिगेडियर—१५२३
लाबूर दीने—२५
लारपैण्ड—८६६
लाल किला, दिल्ली—१४०८-१४०९
१५३०
लालबाग—३८१, ४७१
लालसिंह, राजा—१२६०, १२६१,
१२६३, १२७२, १२७४, १२७७-
१२७९, १२८१, १२८२, १२८७,
१२८८, १३०२, १३०६
लाहौर—२६४, ६४६, ८४८, ८६२,
१०३५, १२५२, दरबार १२६३,
१२६४, १२६६, १२६८, १२६९,
१२७८, १२८१, १२८२, १२८७,
१२८९, १२९२, १२९३, १२९७,
१३००, १३०३, १३०५, १३०७,
१४७२, १५१०, १५१५, १६३१
लाहौरी दरवाज़ा, दिल्ली—१५३६,
लिओनेल स्मिथ, मेजर-जनरल,
सर—११३४, १७०१
लिडेल, करनल—१६४२
लिण्डसे, सेनापति—१०८३
लियाकत अली, मौलवी—१४२६,
१४२७, १४३४
लिसबन—११, १२
लीग्रैण्ड, की पराजय—१५८७-
१५८९

लीस्टर—६२७, ६२८

लुई, कप्तान—१३१०, १३११

लुई बौरगुइन—७००, ७०१

लुई सोलहवाँ, फ्रांस का बादशाह
४२७

लुधियाना—८६८, ८४५, ११६३,
१२५६, १२६३, १४२०, में क्रान्ति
१४७८-१४८०

लोक, लार्ड, जनरल कमाण्डर-इन-
चीफ़—का परिचय ५६६-६००,
६०१, ६०२, ६१५, ६१६, ६२२,
६३७-६४०, ६४२-६४७, ६४६,
६५३, ६६५, की विजय यात्रा
६६४-६६७, के गुप्त उपाय ६६६
की सोने चाँदी की गोलियाँ
७००, ७०१, का दिल्ली सम्राट के
साथ सलूक ७०२-७०३, ७०४-
७०६, ७१३-७२६, ७३२, ७३४-
७३८, ७४०, ७४३, ७४६-७४८,
७५०-७५४, ७५८, ७६२-७७१,
७७२-७७६, ७८१, ७८५, ७८६,
७९०, ७९२, ७९३, ७९५-७९६,
८०१, ८०४-८०६, ८०६, ८११,
८१२, ८२७, ८२३, ८५६, १०६७,
१०७२, १०७३

लेयार्ड, मेम्बर पार्लिमेण्ट—१५०४,

१६५६, १६५७

लेसली, करनल—२८६

लैटर, मेजर—६३४

लैण्ड्स डाउन, लार्ड—११६६,
१२८५

लैप्स की नीति—१३२३, १३२४,
१३३३

लैम्बर्ट, कमाण्डर—१३१२-१३१८

लो, जनरल—१३३०

लौखार्ट (सन् १८५७)—१६३६

ल्यूकन, लेफ्टेनेण्ट—६६६, ६६७,
७४१, ७४२

व

वज़ीर अली—४२०-४२२, ४६६,
४६७, ५४६-५४८

वज़ीरुद्दौला—४००

वडियाव—२७६

वनियमवादी—३१८, ३२५

वनौरी—४०७

वन्सी टार्ट, कप्तान—६३७, ६४१

वन्सीटार्ट, गवर्नर—१२१, १२६,

१३०, १३४, १३५, १३८, १४३,

१४५, १५०, १५६, १६६, १७५,

१७६, १८१-१८३, १८५

बली मोहम्मद—३०८, ३०९

बाइनाद—४५४

बाघ लेफ्टनेण्ट—१४०२

बाजिद अलीशाह—का शासन

और सैनिक संगठन १३४५-

१३४६, १३४७ पर झूठे कलंक

१३४८, का चरित्र १३४९, की

सर्व प्रियता १३५० १३५५, का

कलकत्ते में निर्वासन १३६५,

१३८८, १४६०, १४६३-१४६५,

१५४४, १६३२

बाट, भाप के एंजिन का आविष्कारक

८८०

बाटरलू—८८१

बाटसन, एडमिरल—५१, ५८, ६२,

६८, ७१, ७३-७०, ८०, ८२-८४,

८६, ८९, ९०, ९२, १०१

बाट्स—४२-४४, ७०, ७१, ७७, ७८

८५, ८६, ८८, ९०, ९१, ११२

बारन हेस्टिंग्स—१५३१, ७६, १७७,

१९४, २२४, २३२, २३८, २६३,

२८०-२८९, २९३, २९४, २९६,

२९७, २९९, ३०१, ३०२, ३०४-

३०६, ३४५, ३६४, ३६९, ३८३,

३८४, ३९८-४०३, ४२४, ४३२,

५०४, ५३९, ६३९, ६५०, ६६८,

६९४, १०२८, १०७०, १३४९,

१६६८, १६८१

बारिस अली, जमादार को फाँसी

१५७७

बालपोल, जनरल—१५६४, १५९५

बालाजाह—देखो मोहम्मद अली

बालश—६६

बास्को-दे-गामा—५

बिकर्स, कप्तान—७२०

बिक्टोरिया, मलका—११८७,

१२४६, १२५०, १२५३, १३२८,

१४४१, के राज का प्रारम्भ

१६२९, का ऐलान १६३०-

१६३४, १६४५, का ऐलान

१६७६-१६७९, १६९०

बिठोबा—९९०

बिण्डम, जनरल—१५५६, १५६०,

१५६१

बिदेही हनुमान—१५७१

बिन्ध्याचल—१६१९, १६५४

बिलवर फ़ोर्स—११३०

बिलसन, जनरल, कमाण्डर-इन-

चीफ़—१४९५, १५२२, १५३१

बिलायत शाह, क्रान्तिकारी—१६२५

विलियम एडवर्ड्स—१६९१

विलियम चतुर्थ, इंगलैण्ड का राजा
—११६०

विलियम कैकरे—१०७६

विलियम, नेपियर, सर—१२२५-
१२२७, १२३०

विलियम बेण्टिन्क, लार्ड—८१६,
८२१, १०७५-११०२, ११४०-
११४२, ११५६, ११६०, १२३८,
१३७२, १६८३, १६६१

विलियम मैकनाटन, सर—११७३,
११७५, ११७८-११८१

विलियम म्योर, सर—१४११

विलियम हार्डरसल, सर—१३८१,
१३८३, १४३५, १५०३, १५३६,
१५३७, १५४५, १५७०, १५७४

विलियमस, कमाण्डर—१४८०

विलोबी, लेफ्टेनेण्ट—१४०६

विशाख पट्टन—२०

विश्वासराव—१६३, १६४

वीर राजेन्द्र—१०८०

बुड, करनल (मैसूर युद्ध)—३२६,
३२८, ३२९

बुड, मेजर-जनरल (नेपाल युद्ध)—
६३४

बुडिङ्गटन, करनल—६८३, ६८४

बेङ्कट रामस्वामी (मन्दिर्)—
४८५

वेञ्चरा, जनरल—१२५२, १२७२

वेडिङ्गटन, मेजर, बाद में करनल—
१२१६, १२१७

वेनिस—२

वेब, रेज़िडेण्ट—७४०, ७८२, ७८४

वेरेल्स्ट—१५४, २२३, २३३, गवरनर
बङ्गाल २३४

वेलिङ्गटन, ड्यूक आफ्र—देखो
वेल्सली, जनरल, सर, आरथर
वेलोर—८१७, ८१८, ८२१, का

गदर सन् १८५७ की क्रान्ति
का पेशखेमा १३५४, १३७२

वेल्सली, जनरल, सर आरथर, बाद
में ड्यूक आफ्र वेलिङ्गटन—४२०,
४६०, ४७५, ५३६, ५४०, ५६४,
५६६-५६६, ५८८, ५८६, ५६०,
६०४, ६०७, ६०८, ६१२, ६२३,
६२४, ६२७, ६३२-६३५, ६३७,
६५२, ६५४-६८१, ६८४, ७०८,
७११-७१५, ७२१, ७२४, ७२६-
७३०, ७३५, ७६१, ७६२, ८०४,
८३८, ८७६, १००७, ११८१-
११८५, ११८८, १२०५, १२०६,
१२५५, १२५६

वेल्सली, मार्क्विस्, गवरनर-जनरल
—४२५, ४२६, ४३०-४३५,

और निज़ाम ४३६-४४८, ४५१-४६०, ४७२, ४७४, और अवध और फ़र्रुखाबाद ४६७-५०६, और तंजोर ५१५, और करनाटक ५२०-५३२, और सूरत ५३५-५३७, और पेशवा को फँसाने के प्रयत्न ५४०-५८४, ५८६, ५८८, ५९०-५९२, और दूसरे मराठा युद्ध का प्रारम्भ ५९४-६३० और साज़िशों का जाल ६३२-६५१, और साम्राज्य विस्तार ६५२-७१०, और जसवन्तराव होलकर ७११-७६४, और भरतपुर का मोहासरा ७६५-७९४, और दूसरे मराठा युद्ध का अन्त ७९५-८०१, ८०२, ८०३, ८०८, ८१७, ८१८, ८४६, ८४८, ८५४, ८६१, ८६२, ८८५, ११८१, १३५६ वेल्सली, हेनरी—५०४-५०६ वेस्ट इण्डोज़—५ वेल्लेस, करनल—७३८, ७६०, ७६१, ८८३ व्हाइट, क्रिसान—१५० व्हिटलाक, जनरल—१६०७-१६०९ व्हीलर, करनल—१४०२

श

शङ्करपुर का संग्राम—१६२८, १६३५
शङ्कर राव—५१४
शङ्कर सिंह, गोंड राजा जबलपुर—१६२१
शङ्कराचार्य, अंगेरी मठ—३५४, ४८३, ४८४
शमशेर बहादुर—६६२, ६६३
शम्शुद्दीन (दूसरा सिख युद्ध)—१३०३
शम्शुद्दीन खाँ, नवाब—१६३१
शम्शुद्दीन खाँ, सूबेदार—१४४१
शाहदाद खाँ, सिन्ध का अमीर—१२१६
शाहबाज़—३१०-३१२
शाहादतगंज (लखनऊ) का संग्राम १५७३, १५७४
शाहस्ता खाँ—१६
शामली—७६६
शामसिंह अटारी वाला—१२७६, १२८०
शा, मेजर—४४२, ६७५, ७१२
शाह आलम, दूसरा, पहले शाहज़ादा अली गौहर—११६, ११७, १२२-१२५, १३३, १६०, १६१, १६४,

- १६६-१६८, २०६, २०८, २१०,
२११, २१४, ११५, २२१-२२३
२३१, २४१, ३६७, ६३८-६४१,
६६६, ७०१-७०३, ८०१, १०७२,
१३५७-१३६०
शाहगंज—१४६१
शाहगढ़—१६०६
शाहजहाँ—८, १६, १५७८
शाहजहाँपुर—की स्वाधीनता—
१४१६, १४१८, १४२०, १५६६,
१५६७
शाहजी—५०७
शाह नज़फ़ (लखनऊ) का संग्राम
—१५५८, १५७३
शाहपुरी टापू—१०४७, १०४८
शाह महमूद (अफ़ग़ानिस्तान)—
८५१, ८५४, ८५६, ८७०-८७२,
१०६६, ११६६, ११७१-११७३,
११७७, ११८०, ११८१, ११६७
शाहशुजा, बंगाल का सूबेदार—१६
शाहाबाद—६६७, में क्रान्ति १५७८
शिखर जी—१६४७
शिताबराय, महाराजा—२०६,
२३२, २३६, २४०
शिमला—१४८१
शिवराजपुर—१५५६
शिवराव—५१४
शिवाजी—१७, २६४, २८७, ५०७,
६४५, ८३६, १३३१
शिक्षा का सर्वनाश—१११६-११५८
शीरीन ख़ाँ—११७४
शुजाउद्दौला—१६३-१६५, २०३-
२१६, २२१, २४१-२४४, २५२,
२५६, ३२०, १३४६
श्रंगेरी मठ—३५४, ४८३, ४८४
शेक्सपीयर, करनल—६५३
शेख़अली (मोहम्मद अली शेख़)—
३०६, ३१०
शेखू पुरा—१२६२
शेपर्ड, कप्तान—१३०६-१३११
शेरर, मैजिस्ट्रेट फ़तहपुर—१५००
शेरसिंह, महाराजा (पञ्जाब)—
१२५३
शेरसिंह, राजा—१२०३, १२६८-
१३०२, १३०४
शौकतजङ्ग—४०, ४१, ५४, १११
श्रीनगर (नैपाल युद्ध)—६३४,
६४३
श्री निवास (मन्दिर)—४८५
श्री रङ्गपट्टन—३१३-३१५, ३४२,
३५०, ३७६-३८२, ४६३-४६५,
४६८, ४७१-४७३, ४७५, ४८५,

५२१, ५२४, ५२७, ५६०, ५६१,
५६४, ५६६, ८७४
श्रीहट्ट (सिलहट्ट) — १३३, १३५,
१०५१
श्वार्टज़, पादरी — ५१३, ५१५, ५१६

स

सआदत अली — ४२१, ४२२,
४६६-५०४
सआदत ख़ाँ, सूबेदार अवध —
२१४, ८२६
सआदत ख़ाँ, क्रान्तिकारी नेता
इन्दौर — १४६७
सआदतुल्ला ख़ाँ — ३१०
सक्कर — १२१०
सखाराम बापू — २८०, २८५, २८६
सच्चिदानन्द भारती — ४८४
सण्डरलैण्ड, मेजर — १६४५
सतलज नदी — १०६८
सतारा — २६५, २८७, २८८, ६६४,
६६८, १००२, १००३, १०३८,
१२८३, १३२५-१३२८, १३४७,
१३५५, १३६६, १३८२, १३८६,
१६१६, १६२०, १६३१, १६७६,
सतीचौरा घाट, कानपुर — १४४६-
१४४६, १५०६

सदरलैण्ड, मेजर, रेज़िडेण्ट —

१०६१, १०६२

सदाशिव भाऊ — १६३, १६४

सदाशिव भाऊ भास्कर, सेनापति

सीधिया — ७४०, ७४८, ७४६

सद्दूसाम — १२६६

सद्दास — १०

सफ़दर ज़ङ्ग — २१५

सन्सीडीयरी सन्धियाँ और सेनापं

— २५१, ३७३, ४१४, ४१६,

४२२, ४३३, ४३४, ४३८, ४३९,

४४६, ४५३, ४६१, ४७४, ४६७,

५१२, ५४२, ५४६, ५५४, ५५६,

५६१, ५६३, ५६६, ५६६-५७१,

५७४, ५७६, ५७८, ५८२, ५८७,

५८८, ६२०, ६४८, ६८३, ७०६,

७२८, ७३६, ७६८, ८१०, ८१४,

८४१-८४३, ८५२, ८७७, ८८२,

८८३, १००६, १०१०, १०१३-

१०१८, १०२३, १०३७, १०४५,

१०८५, १२४३, १२४६, १३३७,

१३३८, १३४०, १३४८, १४६७,

१५६०

सब्ज़ल कोट — १२०७, १२०८

सब्ज़ी मण्डी, दिल्ली — १५२३,

१५२४

सम्बल गढ़—७८८, ७९३, ७९६
 समरू बेगम—६४२, ६६५, ७६३,
 ७६४
 सम्बल पुर—६९०, १३२३, १३३३,
 १३६६
 सय्यदाबाद—६७
 सरगुजा—१०२३
 सरधना—६४२
 सरफ़राज़ खाँ, बंगाल—६०
 सरफ़राज़ खाँ, सिन्ध का अमीर—
 ११६१
 सलावत जंग (लार्ड क्लाइव)—
 देखो क्लाइव
 सलीम, मिरज़ा—१३६०
 सलीवन—८६६
 सुहारनपुर—६२८, ७६३, ७६५,
 ८३६, १२६१, १३५५
 साइबीरिया—६१४
 सागर—१५४६, १६००, १६०७
 सातगढ़—३४४
 साधोराम, राय—२०७
 सामुरी (सामुद्रिक)—५, ६
 सांभर—ज़िला १०८७, भील
 १०८७
 सारन—६२८
 सारबो जी—५११, ५१५-५१७

सालबाई की सन्धि—३०५, ३०६,
 ३४८, ३४९
 सालार जङ्ग—१६२२
 सालोनी—१४६१
 सावनमल, दीवान—१२०३, १२८७
 सावन्त वाड़ी—१०३८
 साष्टी (सालसेट)—२६८-२७०,
 २७५, २७६, २८१, २८३, २६७
 साहूजी—२७, २८, ५०८, ५०९
 साहूमल, राजा—२१०
 सिंहगढ़—५८०, ६६६, ६६७
 सिकन्दर—३८६
 सिकन्दर बाग, (लखनऊ) का
 संग्राम—१५५७, १५५८
 सिकन्दरा—७६२, ६७०
 सिकरोरा—१४५८
 सिक्किम—६३५, ६४८, १३६६
 सिटान, सूरत की कोठी का मुखिया
 —५३६
 सिन्ध—१६१, ८५८-८६०, १०६३-
 ११००, ११६०, ११६७-११७१,
 पर अङ्गरेज़ों का कब्ज़ा ११६०-
 १२३७, १६६३
 सिन्धु नदी—की सरवे, १०६३-
 १०६६, ११६०, ११६७, ११६५,
 ११६६, १२००, १२३३, में

क्रान्तिकारियों का डुबाया जाना
 १४७७-१४७८
 सिबलड, जनरल—१४१४, १४१६
 सियालकोट—१३६२
 सिराजुद्दौला—३१-१०५, १०७,
 १०८, १२६, १३६, १३७, १४२,
 १४४, १६०, १८२, २३६, ८८६-
 ८९१, १३७३
 सिलहट—देखो श्रीहट
 सिवनी—१०२६
 सिहोरे—७३३
 सीटन, कसान—७६४, ७७६, ८५८,
 ८६०
 सीटन, जनरल—१५६५
 सीटन, रेज़िडेण्ट—१३५६
 सीतापुर—१४५८, १६३५
 सीताबल्डी—१०२३, १३३०
 सींधिया—२६५, २६७, २८२, २८६-
 २८८, २९५, ३०७, ३४८, ३६२,
 ४०६, ४३४, ५४१-५४३, ५६६,
 ५७५, ५८०
 सींधिया, जङ्गोजी—१०८६, १२३६,
 १२४१
 सींधिया, जयाजी राव—१२३६,
 १२४२, १२४७, १४६६, १६१२,
 १६५४

सींधिया, दौलतराव—४१४, ५४०-
 ५५८, ५६५, ५६७, ५७५, ५७६,
 ५७६, ५८३, ५९५-६३०, ६३६-
 ६४८, ६६२-६६५, ६६७-६८२,
 ६८३, ६८५, ७०६, ७०८, ७०९,
 ७१६, ७२८, ७३१, ७३२, ७३६,
 ७४०, ७८१, ७८२, ७८४-७८८,
 ७९५-७९७, ८०५, ८०६, ८१०,
 ८३६, ८५४, ८७७, १२३८,
 १२४७
 सींधिया, बापू जी—६७७, ७३३,
 ७४०-७४५, ७४८, ७८३
 सींधिया, माधो जी—२६७, २६८,
 ३०१, ३०५, ३०६, ३६७, ३८३,
 ४००-४१०, ४१४, ४३२, ५४०,
 ५४१, ५७७, ६२८, ६३६, ६५०,
 ६८१, ६८५, ६९४, ८३६, १२३८,
 १३५७, १३५८
 सीरा, प्रान्त—३३४
 सुएज़ नहर—१७०६
 सुबरांव का संग्राम—१२७६-
 १२८०
 सुमात्रा—११
 सुलतानपुर—१४६१, १५६८
 सूरत—१०, १३, १४, १७-२१, २७७,
 २८०-२८२, २९१, ४३४, की

नवाबी का ख़ात्मा ५३३-५३७,
५६३, ६६२, ६८२, ८८३, ८८९,
१२२४, १३५७
सेण्ट जार्ज, क़िला—३३६
सेण्ट टामस, की पहाड़ी—३२२,
३३२, ३३३
सेरजी राव, घोटका—७६६
सैलिसबरी, मार्क्स थाफ़—१६७८
सोफ़िया, जहाज़—१०४८
सोबदार ख़ाँ, सिन्ध का अमीर—
१२२०
सोमनाथ का फाटक—११८४-११८७
सोमर पीठ—३८०
सोमर सेट—१६४६
सोहराब ख़ाँ, मीर, सिन्ध—१२३१
सोहागपुर—१२०६
सौदा क़ेठी, कानपुर—१४४७
स्काट, करनल (१७५७)—३६, ३७
स्काट करनल (मराठा युद्ध)—
६६६, १०१६
स्काट, रेज़िडेण्ट—४६८, ५०३
स्काट लैण्ड—१६८४
स्किनर, करनल—१०६८
स्कैनडेनेविया—१२०४
स्कैप्रटन—५५, ६५, ६६, ७८, ८१,
१६६
स्टिवेन्सन, करनल—५८८, ६३५,
६५२, ६६२, ६६६, ६६८-६७३

स्टुअर्ट, जनरल—४६३, ६०४, ६३३
६५२, ६५८, ७२७, ८३८
स्टैनली, कप्तान—१२१०
स्पार्टिस बुड, करनल—१४७५
स्पायर्स, करनल, रेज़िडेण्ट—१२४४
स्पेन—४, १५१
स्पेन्सर, गवरनर बंगाल—२१७,
२१८, २२०
स्मिथ, जनरल (भांसी, सन् १८५७)
१६१५
स्मिथ, जनरल (मराठा युद्ध)—
७७६-७८१, १०००, १००१
स्मिथ, जनरल (मैसूर युद्ध)—
३१८, ३२१-३२३, ३२६, ३२८
३२९, ३३१, ३३६
स्लीमैन, करनल, रेज़िडेण्ट—१२४४
१२४५, १२५४
स्वरूप चन्द—१८२, १६५
स्वर्ण दुर्ग—५८०
स्विफ़्ट मैकनील—१६६३

ह

हज़रत ईसा—१८६, ८७६
हज़रतमहल बेगम—१३८७, की
क्रान्ति के मुख्य प्रवर्तकों में
गणना १३८८, के अधीन
स्त्रियों की सेना १४६४, को
अवध का अधिराज्ञी स्वीकार
करना १५४४, की प्रशंसा में

- रसूल १५४५, की युद्ध के मैदान में उपस्थिति १५७२, की दया १५७५-१५७६, १५६६, १५६७, १६२६, का मलका विक्टोरिया के जवाब में ऐलान १६३०-१६३३, का नेपाल में निर्वासन १६३५-१६३६, की उदारता १६५७, १६६१
- हज़रत मोहम्मद—१८६, २६०, ३५५, १३७३
- हज़ारा—१२६४, १२६५
- हज़ारी बाग़ में सिन्ध के अमीरों का निर्वासन—१२२३
- हज़ारी मल—४६
- हडसन, कप्तान—१५२५, १५३०, १५३३, १५५७, १५७३, १६५८, १६६१
- हनुमन्त सिंह, राजा (अवध), सन् १८५७ का एक प्रमुख क्रान्ति-कारी—१४६१, १४६२, १६२६
- हयात खाँ—१२१३
- हरबर्ट स्पेन्सर—८१६, ८६३
- हरा झण्डा, सन् १८५७ के क्रान्ति कारियों का निशान—१४०६, १४१०, १४१२, १४१८, १४१६, १४२१, १४२३, १४२५, १४२६, १४३४, १४५८, १४६०, १४६१, १४६४, १४६८, १५४४, १५४८, १५५२, १६०८
- हरिद्वार—१३६०
- हरिपन्त फडके—२७७, ३०१
- हरी के पत्तन—१२६६
- हरीपुर—१२६६
- हरीहर—५८८, ५८६
- हशमत जंग (कर्क पैट्रिक, कप्तान)—४३६
- हाकिन्स, कप्तान—१३-१४
- हाथरस—६५६-६५६
- हाफ़िज़ अली खाँ, सय्यद—३४३
- हाब हाउस, भारत मंत्री—१३२७
- हारकोर्ट, करनल—६८८-६६०
- हार्डिज़, लार्ड—१२५७, १२५६, १२६३, १२६५, १२७०, १२७२, १२७३, १२७४, १२८०-१२८४
- हालवेल—४८, ५२, ५३, १२१, १२६ १२६, १३४, १४०, १०२८, १५१४
- हालैण्ड (ओलन्दाज़) ४, ६
- हालैण्ड, गवरनर, मद्रास—३७६
- हगलास गढ़—७४०
- हिन्दुर (नालागढ़)—६४७, ६५०
- हिन्दू-मुसलिम—पक्षपात का प्रारम्भ, १०६-१०८, प्रश्न और हैदर अली ३५३-३५५, प्रश्न और टीपू सुलतान ४७८-४८५, झगड़ा अमृत सर में ८६६-८६७, प्रश्न और एलेनबु ११८४-११८७, प्रश्न दूसरे सिख युद्ध में पठानों में पैदा करने की चेष्टा १२६५-१२६७, भेद नीति और अंगरेज़ नीतिज्ञ १७००-१७०२

हिन्दोस्तान—३०, १३२, के हर
गांव में पंचायत ३८६, ३६६,
का बुना कपड़ा ३६६
हिम्मत बहादुर गोसाई—६६३
हींदिया—६७१

हीबर, पादरी—६६६

हीयर, जनरल—१४०२

हीरासिंह, राजा—१२५२

हुगली—८, १६, २१, ४३, ५४, ६०-
६२, ७३, ८६, ११४

हुमायूँ—७५७, ११६०,

हुमायूँ का मकबरा, दिल्ली, में
सम्राट बहादुर शाह की
गिरफ्तारी—१५२८, १५३०

हुलास सिंह, नाना धुन्ध पन्त का
साथी—१४४४

हुसेन अली खाँ, सिन्ध का अमीर
१२२१

हुसेन अली, सय्यद—२६५, ३०३

हूल सवार—८३६, ८३७

हे, अंगरेज़ दूत—१७६-१८४

हेडल—१२३२

हेनरी आठवाँ, बादशाह इंगलिस्तान
१२

हेनरी, काटन—१५३७

हेनरी डण्डास—३६७, ३६६, ४३३

४३६, ४३८, ५८३, १६८२

हेनरी पाटिअर—१२३५

हेनरी बरनार्ड, सर, कमाण्डर-इन-

चीफ-१४८३-१४८५, १४६१,
१४६४, १५०१

हेनरी लारेन्स, बाद में सर—२७५,

४२३, १२८२, १३४२, १३७४,

१४५५-१४५७, १४६४, १४६५,

की मृत्यु १५४६

हेनरी वेल्सली—देखो वेल्सली,
हेनरी

हेनरी स्ट्रेची, सर—८२६

हेस्टिंग्स, मारकिस आफ—८७६,

६२०, ६२६-६३३, ६४७, ६४६,

६५१, ६५५-६६१, ६६२, ६६४,

६६७, ६६८-६७०, ६७३, ६७४-

६७६, ६६३-६६५, १००३-१००५

१००८-१०१५, १०२२, १०३६-

१०४०, १३४४

हैदरअली—२४७, २६६, २७६, २८२

और निज़ाम में तुलना ३०३-

३०४, और नाना फ़डनवीस

३०५-३०७ का शासन काल

और चरित्र ३०८-३६३, ३७१,

३७३, ३७५, ३७८, ३८१, ४४०,

४४६, ४७३, ४७५, ४७६, ४८१,

४६१, ५२०, ५२२, ५२६, ५३८,

५६२, ६४५, ७५१, १०८५,

१३५४, १६४१

हैदरनगर—३१७, ३२३

हैदरशा—३५६, ३५७

हैदर साहब—३११, ३१२

हैदराबाद (दक्षिण)—३०३, ४३२,
४४०, ४४२-४४८, ४५६, ४६१,
५५१, ५६३, ५६७, ५८७, ६६२-
६६४, ८२६, ८७४, १३३८, १३३६,
१६१५

हैदराबाद (सिन्ध)—८६०, १०६४,
११७२, ११६६, १२०३-१२३१,
१२३४, १२३७, १२५७

हैनवे, करनल—२५८-२६०

हैमिल्टन एण्ड कम्पनी—१३३१

हैरिस, जनरल, बाद में लार्ड—४४३
४५२, ४५४, ४५६, ४६२-४६४,
४७१, ४७५, ६८७, १३३५

हैवलाक, जनरल—१४६६-१५०१
१५०६-१५१०, १५४६-१५६४,
१६५४-१६६१

होती मरदान—१४७५

होप जनरल—१५६५

होप आण्ट, जनरल—१५२४,
१५५६, १५५७, १६२६, १६३५

होम्स, करनल—१६३७, १६३६

होलकर—२६५, २६७, २८६, २८८,
२६०, २६३, ३०१, ४०६, ४३४,
५७७, ५८२, ६०८, ६१०, ७५४

होलकर, अहल्याबाई—२६४; ४०५

होलकर, काशीराव—५४०, ५४१

५६५, ६३२, ७१५-७१७, ७३३

होलकर, जसवन्तराव—५४१, ५७७-

५८२, ५८५, ५८७, ५८६, ५६५,
६०५, ६२७, ६३२-६३६, ७०६,
७११-७६४, ७६५-७७०, ७७८-
७८१, ७८५, ७६२, ७६३, ७६४,
७६६, ८०६, ८०६-८१६, ८३१-
८३५, ८४२, ८४३-८४५, १०३५

१२६६

होलकर, तुकाजी—४०५, ४०६, ४१२

५४०, ६३२, ७१५, ६६५

होलकर, मलहरराव—२१३,
२६३, ५४०, ५४१, ६६५

होलकर, मलहरराव (जसवन्तराव
का दत्तक पुत्र)—८३३,
१०६३

होलकर, विठ्ठजी—५४०, ५४१,
५७७, ५७८

होशंगाबाद—६७१, १०२६, १६४२

ह्युम, कलक्टर, इटावा—१४१३

ह्युरोज़, सर—१६००, १६०१,
१६०७, १६१०, १६११, १६१४-
१६१६

ह्यू व्हीलर, सर—१४३६-१४४५,
१५०८

ह्यूसन, सारजेण्ट-मेजर—१४०२